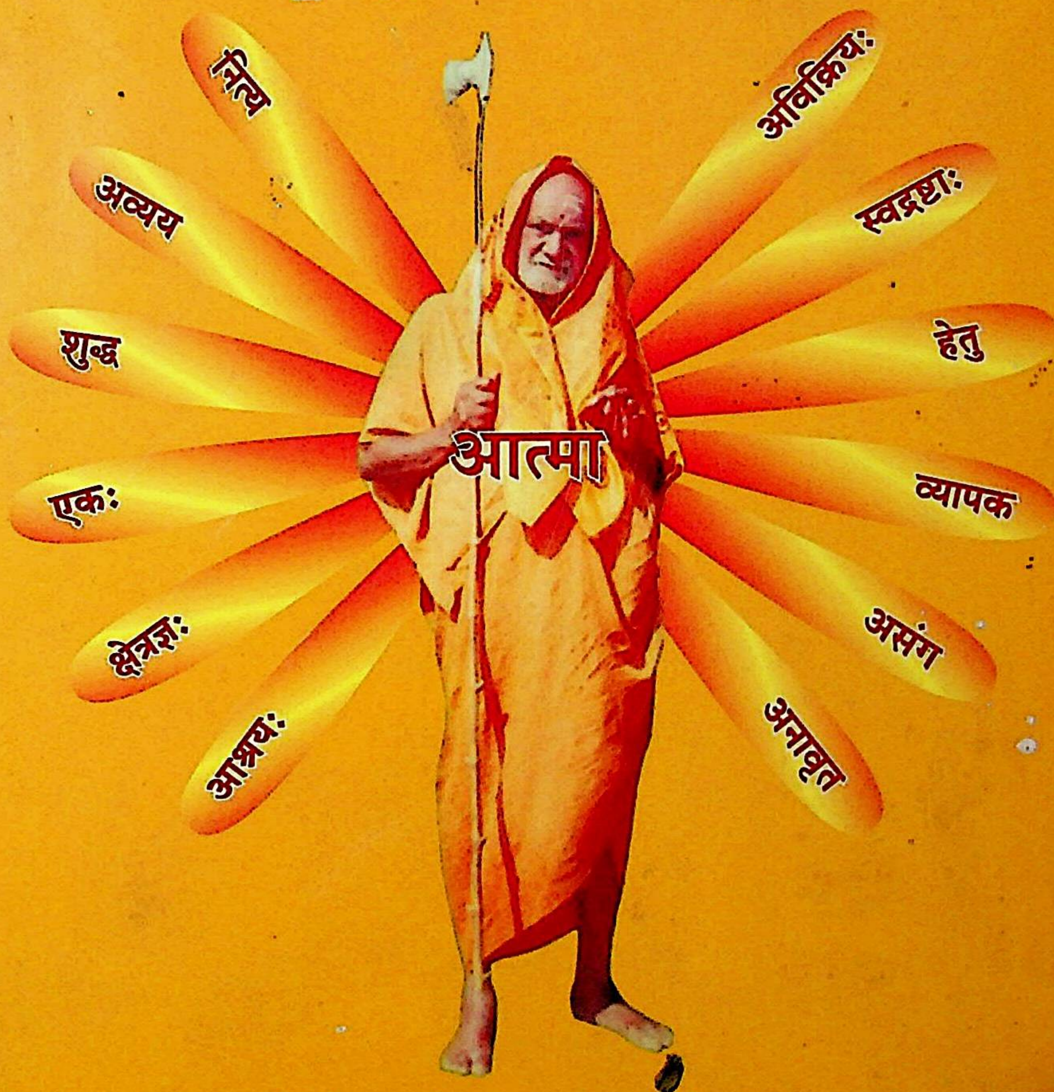
चिन्तामणि

[द्वितीय भाग]



ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

का प्रसाद

टीकाकारः त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः

महापुरुष का प्रसाद

॥ ॐ ॥

चिन्तामणिः

[द्वितीय भाग]

ग्रन्थकार
ब्रह्मर्षि श्रीलक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

टीकाकार
त्र्यम्बकेश्वर चैतन्य

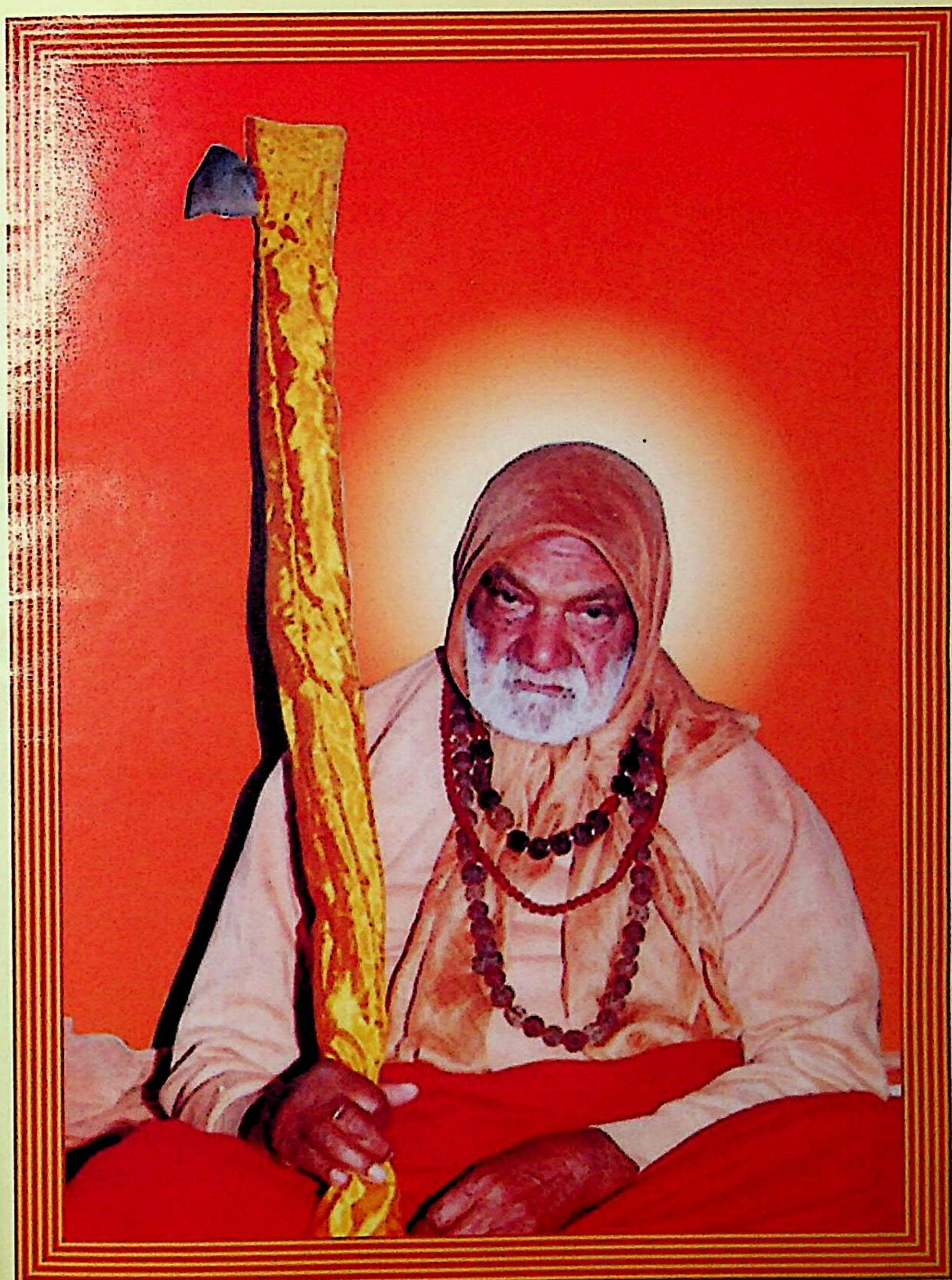
प्रकाशक —
राकेश कुमार, विनोद कुमार
४९८/२८ साउथ सिविल लाइन,
मुजफ्फरनगर, उ.प्र. - २५१००१
फोन नं. : 09359984709



प्रथम संस्करण – ५०० प्रतियाँ
२३, फरवरी, २००९
सोमवार, महाशिवरात्री



मूल्य – प्रेमयोग्यता च



अखिल-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक परात्पर परब्रह्म सद्गुरुदेव श्रीलक्ष्मेश्वर आश्रमजी महाराज

अद्वितीय प्रतिभा के धनी हमारे महाराजश्री

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै स्वेष्टदेवस्वरूपिणे।
यस्य वाक् संकलं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्।।

आनादि काल से (पुण्यातिपुण्यमयी सकल ब्रह्माण्ड की संपोषिका) यह भारत भूमि अपनी तप:पूत सन्तसन्तति के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में अपनी गरिमा महिमा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ रही है। अपने सच्चारित्र्य आलोक से जगत् भर के अज्ञान तिमिर को ध्वस्त करने वाले महापुरुषों में अन्यतम हैं पूज्य श्री स्वामी लक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज।

पूज्यश्री का पार्दुभाव जनपद हरदोई के मोहंदीपुर नामक गाँव में सम्वत् १९७३ कार्तिक कृष्ण एकादशी को अग्निहोत्र निरत कान्यकुब्जीय विप्रवर श्री भोलानाथ जी के पुत्र श्री नन्हा जी के घर पूर्व दिशारूपी इन्द्रायणी की पावनतम कोख से हुआ। इन बालदिवाकर का शैशव नाम हुआ लालविहारी। इन भावी महामनीषी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही प्राइमरी पाठशाला में कक्षा तीन पास किया और गाँव में ही प्राईवेट तोर पर आपने कक्षा पाँच पास किया। लेकिन इसी बीच जब आप की अवस्था छ वर्ष थी पिता श्री का शरीर शान्त हो गया। तदुपरान्त माँ आपको लेकर लखनऊ चली आई। वही पर कुछ साधुओं का संग हो गया और साधु भावना से साधु बनने का निश्चय हो गया। उसके बाद लखनऊ में ही योगेश्वर मठ में जाने लगे। महन्त जी ने संस्कृत पढ़ने की व्यवस्था कर दी। वही से प्रथमा पास किया।

फिर माँ को डर सताने लगा कही साधु न बन जाये वापस गाँव ले आयी घर कच्चा था आधा गिर गया था उसी में गुजर वसर होने लगी। फिर ननीहाल में सीतापुर पढ़ने के लिये भेजा। वहाँ आजीवका के लिये आर्युवेद का अध्ययन करने लगे। पढ़ ही रहे थे कि पण्डित मधुसुदन दीक्षित ने अपनी रासायन साला में रख लिया। वहाँ कार्य चल ही रहा था कि माँ का शरीर शान्त हो गया। तब गाँव में अपने मामा जी के साथ आकर माँ का शास्त्रोक विधि से संस्कार सम्पन्न किया। तदुपरान्त माँ के पास जो तीन गाये थी उनको लेकर मामा जी के साथ उनके गाँव आ गये, वहाँ पढ़ने लगे उसके बाद वैद का रजिस्ट्रेशन हो गया। फिर वही मामा जी के गाँव में वैद्यक करने लगे। वहाँ से फिर गाँव के कुछ बचपन के मित्र गाँव ले आये। वहाँ भी वही आर्युवेद का काम करने लगे। वहाँ गाँव में मित्र मण्डली के संग आनन्द से रहने लगे। वही से अपने कुछ मित्रों के साथ कानपुर में धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज के यज्ञ के दर्शनार्थ गये। तो रास्ते में योगेश्वर मठ वाले गुरु जी के पास लखनऊ रूके। तो वहाँ गुरु जी ने प्रश्न किया कि तुम्हारा पहले वाला निश्चय साधु होने का है या गृहस्थी। तो महाराज श्री ने कहा साधु होने का है, तब योगेश्वर मठ वाले गुरु जी ने कहा तब घर में रहना ठीक नहीं यहाँ आ जाओं। जब गुरुदेव लखनऊ आश्रम पर आ गये और ब्रह्मचारी के वेष में रहने लगे यहाँ कई वर्ष रहकर सम्वत् २००१ माघसुधी पंचमी अर्थात् वसंत पंचमी को सन्यास का संस्कार हो गया। संस्कार होने से पहले आप पण्डित लाल जी को बुला कर

लाये, उन्होंने कहा सन्यास लेते हो तो महन्त नहीं बनना यही गाँठ जीवन में लग गयी आज तक उसी प्रण को निभा रहे है।

उसके उपरान्त नैमिषारण्य मेले में जब गये वहाँ स्वामी श्री शान्तबोध आश्रमजी से भेट हो गयी। स्वामी जी संस्कृत बोलते थे, तो आपने निवेदन किया कि, आपके साथ रह जाये। उन्होंने आज्ञा दे दी। और होली के दिन दण्ड ले लिया। फिर उनके साथ हरद्वार आ गये, वहाँ पर परमगुरु श्री आनन्दआश्रम जी मिले। उन्होंने कहा कि इनकी आयु कम है इन्हें व्याकरण पढ़ने सिरसा भेज दो। स्वामी जी सिरसा चले गये वहाँ दो साल में सिद्धान्त कौमदी पास किया। फिर एक साल नौहर में न्याय पढ़ा, उसके बाद ऋषिकेश आ गये वहाँ पर स्वामी सोमेश्वर आश्रमजी से छान्दोग उपनिषद् पढ़ा उसके बाद हरिद्वार आ गये। तब तक गुरुजी ने छोटा सा आश्रम बना लिया था। उसमें गुरुदेव के साथ रहने लगे थे। उनके साथ रहकर ब्रह्मसूत्र उपनिषद्, भागवत, गीता आदि ग्रन्थ श्रवण किया। उसके बाद गुरु जी ने आपको पढ़ने काशी भेज दिया। पढ़ ही रहे थे कि छ वर्ष बाद गुरु जी का शरीर शान्त हो गया। फिर हरिद्वार आ गये। एवं तीर्थयात्रा वगैरह किया। भ्रमण काल में भी आपने पैसा नहीं छुआ और कोई भी यात्रा विना टिकट नहीं किया।

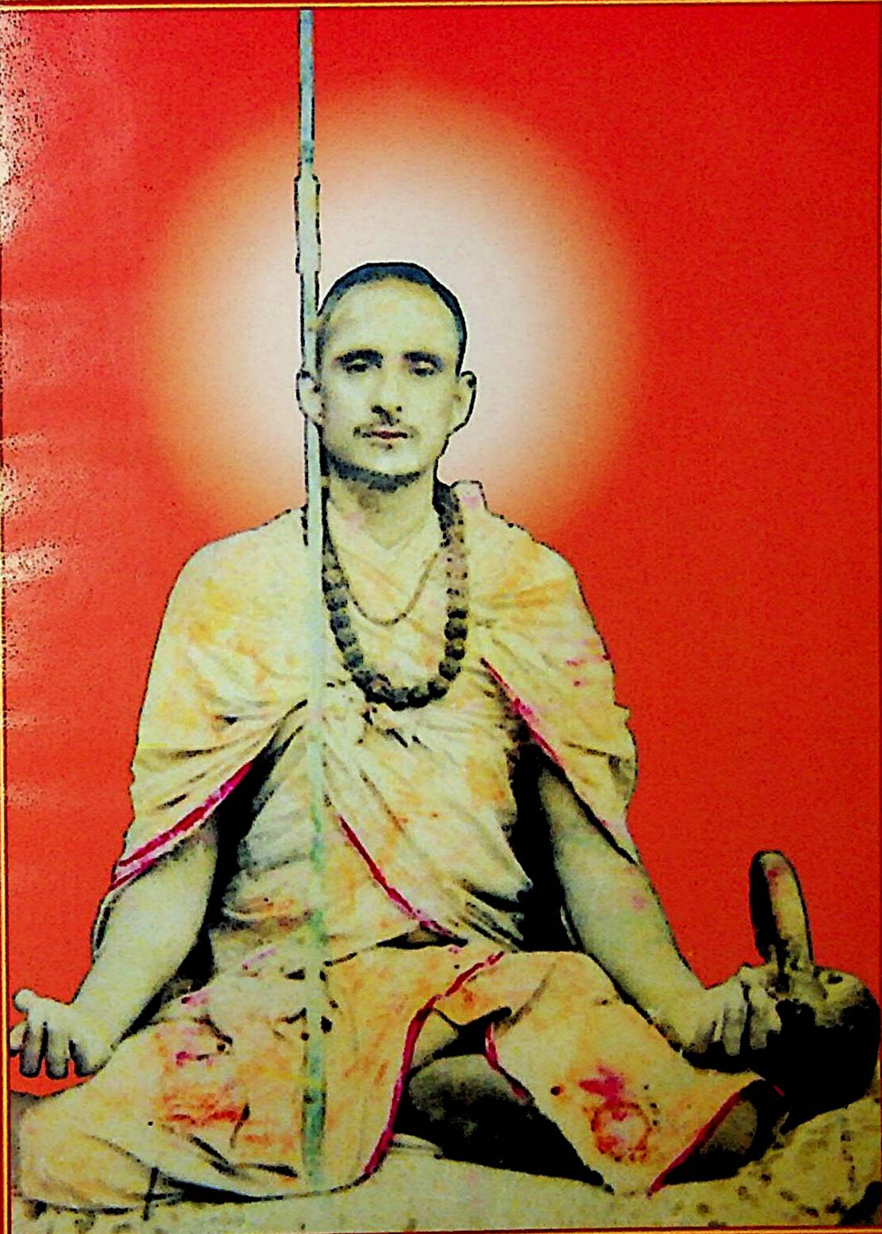
जब भूमा निकेतन बना तब स्वामी भूमानन्द जी के साथ रहने लगे। स्वामी जी को कुरालसी वे लूहसाना में सर्वप्रथम श्री लहना सिंह जी व पूर्ण भगत जी ले कर आये। कुरालसी में श्री विश्वेम्बर सहाय वैश्य ने कहा हम छोटा सा मन्दिर बनाना चाहते हैं। महाराज श्री ने कहा बनाओ। मन्दिर बनना शुरू हो गया गाँव वाले उसके बाद मन्दिर बनाने के लिए स्वांग ले आये, महाराज श्री को अच्छा नहीं लगा। वहाँ से रात को तीन बजे उठकर पैदल पैदल मोहम्मदपुर रायसिंह आ गये वहाँ पर आकर पता लगा गाँव गढ़ी में कोई अच्छे व्रह्मचारी रहते हैं उन्हें देखने गढ़ी चले गये। वहाँ से घुमने कूटी तक जाया करते थे, वह उजड़ चुकी थी, हुसैनुपर में आपको लाला चमल लालजी व पदमसैन भगज जी लेकर आये। इस प्रकार आप उमरपुर, शाहपुर बुढ़ाना आदि में भ्रमण होने लगा।

अब ये चिन्तामणि भाग-२ भी पूज्यनीय श्री त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्य जी द्वारा ही अनुवाद हुआ है एवं इसमें ब्रह्मचारी जी की विशेष कृपा इसलिए है कि गायत्री पुरुषचरण करते हुए आपने इस कार्य को सम्पन्न किया है इस टीका का नाम भी मणिप्रभा ही है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में भी श्री राधेश्याम खेमका (सम्पादक, कल्याण) एवं श्री डॉ. प्रेमप्रकाश जी लक्कड़ (पूर्वचीफ कमिश्नर, आयकर) सहसम्पादक, (कल्याण) एवं श्रीकृष्णकुमार जी खेमका का विशेष योगदान है एवं बहुत अदृश्य हाथ इसमें लगे है, उन सभी का एवं जिनके तपबल से जिनका अपना काम हो रहा है ऐसे महाराज श्री एवं सभी शुभचिन्तको की एवं महाराज श्री के सभी भक्तों की विशेष कृपा से सम्पन्न हो रहा है। शेष शुभ!

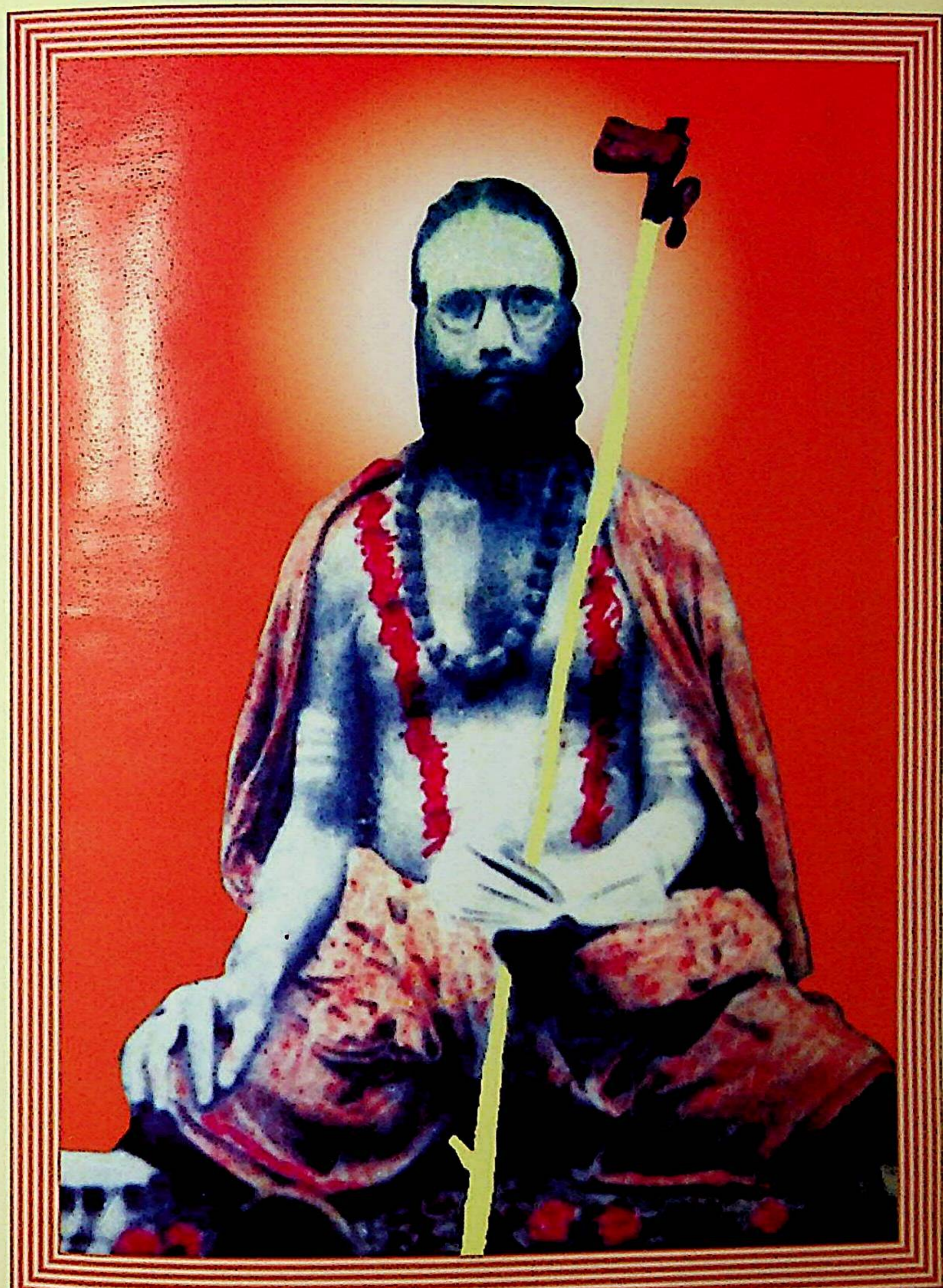
आपका अपना

पवन कुमार



ब्रह्मलीन परम सद्गुरु ब्रह्मर्षि श्रीशान्तबोध आश्रमजी महाराज





ब्रह्मलीन परात्पर सद्‌गुरु ब्रह्मर्षि श्रीआनन्द आश्रमजी महाराज

ॐ

पुत्रत्व की सफलता के लिए ही सारस्वत यज्ञ द्वारा मातृ-पितृतर्पणम्

महाराजश्री जी की कृपामृत सुरसरिता से ही परिपोषित-पल्लवित-पुष्पित-फलित यह वंशवल्लरी—

१. पवन कुमार-कुसुमलता,

२. राजेश कुमार-पूनमरानी,

३. राकेश कुमार-ऊषारानी,

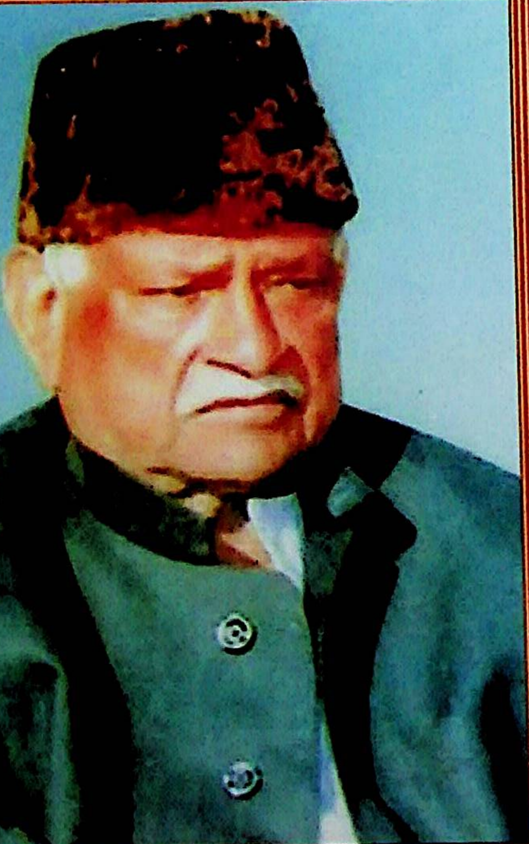
४. प्रदीप कुमार-मंजूरानी,

५. विनोद कुमार-सुधारानी,

६. शिवहरि-संगीतारानी,

७. दिनेश कुमार-कवितारानी

महत्पादरजोभिषिक्त सौभाग्यशाली सुजन



ब्रह्मलीन पिताश्री श्री लाला आनन्द प्रकाश जी



ब्रह्मलीन माताश्री श्रीमति शकुन्तलता देवी

श्रीहरि

परमपूज्य सद्गुरुदेव ही सर्वस्य

परमेश्वर का साक्षात्कार एक मात्र श्रीगुरु कृपा से सम्भव है, श्री गुरु ज्ञान से प्रकाशित परमब्रह्म की ही परम्परा है। ऐसे गुरु की महाकृपा प्राप्त करनी चाहिए, जब तक श्री गुरु की कृपा से अन्तर ज्योति नहीं प्रकाश थी, अन्दर का दिव्य ज्ञान नेत्र नहीं खुलता तब तक हमारी जीव दशा नहीं मिटती। जीव दशा के रहते हुए ब्रह्म दशा की दिव्यानुभूति में रमण नहीं हो सकता। जैसे—स्वप्न निद्रा में राजा भिखारी बनता है और समझता है कि मैं भिखारी हूँ, वैसे ही अज्ञान निद्रा में यह आत्मा जीव बनकर उस कंगाल अवस्था में अपने को कर्ता, भोक्ता, अल्प और साधारण समझकर दुःख का अनुभव करता रहता है। अतः अन्तर विकास के लिए, दिव्यैत्व की प्राप्ति के लिए, पर शिव पद पाने के लिए हमें मार्ग दर्शक की यानी पूर्ण सत्य के ज्ञाता एवं शक्तिशाली सद्गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे प्राण विना जिना सम्भव नहीं उसी तरह गुरु बिना ज्ञान नहीं, अन्धकार का नाश नहीं, तीसरे नेत्र का उदय नहीं। अतः गुरु की जरूरत मित्र से, पुत्र से, बन्धु से और पत्नी से भी अधिक है। गुरु की जरूरत द्रव्य से, कलकारखानों से, कला से अधिक क्या कहुँ गुरु की आवश्यकता आरोग्य और प्राण से भी ज्यादा है, गुरु की महिमा रहस्य में और अतिदिव्य है। वे मानव को नया जन्म देते हैं, ज्ञान की प्रतिती कराते हैं और यह सोभाग्य है हमारा कि हमारे ऐसे श्रीगुरु ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज के रूप में प्राप्त हैं।

गुरु की व्याख्या यह है कि जो शिष्य की अन्तर शक्ति जगाकर उसे आत्मानन्द में रमण कराता है ज्ञान की मस्ति देता है जीते जी मोक्ष देता है वह परमगुरु शिव से अभिन्न रूप है। सभी के पूज्यनीय परमगुरु आदि से लेकर आजतक शिष्य की देह में ज्योति को प्रज्ज्वलित करते हुए अनुग्रहरूप कृपा करते है और लीलाराम होकर रहते है। गुरु के प्रसाद से नर-नारायण होकर आनन्द में मस्त रहता है। सौभाग्य है कि हमें ऐसे गुरु ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज के रूप में प्राप्त है।

गुरु जी संसार के व्यवहार को भलीभाँति समझते हैं वे परमात्मा के ज्ञान से पूर्ण परचित हैं, परमार्थ में पूर्णकुशल और व्यवहार में अतिसयाने हैं ऐसे सद्गुरु के आश्रय में रहकर शिष्य महान संकट को भी सहज में पचा जाता है। उनकी महिमा अनोखी हैं, कृपा मात्र से ज्ञान दृष्टि करा देते है, प्रपंच में ही ब्रह्म दिखाते हैं, वे हमेशा अमनस्क प्रति से रहते है, मानो उनका मन ही चैतन्य हो गया है, तत्वतः आप इस जगत में अन्दर बाहर पूर्ण व्यापक है। जो महापुरुष सर्वात्मा में लीन रहते हैं, वे सर्वव्यापी होते है। साधारणतया गुरुजनों का परिचय पाना उन्हें समझना महाकठिन है। गुरु सत्य है, गुरु

पूर्ण है, वह शिष्यों के हित चिन्तक है, वें शिष्य का धन नहीं, वरन शिष्य का अज्ञान, अविद्या लूट लेते है, चिन्ता और पाप को हर लेते है। गुरु जी की यही महिमा है कि वे कठिन तपस्या विना शिष्य को परमात्मा का दर्शन करा देते है। घर में ही गुफा की शान्ति और एकान्त का अनुभव ला देते है। प्रपंच में परमार्थ दिखाते है। सौभाग्य है कि हमें ऐसे सद्‌गुरु ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज के रूप में प्राप्त है।

श्री गुरु जी एक महान चमत्कारिक दैवत है। साक्षात्कारी गुरु को साधारण समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। गुरु की महानता जब समझ में आती है, जब अपने पर गुरुदेव की पूर्ण कृपा होती है। गुरु जी अपने शिष्य को एक ऊचे स्तर पर ले जाकर सत्यस्वरूप बताकर शिव में मिलाकर शिव ही बना देते है। गुरु जी में एक ऐसी अनोखी शक्ति है जिससे वे मानव को पूर्णरूप से बदल देते है। जरा रहित, दु:ख रहित नया जीवन प्रदान करते है। जैसे दिन के सारे व्यवहार उल्लू अपने से नहीं देख पाता, रात्रि जगत को कौवा नहीं देख पाता वैसे ही मानव गुरु प्रसाद पाये विना संसार को सर्वमय नहीं देख पाता, दु:ख में या शोक में ही देखता है। जो पूज्यनीय परमगुरु आत्मरूप से शिष्य में प्रविष्ट रहते है उन गुरु से हम कैसा व्यवहार करे, कैसे प्रेम करे, उनके उपकार को कैसे चुकावे, हे गुरुदेव आप हमारे मलमय असूची, विकारी, भौतिक शरीर में भी भेदाभेद नहीं देखते, शुद्धाशुद्ध नहीं देखते, रोगारोग नहीं देखते, आप कृपामय होके उसमें प्रवेश करके, हमारे पापों को, हमारी अशुचि को धो डालते हैं, नाड़ी-नाड़ी में रक्त के कण-कण में शक्तिरूप से प्रविष्ट होकर उन्हें क्रियाशील बनाते है। आपका कितना उपकार है, कितना अनुग्रह है, कितनी दया है, ऐसे कौन मित्र हो सकते हैं जो शरीर के अंग-अंग में अच्छे बुरे स्थानों में व्याप्त होकर दोषों को धोबी के समान साफ करते है। ऐसे गुरु समान कौन मित्र, कौन प्रेमी और कौन देवता है। ऐसे गुरु का हम क्या दासत्व कर सकते है। जिन गुरुदेव ने हमारे कुल, जाति, कर्माकर्म गुणदोष देखे वगैर आपमें प्रविष्ट होकर अपना लिया। उन गुरुदेव की महिमा को कौन नकार सकता है। सौभाग्य है हमें ऐसे सद्‌गुरु ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज के रूप में प्राप्त है।

ॐ नम: शिवाय आप का दिया मन्त्र है, गुरुदेव यह आपका पूर्ण स्मृति रूप है। आप ही शिव है।

यो गुरु स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
उपयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च।।

आपके द्वारा दिये हुए इस मन्त्र में ज्ञान की सातों भूमिकाये अर्थात् शुभेच्छा से लेकर तुर्यातीत तक निहित है। आपने मुझे अपना बनाया है हे गुरुदेव आपका सम्मान कैसे करू, आपकी पूजा कैसे करूँ। इतना अवश्य रटता रहूँगा गुरुदेव, जय गुरुदेव, जय गुरुदेव।

ऐसे गुरुदेव को गुरु मानकर उनसे मन्त्र पाना क्या परमसौभाग्य नहीं। उनके लिये शब्द ही चैतन्य मन्त्र है, वे परमगुरु मन्त्र द्वारा, स्पर्श द्वारा या दृष्टि द्वारा शिष्य में प्रवेश करते है, इसलिए गुरु सहवास, गुरु सम्बन्ध, गुरु चरणस्पर्श, गुरु तीर्थपान, गुरुप्रसाद, गुरुसेवा, गुरुगुणगान, शिष्य को पूर्ण पद प्राप्त करा देने में समर्थ है। मेरे गुरुदेव ऐसे ही एक महान सिद्ध है, उनकी जिस पर दृष्टि पड़ती जाग उठता है। उनकी महिमा महान है इसलिए कहा है—

दुर्लभो विषयत्यागा दुर्लभं तत्व दर्शनम्।
दुर्लभासहजा अवस्था सद्गुरो करूणां विना।।

यह सहज अवस्था जो इतनी दुर्लभ है सद्गुरु की करुणा विना नहीं मिलती। गुरु साक्षात् परब्रह्मस्वरूप है, तत्वतः वे परब्रह्म है। गुरु गीता में जो गुरु का वर्णन है, ज्ञानेश्वर जी ने गुरु महिमा गायी है, उसमें अणुमात्र भी अतिरेक नहीं जो गुरुपादोदक का सेवन करता है उसके लिये अमृरत्व एक साधारण वस्तु है। गुरु पूजा ही सार्वभौम महापूजा है ऐसा गुरु गीता कहती है।

गुरुदेव जगत्सर्वं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परत्रं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरूम्।।

आध्यात्म मार्ग में गुरु कृपा ही केवलं और गुरोराज्ञा ही केवलम् है।

पवन सत्य कहता है कि सब विद्याओं में मोक्ष धर्म में और स्वस्वरूप विमर्श में गुरु कृपा ही प्रधान है—ज्ञानेश्वर महाराज कहते है, तुम्हारा परमार्थ, तुम्हारा जप, तप, योग, साधन सब के सब तभी फलरूप होगे जब गुरु कृपा से लब्धिकाल का उदय होगा।

अपने गुरु को जितना महान, श्रेष्ठ, पूर्ण, सिद्ध, सामर्थ्यवान समझते है, श्रीगुरु उतनी ही सामर्थ्य लेकर तुम्हारे साथ खड़े रहते हैं। वस्तुतः तुम में प्रत्यक्ष ईश्वर की नाई गुरु के प्रति जितना प्रवल, जितना तीव्र भाव होगा, उतना शीघ्र तुम सबकुछ पा लोगे। उसमें देर नहीं लगेगी। लेकिन फिर भी धैर्य की कसौटी है श्रीगुरु चरणों में भावपूर्ण विश्वास रखने से सहज में अपने आप विना कष्ट उठाये तत्व का बोध हो जाता है। इसलिए गुरु को भजो। इतना ही नहीं अपने ध्यान में लाओ, क्योंकि ईश्वर गुरु के पास रहता है। इतना याद रखना कि गुरु चरणों में महान आदर्शरूप, पूर्ण विश्वास, अनन्यभाव रखना आवश्यक है। गुरु ध्यान सर्वध्यान प्रक्रियाओं का मूल है, गुरु गीता में कहा है—

ध्यान मूलं गुरोमूर्तिः पूजामूलं गुरु पदम्।
मन्त्र मूलं गुरो वाक्यं मोक्षमूलं गुरो कृपा।।

तो मुझे महामन्त्र मिल गया इसको अत्यन्त प्रेम से अपनाया तुकाराम महाराज सत्य कहते है कि गुरु में श्रद्धा, भक्ति, प्रेम पूर्णभाव हो जाने पर परमात्मा सहज मिल जाता

है, इसलिए गुरु की पूजा करो, गुरु का महाध्यान करो। सौभाग्य है कि हमें श्रीगुरु के रूप में ब्रह्मर्षि श्री लक्ष्येश्वर आश्रमजी महाराज प्राप्त है।

श्रीगुरुदेव के सन्तोष मात्र से एक क्षण में नष्ट होने वाली सिद्धि नहीं, बल्कि शास्वत सिद्धि प्राप्त होती है। आप कितना भी जप करे, तप करे, ध्यान करे, यज्ञ करे, गंगा सागर नहाये, लेकिन गुरु सन्तोष विना पूर्णता प्राप्त नहीं होती। गुरु भव सागर में डूबते हुए को उससे निकालकर अपने जैसा कर लेता है। सब संशय मिटाने के लिये शिष्य के अन्दर प्रवेश करके उसके हृदय के अन्दर पूर्ण ब्रह्म के प्रकाश को प्रकाशित करके दिव्य आत्म तेज को जगा देता है। उसके अपने जैसी ही आत्मरति देता है ऐसे गुरु के प्रति तुमको कैसे चलना चाहिए, यह खुद ही सोचने का विषय है, वस्तुतः श्रीगुरु इस जगत् को शिष्य के लिए सविंद् मय बना देने की सामर्थ रखता है। मानव इस सविंस्ति क्रीड़ा को न देखते हुए चाहे जो करे, परमशान्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा। समझ में नहीं आता यह कैसे एक नयी बात पैदा हो गयी कि जगत् एक है जीव दूसरा है, माया तीसरी है, क्योंकि आत्मा के शिवा और किसी की ऐसी सामर्थ है जो जगत् रूप हो सके। परम स्वतन्त्रता से परम स्वच्छन्दता से प्रकाशमान होने वाली उस आत्मा को कौन मलीन कर सकता है, प्रज्ज्वलित अग्नि के साथ कौन रह सकता है। पावन मात्र जगत् ही आत्मा का विलाश है इस आत्मविलाश को समझने के लिए श्रीगुरु सन्तोष की आवश्यकता है। गुरु कब सन्तुष्ट होता है? यह मत समझीये कि गुरु के सामने वाह गुरु, वाह गुरु करने से या मुख स्तुति करने से गुरु सन्तुष्ट होगा कदापि नहीं।

गुरु तब सन्तुष्ट हो जब शिष्य पूर्णत्व प्राप्त करता है जैसे कोई कलाकार अपने विद्यार्थी की कला पूर्ण होने पर वाह वाह करके आशीर्वाद देता है। पण्डित का शिष्य पण्डित बन जाने पर आशीर्वाद पाता है, वैसे श्रीगुरु से शक्ति प्राप्त किये हुए शिष्य की पूर्णत्व प्राप्ति से गुरु को सन्तोष प्राप्त होता है। वस्त्र दिया, खिलाया, मुख स्तुति की इसमें गुरु को क्या सन्तोष होगा।

गुरु प्रज्ञा प्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः।
यस्तु सम्बुध्येत तत्वं विरक्तो भव सागरात।।

श्रीगुरु तभी सन्तुष्ट होते है जब शिष्य उनमें मिलकर गुरु ही बन जाता है इसलिए पवन कहता है—श्री गुरुं शरणं गच्छामि। सततं गुरु स्मरामि। मम मति श्रीगुरु मम गति श्री गुरु मम रतिः श्री गुरु इति सत्यं सत्यं वदामि।

ईश्वरो गुरुं आत्मेति मूर्तिभेद विभागनः।
व्योमवत व्याप्त देहाय तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

आपकी निजआत्मा

पवन कुमार

भूमिका

विद्यादात्री विशाला सुरवरवनिता वंदितादिव्यरूपा-
विज्ञानात्माविकारा सकलकलिकलालंकृता शब्द रूपा।
ब्रह्माण्डालोक लीलामलविधुवदना भक्त सौभाग्यरूपा-
आराध्या सादाम्बा निज सुतमवने विह्वला विश्वरूपा।। (शक्तिरूपा)

समादरणीय स्वजन समान सुजनों के सम्मुख ये संक्षिप्त सायास प्रयास प्रस्तुत है। समय संकोच=शक्ति संकोचएवं समग्रतया सम्पूर्ण विषय की विषदता-गम्भीरता के कारण; सर्वेश्वरानुसंधान निरत संत का समुत्कृष्ट स्वाभाविक भावगत चिन्तन होने के कारण यथाकथंचित् इस दुस्तर सागर से साहित्य के संतरण में सन्त एवं अनन्त की अकारण (अहैतुकी) कृपा ही संबल बनी है। उन्हीं के शुभ संकल्प का परिणाम है ये कार्य सम्पन्न हुआ। अन्यथा तुच्छ सांसारिक सौविद्धयान्वेषण परायण रागद्वैषाद्यनेकारित्रास संत्रस्त वुद्धि से ये सम्भव ही नहीं था। गुरुजनों का शुभाशीर्वाद स्वत: स्वकार्य साधन में सतत निरत रहा। जिनका स्मरण अत्यन्त आवश्यक है उन्हें मनसा प्रणाम निवेदन पुरस्सर-हम आभार (यद्यपि है तो भार ही न) प्रकट करते हुए कुछ सिर का भार उतारने का (ऊर्ऋण) बहाना खोज कर आचार्य देवनारायण त्रिपाठी जी 'शब्दर्षि' डॉ. गुण प्रकाश जी स्वामी अनन्त बोध जी-ब्रह्मचारी कृष्ण चैतन्यजी सतीश जी हरदीप जी के सहकार को आत्मीयता पूर्वक अंगीकार करते है श्रेष्ठि प्रवर पवन अग्रवाल के उत्कृष्ट उत्साह के संवर्धन की कामना सदाशिव व सर्वेश्वरी के पादपद्मों में करते हुए स्वामी श्री लक्ष्येश्वराश्रम जी के चरणों में वाक्पुष्पोपहार समर्पित करते हैं है—विज्ञजन त्रुटियों को मेरा दोष मानकर समाधान कर लेंगे तथा कोई भी जीवनोपयोगी सकारात्मक विचार जो कि स्वामी जी का प्रसाद है उसे जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे।

गुरुकृपाधन सम्पन्नः
त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्य

विश्वकल्याण हेतु मानव जाति के लिए पथ-प्रदर्शक
सद्गुरुदेव ब्रह्मर्षि श्रीलक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज का प्रसाद

मायापुर्यष्टक

वन्दे मायापुरीमाद्यां सर्वसंसारमातरम्
मोक्षदासु तृतीया या गंगासौन्दर्यशालिनी।।१।।

गंगाद्वारं हरद्वारं दक्षयज्ञस्य वेदिका।
नीलपर्वतमारभ्य चन्द्रभागन्तभूमिका।।२।।

विल्वकेश कुशावर्त सतीकुण्डसमन्विता।
वीरभद्र हृषीकेश सोमनाथ सुशोभिता।।३।।

नमामि पावनीं भूमि पापतापनिवारिणीम्।
मोक्षदां पुण्यां गंगा विख्यात देवताम्।।४।।

विभूति भूतामीशस्य प्रपन्नानां सुपालिनीम।।
शरणं देहि मे मातः शरणागतवत्सले।।५।।

सप्तर्षीणां तपोभूमिः सप्तधाराविराजिता।
सोपानरूपा स्वर्गस्य विदुरादि विमोक्षदा।।६।।

शतयूपाश्रमेणादौ कुब्जाम्रेण च शोभिताम्।
मायाकुण्डयुतां वन्दे जनमायानिकृन्तिनीम्।।७।।

मुमुक्षुभिरनैश्च सेवितां सिद्धसेविताम्।
कामधेनुं पुरीं पुण्यां मायाख्यां नौम्यहं मुदा।।८।।

मायापुर्यष्टकमिदं मायाबन्धनमोचकम्।
मायापुर्या पठेन्नित्यं स तरेन्मायिकाद्भ्रमात्।।९।।

*

मायापुरी अष्टक

समग्र संसार की समुत्पादिका-मोक्षदायिनी दिव्य पुरियों में तृतीया गङ्गा साहचर्य से सौन्दर्य सम्पन्ना अथवा (स्व साहचर्येण गङ्गां सौन्दर्य शालित्वं प्रति नयति इति) स्व संसर्ग से गंगा सौन्दर्य संवधिका सर्वादिभूता माया पुरी को मैं (सर्वप्रतिनिधित्वेन) प्रणाम करता हूँ।।१।।

गंगा द्वार-(दारिद्युनद्या ऋषभः कुरुणाम्) श्रीमद्‌भागवते ३।५।१ प्रत्यक्षतया यही से गंगा पर्वतीयागार से निकलकर भूतल के द्वार पर आयी। हर द्वार=केदारनाथ भगवान् के भवन का द्वार प्रजापति दक्ष की यज्ञ वेदी नीलपर्वत से लेकर चन्द्रभागा नदी तक इसका भौतिक विस्तार है।२।।

विल्वकेश-कुशार्वत व सतीकुण्डयुक्त-वीर भद्र-ऋषीकेश-सोमनाथ से शोभित।।३।।

पाप ताप निवारिणी भोग मोक्षप्रक्ष पुण्यमयी गंगा द्वारा ही जिसका देवत्व विख्यात है (गंगया एव विख्याता गंगा विख्याता, गंगा विख्याता सा चासौं देवता इति गंगा विख्यात देवता तां गंगा विख्यात देवताम्) अथवा गंगा एव विख्याता जाता यया इति गंगा विख्यात देवता तां गंगा विख्यात देवताम् ऐसी पवित्र वसुन्धरा को प्रणाम करता हूँ।।४।।

प्रपन्नों (शरणावातों) का पालन करने वाली, सदाशिव की विभूति भूता शरणागत वत्सले हे माँ मुझे शरण प्रदान करो।।५।।

सप्तर्षियों की तपस्थली सप्त धाराओं से शोभित (गंगा की सातधारायें सप्तर्षियों के कल्याणार्थ प्रसिद्ध) स्वर्ग की सोपान (सीढी) विमोक्ष दायिनी पुरियों में आदि है—ये जानों। (गणना से नाम से आदि भले हीन हो किन्तु स्वभाव से आदि है बड़े नाम बड़े धाम वालों के महां भीड़ होती है अतः नंम्बर देर से आता है जैसे काशी आदि किन्तु यही शान्तिं है अतः शरणापन्नों को शीध्र पहले ही मोक्ष देती है) विदुर धृतराष्ट्र गान्धारी को मोक्ष देने वाली है।।६।।

माया कुण्डयुक्त जन माया का छेदन करने वाली भूमि की में वन्दना करता हूँ।।७।।

अनेकों मुमुक्षुओं द्वारा सेवित सिद्धों द्वारा सोवत कामधेनुभूता (कामधेनु प्रसिद्ध है सकल कामनाओं की पूर्ति करने में) इस पुण्यमयी माया नाम की पुरी को मैं प्रसन्नता पूर्वक नमन करता हूँ।।८।।

ये माया पुरी अष्टक माया बन्धन का मोचक है जो मायापुरी हरद्वार में इसका नित्य पाठ करेगा वह मायामय भ्रम से पार जायेगा (मायापुरी के इस स्तोत्र का पाठ करेगा)।।९।।

।।श्री हरिः।।

मंगलाचरणम्

यो त्रैलोक्य वशीकर्ता, यश्च त्रैलोक्य रूप धृक्।
त्रिलोकीनाथ नाथो यो गोपी नाः प्रणाभ्यते।।
आब्रह्म लोकादा शेषादा लोकालोक पर्वतात्।
ये वसन्ति द्विजा देवास्तेभ्यो नित्यं नमाभ्यहम्।।

।।नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय कर्तृभ्यो वंशार्विश्यो नमो गुरुभ्येः।।

सर्वरुप, सर्वत्र गमनशील, सभी प्राणियों के अन्तः शायी सर्वविधविषयों से पर चैतन्य स्वरूप सकल ज्ञानात्मा को नमन है।

जिनका बोध होने से पूर्व तक ही स्वप्न के समान इस भ्रम की प्रतीति होती है उन सुख स्वरूप शान्त दिव्य तेज को नभस्कार है।

सत्य ज्ञानरूप, आद्यन्त रहित, निष्कल-निष्क्रिय-अद्वितीय-निर्विशेष पर ब्रह्म की हम उपासना करते हैं।

कण्ठ से नीचे के भाग में दिव्य मानवाकृति-उर्ध्व भाग में दिव्य गजा कृति, अन्धकार से परे वह दिव्य तेज सदा हमारे सम्मुख रहे।

पचास वर्ण रूप से सकल चराचर को व्याप्त करने वाली शब्द ब्रह्ममयी परदेवता वाणी की हम वन्दना करते हैं।

गुणों के साथ ही प्रकृति एवं विकृति से असंसृष्ट सदा मेरे अन्तःकरण में प्रतिभासित होने वाले सर्वेश्वर श्रीकृष्ण का हम भजन करते हैं।

फल और व्यापार का वाचक हैं धातु फल का आश्चय कर्म एवं व्यापार का आश्रय कर्ता है (तिङ् प्रत्यय कर्ता एवं कर्म के वाचक है:)।

जैसे पच् धातु है इस पच् धातु का फल है विक्लिति विक्लित्यनुश्लव्यापार) (पचना) व्यापार है आग जलाना चूल्हें पर पात्र रखना चावल डालना आदि तव इस धातु का फल पकना रहेगा कर्म में (चावल में) व्यापार रहेगा कर्ता में देवदत्तादि।

❋

अनुक्रमणिका

ॐ

चिन्तामणिः

ऐं। ह्रीं। क्लीं.।

निर्धूत निखिलध्वान्ते, नित्यमुक्ते, परात्परे।

चित्सदानन्द रूपिणि त्वामहं हृदयाम्बुजे।।

अखण्डब्रह्मविद्यायै अनुसंदध्महे नित्यं चामुण्डायै। वित्। च। ई। (डामरतन्त्रे)

ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऋग्वेदे) **ॐ अहंब्रह्मास्मि। (यजुर्वेदे)**

ॐ तत्त्वमसि। (सामवेदे) **ॐ अयमात्माब्रह्म। (अथर्ववेदे)**

।।श्रीहरिः।।

आब्रह्मलोकादाशेषादालोकालोकपर्वतात्।

ये वसन्ति द्विजा देवास्तेभ्योनित्यं नमाम्यहम्।।

।।ॐ नमो ब्रह्मदिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो वंशर्षिभ्यो नमो गुरुभ्यः।।

नवाक्षरात्मक नवार्णमन्त्रार्थ—'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'।

अज्ञानरुप निखिलान्धकार नाशिनि, नित्यमुक्त, परात्परा अखण्ड ब्रह्मविद्यात्मिका, सच्चिदानन्द स्वरुपिणि हे जगत्माता मैं आपका अपने हृदयकमल में नित्य अनुसन्धान करता हूँ।

(यहाँ प्रतिपद अर्थानुसन्धान के क्रम में ऐं वाक् बीज ज्ञानप्रद होने से अज्ञान नाशक है। ह्रीं माया वीज होने से सर्वतन्त्र स्वातन्त्र्य द्योतक है। **क्लीं**—(काम बीज) परादपि परा सर्वकारण कारणा सर्वेश्वरी है चामुण्डायै अखण्ड ब्रह्मविद्यास्वरूपा है। **विद**—ज्ञानार्थक है अतः सच्चिदानन्द रूपा कहा गया ये लक्षण ज्ञान में ही घटते है ज्ञान ही सत् है, ज्ञान ही चित् ज्ञान ही आनन्दरूप है। **च**—सम्मुच्य वोधक है नित्यानुसन्धानाभिलासुक साधक। **ई**—भगवती का हृत्य पद्मकोश में ध्यान करता है।)

'महावाक्यार्थ' चतुर्वेदों के महावाक्य चतुष्ट्य

(१) प्रकृष्टज्ञान ही ब्रह्म है (ऋग्वेद)। (२) मैं ब्रह्म ही हूँ, (यजुर्वेद)। (३) वह ही तुम हो, तुम वही हो (सामवेद)। (४) यह आत्मा ब्रह्म है, (अथर्ववेद)।



शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते श्रुतिः गुणातीतो महेश्वरः स्कन्दे।

देहात्मवत्परात्मत्व-दार्ढ्येबोधः समाप्यते। (पं.द. ६।२८५)

विद्यासमस्तास्तवदेविभेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युदतः। ज्योतिषा वाधते तमः। (अग.रा.स.)

ब्रह्म मायात्मिका रात्रिः परमेश लयात्मिका।
तदधिष्ठातृदेवीतु भुवनेशी प्रकीर्तिता।। (देवी पु.)

कालत्रयातीत—त्रिगुणातीत, अवस्थात्रयातीत, देवत्रयातीत, लोकत्रयातीत, तुरीय (चतुर्थ) अद्वैत अद्वितीय शिव को ही माना जाता है (गुणातीतो महेश्वरः) स्कन्दे।

जैसे अज्ञानी प्राणी जितनी दृढ़ता से हठपूर्वक शरीर को ही आत्मा मान लेते हैं (और लगे रहते इसी के पोषण में सेवा में) उतनी ही दृढ़ता से ब्रह्म को ही आत्मा मान ले तो बोध का लक्ष्य पूर्ण हो गया।

अरे भई शरीर को आत्मा मान रहे हो तो एक बार ब्रह्म को ही आत्मा मान लो।

भगवती स्वरूप

हे माँ! समस्त विद्यायें आपके ही भिन्नवत् प्रतिभासित स्वरूप हैं, त्रैलोक्यवर्ती सभी मातृ शक्तियाँ भी आपकी ही प्रतिकृतियाँ हैं। हे जगदम्बे आपके द्वारा ही ये सकल प्रपञ्च परिपूरित है, फिर आपकी स्तुति कैसे सम्भव है, आप तो सर्वविध स्तुतियों से परे हैं, एवं स्वयं ही परावाक रूप हैं। (परापश्यन्ती मध्यमा वैखरी चतुर्विधापि आप एक परा ही हैं)

ये देवी अमर हैं तथा सकल विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं, अपनी ज्ञानमयी ज्योति से अज्ञानान्धकार को बाधित कर देती हैं।

ब्राह्मीमायास्वरूपा परमेश की प्रलयात्मिका जो रात्रि है उस महारात्रि की अधिष्ठात्री देवी ही भुवनेशी कही जाती है।

ययातिगाथा

न यातु कामः, कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव, भूयऐवाभिवर्धते।।१।।

पृथिवी रत्नसंपूर्णा, हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमितिमत्त्वा शमं व्रजेत्।।२।।

यदा न कुरुते पापं, सर्वभूतेषु कर्हिचित्।
कर्मणा मनसा वाचा, ब्रह्म संपद्यते तदा।।३।।

यदा चायं न विभेति। यदा चास्मान्न विभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि, ब्रह्म पसंपद्यते तदा।।४।। (महाभा. आ. ७५)

ययाति गाथा

चन्द्र वंशी राजा ययाति दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ गार्हस्थ्य धर्म का उपभोग करते हुए अतृप्त रह गये, बाधक बनी जरावस्था उन्होंने पुत्र पुरू से उसका यौवन लिया और लगे प्यास बुझाने, किन्तु ये क्या सम्वत्सर पर सम्वत्सर बीतते गये लेकिन भोगेच्छा आज भी अतृप्त विषाद वश ययाति अपने अनुभव को गा उठे—वही है ययाति गाथा। काम भोग से कभी तृप्ति शक्य नहीं काम की। अपितु जैसे प्रज्वलित अग्नि में घृताहूति डालने से अग्नि और प्रचण्ड हो जाता है, ठीक वैसे ही काम वासना प्रदीप्त हो उठती है भोग से। भगवान शंकराचार्य कहते हैं—'नहि भोगाभ्यासेन इन्द्रियाणां वैतृष्ण्यं कर्तुं शक्यं भोगाभ्यासं तु विवर्धते कौशलं च इन्द्रियाणाम्। भोगाभ्यास से इन्द्रियां तृप्त नहीं हो सकती भोगाभ्यास तो इन्द्रियों को कुशलता प्रदान करता है, रूप भोगते भोगते इच्छा भले ही पूरी न हो आँखों का जीवन पूरा हो जायेगा, ऐसे ही सभी रसों की रसिक इन्द्रियाँ तृप्त व विरत नहीं हो सकती, तृष्णा नहीं मिटी हम मिट गये—**'तृष्णा न जीर्णावयमेव जीर्णा'**।।१।।

सारी रत्नपूर्णावसुन्धरा, स्वर्ण, श्रेष्ठ गौ अज गजादि पशु, मनोहारिणी रमणियाँ ये सब भी एक व्यक्ति की कामना पूर्ण करने में समर्थ नहीं है, अतः ये मनन करके शान्त हो जाये।।२।।

जब ये प्राणी मनसा वाचा-कर्मणा कथमपि किसी भी जीव के प्रति कभी भी कहीं भी पाप नहीं करता तभी ये ब्रह्मभाव से सम्पन्न हो जाता है।।३।।

जब ये प्राणी निर्भय हो जाये (किसी से न डरे, कोई इससे नहीं डरे सबके सब इससे निर्भय हो जाये अर्थात् अहिंसा जीवन में उतर जाये) जब ये इच्छा द्वेष रहित हो जाता है तभी प्राणी ब्रह्म सम्पन्न हो जाता है।।४।।

दे.सू.। छ.अनु.ऋ.प्रस्क.

ॐ उद्वयं तममसः परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तरम्।। (शु.म. २०।२१)

निचृद्गा.–उद्त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।
(शु.य. ७।४१)

कुक्संगिरसः–त्रिष्टुप्। चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणास्याग्नेः आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्यआत्मा जगतस्तस्तुषश्च। (शु.य. ७।४२)

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने। नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। समेकामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणोददातु। कुबेरायवैश्रवणाय महाराजाय नमः।
(तैत्तिरीययाण्यके १।३१)

ॐ स्वस्ति। साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेठ्यं राज्यं महाराज्य माधिपत्यमयं समन्तपर्य्यायी स्यात्, सार्वभौमः, सार्वायुष आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्य्यन्ताया एकराडिति। (ऐतरेय ब्रा. ८।४।१५)

वैदिक सूर्य वन्दना प्रार्थना

अनुष्टुप छन्द, प्र... ऋषिः, वाले इस मन्त्र में भगवान सूर्य का स्तवन है उत्तम सूर्य प्रकाश को देखते हुए हम अन्धकार से पार देवलोक में दिव्य ज्योति स्वरूप सूर्यात्मक ब्रह्म को प्राप्त होवें।

ये मन्त्र निचृत् गायत्री छन्द वाला है—केतवः ये सूर्य की किरणें जो सम्पूर्ण प्रपञ्च को प्रकाशित करने के लिए ही तेजोमय सूर्य देव को (उत-उर्ध्वं वहन्ति) ऊपर की ओर ले जाती हैं।

कुत्सांगिरस ऋषि, त्रिष्टुप छन्द वाला ये मन्त्र—महदाश्चर्य है देवों की जीवनी शक्ति, मित्र-वरुण-अग्नि आदि देवताओं के प्रकाशक (नेत्र) भगवान सूर्य समुदित हुए हैं। स्थावर जंगम (जड चेतन) के आत्म स्वरूप भगवान सूर्य ने द्यौ पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष आदि लोकों को व्याप्त किया है, अपने दिव्य प्रभाव से।

राजाधिराज सम्पूर्ण विश्व में व्यापक वैश्रवण ब्रह्म को हम नमन करते हैं, वे कामेश्वर वैश्रवण हमारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करें। उन विश्रवा पुत्र कुबेर महाराज को हम नमन करते हैं।

हमारे साम्राज्य, कल्याण युक्त रहे तथा भोग्य भी रहें, स्वर्ग लोक, विराट लोक,

तदज्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टितारो मरुतस्यावसन्गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभा सद इति। (ऐतरेय ब्रा. ८।४.२१)

वयं तु ब्रूमः 'सोयं देव दत्तः' 'तत्त्वमसि' इत्यादौ विशिष्टवाचकानां पदानां एक देश परत्वेऽपि न लक्षण। (वेदान्त परि. आग.)

(विशिष्ट वाचक पदस्योभयांशे वाच्यता मान्या भवति अतः तत् पद वाच्यौ विशेष सामान्यांशौ, तथैव त्वं पद वाच्यौ सामान्य विशेषांशौ भवतः।)

मौनं योगासनंयोगः, तितिक्षैकान्तशीलता।
निःस्पृहत्त्वं समत्वं च, सप्तैतान्येकदण्डिना।।
ज्ञानदण्डो धृतो येन, एक दण्डी स उच्यते।।

(नारदपरिव्राजकोपनि.)

ब्रह्मलोकादि पर्यन्त हमारा महाराज्य हमारे अधिपत्य में रहे सार्वभौम सर्वप्राणियों परार्धजीवियों पर भी समुद्र पर्यन्त सारी पृथ्वी पर भी हमारा ऐकाधिपत्य हो।

इन पुण्यश्लोक (यशस्वी) अभिगीत मरुत् देवता से सर्वदिक् हम रक्षित रहें। दृग्गोचरीभूत काम्य पदार्थ विश्वदेवा आदि सभासदों से प्राप्त हो।

सोऽयं देवदत्त एवं तत्त्वमसि का बोध

हम तो कहते हैं, सोऽयं देवदत्त और तत्वमसि इन दोनों वाक्यों में जो विशिष्ट वाचक पद है (सः अयं-तत्-त्वम्) उनका एक देशवर्ती होने पर भी लक्षणा की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि विशिष्ट वाचक पदों के दोनों अंशों में वाच्यता मान्य होती है इसीलिए तत् पद के द्वारा वाच्य जो विशेष और सामान्य अंश है वहीं त्वम् पद वाच्य हो जाते हैं, तब यहाँ लक्षणा की अपेक्षा ही कहाँ रही।

दण्डी सन्यासी के लक्षण

(शिखा सूत्र सम्पन्न) त्रिदण्डी सन्यासी आचार्य सम्प्रदाय श्री वैष्णव रामानुज सम्प्रदाय में है, जबकि शङ्कराचार्य परम्परा में (शिखासूत्रादि शून्य) एकदण्डी सन्यासी होते हैं। ये मौनी, योगासन निरत, योगारूढ, तितिक्षा (सर्वद्वन्द्व सहिष्णुता) सम्पन्न, एकान्त सेवी, (विविक्तदेश सेवित्वम्) अरतिर्जन संसदि) निस्पृहता वसमता से शोभित सात लक्षणों वाले सन्यासी ही एक दण्डी है अथवा ज्ञानदण्डधारी सभी ही एकदण्डी हैं।

अथ महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्री महामृत्युञ्जयस्तोत्र मन्त्रस्य श्री मार्कण्डेय ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। श्रीमृत्युञ्जयो देवता। गौरीशक्तिः। सर्वारिष्ट शान्त्यर्थं इष्ट प्राप्यर्थं च पाठे विनियोगः।

ध्यानम्

चन्द्रार्काग्नि विलोचनं स्मित मुखं पद्मद्वयान्तस्थितम् मुद्रा पाश मृगाक्ष सूत्रविलसत्पाणिं हिमांशु प्रभम। कोटीन्दु प्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलम्, कान्तं विश्वविमोहनं पशुपति मृत्युञ्जयं भावयेत्।

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१।।
नीलकण्ठं कलामूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम्। नमामि शि.।।२।।
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम्। नमामि शि.।।३।।

महामृत्युञ्जय स्तोत्रम्

इस महामृत्युञ्जय स्तोत्र मन्त्र के मार्कण्डेय ऋषि है, अनुष्टुप छन्द है, श्री मृत्युञ्जय देवता हैं, गौरी शक्ति हैं, सर्वारिष्ट शान्ति के लिए तथा इष्ट प्राप्ति के लिए ही इसका पाठ में विनियोग है।

ध्यानम्

चन्द्र सूर्य अग्निरूपी विलोचन वाले जिनके पावनतम मुखारबिन्द पर मुस्कराहट खिली है ऐसे विश्वनाथ जो पद्मासन में विराजमान हैं, अथवा (दैहिकावस्था का दृष्ट पद्मासन एवं आन्तरिक ध्यानावस्था में हृत्पद्मस्थ अवस्थित) ज्ञानमुद्रा-पाश-मृग एवं अक्षसूत्रादि हाथों में शोभित है चन्द्र की शीतल एवं अमृतस्रावी प्रभा जैसे प्रभा वाले, करोड़ों चन्द्रों की द्रवीभूत सुधा से परिप्लावित दिव्य देह वाले—हारादि आभूषणों से उज्ज्वल, विश्वविमोहन पशुपति जगदीश्वर महादेव मृत्युञ्जय को अन्त:करण में भावित करें।

रूद्र पशुपति स्थाणु नीलकण्ठ उमापति देवाधिदेव महादेव को मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ, हमारा मृत्यु क्या कर सकती है।।१।।

नीलकण्ठ-कलामूर्ति-कालज्ञाता-कालहन्ता महाकाल को हम नमन करते हैं मृत्यु हमारा क्या विगाड़ सकती है।।२।।

नीलकण्ठ-विरुपाक्ष-निर्मल निलयप्रभ महादेव की हम वन्दना करते हैं मृत्यु हमारा क्या विगाड़ सकती है।।३।।

वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्। नामामि शि.।।४।।

देवदेवँ जगन्नाथं देवेशँवृषभध्वजम्। नामामि शि.।।५।।

गंगाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्। नमामि शि.।।६।।

अनाद्यं परमानन्दं कैवलपदकारणम्।।७।। नमामि शि.।।७।।

स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टि स्थिति विनाशकम्।।८।। नमामि शि.।।८।।

उत्पत्तिस्थितिसंहारकर्तारमीश्वरं गुरुरम्।
नमामि शिरसा देवं किन्नोमृत्युः करिष्यति।।९।।

मार्ककण्डेय कृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिव संनिधौ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाग्नि चोरभयं क्वचित्।।१०।।

शतावर्तं प्रकर्तव्यं संकटे कष्टनाशनम्।
शुचिर्भूत्वा पठेत्स्तोत्रं सर्व सिद्धि प्रदायकम्।।११।।

वामदेव-महादेव-लोकनाथ जगद्गुरु महादेव को हम वन्दन करते हैं। मृत्यु हमारा क्या कर सकता है।।४।।

देवदेव-जगन्नाथ-देवेश वृषध्वज महादेव को हम प्रणाम करते हैं। मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।५।।

गंगाधर-महादेव-सर्वविध आभरण भूषित महादेव को हम नमन करते हैं मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।६।।

अनादि दिव्य परमानन्द कैवल्यपद प्रदाता महादेव को हम प्रणाम करते हैं मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।७।।

स्वर्ग व मोक्ष प्रदाता, सृष्टि-स्थिति-एवं संहारक मृत्युञ्जय को हम नमन करते हैं मृत्यु हमारा क्या कर लेगा।।८।।

उत्पत्ति स्थिति संहार करने वाले परमेश्वर परं गुरु मृत्युञ्जय को हम नमन करते हैं, मृत्यु हमारा क्या कर सकता है।।९।।

मार्कण्डेय ऋषि द्वारा सृजित स्तोत्र का पाठ जो साधक शिव सन्निधि में करता है उसको मृत्युभय-अग्निभय-चोर भय नहीं हो सकता है।।१०।।

संकट के समय १०० बार इस (संकट नाशक) स्तोत्र का पाठ जो आभ्यन्तर बाह्य पवित्रता पूर्वक करता है उसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।११।।

मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मवन्धनैः।।१२।।

तावत स्त्वद्गतप्राणः त्वच्चित्तोहं सदा मृडः?।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यं मनुं जपेत्।।१३।।

नमः शिवायसाम्बाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः।।१४।।

अथ शतांर्मुन्यः

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रों हैं हः हन हन दह दह पच पच गृहाणा ग्रहाणा मारय मारय मर्दय मर्दय महा महा भैरव भैरव रूपेणा धुनय धुनय कम्पय कम्पय विघ्नय निवघ्न्य विश्वेश्वरी क्षोभमक्षोभय कटु कटु मोह्य मोह्य हुं फट्. स्वाहा। इति मन्त्रमात्रेणसर्वाभीष्टो भवति। श्री मार्कण्डेयपुराणे।

बृहस्पति सूत्राणि

१. यथार्थ दण्डः पूज्यः। २. अप्रणीतोहि मात्स्यन्यायमुप्लावयति।

हे महामृत्युञ्जय हे महादेव मैं शरणागत हूँ मेरी रक्षा करें, मैं जन्म, मृत्यु-जरा (बुढ़ापा) रोग प्रद कर्मबन्धनों से पीड़ित हूँ॥१२॥

मैं तुम्हारा हूँ, हे मृड्! सदा तुममें ही मेरे प्राण हैं तुममें ही मेरा चित्त लगा है। ऐसा भगवच्चरणों में निवेदन करके त्र्यम्बकं इस मन्त्र को जपे॥१३॥

माँ पराम्बा सहित शिव हर परमात्मा योगियों के स्वामी शरणागतों के रक्षक (आर्तत्राय) महादेव के चरणों में नमस्कार है॥१४॥

ये दिव्य मन्त्र मूल में है इस मन्त्र के जपमात्र से अभीष्ट प्राप्त होता है।

चार्वाक दर्शन नाम से प्रसिद्ध वृहस्पति सूत्र

(१) वास्तविक दण्ड ही समादरणीय है चार्वाक दर्शन में। (अर्थ दण्डोवा)

(२) अप्रणीत-स्वेच्छाचारी-अनुशासनहीन-अराजक ही मत्स्य न्याय को उत्पन्न करता है, सागर में या सरोवर में बड़ी मछली छोटी को खा जाती है। (जंगल राज), ताकतवर बलिष्ठ पशु दुर्बल घातक होता है (जिसकी लाठी उसकी भैंस), जैसे अन्य भी उदाहरण देकर मत्स्य न्याय को समझा जा सकता है।

३. बलवानवलंहि ग्रसते। ४. तस्माद्दण्डमूलास्तिस्त्रो विद्याः। ५. सर्वथा लौकायतिकमेव शास्त्रमर्थज्ञानकाले। (वार्हस्पत्यस. आ. २)। ६. लौकायतिक मसेनार्थं क्षिप्रंनश्यति तत्। ७. अविध्या युक्तः पुरुषार्थं साधयितुं धर्मयुक्तेयदिच्छति तदालौकायत्तिकाभिधानपाषण्डी। ८. वृथा धर्मं वदत्यर्थ साधनं लौकायतिकः पिण्डादश्चोर इति च। ९. एवमर्थार्थं करोत्यग्नि होत्रसंध्या जपादीन्। १०. लौकायतिकोमृतो भवति अर्थ धर्मकामविहीनो-नारकीय। ११. लौकायातिक क्षपणकबौद्धदिर्बहुशार्दूल दुष्टमृगाकीर्णशून्याटवीगुहामार्गवत्। (अ. ३।१५)

(आनन्द झा)

देवगुरुः-शिष्यः-चार्वाकः। बृहस्पतिः-चार्वाकः-लोकायतिकः। भूताद्वैतवादः दाण्डिक दर्शनम्।

---

(३) बलवान निर्वल को खा जाते हैं दबाते सताते उनकी जान माल को लूट लेते है।

(४) अत: दण्डविधान नहीं होगा तो कैसे चलेगा सामाजिक व्यवहार, कैसे होगी रक्षित तीनों विद्यायें (आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता) इनमें मूलत: दण्ड ही इनका रक्षक प्रवर्तक है।

(५) अर्थज्ञान काल में सर्वथा लौकायतिक शास्त्र (चावकि दर्शन प्रतिपादक शास्त्र) ही प्रयोज्य हैं,

(६) लोकायतिक मत से असैन्य अर्थ शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(७) अविद्यायुक्त हो जब पुरुषार्थ साधन के लिए धर्म की ओट ले तब उसका लोकायातिक नाम पाखण्ड मूलक है।

(८) लोकायतिक की दृष्टि में धनार्थ धर्म अनावश्यक है पिण्ड भोक्ता चोर के समान धर्म के नाम पर धन कमाना घोरतम अपराध है।

(९) धनादि के लिए अग्निहोत्रादि करना भी ठीक नहीं।

(१०) लोकायतिक मरकर (धर्म अर्थ कामविहीन मरकर) नारकी होता है।

(११) लोकायतिक मार्ग क्षपणक बौद्ध आदि सिंहादि दुष्ट मृगों से भरा सुनसान जंगल से पार जाने के लिए गुप्तमार्ग गुफा की तरह है।

देवगुरु वृहस्पति के शिष्य चार्वाक कहे गये। भूलोक मात्र को इस जन्म मात्र को मानने के कारण ही ये लोकायतिक कहे गये। चारु = मीठी मनोनुकूल वाक् = वाणी = लोकसंग्रह के लिए ही प्रयत्नशील इनकी सोच है जब तक जीयो मौज करो ऋण करके भी घी खाओ (गाड़ी-घर या अन्य उपभोग के साधन जो किश्तों पर लिये जा रहे हैं सब चार्वाक् दर्शन ही तो है) ये शरीर भस्मीभूत होगा अन्य जन्म होना नहीं है—वैदादि बोधित पुनर्जन्म धूर्तभाण्डों का प्रलाप है।

शैवसिद्धान्तः–प्रकाशाद्वैतम्। तत्र प्रत्यक्षं त्रिविधम्–प्रत्यक्षं त्रिविधं प्रोक्त मक्ष मानस चिद्वशात्। (शैव परिभाषा)

चार्वाक् वादे प्रत्येक भौतिकोणुः अस्फुट चैतन्य युक्तो मान्यः। विलक्षणघनीभाव प्राप्त प्राणि देहे तच्चैतन्यात्मकं ज्ञानं स्फुटो भवति। इन्द्रियं केवलं मनः श्रोत्रादिकं न। मनः सर्वप्राणिसाधारणात्वात्। मनः शरीरस्यैवावयवः। इन्द्रियाणि विषय सम्बन्धकारक सूत्राणि। अनुमितिरपि अन्वीक्षणरूपं प्रत्यक्षम्।

एकं प्रत्यक्षं प्रमाणम्

व्याप्ति ज्ञानं पदज्ञानं सादृश्यादि ज्ञानानि भिन्नानि सन्ति किन्तु मनः शरीरात्मा च एक-एक एवास्त अतः सर्वाणि ज्ञानानि प्रत्यक्षमेव। यथा श्रावणं त्वाचं चाक्षुषं प्रत्यक्षं तथैव अनुमितिः प्रत्यक्षं उपमिति प्रत्यक्षमित्यादि प्रत्यक्ष भेदाः।

साधारणतया भूतेषु अस्फुट चैतन्यं चार्वाकमते मान्यम्।

ये भी अद्वैत मानते हैं, किन्तु भूताद्वैत को ये भी दर्शन मानते हैं, किन्तु एकमात्र दण्डविधान दर्शन को।

शैवमत में (जो कि सम्भवत: काश्मीर में बहुत प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ) प्रकाश अद्वैत मान्य है, वहाँ प्रत्यक्ष तीन प्रकार का वर्णित है—१. इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष, २. मानस संवेदना समुद्भूत प्रत्यक्ष, ३. चित् (बुद्धि-चित्त-ज्ञान) वशात सम्प्राप्त श्रत्यक्ष।

चार्वाक मत में प्रत्येक भौतिक अणु अस्फुट (अप्रकट) चेतनता से युक्त माना जाता है। विलक्षण घनीभाव प्राप्त प्राणि देह में ही वह चैतन्यात्मक ज्ञान स्फुट होता है।

चार्वाक् मत में इन्द्रियों के नाम पर केवल मन है श्रोत्र नेत्र त्वकादि नहीं मन सभी प्राणियों में साधारणतया रहता है तथा मन शरीर का ही एक अवयव है, अन्य इन्द्रियाँ जो अन्य दर्शनों में मान्य हैं वे यहाँ मन के साथ सम्बन्ध की सूचक ही हैं।

चार्वाक विजय दर्शन में प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाण मान्य नहीं है अनुमिति भी अन्वीक्षण रूप प्रत्यक्ष ही है।

प्रत्यक्ष ही प्रमाण एकमात्र मान्य है

यद्यपि व्याप्तिज्ञान-पदज्ञान-सादृश्यज्ञान भिन्न हैं तदपि मन शरीर और आत्मा तो एक ही है अत: सभी ज्ञान प्रत्यक्ष ही है यंथा श्रवण जन्य प्रत्यक्ष (शब्दादि रूप में) त्वचाजन्य प्रत्यक्ष (शीत-उष्ण-मृदु-दृढ रूप में) नेत्र जन्य प्रत्यक्ष (रूपादि रूप में) वैसे ही अनुमिति जन्य प्रत्यक्ष, उपमिति जन्य प्रत्यक्ष, ये भी सभी प्रत्यक्ष के ही भेद है।

साधारणतया चार्वाक मत में सभी भूतों में अस्फुट चैतन्य मान्य है।

आत्म मात्रं जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं–जैनमते।

चित्प्रत्यक्षं–प्रत्यक्षं–शैवमते।

प्रमाणं चिच्छक्तिः–सर्वत्र ग्राहिका संवित् सैव मानमतो मतम्। (शैव परिभाषा)

मन एव प्रमाकारणं-सर्व-ज्ञानानां करणं, तद् ज्ञानं शरीरात्मन्युत्पद्यते। चार्वाक सिद्धान्ते।

अखण्डित स्वभावोपि विचित्रामातृकल्पनाम्।
स्वहृन्मण्डलचक्रे यः प्रथमेतं स्तुमः शिवम्।।

(प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी आगमधिकारः)

एष प्रमाता मायान्धः संसारी कर्म वन्धनः।

(ईश्वर प्रत्यभिज्ञा, आगम.)

स्वातन्त्र्य तनिर्वोधस्य स्वातन्त्र्यस्यप्यवोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्व स्वरूपामहानिमतः।।

भिन्न वेद्यप्रमात्रैव मायाख्यं जन्म योगदम्।
कर्तर्व्यबोधे कार्मं तु माया शक्त्यैवतन्मतम्।।

(ईश्वर प्र. आग. प्रत्यभिज्ञा)

जैनमत में आत्ममात्रजन्य ज्ञान को ही प्रत्यक्ष कहा गया है।

शैवमत में चित्त प्रत्यक्ष को ही प्रत्यक्ष कहा गया है।

चित् शक्ति ही प्रमाण है—संवित-(ज्ञान-चित) सर्वत्र ज्ञानप्रद है संग्राहिका है और वही प्रमाण रूप से शैवमत में मान्य है।

चार्वाक मत में—मन ही प्रमा का कारण है। सभी ज्ञानों का करण है वह ज्ञान शरीर रूप आत्मा में ही उत्पन्न होता है।

जो नित्य शुद्ध बुद्ध अखण्ड स्वभाव वाले सदाशिव अपने हृदय मण्डल चक्र में इस विचित्र मातृ कल्पना को उद्भावित करते है उन शिव का हम स्तवन करते हैं।

यह प्रमाता मायाजन्य गहनतम तिमिर से अन्धा होकर सांसारिक कर्मबन्धनों में बँध जाता है।

स्वस्वरूप की हानि होने से दो प्रकार का ये मल आता है—१. ज्ञान की स्वतन्त्रता नष्ट होती है, २. अज्ञान का स्वतन्त्र होना सिद्ध होता है।

यहाँ प्रमा भिन्नतया वेद्य है, जन्म का योग कराने वाली शक्ति माया है कर्ता का अज्ञान होने से कर्मजन्य प्रपञ्च के रूप में तो माया शक्ति ही दिखती है।

चार्वाकनये–भूतशब्दः सत्ये वस्तुनिवर्तते।
जगत्यभौतिकं किंचिद्वस्तु नास्ति।।

जड़ः–अस्फुट चैतन्यम्। चेतनः–स्फुट चैतन्यम्। भौतिकदेह एव–प्रमाता।

चार्वाकनये ईश्वरः राजा दाण्डिकदर्शनत्वात्। भूत समष्ट्यात्मकमहासमवायैव। उत्पत्ति स्थिति प्रलय कारकः। (चार्वाक दर्शन, आनन्द झा)

मनः–मस्तिष्कप्रदेशः। तन्मात्रमिन्द्रियम्। भावानामभाव–आकाशः।

जैन मते प्राणिनः–त्रसाः (जंगमाः) स्थावरा। ते च नवधाः–१. पृथ्वीकायाः, २. जलकायाः, ३. तेजस्कायाः, ४. वनस्पति का., ५. वायुकायाः–एकेन्द्रियाः–त्वक्। ६. कृमि का.–त्वक् जिह्वा। ७. पिपीलिका का.–त्व. जि. घ्राणम्। ८. भ्रमर का.–त्वच् घ्रा. नेत्रम्। ९. मनुष्यका.–पञ्चेन्द्रियाः।

चातुर्भौतिकः 'चतुरणुकः-समवायात्मकः सर्वाधिकः क्षुद्रः, विवक्षितः, परमाणुः द्व्यणुकः त्र्यणुकः अमान्याः। (चार्वा. दा.)

चार्वाक मत में भूत शब्द सत्य अर्थ को (वस्तु तत्व को) कहता है, और जगत में अभौतिक कुछ भी है नहीं (पञ्चभूत शून्य तो कुछ है ही नहीं)—जड़ अस्फुट चैतन्य, (चेतन) है स्फुट चैतन्य, भौतिक देह (शरीर ही) ही प्रमाता है, (जानने वाला है।)

चार्वाक मत में राजा ही ईश्वर है तदतिरिक्त ईश्वर नहीं है, क्योंकि वह दण्डाधिकारी के रूप में देखने में आता है जैसा अस्तिको को असत्कर्म करने पर ईश्वर से भय लगता है वैसा ही राजा से लगता है जैसे अच्छा काम करने पर ईश्वर से स्वर्गादि सुख की अपेक्षा रहती है वैसे ही राजा भी इनाम देता है। अतः राजा ही ईश्वर है वह दण्डदाता के रूप में दिखता है समष्टिरूप से महाभूतों का महासमवाय (संघटन संगठन) ही जगत् की उत्पत्ति-स्थिति व प्रलय का कारक है।

मन-मस्तिष्क प्रदेश में रहता है, वही एक मात्र इन्द्रिय है, भावों का अभाव ही आकाश है।

जैनमत में प्राणियों के स्थावर जंगम रूप से नौ भेद बतायें हैं—यथा—पृथ्वीकाया, जलकाया, तेजकाया, वनस्पतिकाया, वायुकाया—ये सब एक इन्द्रिय मात्र ग्राह्य है वो है त्वचा कृमिकाया में त्वचा व जिह्वा इन्द्रियाँ है। चींटीकाया में त्वक्-जिह्वा व नासिका है। भ्रमरकाया में त्वक्-जिह्वा घ्राण व नेत्र है। मनुष्यकाया में त्वक्-जिह्वा-घ्राण-नेत्र कान है।

चार्वाक् दर्शन में द्व्यगुक त्र्यणुक को स्वीकार ही नहीं किया गया। सबसे छोटा मान परमाणु-अणु चतुरणुक को ही माना है वह चातुर्भौतिक है।

भूतभौतिकेषु चातुभौतिक संश्लेषः न्यूनधिकः अनुभूयते। प्रत्येकं वस्तु अवयवि-समवायरूपम्। तस्य समवायिनः चत्वारि भूतानि। पृथिवी जल तेजो वायु।

भूत चैतन्यमान्यतया पृथिव्यां जले च ज्ञानं चेष्टादयश्च सन्ति।

महा समवायात्मकंमेकीभूतं चतुर्भूतात्मकमद्वैतं भूतं केवलं तत्त्वम्। आकाशःकालःदिक् गुणश्च न पृथक्तत्त्वम्।

बुद्धि ज्ञानं भूतानां अविच्छेद्य स्वभावः। भूत चैतन्यवादेछार्वाकीय नमे।

भूत चैतन्य प्रधानक चार्वाक सिद्धान्त सर्वथा वैदिक है। अति प्राचीन है।

अपौरुषेय अथवा ईश्वर कृत वेद द्वारा समर्थित होने से आदरणीय है।

(चार्वा.द. आनन्द झा)

भैक्षशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः।
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः।। (ना.परि.ड.)

भूतों व भौतिकों समवायात्मक (भूतजन्यों) में चातुर्भौतिक संश्लेष है जो कहीं कम कहीं ज्यादा अनुभव में आता है, (चातुभौतिक-चार महाभूतों का संघात) (चतुरणुक्=चार अणुओं का एकत्र मान)। प्रत्येक वस्तु (अवयव) अवयवी में समवाय रूप से रहता है, कारण में कार्य, मिट्टी में घड़ा स्वर्ण में मुकुटादि समवायेन है। (समवाय सम्बन्ध नित्य सम्बन्ध है)। समवायी में चार भूतों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु की सत्ता मान्य है।

भूतों को चैतन्य मानने के कारण पृथिवी एवं जल में ज्ञान और चेष्टा आदि होते हैं—मानी जाती है)।

महासमवायात्मक (संगठित) एकीभूत चतुर्भूतात्मक जो अद्वैत है वही एक रूपता ही केवल तत्व है, आकाश-काल-दिशा-गुण आदि ये भी भिन्न-भिन्न तत्व नहीं हैं।

बुद्धि व ज्ञान भूतों का अविच्छेद्य स्वभाव है, क्योंकि चार्वाक् मत में भूतजड़ नहीं चैतन्य हैं, इसीलिए भूतों का स्वाभाविक धर्म बताया है बुद्धि व ज्ञान को।

भूतों को चैतन्ययुक्त मानना सर्वथा वैदिक सिद्धान्त है अति प्राचीन भी है अपौरूषेय वेदों द्वारा समर्थित होने से आदरणीय है ये केवल चार्वाकों का ही नहीं है।

भिक्षुक के धर्म

भिक्षान्न भोजी, मौनाबलम्बन, तपस्या, ध्याननिरत, सम्यक् ज्ञान, वैराग्य ये भिक्षुक के धर्म माने गये है।

निदाघो नामसुराट् प्राप्तविद्यश्च बालकः।
विहृतस्तीर्थयात्रायां पित्रानुज्ञातवान्स्वयम्।।

सार्धं त्रिकोटि तीर्थेषु स्नान पुण्य प्रभावतः।
प्रादुर्भूतोमनसि विचारः सोममीहदः।।

सर्वापदां पदं पापा भावा विभवभूमयः।
अयः शलाकासदृशाः परस्परमसङ्गिनः।।

चिन्तानिचय चक्राणि तालनन्दाय पनानि मे। (महोपनि.)

मूर्छा कुम्भक, चरणदास–

सतवी कुम्भक मूर्छा पूरक ऐसे होय।
सवैचत होवै सोरसा मेघधार ज्यों जोय।।

वन्धजलन्धरदीजिये सहजकण्ठतलज्ञान।
रेचावाई मूरछित होय यही पँहिचान।।।

ध्यान-पदस्थ

हिय पद पंकज ध्यान करि फिरिधरिसारी देह।
नखशिखलौं छविनिरखिकै चरननमे चितदेहि।।

निदाध नामक एक लब्धविद्य मुनि पुत्र अपने पिता से आज्ञा ले तीर्थ यात्रा में निकले साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान कर पुण्य सम्पदा से सम्पन्न हो पिता से आकर बोले मेरे मन में ये विचार आता है कि ये संसार सभी विपत्तियों की जड़ है जितना वैभव है केवल दुःखमूलक ही है लोहे की शलाका की तरह भिन्न होने पर भी मन की कल्पना सबसे ही जुड़ा है जैसे चुम्बक से लोहा चुपका रहता है।

चिन्ता समूह चक्र को उत्पन्न करने वाले ये धनादि भी मेरे आनन्द के प्रापक नहीं है।

सातवी कुम्भक मूर्छा है ये पूरक से होती है—श्वास खींचते ही मेघधार के समान वह रस तत्व दिखता है वही जलन्धर वन्ध लगाना चाहिए। सहजरूप से कष्ट को गर्दन को मोड़कर हृदय देश पर ठोडी को लगा देना ही जलन्धरवन्ध है इस दशा में जैसे ही हम प्राण वायु का रेचन करते है तो वह मूर्छावस्था की वायु होती है।

ध्यान—हृदय में प्रभु के चरण कमलों का ध्यान करके ध्यान के दृढ़ हो जाने पर फिर सम्पूर्ण दिव्य देह का ध्यान करे श्रीमद्भागवत में भगवान कपिल माता देवहूति से

पिण्डस्थ

शोधै सगरे पण्डिको षट् चक्रहुकोध्यान।
शोधत कआचढ़ै भँवर गुफा अस्थान।।
तिरवेणी संगमवहै ज्योति जहाँ दरशाय।
सात जनम सुधिहोय जब ध्यान करैमनलाय।।
आगे कमलहिजार दल सद्गुरुध्यानप्रधान।
अमृतदरियावहि चलै हंस करैं जहँ स्नान।।
ऊपर तेजहि पुंज है कोटिसूर्य परकाश।
शून्य शिखर ता ऊपर योगी करै विलास।।

रूपस्थध्यान

देखैत्रिपुटी मध्य है निश्चलदृिष्टि लगाय।
ध्यानकिये पहले जहाँ अगनफूल दरशाय।।

कहते हैं—(संचिन्तयेत्भगवतश्चरणारविन्द) नख से लेकर शिखा पर्यन्त भगवान की दिव्य झाँकी का तृप्ति भर पान करके पुनः चरणों में ही चित्त लगा दें।

षट्चक्रों का ध्यान करते हुए समस्त पिण्ड को शुद्ध करे (पिण्ड=देह) एक-एक चक्र शोधन करते-करते जब मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक का शोधन कर चुके तब भवर गुफा (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थित होवे जहाँ त्रिवेणी संगम है। (इडा पिंगला सुषुम्ना) जहाँ दिव्य ज्योति का दिव्य दर्शन होता है वहाँ मन लगाकर ध्यान करने से सात जन्मों का स्मरण होने लगता है। इससे आगे सहस्रारचक्र में जहाँ सद्गुरु का ध्यान ही प्रधान है (ब्रह्म ही सद्गुरु है सद्गुरु ही ब्रह्म है) जहाँ अमृत नदी प्रवाहित होती है जहाँ हंस स्नान करते है सहस्रारचक्र में परमानन्द परिप्लुत एक दिव्य अमृत तत्व परिस्रवित होता है जिसमें हंस (जीव) हंस कोटि के महापुरुष उसी का पान स्नान करते है। उससे ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में कोटि सूर्य प्रकाश संकाय दिव्य प्रकाश है। उससे भी ऊपर है शून्य शिखर जिसके ऊपर योगी विलास करता है, (देहभाव से ऊपर उठकर भूतत्व-जल तत्व, तैजस्तत्व-प्राणादि तत्वों पर विजय पाकर आकाश तत्व के उपर आरूढ़ होना ही योगी का विलापहं (भू) तत्व=स्थूलता कृशता स्वेद पिपास, भूख रूपरंग, (वायु) प्राणापानादि भेद तदनन्तर है आकाश शून्य (जल) शिखर इसके (तेज) की बात है)।

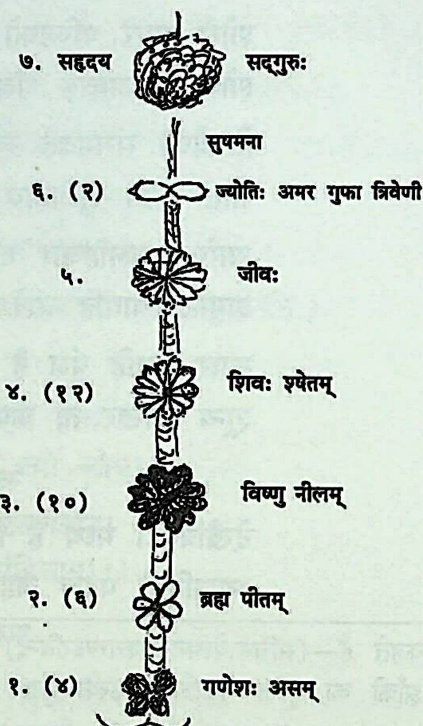
त्रिपुटी (ध्याताध्येय ध्यान के भान रहते) भ्रूमध्य में दृष्टि को स्थिर करके देखते हुए

केतेद्योसन माहि दीपज्योति प्रगटाय।
शनै शनै आगे जहाँ दीप माल दर्शाय।।
फिर तारोंकी मालसी दामिनि दमकाय।
झिलमिलतेजमय भासे सव संसार।।

रूपातीत ध्यान

त्रिपुटी परे शून्य अस्थाना। पदनिर्वाणा चिदानन्द ताको शिव जानो। वामे मन लगवो या सों लगै समाधि निद्राकहिये योग।

श्रीचरणदास कृ.। हैं ये उलटेषट्कमल।



ध्यान करने पर जहाँ आग के फूल जैसे दिखते हैं, तदनन्तर गगन मण्डल में ही दीप ज्योति जैसी प्रकट होती है धीरे-धीरे आगे बढ़ने पर दीपमाला सी दिखती है तदनन्तर नक्षत्र माला दिखती है तदनन्तर दामिनी सी दमकती हुई दिखती है ध्यान पथ पर उसके उपरान्त पूरा जगत झिलमिल भासित होता है।

रूपातीत ध्यान

त्रिपुटी से परे (ध्याता ध्येय ध्यान का भी भान न रहे जिस दशा में) शून्य स्थान जिसे निर्वाण पद कहा जाता है वही सत् चित् आनन्द स्वरूप शिव है (अस्तीति सत् सार्वकालिक भाव को ही सत् कहते हैं।) जिसका अभाव हो वह असत् जिसका अभाव कदापि न हो वही सत्। जड़ता रहित ज्ञानवान चित् है दुःखादि की संकल्पना से भी परे परमानन्द सिन्धु) उन्हीं शिव तत्व में मन लगावें जिससे समाधि लगती है इसी को योग निद्रा कहा जाता है। सांसारिक निद्रा भोग निद्रा है खाकर-थककर भोगकर जो नींद आये वह भोग निद्रा, योगावस्था की निद्रा योग निद्रा है।

(चित्र द्वारा चक्रों को स्पष्ट किया गया है)

अपान वायु को साधिकर ऊपर लावै मोड़।
जब हो वैं उलटे कमल मुख आकाश की ओड।।

अपान वायु ज्यों-ज्यों चढै चक्र-चक्र के पास।
त्यों-त्यों शीधे होयैं सब पूरा जान अभ्यास।।

अपान वायु आवै जबै चक्र अनाहद माहि।
दश प्रकार के नादही शनैः शनैः खुलि जाँहि।।

नाडिन में सुषुमना बड़ी सो अनहद की मात।
कुम्भक में केरल बड़ा सो वाही का तात।।

नाद भेद–१. चिन, २. चिन चिन्, ३. क्षुद्र घंट, ४. शंख, ५. बीन, ६. उपज ताल, ७. मुरली, ८. पखावज, ९. नफीरी, १०. सिंहगर्जना।

नास्ति देह समः शोच्योः नीचो सुख विवर्जितः।
ज्वलतार्मातदूरेऽपि, सरसा अपि नीरसाः।
स्त्रियो हिनरकाग्नीनां, इन्धनं चारुदारुणाम्।। (महोपनि. ३।२७)

अपान वायु को नियन्त्रित करे और उसके स्वभाव के विपरीत (क्योंकि अपानवायु स्वभावतः अधःगामी) उर्ध्व की ओर लाये इससे जब षट चक्रवर्ती कमल उलट जायें उनका मुख आकाश की ओर हो जाये ये साधित अपान वायु जैसे-जैसे एक-एक चक्र के पास से गुजरे सारे चक्रवर्ती कमल सीधे होने लगे तव अभ्यास को पूर्ण समझो।

अपान वायु जब अनाहतचक्र में प्रवेश करे तभी (इडा)विध नाद धीरे-धीरे खुल जाते हैं नाड़ियों में सुषुम्ना सबसे बड़ी महत्वपूर्ण है यही अनहत की जननी है तथा प्राणायामों में कुम्भक बड़ा है जो अनहद नाद का जनक है अर्थात् कुम्भक व सुषुम्ना के संयोग से ही अनहद नाद प्रकट हो जाता है। वे नाद १० प्रकार के हैं—१. चिन, २. चिन-चिन, ३. छोटी घण्टी जैसा, ४. शंख जैसा, ५. वीन जैसा, ६. उपज ताल जैसा, ७. मुरली, ८. पखावज जैसा, ९. नफीरी, १०. सिंह जैसा।

देहनश्वरता

इस शरीर जैसा शोचनीय नीच गुण रहित गन्दगी का पात्र दुःखप्रद रोगालय दूसरा नहीं।

स्त्रियों की असारता

अत्यन्त दूर होने पर भी जो जलती और जलाती रहे, नीरस होने पर भी जो सरस

खेचरी मुद्रा–चरणदा. याविन ताड़ी लागै नाही। साधन कर कर जीभ बढ़ावै। सो ब्रह्मरं धर तक लावै। जासूपवन सरकन पावै, श्रवन नयजूवाट सकखै।

कुण्डलिनी श्रीचर.–नाभि स्थान नागिनि रहै कुण्डल शशी अकार। पद्मराग मणि ज्यों परकाशा। नागिनि सूक्षम जानिये वाल सहसवाँ भाग। कुम्भक हो अत्यन्त जब तव उरध को जाय। ब्रह्म रन्ध्र में आय करि घड़ी दो ठहराय।।

प्रतीत होती है वह स्त्री रूपी इन्धन है जो सुन्दर लगता है (चारू) किन्तु है अत्यन्त दारूण दुखप्रद। काहे का इन्धन है ये? नरकरूपी दाहकताप्रद महाग्नि का।

(मन की पापमयी प्रवृत्ति के अवरोधार्थ एवं शुचिता सात्विकता के लिए ही नारी निन्दा है) मातृ निन्दा नहीं नारी निन्दा जैसी ही है वस)

खेचरी मुद्रा के बिना बात नहीं बन सकती। उसके लिए सबसे पहले जिह्वा को विभिन्न साधनों से लम्बी करें जैसे घृतादि के साथ जीव को नित्य खींचे उसके तालुगत सम्बन्ध को भी काटकर कुछ साधक लम्बा करते हैं, उसको पहले भ्रूमध्य तक लाये, ये बात कहनी कितनी आसान किन्तु करनी कितनी जटिल है, नासिका तक जीव का आना ही असम्भव फिर भ्रूमध्य तक तो कल्पना की बात है, किन्तु भ्रूमध्य या ब्रह्मरन्ध्र तक जिह्वा के लाने का अर्थ बाहर से नहीं है अन्दर से ही है अन्दर ही जिह्वा को मोड़कर ऊपर की ओर ले जाये वहाँ जहाँ से ब्रह्मद्रव का क्षरण होता है (जिसकी एक बूंद का पान करने मात्र से भूख प्यास मिटने लगती जरा-शोक-व्याधि मिटने लगती कान्ति बढ़ने लगती है।) रसना द्वारा ही बन्ध लगा दे जिससे वायु सरक नहीं पाती कान आँख भी अवरूद्ध हो जाते है। इस खेचरी मुद्रा के सिद्ध होने पर आकाशचारी सिद्धों के दर्शन होते हैं (खे=आकाशे=चरतीति) स्वयं भी नभ में उड़ने की शक्ति पा लेता है, ये इसका बाह्य एवं स्थूल आकर्षक भाव है, किन्तु तत्वतः आन्तरिक आकाशचारी होना ही सूक्ष्म एवं हितकर लक्ष्य है।

कुण्डलिनी

ये नाभि देश में कहते हैं अन्यत्र कुण्डलिनी का स्थान मूलाधार व स्वाधिष्ठान ही है, चलिए-नाभि स्थान में एक सर्पिणी चन्द्रमा की तरह गोल आकार वाली बनकर रहती है पद्मरागमणि के समान उसकी आभा है, ये बाल के हजारवें भाग जैसी सूक्ष्मतम होती है, जब कुम्भक पूर्ण परिपक्व हो जाये (कुम्भक ही प्राणायामों का सम्राट है यही ध्यान यही समाधि है। तब ये विष तन्तु तनीय सी ऊपर की ओर चलती है (हूं बीज से भी उत्थान शक्य है) ब्रह्मरन्ध्र में आकर दो घड़ी तक ठहरती है, इसके आवागमन का मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ही है अतः सुषुम्ना अत्यन्त महत्वपूर्ण नाड़ी है।

स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैवैकवाक्यता।
यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते।। (महोपनि. ४।५)

समाधि

क्रिया कोई ना रहै। योगी आनन्द लहै।
मिलिध्याता अरुध्यान एक होवें जहाँ।
दूजा रहे न भार मुक्ति वर्ते जहाँ।।

पुण्य पाप सुख दुःख जहाँ नहि पाइये।
मतमारग कुलधर्म न देत दिखाइये।।

चापारमातम आतम बन्धन मोक्षई।
आप विसरै ध्यानमे रहै सुरति नहि नाद।
लीनहोयकिरिया रहित लागै योग समाधि।।

मै तू यह वह मूलिकरि रहै जुसहज सुभाव।
आपा देहि उठायकरि ज्ञान समाधि लगाय।।

शास्त्रों का अनुशीलन करने पर परानुभूति ही स्वानुभूति जब बने और गुरु के वचनों के साथ तादात्म्य हो जाये एक्य भाव का दृढाभ्यास भी हो जिसे उसे आत्मतत्व सदैव दृष्ट है अनुभूत है श्रुतमात्र नहीं। अर्थात् शास्त्रों का गहन मनन-गुरू वचनों पर विश्वास स्वानुभूतिक गुरु की शिक्षा जब एक हो जायें यही अभ्यास सतत बना रहे तवात्मालोकित है।

समाधि

जहाँ दैहिक क्रिया मानसिक क्रिया न रहे वहाँ योगी आनन्द लेता है। जहाँ ध्याता ध्यान (ध्यान करने वाला ध्याता, ध्यान करने की विधि ध्यान जिसका ध्यान हम कर रहे हैं वह है ध्येय) एक हो जायें द्वितीयाभिनिवेश न रहे दूजापन विलीन हो जाये मुक्ति जहाँ व्यावहारिक रूप में आ जाये वह समाधि है पुण्य-पाप, सुख-दुःख, जहाँ नहीं रहते मत-मार्ग-कुलधर्म-जातिधर्म जैसी अनेकता भिन्नता भी जहाँ नहीं रहे, परमात्मा आत्मा का बन्धन मोक्ष भी जहाँ न रहे समाधि है।

योग—अपनापन ध्यान में भुला दिया जाये स्वयं का स्मरण ही नहीं रहे, क्रिया रहित होकर एवं लीन हो जाये तब योग समाधि लगती है।

ये मैं हूँ, ये तू है यह वह मेरा तेरा भूलकर सहज स्वभाव में रहे स्वयं को देह से ऊपर समझे देह से अलग समझे तो यही ज्ञान समाधि है।

ज्ञान रहित ज्ञाता रहित रहित ज्ञेय अरु ज्ञान।
लगी कभी छूटै नही यह समाधि विज्ञान।।

नेती

डेढ वालिस्त। मोटी बाँटै जोर।
कान नाक अरु दाँत को रोगन व्यापैकोय।
उज्वल होवै नैन ही नित नेती करे जोप।।

ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय = (ज्ञान=जानने की विधि, ज्ञाता जानने वाला ज्ञेय—जिसे जानने की आकांक्षा है) इस त्रिपुटी से रहित होकर अर्थात् इनके इस भेद भाव की भिन्न प्रतीति को मिटाकर स्वयं को स्वयं में विलीन करने पर ही वास्तविक समाधि है एक बार लग जाये तो फिर टूटे नहीं।

वेखुदी में उतर जाये इतना की खुद की न रहे खबर।
क्योंकि उसका पता खुद के खो जाने में है।।

नमक के डले की तरह सागर की गहराई नापने चलो गहराई न मिले तो क्या मिल भी गयी तो क्या? तदाकाराकारित तो हो ही गये, लौटकर बताने आ रहा है तो शक की गुंजाइस है 'गिरा अनयन नयन बिनु वानी' पर ये तो वाणी एवं नेत्रों से परे का तत्व है। अस्तु समाधि बड़ा दिव्य शब्द है समाधि, सम=समान-बराबर-न ऊँचा न नीचा। अधि=अधिकरण रहने-बैठने-जीने सोने-सोचने डूबने का स्थान। इतने गहरे उतर गये कि ऊँच-नीच का भेद मिट गया, इतने ऊपर उठ गये कि ऊँच-नीच का भेद ही मिट गया। वायुयान में प्लेन में बैठकर ऊपर से देखने पर मेरा तेरा घर खेत भाई गाँव नगर भूमि तक का भेद मिट जाता है, जब तक शरीर में आत्मीयता है तब तक समाधि नहीं हो सकती क्यों देह जड़ व समाधि चेतनावस्था है समाधि है तो देहाभासजन्य ऊच-नीच नहीं रह सकती। समाधि दिव्यावस्था है। संसार का प्राणी पलभर भी समाधि का स्वाद चख ले, समाधि में जीना सीख ले तो ये कलह, बटवारे, विषमता का बीज, कलंक की कालिख, दोषा रोपण की कीचड़ पराजय की पीड़ा, जय का जोश बल का गर्व कुछ न रहे। अब समाधि को देखते देखते जीवन में उतारो, साक्षीभाव से जीयों। कर्तापन का भाव अहं पैदा करता है अतः करता हूँ की जगह हो रहा है की सोच विकसित करें। हवा चल रही दिन रात हो रहे है नदियाँ बह रही है आदि यही समाधि है द्रष्टा हो सृष्टा नहीं।

नेती

डेढ़ वालिस्त की अपनी सुविधानुसार मोटी डोरी के बदले प्रारम्भ में तो पतली ही ठीक है बाद में अभ्यास होने पर उसे स्थूल कर सकते हैं। पहले दिन पहली बार करने

धोती पट्टी सोलहहाँथ, चौड़ी अंगुल चारकी।
जलमे भेय निचोरि करि निगल कंठ सों सोय।।
फेरि निकासै ताहि पित्त कफ दोऊ लावै।

वस्ती

क्रिया करै गणेश ही कुंजी तहाँ लगाय मूल को धोवन कीजै।

पंसातन संकोच करि नीर गुदासों खौचि करि थासि उदर मंझार कछू होल अरु बैठ कर फिरि तदाह उतार।

पर छींक आयें, आँखों से पानी गिरे, श्वांस रूका रूका लगे डर लगे तब भी निर्भय होकर कर लेना इसका लाभ है कान के रोग आँख के रोग-दाँत के रोग नाक के रोग खत्म हो जाते हैं, दृष्टि स्थिर व निर्मल होती है जो नित्य नेती करता है। नेति सूत की अधिक ठीक है आजकल शुरू में अभ्यासार्थ रवर की भी आती है। डोरी को नासिका छिद्र से डालकर मुख के रास्ते ले आवे (मुख में मध्यमा अनामिका से पकड़कर निकाल ले) दोनों छोर पकड़ ले एक छोर नाक के बाहर है एक मुख के बाहर आ गया है यही प्रक्रिया दूसरे नासाछिद्र से भी करे तो जुकाम नजला सिरदर्द खत्म आँखों का चश्मा उतर जाता है ये सूत्रनेति है जलनेति, घृतनेति दूधनेति भी होती है।

धोती

सोलह हाथ लम्बी चार अंगुल चौड़ी पट्टी साफ कोमल वस्त्र लेकर उसे जल में भिगोय निचोड़ ले और धीरे-धीरे कण्ठ से मुखके रास्ते निगल ले उसका अन्तिम छोर पकड़े रखे फिर धीरे-धीरे (जल्दी न खाने में करे न निकालने में) उसे निकाले तो वह धोती पित्त एवं कफ को बाहर निकाल देती है ये सब विधियाँ इस मलागार शरीर पात्र को धोने की है। किसी कुशल इस विषय केज्ञानी के निर्देशन में ही करें क्योंकि प्रारम्भ में वमन (उल्टी) का भय प्राणावरोध की सी दशा हो जाती है शुरु में पहाथ की पट्टी ठीक है उसे नमक के साथ थोड़ागुनगुना पानी लेर निगलने ी कोशिश करें।

बस्ती

मल द्वार से उदर के अध:भाग को शुद्ध करने की प्रक्रिया है जो मल व मलांश पुराना होकर आँतों में चिपक जाता है उदर के विभिन्न रोगों रागाणुओं को उत्पन्न करता है उसकी निवृत्ति बस्ती से शक्य है आजकल एनीमा ये कार्य बखूबी कर रहा है पर एनीमा यन्त्र साध्य वस्ती क्रिया साध्य है।

मलद्वार को घड़ी के मलद्वार की तरह से प्रसारण=प्रसार करें व संकोच करें आकुंचन करें प्रसारण करें और पानी को गुहा मार्ग से अन्दर पेट में ले जाये, उदर में रख ले

विरह योग

हारघुनन्दन प्राण पिरीते। तुमविन जियत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हारघुवर।हा पितुहित चित चातक जलधर।।
राम राम कहि राम कहि। राम राम कहि राम।।
तनु परिहरि रघुवर विरह। राउ गयउ सुरधाम।। (अयो.का. १५५)

लक्ष्मण

सहज सुभाय सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे।।
बहुरि वदन विधु अंचल ढाकी। पिय तन चितय भौंह करि बांकी।।
खंजन मंजु तिरीछै नैननि। निजपति कहेउ तिनहि सिय सैनानि।।
(ओयो.का. ११७)

तदनन्तर थोड़ा घूमकर नौली भी करें पश्चात बैठकर फिर उसे निकाल दे मल द्वार से ही (किसी जल से भरे टब में ये क्रिया या सरोवर में ये क्रिया ठीक है)।

गणेश क्रिया से मल सुगमता पूर्वक बाहर आता है उसमें हरिद्रा की गाँठ ठीक रहे। शंख प्रच्छालन की.......।

विरहयोग

विरहयोग के सिद्धाचार्य है महाराजाधिराज अवध सम्राट महाराज दशरथ राम विरह में तड़पते-तड़पते प्राण त्याग दिये। जब उन्हें सुमन्त से ज्ञात हुआ कि राम लौटकर अयोध्या नहीं आये तो विलख उठे—हे रघुनन्दन! हे प्राणप्रिय! तुम बिना अब तक बहुत दिन बीत गये जीते जीते (यद्यपि ५-७ दिन ही बीते हैं) हा जानकी-हा लखन-हा राम-हा पिता के चित्तरूपी चातक के लिए स्वाति बिन्दु वर्षाने वाले सजल जलधर अब नहीं जी सकता तुम्हारे विना। रामराम का छ बार स्मरण कर रामविरह में देह त्याग कर राजा दशरथ सुरधाम चले गये। मानो छ बार राम राम कहने का तात्पर्य षड् रिपुओं पर विजय, बड़ देह विकारों पर विजय षट्चक्रों का भेदन कर.....सम्पन्न राम के हो गये।

सीता जी वन में जाते हुए ग्राम वधूटियों को उनके पूछने पर लक्ष्मण राम का पता व सम्बन्ध नेत्र संकेत से बता रही हैं, सहज स्वभाव शोभित गौरवर्ण वाले लक्ष्मण मेरे छोटे देवर हैं, फिर मुखचन्द्र को घूँघट से ढककर प्रियतम राम की ओर भौंह टेढ़ी करके देखा-कटीले कजरारे-मनोहर-तिरछे नेत्रों से सीता जी ने नैनों से ही ये मेरे पति हैं ऐसा बिना बोले ही उत्तर दे दिया। लोकमर्यादा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण।

निवर्तयित्वा रसनं रसेभ्यो, घ्राणं गन्धाच्छ्रवणौ च शब्यात्।
स्पर्शात्त्व चं रूपगुणान्तु चक्षुषः, ततः परं पश्यति स्वं स्वभावम्।।
(महाभा. शांति.)

बुद्धिकर्मगुणैर्हीना यदा मनसि वर्तते।
तदा संपद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतः।। (महाभा. शांति.)

अत्रैक नाम्नोया शक्तिः पातकानां निवर्तने।
तन्निवर्त्यमघं कर्तुं नालंलोकाश्चतुर्दश।। (ब्रह्माण्डपु.उ.ख. ३।१६)

व्रण कुष्ठादिकं सर्वं नश्येद्द्वाविंशतिस्तवात्। (विष्णु सहस्रनामनः)।
(अगस्त्य संहिता)

श्रीगणेशाय नमः। श्रीपार्वतीपतये नमः अथ बीजाक्षर वर्णमालिका स्तोम्।
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव। साम्ब सप्तशिव साम्ब शिव।।
अद्भुतविग्रह अमराधीश्वर। अगणित गुणगण अमृत शिव।।सा.।।१।।
आनन्दामृत आश्रित रक्षक। आत्मानन्द महेश शिव।।सा.।।२।।

बहिर्मुखी हो चुकी इन्द्रियों को जब तक अन्तर्मुखी नहीं बनाया जायेगा तब तक निज स्वभाव को जान पाना असम्भव है जैसे—रसना को रसों से प्रत्यावर्तित करके घ्राण को गन्ध से कानों को शब्दों से त्वचा को स्पर्श से नेत्र को रूप से (अर्थात् इन इन्द्रियों को इनके वाह्य विषयों से) लौटाकर आन्तरिक भावजगत में उतरे तो स्वकीय स्वभाव को देख ही लेता है। वाह्य जगत् के क्षणिक-छुद्र आपातरमणीय सुखों से आन्तरिक निजानन्द निमग्न होने का आनन्द कितना अप्रतिम है, तो उतरकर ही देखा जा सकता है।

जब बुद्धि विविध कर्म कलापों से सतरजतमादि जात गुणों से हीन हो मनसि-(आत्मनि) मन में समाहित हो जाती है, तब ब्राह्मीभाव सम्पन्न हो जाता है और वही सबल प्रपञ्च का जंजाल लीन हो जाता है।

श्री ललिता सहस्रनाम की फलश्रुति के ये भाव हैं—

त्रिपुरसुन्दरी परमानन्द चित्शक्ति स्वरूपिणी मां जगदम्बा के पावनतम ललिता सहस्रनाम के नाम में पातकपुंज के प्रकाश में जितनी सामर्थ्य है उतने पाप तो चौदह भुवनों के प्राणी कर ही नहीं सकते।

विष्णु सहस्रनाम के आवृत्ति पाठ करने से व्रण कुष्णादि रोग नष्ट हो जाते है।

जगत अम्बा सहित सदा कल्याण रूप, सदाशिव का बारबार कीर्तन करें।

इन्दु कलाधर इन्द्रादि प्रिय। सुन्दर रूप सुरेश शिव।।सा.।।३।।
ईश सुरेश महेश जनप्रिय। केशव सेवित कीर्ति शिव।।सा.।।४।।
उरगादि प्रियभूषण शंकर। नरक विनाश नरेश शिव।।सा.।।५।।
ऊर्जितदानव नाश परात्पर। आर्जित पाप विनाश शिव।।सा.।।६।।
ऋग्वेद श्रुति मौलि विभूषण। चन्द्रार्काग्नि त्रिनेत्र शिव।।सा.।।७।।
ऋपमनोदि प्रपञ्च विलक्षण। तापनिवारण तत्त्वशिव।।सा.।।८।।
लिङ्गस्वरूप सर्वबुदाप्रिय। मंगल मूर्त्ति महेश शिव।।सा.।।९।।
लूताधीश्वर सर्प जनप्रिय। वेदान्त प्रिय वेद्य शिव।।सा.।।१०।।
एकानेक स्त्रवूप विश्वेश्वर। योगि हृदि प्रियवासशिव।।सा.।।११।।
ऐश्ववर्याशिय चिन्मय चिद्घन। अच्युत नन्द महेश शिव।।सा.।।१२।।
ओंकार प्रिय उरगविभूषण। ह्रींकारादि महेश शिव।सा.।।१३।।
औरस लालित अन्तक नाशन। गौरी समेत गिरीश शिव।।सा.।।१४।।
अम्बरवास चिदम्बर नायक। तुम्बुर नारद सेव्य शिव।सा.।।१५।।
आहार प्रिय आदिगिरीश्वर। भोगादि प्रिय पूर्णा शिव।।सा.।।१६।।
कमलाक्षार्चित कैलास प्रिय। करुणा सागर कान्तशिव।।सा.।।१७।।
खड्ग शूल मृग ठक्का द्यायुध। विक्रमरूप विश्वेशशिव।।सा.।।१८।।
गङ्गा गिरिसुतबल्लभगुणहित। शंकर सर्वजनेश शिव।।सा.।।१९।।
घातक भञ्जन पातकनाशन। गौरी समेत गिरीश शिव।।सा.।।२०।।
शाश्रित श्रुति मौलि विभूषण। वेदस्वरूप विश्वेश शिव।।सा.।।२१।।
चण्ड विनाशन सकल जन प्रिय। मण्डलाधीश महेश शिव।सा.।।२२।।
छत्रकिरीट सुकुण्डल शोभित पुत्रप्रिय भुवनेश शिव।।सा.।।२३।।
जन्म जरामृति नाशन कल्मष। रहित ताप विनाश शिव।।सा.।।२४।।
झङ्काराश्रय भृङ्गिरिटिप्रिय। ओङ्कारेश महेश शिव।।सा.।।२५।।
ज्ञानाज्ञानविनाशक निर्मल। दीन जनप्रिय दीप्त शिव।।सा.।।२६।।
टङ्काद्याश्रुध धारण सत्वर। ह्रीं करारादि सुरेश शिव।।सा.।।२७।।

अद्भुत विग्रह वाले, देवों के देव महादेव, (अमराणामधीश्वर) असंख्यगुण गण। वाले अमृत रूप शिव। आनन्दसुधा सिन्धु-शरणागतवत्सल, आत्मानन्दरूप। महान ईश शिव। चन्द्रकला को सिर पर धारण करने वाले, इन्द्रादि देवों के।

ठङ्क स्वरूप सहकारोत्तम। वागीश्वर वरदेवा शिव।।सा.।।२८।।
डम्बविनशडिंडिमभूषण। अम्बरवास चिदीश शिव।।सा.।।२९।।
ढं ढं. डमरूक धरणी निश्चर। ढुण्ढिविनायक सेव्य शिव।।सा.।।३०।।
नलिन विलोचन नटन मनोहर। अलि कुलभूषण अमृतशिवं।।सा.।।३१।।
तत्त्वमसीत्यादि वाक्यस्वरूप। नित्यानन्द महेश शिव।।सा.।।३२।।
स्थावर जंगम भुवनविलक्षण। भावुक मुनिवर सेव्यशिव।।सा.३३।।
दलितमनोन्मन दारिदनाशन। चन्दन लेपित चरण शिव।।सा.।।३४।।
धरणीधर शुभ धवलविभास्वर। धनदाक्षिप्रिय दानशिव।।सा.।।३५।।
नानामणिगणभूषण निर्गुण। नरन जनप्रिय नाट्यशिव।।सा.।।३६।।
पन्नगभूषण पार्वति नायक। परमानन्द परेश शिव।।सा.।।३७।।
फालविलोचन मानु कोटि प्रभु। हालाहरधर अमृत शिव।।सा.।।३८।।
बन्धविनाशन वृहदीशाम्। स्कन्दादिप्रिय कनकशिव।।सा.।।३९।।
भस्माविलेपन भवमयनाशन। विस्मय रूप विश्वेश शिव।।सा.।।४०।।
मन्मथनाशन मधुपान प्रिय। मन्थर पर्वत वासशिव।।सा.।।४१।।
यतिजनहृदय निवासित ईश्वर। विधिविष्णवादि सुरेश शिव।।सा.।।४२।।
रामेश्वर रमणीय मुखाम्बुज। सोमेसेश्वर सुकृत शिव।।सा.।।४३।।
लङ्काधीश्वर सुरगण सेवित। लावण्यामृत लसित शिव।।सा.।।४४।।
वरदामयर वासुकि भूषण। वन मालादिविभूषण शिव।।सा.।।४५।।
शान्तिस्ववूप जगत्रय चिन्मय। कान्ति मति प्रिय कनक शिव।।सा.।।४६।।
षणमुख जनक सुरेन्द्रमुनिप्रिय। षड्गुणादि समेत शिव।।सा.।।४७।।
संसारार्णव नाशन शाश्वत्। साधुहृदयप्रियवासुशिव।।सा.।।४८।।
हर पुरुषोत्तम अद्वैतामृत। पूर्ण मुरारि सुसेव्य शिव।।सा.।।४९।।
लब्धालित भक्तजनेश निजेश्वर। कालि नेटेश्वर कामशिव।।सा.।।५०।।

प्रिय, सुन्दर रूप वाले सुरेश शिव। ईश्वर, सुरों के स्वामी-महेश-जनप्रिय कृष्ण द्वारा पूजित इस कीर्ति वाले शिव। सर्पालंकार वाले, नरक नाशक, नटराजादि सशक्त दानवों का नाश करने वाले परों से भी परे एकत्रित पाप हन्ता शिव ऋग्वेद की श्रुति को शिरोभूषण बनाये (शिरोधार्य किया ज्ञान-वेद वह कहा शिर में) चन्द्रसूर्य-अग्नि रूपी त्रिनेत्र वाले शिव। ये पवित्र स्तोत्र सरल ही है हिन्दी व संस्कृत में विशेष भेद नहीं है जो स्तोत्र में

क्षर रूपादि प्रियन्वितसुन्दर। साक्षि जगत्रय स्वामि शिव।।सा.।।५१।।
साम्ब सदाशिव साम्बसदाशिव। साम्ब सदासिव साम्बशिव।।
निष्कलः सकलो भावः सर्वत्रैव व्यवस्थितः।
उपायः सकल स्तद्वद् उपेयश्चैव निष्कलः।। (ब्रह्मविधेप. ३८)

कार्तवीर्य स्तोत्रम्

कार्तवीर्यः खलदेवी, कृतवीर्यसुतोवली।
सहस्रवाहुशत्रुघ्नो, रक्तवासा धनुर्धर।।१।।
रक्तगन्धो रक्तमाल्यो, राजास्मर्तुरभीष्टदः।
द्वादशैतानि नामानि, कार्तवीर्यस्य यः पठेत्।।२।।
सम्पदस्यस्य जायन्ते, जनास्तस्य वशंगताः।
आनयत्याशु दूरस्थं, क्षेम लाभयुतं प्रियम्।।३।।

है वही हिन्दी अर्थ बनेगा अतः श्रद्धाभाव भरित हो इसका पाठ करें भगवान के एक-एक नाम की महिमा का चिन्तन करें।

'साम्बसदाशिव, सदाशिव, साम्बसदाशिव साम्बशिव'।

निष्कल (कलारहित) और सकल (कला सहित) का भाव सर्वत्र व्यवस्थित हैं। फिर इनका भेद कैसे करें कौन निष्कल है कौन सकल है) जितने भी उपाय है वे सकल है कलाओं सहित है वैसे ही उपेय जो है वही निष्कल है (कलारहित है)

उपाय = साधन-सकल-प्रकृति। उपेय = साध्य-निष्कल-पुरुष।

कार्तवीर्य स्तोत्र नष्ट व चोरी गयी वस्तु पाने की विधि

कृतवीर्यपुत्र कार्तवीर्य दुष्टों का दमन करने वाले, सहस्त्रभुजावाले, शत्रुहन्ता, रक्ताम्बरधारी महाधनुर्धर है॥१॥

लालचन्दन, लालरंग की माला धारण करने वाले ये सम्राट् स्मरण करने वालों के अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करते हैं, कार्तवीर्य के इन बारह नामों को जो पढ़ता है उसको सर्वविध सम्पदा मिलती है तथा प्राणी उसके वशवर्ती हो जाते हैं—१. कार्तवीर्य, २. खलद्वेषी, ३. कृतवीर्यसुत, ४. बली, ५. सहस्त्रबाहु, ६. शत्रुघ्न. ७. रक्तवासा, ८. धनुधरि, ९. रक्तगन्ध, १०. रक्तमाली, ११. राजा, १२. अभीष्टदः ये सहस्त्रबाहु क्षेम = (प्राप्त की रक्षा) लाभ (अप्राप्त की प्राप्ति) सहित प्रिय को दूर से भी शीघ्र ही ला देते हैं॥२-३॥

कार्तवीर्यार्जुनो नाम, राजाबाहुसहस्त्रभृत्।
तस्य स्मरणामात्रेण, हृतं नष्टं च लभ्यते।।४।।

कार्तवीर्य महावाहो, सर्वदुष्ठनिवर्हण।
सर्वं रक्ष सदातिष्ठ, दुष्टान्नाशय पाहिमान्।।५।।

सहस्त्रबाहुं सशरं सचापं, रक्तम्बरं रक्तकिरीटकुण्डलम्।
चौरादिदुष्टभयना शमिष्टंद, ध्यायेनमहाबलविजृंतकार्तवीर्यम्।।

यस्य समरणमात्रेण, सर्वदुःखक्षयो भवेत्।
तं नमामि महावीर्य, मर्जुनं कृतवीर्यजम्।।

है हयाधिपतेः स्तोवं, सहस्त्रावर्तनंकृतम्।
वाञ्छितार्थप्रदंनॄणां, शूद्राद्यैर्यदिन श्रुतम्।।

।।श्रीड्डामरतन्त्रे।।

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थ मेव। श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणम्।
भवेदनर्थाय विना प्रमाणाम्।। (ब्रह्मविद्योपनिषद् ३२)

ये मन्त्र तेज दिव्य शक्ति वाला है—कार्तवीर्य अर्जुन नाम वाले हजार भुजा धारण करने वाले राजा सहस्त्रार्जुन स्मरण करने मात्र से अपहृत या नष्ट धन वस्तु व्यक्ति मिल जाता है।।४।।

कार्तवीर्य! हे महाबाहो! हे सर्व दुष्ट हन्ता! सदा मेरे पास रहकर दुष्टों का नाश कर मेरी रक्षा करो मेरे सर्वस्व की रक्षा करो।।५।।

हजार भुजाओं में धनुष वाण धारण करने वाले रक्ताम्बरधारी, रक्तकिरीट कुण्डलवाले चौरादि दुष्टों के भय को नष्ट करने वाले इष्ट प्रदाता इस प्रकार के महाबल सम्पन्न कार्तवीर्य का ध्यान करें।

जिनके स्मरण मात्र से सर्वदुखनाश होता है उन कृतवीर्य पुत्र महावीर अर्जुन को मैं नमन करता हूँ।

हैह्यादिपति के इस स्तोत्र का एक हजार आवर्तन करने पर मनुष्यों के मनोरथ पूर्ण होते हैं, यदि शूद्रादि द्वारा श्रुत न हो तो।

श्रुतियों ने जो कहा है वह सब परमार्थ है। श्रुति से विरोध होने पर कोई भी कथन प्रमाण कोटि में नहीं आता और विना प्रमाण वाला सिद्धान्त विचार या कथन निश्चित ही अनर्थ की ओर ले जाता है।

श्री कार्तिय स्तोत्रम्

श्रीणेशाय नमः। स्कन्द उवाच।

योगीश्वरोमहासेनः, कार्तिकेयोऽग्नि नन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानी, स्वामी शङ्कर सम्भवः।।१।।

गाङ्गेयस्ताम्र चुश्च, ब्रह्मचारीशिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः, औञ्चारिश्च षडाननः।।२।।

शब्दब्रह्मसमुद्रश्च, सिद्धः सारस्वतोगुहः।
सनत्कुमारोभगवान्, भोग मोक्षफलप्रदः।।३।।

शरजन्मा गणधीशः, पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत्।
सर्वागम प्रणोता च, वाञ्छितार्थ प्रदर्शनः।।४।।

अष्टाविंशति नामानि मदीयानि च यः पठेत्।
प्रत्यूषे श्रद्धया युक्तो, मूको वास्पतिर्भवेत्।।५।।

महामन्त्रमयानीति, ममनामानुकीर्तनम्।
महा प्रज्ञामवाप्नोति, नात्र कार्या विचारणा।।६।।

।।श्री रुद्रयामले प्रज्ञविर्द्धनम्।।

कार्तिकेय स्तोत्र प्रज्ञा (बुद्धि) वर्धक (२८ नाम वाला स्तोत्र है ये)

श्रीगणेश जी को नमन—स्कन्द बोले—१. योगेश्वर, २. महासेन, ३. कार्तिकेय, ४. अग्निनन्दन, ५. स्कन्द, ६. कुमार, ७. सेनानी, ८. स्वामी, ९. शंकरसम्मव, १०. गांगेय, ११. ताम्रचूड, १२. ब्रह्मचारी, १३. शिखिध्वज, १४. तारकारि, १५. उमापुत्र, १६. क्रौंचारि, १७. षडानन, १८. शब्द ब्रह्म समुद्र, १९. सिद्ध, २०. सारस्वत, २१. गुह, २२. भगवान् सनत्कुमार भोगमोक्षफलप्रदा, २३. शरजन्मा, २४. गणाधीश, २५. पूर्वज, २६. मुक्तिमार्ग कर्ता, २७. सर्वागम प्रणेता, २८. वाञ्छितार्थ प्रदर्शक।

प्रात:काल में मेरे इन अट्ठाईस नामों को जो श्रद्धापूर्वक पढ़ता है वह मूक भी वृहस्पति सम हो जाता है। महामन्त्र स्वरूप इन मेरे नामों का कीर्तन महाप्रज्ञा प्रदान करने वाला है इसमें शंकित होकर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

वानेन ते देव का सुधायाः, प्रवृद्ध भक्तया विशदा शया ये।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधम्, यथाञ्जसान्यूयु रकुणअठधिष्णयम्।।
तथा परोचापि समाधियोग, बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम्।
त्वामेव धीरा पुरुषं विशन्ति, तेषां श्रमः स्यान्नतु सेवया ते।।
(श्रीमद्भा. ३।५।४५,४६)

देशे देशे भवनं, भवने भवने तथैक भिक्षाक्षम्।
सरसि च नाद्यं सलिलं, शिव शिव तत्त्वार्थ योगिनां पुसाम्।।
(भोज प्रबन्धनः)

श्रीकृष्ण श्रवणे परीक्षदभवद्वैद्यत्तिव्यकीर्तने
प्रहलादः स्मरणोऽङ्घ्रिपद्मभजनेलक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वमिवादने कपिपतिदीस्ये च सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने वलिरभूत् कैवल्य मेतेविदुः।।

योगी व भक्त की गति—सृष्टि सृजन के संसाधक सभी सुर जब समर्थ नहीं हो सके मिलकर सृष्टि करने में तब वे प्रार्थना करने लगे—हे देव! आपकी कथा सुधा का पान करने से बढ़ी हुई भक्ति के कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो गया है, वे प्राणी वैराग्य प्रदायक बोध को पाकर के सहज ही आपके वैकुण्ठ लोक में पहुँच जाते हैं तथा दूसरे समाधि योग बल से बलिष्ठ प्रकृति को जीतकर आपमें ही लीन हो जाते हैं, हो तो जाते हैं लीन किन्तु उन्हें परिश्रम विशेष होता है; किन्तु जो भक्ति मार्ग पर चलकर आपकी सेवा कथा रस के रसिक बन जाते हैं उन्हें कष्ट नहीं होता।

जैसे देश-देश में भवन है प्रत्येक भवन में भिक्षात्र है ही सरोवरों में एवं पवित्र नहीं में भी जल भरा ही है तत्वार्थ लब्ध योगी महापुरुषों के लिए तो सर्वत्र शिव तत्व ही है। विनाप्रयास आवास-भिक्षा वजल हर जगह प्राप्त होता ही है।

नवधा भक्ति के नवाचार्य

श्रीकृष्णतत्व श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव जी, स्मरण में प्रह्लाद, पदपद्मभजन में लक्ष्मी, पूजन में पृथुजी, अभिवादन में अक्रूर दास्य में हनुमान, सख्य में अर्जुन, सर्वस्व सहित आत्मनिवेदन में बलि हुए इन्होंने कैवल्य तत्व को भक्ति की एक विधा द्वारा प्रसन्न कर हृदय में धारण किया। इनकी प्रत्येक की पुराणों में दिव्य कथायें हैं, यहाँ संक्षेप में कहा गया विस्तार के लिए तत्तत्ग्रन्थों को देखें।

परिज्ञायोपमुक्तोहि, भोगो भवति मुक्तये।
विज्ञाय तेवितश्चौरो, मेत्रीमेति न चौर्यताम्।।
त्रशंकितोप सम्प्राप्ता, ग्रायग्रात्राययाध्वगैः।
प्रेक्ष्यते तद्वदेव ज्ञै, र्भोगश्रीरवलोक्यते।। (यो.वा.)
किमुपादेयमस्तीह, यत्नात्संसाधयामिकिम्।
स्वतस्थितस्यशुद्धस्य, चितः कामेस्तिकल्पना।। (यो.वा.)

आकाशात्	वायोः	अग्नेः	अद्भयः	भूमेः
ज्ञाता	मनः	बुद्धिः	चित्तम्	अहंकारः
समानः	व्यानः	उदानः	प्राणः	अपानः
श्रोत्रम्	त्वक्	चक्षुः	जिह्वा	घ्राणाम्
शब्दः	स्पर्शः	रूपम्	रसः	गन्धः
वाक्	पाणिः	पादौ	उपस्थः	पायुः

जैसे ज्ञानपूर्वक उपयुक्त भोग मुक्ति का साधक बन जाता है। ये चोर है ऐसा जानकर भी उसकी सेवा की जाये तो वह मित्रता को प्राप्त होता है चोरी के भाव को नहीं।

हे राम! जैसे मार्ग चलने वाले अशंकित होकर यात्रा द्वारा देखते हुए ग्राम को पहुँच जाते है वैसे ही विद्वान इस पुरुष की भोग श्री को देखते हैं और विना आसक्त हुए लक्ष्य तक पहुँचे।

यहाँ (नाशवान् जगत में) क्या उपयोगी है, यत्नपूर्वक किसको पाने का प्रयास करूँ, मैं तो स्वतः शुद्ध बुद्ध चैतन्य हूँ तब मुझ चैतन्य में क्या कल्पना होगी (अर्थात् नहीं ही)।

पञ्चमहाभूतों का परस्पर उद्भव इनके कार्य

आकास से	वायु	अग्निसे	जल से	पृथ्वी	महाभूत
ज्ञाता	मन	वुद्धि	चित्तम्	अहंकार	अन्तःकरण चतुष्टा
समान	व्यान	उदान	प्राण	अपान	पंचप्राण
श्रोत्र	त्वक्	नेत्र	जिह्वा	नासिका	पंच ज्ञानेन्द्रिया
शब्द	स्पर्श	रूप	रस	गन्ध	पंचतन्मात्रायें
वाणी	हाथ	पैर	मूत्रेन्द्रिय	मलेन्द्रिय	पंच कर्मेन्द्रियं

काशी

काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदितायेन, तेन प्राप्ता हि काशिका।।१।।

काशी मध्येन धर्मोऽस्ति, नाधर्माः सन्तिवै तथा।
तत्कार्ये न कदाचिद्वै, ज्ञान गंगा प्रभावतः।।२।।

विश्वेश्वरः स्वयं ह्यात्मा, तुर्या वै मणिकर्णिका।
सा वै प्रोक्ता कुराक्षेत्रं, त्रिधा मुक्ति प्रदाचकम्।।३।।

प्रयागादग्रिसं स्थान, मत्रापि च सदैव सा।
द्वैताद्वैत समाकाशी, निर्विकारः सदा भवेत्।।४।।

यमुनाब्रह्मविद्या वै, गंगा च ब्रह्म रूपता।
तयोरैक्यं प्रयागः स्यात्, ग्रन्थि विच्छेद विछेद निश्चयः।।५।।

काशीतत्व

काशृ दीप्तौ से काशी बन जैसे प्रकाश धन्य है—ये सर्व प्रकाशित काशी अन्तःकरण में दिव्य ज्ञान प्रकाश के साहचर्य से ही प्रकाशित होती है, जिसने उस दिव्य ज्योतिर्मयी ज्ञानमयी काशी को जान लिया उसने ही वास्तव में काशी को प्राप्त किया है।।१।।

काशी में न तो धर्म है (पुण्यकृत संसृति परम्परा का बन्धन नहीं है) न ही अधर्म है (पाप तो पतन बन्धन दुःखादि का हेतु है ही जब तक धमधिर्म पुण्यपाप रहेंगे तब तक जन्ममरण का चक्र लगा रहेगा) जब धर्म अधर्म हैं ही नहीं तब इनके कार्य कैसे होंगे कारण विना कार्य कदापि संभव नहीं धर्मकृत कार्यव अधर्मकृत कार्य भी नहीं है क्यों? क्योंकि ज्ञान गंगा के प्रवाह में पतित प्रवाहित धर्माधर्म रहे ही नहीं।।२।।

विश्वेश्वर स्वयं ही आत्मा हैं तथा तुरीयावस्था ही मणिकर्णिका है तुरीयावस्था ही कुरुक्षेत्र भी है आत्म तीर्थ का प्रसंग है ये नौ ही मुक्ति दायक है।।३।।

प्रयाग से भी बढ़कर मुक्तिदान में उदार है ये मुक्तिक्षेत्र यहाँ मुक्ति का खुलाभण्डार है आओ पाओ जाओ प्रयाग यहाँ स्वयं है ये काशी द्वैत व अद्वैत में सम है यहाँ आकर प्राणी निर्विकार हो जाता है।।४।।

ब्रह्मविद्यारूपीयमुना-द्रवीभूत ब्रह्मतत्वरूपी गंगा (जैसे गंगा यमुना का संगम ही प्रयाग है वैसे ही ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्मैकतत्व का संगम ही प्रयाग है) इन दोनों का एक रूप हो

अन्नपूर्णा सदा तुर्या, त्विवेको ढुण्ढिनायकः।
निर्भयो निश्चयो यस्य, काल भैरव नामकः।।६।।

काशी मध्ये वसेन्नित्यं, काशीरूपतया सदा।
काशी रूप स्वरूपोस्मि, काशिका माप्तवानयम्।।७।।

न मे जन्म न मे मृत्युः, न दुःखं सुखं तथा।
सदा एक स्वरूपोस्मि, द्वैता द्वैतं न विद्यते।।८।।

वेद शास्त्रं च यद्यावद्, व्यवहारो लौकिव्यस्तथा।
अविद्या अविषं तद्वै, मनः स्फुरण मेव च।।९।।

जाना ही प्रयाग है (भूतल का प्रयाग भौतिक से प्रतीत होने वाले दिव्य जल का फल है, किन्तु ये तो आन्तर प्रयाग है) यही प्रयाग चिज्जडग्रन्थि का विमोचक है (दृष्टि संगम प्रयाग मलादि नाशक अभीष्ट प्रदायक है दर्शन में रोचक है ठीक वैसे ही अदृष्ट आन्तर प्रयाग मलविक्षेप नाशपूर्वक भ्रम-ग्रन्थि नाशक है)॥५॥

माता अन्नपूर्णा जैसे दृष्ट काशी में है ठीक वैसे ही ज्ञानमयी काशी में भी है तुरीयावस्था में जीना ही अन्नपूर्णा है, सत् असत् विवेक ही ढुढिराज विघ्नहन्ता गणेश है निर्भयताव निश्चय की दृढ़ता ही काल भैरव की सत्ता है आन्तर काशी में स्वयं काशीरूप होकर (ज्ञानमयी काशी) ही काशी में निवास करे, जिसे दृढता से ये विश्वास हो गया में काशीरूप ही हूँ तो उसने ही काशी को जाना है माना है एवं वास्तव में काशी को पाया है॥६-७॥

मेरा जन्म मृत्यु नहीं है (काशी का भी जन्म मरण नहीं है प्रलयेपि या काशते प्रकाशते सा काशी) दुख और सुख भी नहीं हैं, सुख-दुख प्रत्यय ही नहीं है। द्वैत और अद्वैत चर्चा रहित मैं सदा एक रस एक रूप हूँ॥८॥

वेदशास्त्र प्रतिबोधित जितना भी लौकिक व्यवहार है वह सब अविद्या विषय है (विद्या की ओर ले जाने के लिए) तथा मन की ही संकल्पना मात्र है मन की ही उछलकूद है॥९॥

दृष्टकाशी भौतिक	:	अदृष्ट ज्ञानमयी काशी
विश्वेश्वर विश्वनाथ	:	आत्मा
अन्नपूर्णा मणिकर्णिका	:	तुरीयावस्था
काशी	:	निर्विकारसाम्यावस्था
गंगायमुना, प्रयाग, विवेक	:	ब्रह्मविद्या, ब्रह्मरूपता, मिलन,
कालभैरव ढुण्ढिराज	:	निर्भयता व दृढता

आत्म वस्तु सदा पूतं, अवस्तु मनने क्वचित्।
मन एव हि संसारः, तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
शोधनं वाद मात्रं च, न तु रूपोयमर्दनम्।।१०।।

लीलाननाम्बुज मधीर मुदीक्षमाणो,
नर्माणिवेणुविवरेषु निवेशयन्तम्।
दोलायमान नयनं नयनाभिरामं,
देवं कदानु दयितं व्यतिलोकयिष्ये।। (श्रीकृ.क.अ.)

१. अन्तर्लक्ष्यम्–मूलादारादारभ्य ब्रह्म रन्ध्रपर्यन्तं सुसुम्ना सूर्याभा। तन्मध्ये तडिस्कोटि समा मृणाल तन्तु सूक्ष्मा कुण्डलिनी। तत्र तमो निवृत्तिः। (मण्डलब्रा. ३।७)

आत्मतत्व सदैव पवित्रतम है अवस्तु की मननावस्था भी कदाचित् पवित्र हो सकती है (अवस्तु का मनन ही उसके मिथ्यारम्भ से मुक्त होने में सहयोगी है) मन ही स्वयं विविध रूपधारण करके संसार वन गया है जैसे स्वप्न में बन जाता है वैसे ही। अतः उसे प्रयत्न पूर्वक साधा जाये शोधा जाये (साधना, वशोधना) मन का शोधन कैसे करें? शोधन अर्थात् मन की सत्ता का ही बाध करें, मन के रूप का उपमर्दन नहीं है मन है ही नहीं इस विचार द्वारा उसके अभाव प्रत्यय को दृढ करना ही शोधन है जब मन नहीं तब मनजन्य संसार कहाँ।।१०।।

श्रीकृष्ण

लीलालास्य संलग्न ललित मुखकमल जो कि अधीरता पूर्वक (उतावला सा हो) अत्यन्त सुकोमल बेणु विवरों में स्वयं की दृष्टि को प्रविष्ट किये (दर्शन में समर्पित सातत्य है) वंशी के छिद्रों पर निरन्तर दृष्टि चल रही है तो मानों नेत्रों को सुलाने से उन नयनाभिराम घनश्याम प्रियतम श्री कृष्ण को कब मैं देख पाऊँगा।

कुण्डलिनीशक्ति

मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सूर्य के दिव्यतम तेज के समान तेजवाली सुषुम्ना उस सुषुम्ना के मध्य करोड़ों विजलियों जैसी प्रभावाली मृणाल तन्तु तनीयसी (कमल नालवर्ती तन्तु के समान पतली) जो शक्ति है वही कुण्डलिनी है जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है वहाँ अज्ञानान्धकार, भ्रमोलूक, अविधा निशा नहीं रहते।

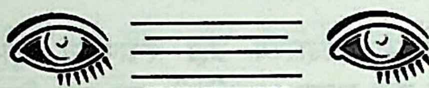
अक्षिरोग भैषजम्। अथर्ववेदः, काण्डं ६। प्र. १६। शौन.ऋ. चन्द्रमा दे. चक्षुरो नाशोविनि.।

ॐ आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो। आ ते कारम्भमम्नसि।।१।।

ॐ विहह्लो नाम ते पिता मदावतीं नाम ते माता। स हिं न त्वमसि यस्त्वमात्मान मावयः।।२।।

ॐ तौविलिकेऽवैलयावाय मै लव ऐलयीत। बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल।।३।।

ॐ अलसालोसि पूर्वा सिलाञ्जाला स्युत्तरा। नीलागल साला।।४।।



मृत्युञ्जयः (अथ. ६।१३)

अथर्व ऋ. मृत्युदेवता। स्वस्त्यनकेवि.।

ॐ नमोदेव वधभ्यो नमो राजवधेभ्याः। अथो ये विश्बांनां वधास्तोभ्यो मृत्यो नमोऽस्तुते।।१।।

ॐ नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः। सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं निमः।।२।।

नमस्ते यातुधानभ्यो नमस्ते भेषजोभ्यः। नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्यं इदं नमः।।३।।

मान्त्रिक उपचार नेत्ररोग का

इस सूक्त का पाठ करने से कैसा भी नेत्र रोग हो ठीक हो जाता है, किन्तु जो पाठ करे वह वेदपाठ की योग्यता प्राप्त करके ही करे मनमाने नहीं जनेऊ संस्कार हो, गुरू से पहले इन मन्त्रों को पढ़ ले पवित्रावस्था में ही करें।

मृत्युञ्जय वन्दना

देवताओं के मृत्यु रूप राजाओं के मृत्युरूप, सकल विश्व के प्राणियों के मृत्युरूप मृत्यु देवता को नमस्कार है। अधिवाकाय और परावाकाय नमन है। सुमति व दुर्मति रूप मृत्यु को नमन है। राक्षसों, को, वैद्यों को मृत्यु के अन्य मूलकारणों को ब्राह्मणों को भी नमस्कार है।

कृष्णो राधांप्रति। व्याहारे नौ चहि समुचितो पुण्यदस्मत्प्रयोगः।। (कर्णपूरः)

भगवदनुग्रहः

यस्याह मनुगृह्णामिः वित्तं तस्य हराम्यहम्।
करोमि बन्धुविच्छेदं सतु दुःखेन जीवति।।

संतापेष्वपि कौन्तेय, यदि मां न परित्यजेत्।
ददाम्यहं स्वीय पदं, देवानामपि दुर्लभम्।। (पद्मपुराणे)

लाल को नचवन सिखवत प्यारी।
जैसोई सुभग वन्यो वृन्दावन, जैसी शरद उजारी।।

मान गुमान लकुट लिये ठाढ़ी, डरपद कुञ्जविहारी।
थेईथेई करत ताल मन ऊँचयो, उरप तिरप गति न्यारी।।

देख देख ब्रह्मादिक नारद, अचरज सोच विचारी।
व्यास, स्वामिनीकी छबि निरखत, रीझदेतकरतारी।।

श्रीकृष्ण राधा जी से कह रहे हैं हमारे व्यवहार में हमारा (युष्मद् अस्मत्) तुम्हारा मेरा तेरा प्रयोग उचित नहीं है।

भगवान का अनुग्रह

हे कुन्तिनन्दन! जिस पर में अनुग्रह करता हूँ सबसे पहले उसका धन नष्ट कर देता हूँ। (धन दृष्टि पर गर्व का पर्दा मन में अभिमान लाता है फलतः मुझको देख नहीं पाता) सम्बन्धियों बन्धुओं से नाता तुड़वा देता हूँ। (वध्नाति इति बन्धु जो राग पाश में बाँधे रखे) लोक दृष्टि से मेरा भक्त दुःख पूर्वक जीता है हे कौन्तेय! इन सन्तापों में भी जब भक्त विचलित नहीं होता मुझको मेरी भक्ति को नहीं छोड़ता तब (सर्वविध परीक्षा करके जब उसे उत्तीर्ण देख लेता हूँ तब) देवताओं को भी दुर्लभ स्वपद वैकुण्ठ प्रदान कर देता हूँ।

श्रीराधा

श्री नित्य निकुञ्जेश्वरी वृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधिका जी श्रीकृष्ण लाल को नाचना सिखा रही हैं—सुभग दिव्य जैसा वृन्दावन वैसी ही दिव्य प्रकाश सजी शरद पूर्णिमा की रात, मानाभिमान दण्डधारिणी राधा जी से कृष्ण डर रहे हैं। थेइ थेइ आदि नृत्य तालों से विचित्र गति वाली श्रीप्रिया व श्रीप्रियतम की दशा देख ब्रह्मा नारदादि सब चकित हैं। श्रीराधाजी की दिव्य छवि देख व्यास (लेखक) रीझ उठे ताली बजा उठे आनन्द के साथ।

शंकर ह्वै कब रास रच्यौ अस वा नाम न ह्वै कब गोपी नचाई।
मीन ह्वै कौन के ची हरे, छुवा ह्वै कै कब बीन बजाई।।
होय नृसिंहकवै हरिजूतुम कौनकी छतियन रेख लगाई।
वृषभानु सुता प्रकटी जवते-तवते तुम केलिकलानिधि पाई।।

काम और प्रेम

आत्मनेन्द्रिय प्रीति इच्छा, तारे वलि काम।
कृष्णोन्द्रिय प्रीति इच्छा, धवे प्रेम नाम।।
कामरे तात्पर्य निज संभोग केल।
कृष्ण सुख तात्पर्य हय प्रेम प्रवल।।
परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति, सेइ प्रेमा हइते।
येइ प्रेमरे वश कृष्ण कहे भागवते।।
पञ्चम पुरुषार्थ सेइ प्रेममहाधन।
कृष्णणेर माधुर्यरस कराय आस्वादन।। (चैतन्यचरि.)

हे प्रभो जब से आपको श्रीराधा जी की कृपा मिली है न तब से ही आप केलि कला में प्रवीण हुए अन्यथा राधा कृपा मिलन से पूर्व बताओ तुम शंकर वन कब रास रचायो, वामनावतार में कौन गोपी नचाई, मत्स्यावतार में किसका चीर चुराया, कछपावतार में कब वंशी बजाई, नरसिंह बने तो किसके वक्ष पर रेखा खींची तुमको जीना तक नहीं आता था ठीक से उठना बैठना तक नहीं आता था। वृषभानुलली जो मिली तुमको तो लाला तुमको कछु सीख मिली है।

काम व प्रेम

अपनी इन्द्रियों की प्रीति (तृप्ति) की इच्छा ही काम है इन्द्रियां जब स्वप्रीति (तृप्ति) की इच्छा करें तब काम भाव जानों इन्द्रियां जब कृष्णप्रीति (प्राप्ति) की इच्छा करें तब प्रेमभाव जानो निज संभोग (सुख) की इच्छा ही काम है। कृष्ण सुख की सम्प्राप्ति ही प्रेम है। कृष्णप्राप्ति की पूर्णाकांक्षा ही पूर्ण प्रेम है। इसी प्रेम के वश में कृष्ण हैं ये भागवत में भी कहा गया है।

भगवत भक्त कहते हैं—धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों के अतिरिक्त पाँचवा पुरुषार्थ है प्रेम महाधन जो कि कृष्ण के माधुर्यरस का आस्वादन कराता है।

वृन्दादव्यां प्रसरति तडित् कोटि कोटि प्रकारो।
कोप्याश्चर्यो विलसति महाभास्वरो ध्वान्तराशिः।।
सेत चन्द्र सब कोई कहत, श्याम चन्द्र नहि कोय।
व्रजरस मण्डल सुन्यो यह, उदय नित्य ही होय।।

मनः

अनन्तस्यात्म तत्त्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मनः।
संकल्प शक्ति स्वचितं, यद्रूपं तन्मनो विदुः।।
भाव सदसतोमध्य, नृणां चलति यश्चलः।
कलनो-मुखतां यातः, तद्रूपं मनसो विदुः।। (यो.वाशि.उ.)

वियोगः

उत्तापीपुटपाकतोऽपिगरल ग्रामा दपिक्षोभणो
दम्भोलेरपि दुःसहः कटुरलुं हन्मग्नशूलादपि।

श्रीकृष्णतत्त्व

विपिनराज श्रीवृन्दावन में करोड़ों करोड़ विधुत्प्रभा रूपागोपांगनायें भ्रमण करती हैं, कितना ये आश्चर्य है कि वहाँ महाभास्वर होकर अंधकार राशि शोभा पा रहा है, (श्रीकृष्ण काले है गोपीजन गौर है) जबकि प्रकाश में अन्धकार हो ही नहीं सकता भास्वर श्वेतचन्द्र का वर्णन सब करते है पर श्याम चन्द्र की चर्चा कोई नहीं करता, किन्तु हमने सुना है ब्रज में रास मण्डल में ये श्याम चन्द्र नित्य उदय होते हैं।

मनु का स्वरूप

श्रीराम जी द्वारा मन का स्वरूप पूँछने पर महर्षि वशिष्ठ कहते हैं हे राघवेन्द्र! सर्वशक्ति सम्पन्न अनन्तात्मतत्व की संकल्प शक्ति जिस रूप को धारण करती है वही मन है ऐसा जानो। अर्थात् संकल्प शक्ति ही मन है। सत और असत् के मध्य में जो सतत् चाञ्चल्य युक्त है कलन संकल्पों में डूबा रहता है वही मन है।

वियोग क्या है कैसा है

हे गोकुल पते गोविन्द हे प्राणनाथ! ये वियोग जन्य (विरहोत्पन्न) जो ज्वर है यह पुट पाक (भस्म निर्माण प्रक्रिया में दो पात्रों के अन्दर रखकर धातु को तपाया जाता है

तीव्रः प्रौढ़ विसूचिका निचयतोऽप्युच्चै र्मानायंवली
मर्माण्यद्यभिनत्ति जोकुलपते? विश्लेषजन्मा ज्वरः।।
(ललिता माधवे)

वियोग योगः

आहारे विरतिः, समस्त विषय ग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं, यदेतदपरं, पञ्चैक तानंमनः।
मौनं चेद मिदं च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते
तद्ब्रह्माः सखि? योगिनी किमसिभोः? किं वावियोन्यसि।।

ये पुटवाक् है) से अधिक दाहक है, विष समूह से अधिक क्षोभोत्पादक है वज्र से भी अधिक दुस्सह कटु है, हृदयगत् शूल की चुभन से भी तीक्ष्ण है, परिवर्धित विसूचिका समूह से भी अधिक पीड़ा दायक है, अत्यन्त बलवान है ये मर्मों का भेदन करता जाता है। पुटवाक् की जलन विक्षोत्पन्न क्षोभ, वज्र का प्रहार, हृदय में चुभा शूल इन सबसे प्राप्त होने वाला क्लेश दुःख, केवल कुछ नहीं होगा ऐसी पीड़ा तो ये सब मिलकर भी नहीं दे सकते जैसा कि विरह जन्य संताप जलाता मर्म का भेदन करता रहता है।

वियोग योग विरहयोग

जब प्रिया का प्रियतम से विरह (विश्लेष) हो जाता है तब भोजन अच्छा नहीं लगता, सभी ऐन्द्रिक विषय जन्य सुखों के समूह से निवृत्ति हो जाती है, दृष्टि खोई खोई अपने आप में नासाग्रवर्ती रहती है, मन भी स्वाभाविक चपलता छोड़कर एकाग्रसा प्रियतम के ध्यान में डूब जाता है वाणी व्यवहार अच्छा नहीं लगता चुप-चुप रहना खोया खोया रहना स्वभावतः आ जाता है। सारी दुनियाँ शून्य जैसी प्रतीत होती है। इन सब लक्षणों को अपनी सखी में साकार घटित देखकर किसी सखी ने पूछा हे सखि! बोलो तो सही तुम कोई ध्यान निमग्न योगिनी हो या फिर कान्ता विरह कर्णिषत चित्त वाली कोई वियोगिनी विरहिणि हो। क्योंकि ये लक्षण योगी में या वियोगी दो में ही घटते हैं।

श्रीराम—

कहेउ राम वियोग तब सीता मो कहुं सकल भये विपरीता।
कहेहूं ते कछु दुःख घटि होई काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेमकर मम अरू तोरा जानत एक प्रिया मन मोरा।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।।

वहलचिकुरमारं वद्धपिच्छावतंसम्
चपल चपल नेत्रं चारु विम्बाधरोष्ठम्।
मधुरमृदुल हासं मन्दरोदारलीलं
मृगयति नयनं मे मुग्ध वेणुं मुरारेः।। (कृष्णर्णामृतम्)

अहं च ललिता देवो राधिकायाच गीयते।

सदा एकरस एक अखण्डित अनादि आदि अनूप।
कोटिकल्पवीततनहिजानत विहरतयुगलस्वरूप।। (सूरदास)

उपमा हरि तन हेरि लजाने।
कोउ जल में कोउ बन मे रहे द्वारि कोऊ गगन समाने।।
मुख निरखत शशि गयो अम्बर को, तडित वसनछवि हरो।
मीन कमल कर चरन नयन हर जलमहिंन वसे रो।।
भुजादेखि अहिराज लजाये विवरहि पैठे धाई।
कटी निरखिकेहरि डरभाग्यो वन वन दहे दुराई।।
गारी देहिकविन के वक्षत श्रीअंग पटतर देत।
'सूरदास' हमको विमावत नाम हमारो लेत।।

घने घुघराले केशपाश के ऊपर मयूरपिच्छ का मुकुट जिनके सुवद्ध है चंचल जिनके चितवन हैं, विम्बफल सदृश जिनके चारुतर अधर हैं मधुर मुस्कान से जिनका मुखकमल शोभित है दिव्योदार लीला वाले जो हैं उन मुरारि श्रीकृष्णचन्द्र को मेरे नयन खोज रहे हैं।

ब्रह्मवैवर्त में—मैं और श्रीललिता देवी जिन्हें राधा जी कहा गया है। दोनों एक ही हैं मैं ही ललिता पराम्बा राधा हूँ श्रीराधा ही श्रीकृष्ण हैं।

अनुपम कृष्ण—भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य वपु के दिव्यतम अंगों की उपमा त्रैलोक्य में सम्भव नहीं वे अनुपम, अतुलनीय-अद्वितीय अद्भुत है।

श्री सकलंक चन्द्र—श्रीकृष्णचन्द्र के दिव्यतम निर्मल निष्कलंक सदानन्दवर्धक मुख चन्द्रको देखते ही चन्द्र दुनिया छोड़ दूर बहुत दूर आकाश में बस गया। तडित् विनिंदक दिव्य पीताम्बर की छवि क्या अद्भुत है, मीन नेत्रों की मनोहरता से विचारी जल में पायीकर चरण की सुन्दरता, स्निग्धता, सुवासिता, मधुरता, मनोहरता, अरुणिमा को देख कमल मुख छिपा कर सरोवर में दूर चले गये इनके पास रहे तो हमें कौन पूछेगा। सर्पराज भुजदण्ड

दुर्वासा (त्रैलोक मोहन कवच)

क ह ए ई ल ह्रीं (ह ल ए ई ल ह्रीं स क ए ई ल) ह स क ह ल श्रीं स क ल ह्रीम्।

महाज्ञानमयो विद्या-२

ह. स क ल ह्रीं. ह स क ह ल श्रीं स क ल ह्रीम्।

रमादि जोऽशी-३

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीम्।

वागादिश्चोऽशी-४

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं सौः क्लीं श्रीं ह्रीं ऐम्।

श्रीशांकरी चतुःकूटा-५

ह स क ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं स ल ह्रीं ह स क ल ह स क ह ल स क ल ह्रीम्।

की संरचना की देख संकुचित हुए और ईष्यावश विलों में घुस गये—कटि भाग कमर की मन्दता क्षीणता कृशता को देख सिंह डर गया जंगलों में धक्का खाता फिरता है श्री अंग की उपमा देय नहीं सम्भव ही नहीं।

त्रैलोक्य मोहन कवच में महर्षि दुर्वाषा जी ने महाज्ञानमयी श्रीविद्या उपासना का मन्त्र कुत्र जो दिया वह कादि विद्यारूप में प्रस्तुत है।

श्रीविद्यामन्त्र—(१) कए ईल ह्रीं—ये कादि कुम हं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं। (२) हसकल ह्रीं—ये हादि क्रम है हंस कहल ह्रीं सकल ह्रीं।

आगे श्रीविद्या की दिव्योपासना के दिव्यतम महामन्त्रों को विभिन्न स्वरूपों में व्यक्त किया गया है, एक-एक अक्षर विन्दु मात्रा तक विशिष्ट भाव अर्थ तत्वों का प्रतीक है जैसे बीज में महावृक्ष छुपा होता है वैसे ही एक एक बीज मन्त्र में सकल ज्ञान विज्ञान का रहस्य छुपा होता है इस विद्या के विषय में लिखा है—

चरमे जन्मनि यथा श्रीविद्योपासको भवेत्।।

श्रीविद्योपासनोपरान्त फिर जन्ममरण का जंजाल नहीं रहता।

अतिप्रियतमं देयं सुतदारधनादिकं। राज्यं देयं शिरोदेयं न देया षोडषाक्षरी।।

षट्कूटावैष्णवी-६

ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं स ह क हल ह्रीं स ह स कल ह्रीम् स ह क ह ल ह्रीम्। (मनोभवा) (त्रै.मो.क.)

श्री त्रिपुरा गायत्री

ॐ क ए ई ल ह्रीं वागीश्वर्यै विद्म हे। ॐ ह स क ह ल ह्रीं कामेश्वर्यै धीमहि। ॐ सकल ह्रीं तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।। (त्रै.मो.क.)

ब्रह्मास्त्ररूपिणी

ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं क्लीं क ए ई ल ह्रीं सो हं हौं हं सः ह्रीं स क ल ह्रीं सौः ह स क ह ल ह्रीं क्लीं क ए ई ल ह्रीं ऐम्।

उत्कीलनम्

ॐ ह स क ल ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स क ल ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं क्रीं क्रीं क्रीं सद्रसूच्यग्रेण मूल विद्याशापमुत्कीलपयोत्कलिय स्वाहा। ॐ क ॐ ए ॐ ई ॐ ल ॐ ह्रीं ॐ ह ॐ स ऊ क ॐ ह ॐ ल ॐ ह्रीं ॐ स ॐ क ॐ ल ॐ ह्रीं ॐ। (ऐ.मो.क.)

मूर्छाकुम्भकः

मुखेन कुम्भकं कृत्वा, मनश्च भ्रुवोरन्तरम्।
सत्यज्य विषयान्सर्वान्, मनो मूर्छासुखप्रदा।।
आत्मनि मनसोयोगादानन्दो जायते ध्रुवम्।। (घेरण्डसंहिता)

अत्यन्त प्रिय पुत्र-पत्नी-सम्पत्ति-साम्राज्य-शिर सब दिया जा सकता है किन्तु विशिष्ट परीक्षा विना किसी को श्रीविद्या नहीं देवे।

सैकड़ों यज्ञों को करने से प्राप्त पुण्य से अधिक पुण्य श्रीचक्र दर्शन से होता है।

श्रीविद्या का उपासक साक्षात् शिव ही है। गुरुपरम्परा बिना इसमें प्रवेश वर्जित है। इनकी गायत्री, उत्कीलनादि का वर्णन विस्तार से श्रीविद्या रत्नाकर में देखे।

मूर्छा कुम्भक

मुख से कुम्भक करके (श्वांस खींच ले) श्वांस रोक ले, मन को दोनों भौंहों के बीच लगा ले (दृष्टि त्याग से) सभी विषयों चिन्ताओं को त्याग दें तब जो अवस्था होगी

मधुर मधुर बिम्बे मञ्जुलं मन्दहासे ,
शिशिरममृतनादे शीतलं दृष्टिपाते।
विपुलमरुणनेत्रे विश्रुतं वेणुवादे
मरकतमणिनीलं वालमालोकयेतु।। (श्रीकृष्णकर्णमृतम् ६४)

ॐ

सनत्कुमारो देवर्षिः, शुकभीष्णप्लवङ्गमाः।
पच्चैतान् यः स्मरेन्नित्यं, कामस्तस्य न जायते।।
नाविद्या नापि तत्कार्यं बोधं वाधितुमर्हति।
पुरैव तत्त्वबोधेन, बाधिते ते उभेयतः।।
बाधितं दृश्यतामक्षै, स्तेन वाधो न दृश्यते।।

वह मन की मूर्छावस्था सुख देने वाली होगी। आत्मा में मन का योग होने से निश्चित आनन्द उत्पन्न होगा या-ध्रुव स्थिर आनन्द उत्पन्न होता है।

हे सखि! मधुराति मधुर मुखविम्ब पर जिसकी मन्दमन्द मुस्कान बड़ी प्रसिद्ध है, जिसकी सुधा रस सरावोर वाणी सिद्ध है, जिसका दृष्टिपात हृदयों को शीतल बनाने वाला है— जिसके बड़े-बड़े अरूणाभ नेत्रों की बड़ी चर्चा है, जिसके वंशीवादन से त्रैलोक्य मोहित है ऐसे मरकत मणि के समान नील आभा वाले (सौन्दर्यामृत सिन्धु) बालक को देखो तो सही। विश्रुत पद का सबके साथ अन्वय करे।

ध्यान

सनत्कुमार देवर्षि नारद, (भक्तयोगी), शुकदेव जी (ज्ञान योगी), भीष्मपितामह (कर्म योगी), हनुमान जी (पूर्णयोगी)—इन पाँचों का नित्य स्मरण करने वाला काम विकार शून्य हो जाता है। ये सदासर्वज्ञ निर्विवाद कामना शून्य महापुरुष है साक्षात्भगवद्विग्रह ही भागवतरूप में आये हैं।

ज्ञानाभाव ही अविद्या है

ज्ञान को बाधित कर पाना न तो अविद्या द्वारा सम्भव है न हि अविद्या जन्य कार्य द्वारा क्योंकि तत्वबोध द्वारा इन दोनों को बाधित पूर्व में ही कर दिया कैसे? सूर्य प्रकाश अन्धकार को मारता नहीं अपितु अन्धेरा रहता ही नहीं, है ही नहीं प्रकाश का अभाव ही तो अन्धेरा है ठीक वैसे ही ज्ञानाभाव ही अविद्या है ज्ञानप्रकाश हुआ तो अविद्या अन्धेरा तो स्वतः नष्ट इन्द्रियों द्वारा दृश्यता बाधित है अतः वन्ध नहीं दिखता है।

न राधिका समा नारी, नैव कृष्ण समः पुमान्।
वयः परं नकैशोरात्, स्वभावः प्रकृतेः परः।। (पद्म पु.)

वन्दे मदनगोपालं, कैशोराकारमद्भुतम्।
यमाहुयौवनोछिन्न, श्रीमद्मदनमोहनम्।।

वयः कैशोरं ध्येयं, पुरीमधुपुरीपरा।
श्याममेवपरं रूपं, आद्यएव परो रसः।।

राधा संगेयदा भातितदा मदन मोहनः।
अन्यथा विश्वहोऽपि स्वयं मदन मोहितः।। (श्रीकृष्ण.टी.)

मारः स्वयं नु! मधुर द्युति मण्डलं नु? माधुर्यमेवनु? मनोनयनामृतं नु?। वेणी मृजो नु? मम जीवित वल्लभोनु! वालोऽयमभ्युदयते ममलोचनाय।। (श्रीकृ.क. ६८)

युगल छवि से बढ़कर तो कौन सकल प्रपंच में उनके जैसा भी कोई नहीं सुना न दीखा श्री राधा जैसी त्रैलोक्य में नारी नहीं न कृष्ण जैसा कोई पुरुष ही है। किशोरावस्था जैसी कोई अवस्था नहीं प्रकृति से परे कोई स्वभाव नहीं।

अद्भुत किशोर वय वाले मदन गोपाल को मैं नमन करता हूँ, पावनतम् यौवन की मधुरिमा का भी सारांश माधुर्य लेकर मदन को भी मोहित करने वाले मदनमोहन है।

श्रीकृष्ण तत्त्व

श्रीकृष्णचन्द्र की पावनतम किशोराकृति (हस्तन्यस्त नतापवर्ग मखिलोदारं किशोराकृतिः) ही ध्येय है, क्योंकि कृष्ण जब तक श्रीधाम व्रज हृदयभूत वृन्दावन में रहे तभी तक परिपूर्णतम ब्रह्म रहे विनाशस्त्र के ही घोरातिघोर दैतों को मारा-मथुरा में ब्रह्म तथा द्वारिका में विष्णुरूप ही हैं। श्रीकिशोराकृति ही पूर्णतम ब्राह्मी अवस्था है। पुरियों मथुरापुरी जो प्राणी मात्र को मुक्ति प्रदात्री है। सावले सलोने सजल जलधर की कान्ति समान श्याम रूप ही परमरूप है—आद्य (शृङ्गार) ही उत्तमोत्तम रस है।

नित्य वैकुण्ठेश्वरी व्रजेश्वरी श्रीरासरासेश्वरी श्रीराधा जी के संग जब वह ब्रह्मसत्ता रहते है तब तक ही मदन मोहन होते हैं—(कामदेव को मोहित करने वाले)

कौन जानता था मुझे दुनिया के अन्धेरे में। तुमने खरीदकर मुझे अनमोल कर दिया।।

अन्यथा तो अपने संकल्प मात्र से प्रलय काल में विश्व को लीन करने वाले भी स्वयं काम से मोहित हो जाते हैं।

अरी सखि! बालचन्द्र के समान ये कौन मेरे नेत्रों को आनन्द देने के लिए उदित हो रहा है क्या स्वयं ये विश्व विमोहन कामदेव है क्या? या मधुरद्युति मण्डल माधुर्य

वेणी गूंथि कहा कोऊ जाने मेरी सो तेरी सौं।
विच विच फूल सेत पीत राते को करि सकै एरी सौं।।

(हरिदास)

गोपी		कृष्ण
कोऽमल धीः	-	कोमलधीः
कामहिता	-	कामहिता
कोऽपचयः	-	कोपचयः
मधुरा का	-	मधुराका
क उपास्यः	-	योरसवान्
कःसरसः	-	यःपदं प्रेम्णः
किंप्रेम	-	यदवियोग
कः सवियोगः	-	न येन जीवन्ति (आ.वृ. चम्पू.)

ही दिव्याभा सम्पन्न पिण्डाकार हो गया है। अथवा ये नेत्रों का अमृत ही है, अहो ये मेरी वेणी गूथने वाला है क्या? कही ये मेरा जीवन वल्लभ तो नहीं है। ऐसा श्रीकृष्ण के बारे में श्रीराधा जी उत्प्रेरण कर रही है।

श्रीकृष्ण श्रीराधिका जी से कह रहे हैं—अरी सखि! मेरे जैसी चोटी गूथना कौन जाने दुनिया में अर्थात् कोई नहीं तेरी सौह खाकर कहूँ, बीच-बीच में श्वेत पीत फूल लगाकर प्रेमपूर्वक कौन कर सकता है ये काम।

रासलीला काल में गोपी मण्डल ने कृष्ण से प्रश्न किये—

व्रज में किसकी बुद्धि निर्मल है? कृष्ण बोले—जिसकी बुद्धि कोमल है।

अपचय (हानि) क्या है? क्रोध ही हानि है।

व्रज में मधुरा कौन है? पूर्णचन्द्र युक्त रात्रि (राका)।

उपास्य कौन है? जिसमें रस है।

सरस कौन है? जो प्रेम का आश्रय है।

प्रेम क्या है? जिसमें वियोग नहीं।

वियोग क्या है? जिसके होने पर जीवन न रहे।

वेणुगति गतिमूलवेथसे ब्रह्म राशि महसे नमः। (श्रीकृ. ७७)

अथ वेणु निनादस्य त्रयीमूर्तिमती गतिः।
स्फुरन्ती प्रविवेशाशु. मुखाब्जानि स्वयंभुवः।।
गायत्री गायतस्तस्यादधिगत्य सरोजजः।
संस्कृतश्चापि गुरुणा द्विजतामगमत्ततः।। (ब्रह्म संहिता)

यह मुरली त्रिवेद स्वरूपिणी है। श्रुति मन्त्रन् सौ यह पूरी है।।
यह लज्जा वधू के मारन मे। जनु अथर्व मन्त्र की रूरी है।।
यह मदन पाल के जारन मे बस। साम गान की चेरी है।।
यह प्रेमाद्वैत करनमे मुरली। तत्त्वर्मास की भेरी है।।

तदङ्घ्रि पङ्कज नख, चन्द्रमणि प्रभाकरम्।
आहुः पूर्ण ब्रह्मणोपि कारणं वेद दुर्गमम्।।
(पद्मपु. इति श्रीकृष्ण का.टी.)

जाके पदनखज्योति की आभा को आसुझेश।
जगमगात है जगत मे पारब्रह्म परमेश।।

वेणुगीत की गति के मूल को जानने वाले ब्रह्मराशि दिव्य तेज को नमन है वेणु निनाद की तीन गतियाँ मूर्तिमती है—ब्रह्मा के मुख कमलों में शीघ्र स्फुटित हो प्रवेश करती हुई। ब्रह्मा गायत्री गान विद्या इन्हीं से पाये और गुरु द्वारा संस्कारित हो। द्विजत्व को प्राप्त हो गये।

वंशी त्रिवेदस्वरूपिणी श्रुतिमन्त्रमयी, लज्जावधू के वधार्थ अथर्ववेद के अभिचार मन्त्रमयी है कामपात के ज्वालनार्थ ये सामगान की भेदी है ये प्रेमाद्वैत के विस्तार में तत्वमणि की घोषणा है।

श्रीकृष्ण के चरणारविन्द नखमणि चन्द्रिका की दिव्याभाप्रभा ही पूर्ण ब्रह्म की भी कारण है वेद द्वारा भी जिसका ज्ञान कठिनतम है।

जिनके नखमणि चन्द्रिका के दिव्यप्रकाश से जगत् परब्रह्म परमेश जगमगाते हैं।

कृष्णस्यानुग्रहो यस्मिन्स तेजसि समीक्षते।
केवलं तेज एवान्ये पश्यन्ति न तु ते मुने।।

(नारदाय स्कन्ददेव इति श्रीकृ.क.टी.)

सर्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्वभौममिदंमहः। (श्रीकृष्णथामृतः ८३)

श्रीकृष्णः सतृष्णमत्युष्णं पायं पायं स्वयं पयः।
लीलामुग्धं पाययति दुग्धं सप्रेमगोपिका।। (टी.)

धीवृत्याभास कुम्भानां, समूहो भास्यते चिता।
कुम्भमात्रफलत्वात्स, एक आभासतः स्फुरेत्।।

(पञ्चदशी कू.टी. १४)

भ्रात्रागोयुतमग्रत्रमञ्जुवदने स्नेहेन त्त्वालयं,
श्रीदाम्ना कृपणां प्रतोष्य जटिलां रक्षाव्य राक्षणे।
नीतायाः सुखशोकरोदनभरै स्तेसंद्रवन्त्याः परम्,
वात्सल्याज्जनकौ विद्यास्य इतः किं लालनां मेग्रताः।।

(विलाप कुसुमा. ४९)

जिस तेज पर कृष्ण का अनुग्रह होता है उसी तेज से सबलोग देखते हैं पर कोई उस कृष्ण को नहीं। देखथा (जिस पर कृष्ण कृपा है वही तेज देखता है तदन्य नहीं)

सर्वज्ञत्व = सर्वज्ञता, मौग्ध्य = मुग्धभाव (मूढता) ये दिव्य तेज (श्रीकृष्ण) सार्वभौम है सर्वज्ञता में भी है मूढावस्था में भी है।

गोपाङ्गना प्रेमाम्बुधि निमग्न हो कर्तव्यबोधशून्य हो गयी है अतः स्वयं अत्युष्ण दूध को पी पीकर दुग्ध लिप्सु (मानो कृष्ण लालायितभाव से देख रहे हैं मुझे मिलेगा दूध पर अहा) लीलालास्य विमुग्ध श्रीकृष्ण को दूध पिला रही है (उपास्य उपासना उपासक भेद मिट गया है मै तू मिलकर एक हो गये)।

बुद्धि वृत्ति के आभास से चैतन्य द्वारा कुम्भों का समूह भासता है वह चित कुम्भ मात्र फल वाला होने से आभासतः एक ही स्फुरित हुआ।

चार लाइन की हिन्दी नहीं मिली।

राधा माघ वयोरेव, शृङ्गारः श्रुति रोचकः।
वैदाध्यं यत्र पर्याप्तं, कृतार्थश्यानोभवः।। (शृङ्गारकौस्तुभः)

सदा एक रस एक अखण्डित, आदि अनादि अनूप।
कोटिकल्प वीतत नहि जानत, विहरतयुगलस्वरूप।। (सूरदास)

षड्गुण भक्तिः

क्लेशहन्त्री[1], सुभगा[2]मोक्ष[3], लघुताकृतद्[4]सुदुर्लभा।
सान्द्रा[5]नन्दविशेषात्मा, श्रीकृष्णा[6]कर्षिणी च सा।।
(भक्तिरसामृ. सिं. १।१३)

वैध्यां–१,३। १. पाप, वासना अविध्या। १. नगत्प्रियता, वैकुण्ठपर्यन्तसुखदा। प्रमायां। ३,४,। ५,६ भावमत्याम्।

श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण का ही शृङ्गार श्रुति सुख प्रदायक है (कर्णप्रिय) क्योंकि विदग्धता केवल यही पर्याप्त है और कामदेव मात्र यहीं कृतार्थ हुआ अन्यत्र नहीं। एक तेज ही गौर श्याम रूप में व्यक्त है दो तेज ही पुनः मिलकर एकरूप हो रहा है दो को एक करना ही तो काम की लीला कला है।

करोड़ों कल्पावधि बीत जाये विहार करते पर समय का पता तक न चले दोनों के दोनों युगल स्वरूप होने पर भी सदैव एक रस वह भी अखण्डित द्वैत भाव है ही नहीं कबसे है? आदि सबसे पहले है इनसे पूर्व में कुछ नहीं है। (आदि सबसे पहले-अनादि-अजन्मा या इससे पहले कोई नहीं) इनकी उपमा के लायक कोई नहीं अनुपम है (प्रेमगली अति सांकरी या में तो न समाय)।

षडगुण भक्ति

वैधी	१. क्लेश हन्त्री—पाप वासना अविद्या क्लेश नाशिका।
	२. सुभगा—जगत्प्रियता से वैकुण्ठ पर्यन्त सुख देने वाली।
भावमती	३. मोक्षलघुता कृत—मुक्तिसुख से भी उत्तमानन्दप्रदः।
	४. सुदुर्लभा।
प्रेमा भक्ति	५. सान्द्र-सघन आनन्दाम्बुधि निमग्न विशेषावस्थाप्रदा।
	६. श्रीकृष्ण प्रदायिका।

अज्ञान तमरे नाम कहि जे के तव
धर्म अर्थ काममोक्ष वाछ्छक्ष एई सब।
तार मध्यमोक्ष वाञ्छा कैतव प्रधान,
जाहा होइते कृष्ण प्रेम हीय अन्तर्धान।। (चैतन्यचरि.)

कृष्ण नाम कृष्ण गुण, कृष्ण लीला वृन्द।
कृष्णारे स्वरूप हय, सव चिदा नन्द।। (श्री चै.च.)

उलूखलं वा यमिनां मनोवा, गोपाङ्गानाचं कुच कुटमलं वा।
मुरारि नाम्नाकलमस्य नूनम्, आलानभासीत्रयमेव भूमौ।।
(श्री कृ.क.अ. २।५७)

अति भूमिसमभूमिमेववा वचसां वासित वल्लवी स्तनम्।
मनसामपरं रसायनं, मधुराद्वैतमुयास्म हे महः।।
(श्री.कृ.क.अ. ३।३७)

मार? मारममदीय मान से माघवैकनिलेय यहच्चया।
हे रमारममाय वार्यतामसौ कः सहेत निजवेश्मलङ्घनम्।।
(श्रीकृष्णक. ३।८८)

अज्ञानियों की नजर में तुम्हारे नाम का फल क्या धर्म अर्थ काम मोक्षादि की आकांक्षा ही है। जिसके अन्दर श्रीकृष्ण प्रेम के रहते तब प्रधान मोक्ष की भावना आ गयी उसके हृदय से कृष्ण प्रेम चला गया कृष्णप्रीति के सम्मुख मोक्ष क्या है।

श्रीकृष्ण नाम, श्रीकृष्ण गुण लीलाकथा पवित्र चरित्र समूह—श्रीकृष्ण का दिव्याति दिव्य कोटि कन्दर्प दर्प दलीयान् सौन्दर्य स्वरूप यही वास्तव में सच्चिदानन्द है अन्य नहीं।

इस मुरारी नामक हाथी के बच्चे के भूमि पर तीन ही आंगन हैं—१. उलूखल से बँधे मिले सरताज कहीं, २. कहीं योगियों के मन के ताज वने है, ३. कहीं गोपियों के वक्षस्थल पर रमण निरत है।

भूमिं अतिक्रान्तः अतिभूमिः तं अतिभूमि अलौकिक मन के किसी दिव्य रसायन मधुर मधुर अद्वैत तेज की हम उपासना करते हैं।

श्रीकृष्णतत्व

कोई गोपी-मन्मथनशील मन्मथ को कहती है हे कामदेव! मेरे मन में तू स्वच्छन्दता पूर्वक रमण करने का प्रयास मत कर क्योंकि यह मनमथमनमथ श्री कृष्णचन्द्र का घर है,

विहाय कोदण्ड शशं मुहूर्तं ग्रहणापाणौ मणि वेणुनादम्।
मायूरवहिं च निजोत्तमाङ्गे, सीतापतेराघव रामचन्द्र।।
(श्रीकऋष्णक. ९२)

रागाङ्कुरश्चेतसि गोपिकानां, पुण्यद्रुमश्चेतसि भक्तिभाजाम्।
आनन्दपुष्पं हृदि मुक्तिभाजां, विश्वस्य बीजं फलितं श्रियेऽस्तु।।
(विल्वं मंगल:)

अखिलभुनन वन्धोवैंर मिन्दोः सरोजैः,
अनुचितमिति मत्वा यः स्वपादारविन्दम्।
घटयितुमिवमायी योजयत्यानेन्दौ;
वढ दलपुटशायी मंगलं वः कृषीष्ट।।

जब वह नहीं माना (काम) तब श्रीकृष्ण से ही शिकायत का भाव ले आयी हे रमारमण! इसे हटाओं भगाओं जो तुम्हारे घर में वलात प्रवेश कर रहा है कौन ऐसा होगा जो अपने घर की मर्यादा लंघन को सहन कर ले।

एकभक्त श्रीरामचन्द्र जी से श्रीकृष्ण लंकारा लंकृत होने की प्रार्थना का रहा है हे राघवेन्द्र! क्षणभर के लिए ये धनुषबाण छोड़कर हाथों में मणिमय वेणु मयुरपिच्छ शिर पर धारण कर लो सारी विपत्तियां कट जायेगी।

श्रीकृष्णतत्व

गोपिका वृन्द के अन्त:करण में राग का बीज अंकुरित हुआ भगवती भक्ति के कृपापात्रों के चित्त में पुण्यमय पादप उग आया है। मोक्षाकांक्षियों के पवित्रतम हृदय सरोवर में परमानन्दमय सुरभित पुष्पखिला आज विश्व का मूल कारण बीजभूत परमेश्वर फलित हो गया वह विश्वबीज भूत श्रीकृष्ण कल्याण का हेतु बने। अर्थात् वहीं जगत् कारण सर्वेश्वर सर्व नियन्ता ही गोपाङ्गनाओं में प्रेमपाथेय बना वही भक्तों के भव्य हृत्भवन में पुण्य पादप बना वही मोक्षाभिलाषुकों के हृदय में सुरभित पुष्प बना है वही सब कुछ है सब जगह है।

श्रीकृष्ण चन्द्र (बालकृष्ण लाल-बाल मुकुन्द) ने विचार किया अरे! अखिल भुवन के हितैषी वन्धु चन्द्रका कमलों के साथ द्वैषभाव ठीक नहीं है (चन्द्रोदय होने मात्र की आशंका भर से कमलों का मन मलिन हो जाता है मुस्कान छिन जाती है) ऐसा मानकर उन अघटित घटना घटित पटीयसी माया शक्ति वाले मायावी ने इन कमलों को चरणों का रूप दिया या अपने चरणों को कमल रूप दिया। मुखचन्द्र जैसा है ऐसा सब कहते हैं उन्होंने इसे

कष्टादष्टाङ्गयोगेन, यं नापुर्मुनयोऽपि ये।
एकाङ्गयोगेनाभीर, भीरवस्तसरीरमन्।। (विहवमंगल:)
नवनील मेघरुचिःपरः, पुमानवलीतलेविघ्रृतगोपविग्रहः।
नमनीयमूर्तिरमरेरपि स्वयं, नवमीतमिथुरघुनासचिन्त्यनाम्।।
(वि.मं.)

रसः

रस सारोऽमृतं ब्रह्म, आनन्दो ह्लाद उच्यते।
निःसारं तेनसारेण, सारवल्लक्ष्यते जगत्।।
न तृप्तिहेतुरसोनाम.........(तैत्तिरीयवा.)।

भी मुखार बिन्द कर दिया ऐसे बट वृक्ष के पत्रपुटक पर शयन करने वाले श्री बालमुकुन्द आपका मंगल करें—स्मरणीय है।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्देविनिवेशयन्तम्।
वटस्यपत्रस्य पुटे शयानं वालं मुकुन्द मनसा स्मरामि।।

श्रीकृष्णतत्व

यम नियम आसान प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इन अष्टविध योगाङ्गों का चिरकाल तक कष्ट पूर्वक सेवन करने पर भी अमलात्मा महात्मा जिसे नहीं पा सके एकाङ्ग योग द्वारा (प्रेमाभक्ति अनन्या) आभीर वंशोत्पन्न गोपादि ने उनके साथ यथेष्ट रमण किया।

नवल नील नीरद जैसी श्रेष्ठ अनुपम शोभा वाला (नूतन सजल जलधर की सी कान्ति वाले (नूतन जलधर ...) कोई पुरुष भूतल पर गोपविग्रह धारण करके आ गया है, देवताओं द्वारा भी वन्दनीयं मूर्ति वाले नवनीत के अभिलाषी भिक्षुक इस दिव्य गोप की छवि का चिन्तन करो चित्त में इसका ध्यान तो करो।

रस क्या है

अमृत ब्रह्म रस सार है आनन्दरूप है आल्हाद रूप है। इसी सारतत्व रसतत्व आनन्दतत्व के कारण ही निःसार (सारहीन) जगत् भी सारवान् प्रतीत होता है।

'रसो वैस:' रस अर्थात् तृप्ति का हेतु।

साक्षात्कृतात्मतत्त्वानां, प्रत्यक्षतममेवतत्।।
मनोरथा सिद्ध्येयुः, सिद्धानश्यत्यपि ध्रुवम्।
खलानां तेन कुशलिः विश्वं विश्वेश रक्षितम्।।
(स्कन्दपु.का. ५।६५)

शिवलोक गोलोकः
↓
उमालोकः
↓
कौमार लोकः (स्कन्द पु. काशी ख. २।९१)
↓
वैखुण्ठलोकः
↓
ब्रह्मलोकः

आत्माऽसङ्गस्ततोऽन्यत्स्याविन्द्रजालंहिमायिकम्।
इत्यचञ्चलनिर्णीते, कुतो मनसि वासना।। (पञ्चदशी ९।४)

(इन लौकिक नश्वर रसों के संसर्ग से भी अनुपम प्रीति तृप्ति की अनुभूति देखी जाती है तब साक्षात् रसराज रासेश्वर की सम्प्राप्ति के उपरान्त तृप्ति का वर्णन कौन करे)। किन्तु इस रस तत्व (ब्रह्म) का प्रत्यक्ष उन्हीं को होता है जो आत्मतत्व का साक्षात्कार कर चुके हैं।

जगद्रक्षा का कारण

खलों दुष्टों के मनोरथ सिद्ध नहीं होते यदि हो भी जायें तो निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं इसीलिए विश्वनाथ द्वारा सुरक्षित जगत् कुशलता का अनुभव करता है।

लोक स्थिति

स्कन्द पुराण काशीखण्ड के अनुसार ब्रह्मादि लोकों की स्थिति निम्न प्रकार है— शिवलोक एवं गोलोक समानान्तर सर्वोत्तम सर्वोन्नत हैं शिवलोक में सदाशिव एवं गोलोक में गोपेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र रहते हैं। उनसे नीचे उमालोक है जहाँ माँ भगवती निवास है उनसे नीचे स्कन्द कुमार कार्तिकेय लोक है, उनसे नीचे वैकुण्ठ लोक है जहाँ नारायण निवास करते हैं उनसे नीचे ब्रह्मलोक है जहाँ जगत्पालक सृष्टि करता ब्रह्मा रहते हैं।

आत्मा अद्वितीय

आत्मा असंग है (निर्विकार निर्लिप्त नित्य शुद्ध बुद्ध ज्ञानस्वरूप) इसके अतिरिक्त जो

गिरिः सर्वतस्तेभूत्वा, विविक्षुरवनीमिव।
आज्ञाप्रसादःक्रियतां, किंकरो समीतिचाक्रवति।।
(सकन्दपु. काशी. ५।५६)

केचिदूचुर्हरिद्वारं मोक्षद्वारततः परे।
गंगाद्वारं च केप्याहुः, केचिन्मायापुरंपुनः।।
(स्कन्द पु.का.स. ७।१४)

यत्र स्यवैष्णवोमाया, मायापाशैर्नपारायेत्।

७-व्यसनानि

मृगया मघ पैशुन्य, वेश्या चौर्य दुरोदरैः।
स पारदारै र्व्यसनै, रेभिः कोत्र न खण्डितः।।
(स्क.पु.का.ख. १३।६६)

भी कुछ प्रतीत हो रहा है मायाजन्य ऐन्द्रजालिक प्रपञ्च है, इस प्रकार आत्मा के अचञ्चल सिद्ध होने पर मन आदि की सत्ता के असत् होने पर फिर वासना का लेश भी मन में है ये प्रश्न ही नहीं उठता।

विन्ध्याचल पर्वत झुककर इतना छोटा हो गया मानों पृथ्वी में प्रवेश कर रहा हो और बोला प्रभो आज्ञा करे मैं आपका सेवक हूँ।

हरिद्वार (हरद्वार)

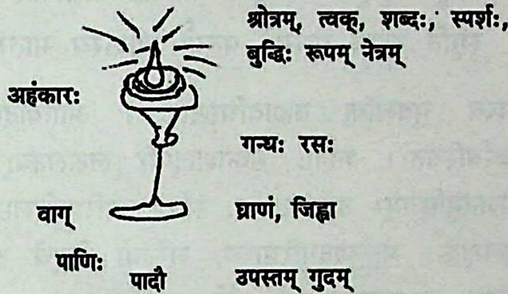
कुछ लोग हरिद्वार कुछ मोक्षद्वार कुछ गंगाद्वार और कुछ मायापुर कहते है एक ही तीर्थ के नगर के स्थान के इतने नाम है जहाँ माया अपने माया पाशों द्वारा जीव को माया बन्धन में नहीं बाधती या बाध पाती वह है मायापुरी हरद्वार याहरिद्वार।

पतन के सप्त उपहार

सप्त व्यस्न—(१) मृगया-शिकार खेलना निरपराध जीवों की हिंसा करना। (२) मद्य-सुरापान (किसी भी प्रकार का नशा चित्त वृत्ति) उद्वेलित कर विवेक विचार शक्ति को अन्यवस्थित करता है) बुद्धि नाशक है। (३) पैशुन्य = मिथ्या चुगली करना पीठ पीछे निन्दा करना। (४) वैश्या = पणभोग्या स्त्री का संग। (५) चौर्य = चोरी करना पराई वस्तु (जो मेरी नहीं है) को कहीं से भी भले ही मार्ग में हो उसे लेना। (६) दुरोदर = जूआ खेलना-पाशों में खेलना द्यूत क्रीडा। (७) परदारा संग = परायी स्त्रियों का संग करना। इन सप्तविध व्यसनों के द्वारा कौन नष्ट नहीं हुआ। अर्थात् कोई क्या नहीं

शुकोऽलम्नमहविद्यां मृत्युसंजीविनीं हरात्।
यां आंनात्युमा स्कन्दो गणेशः।। (स्क.पु.का.ख. १५)

अहंकारं धियं साक्षी विषयानपिभासयेत्।
अहंकाराद्यभावोंय स्वयं भात्यमेयेव पूर्ववत्।।



अहंकारःप्रभुः सभ्याः, विषया नर्तकी मतिः।
लालादिधारीण्यक्षणि दीपः साक्ष्य व मासकः।। (पञ्चदशी नाट्य.)

पञ्च नदं तीर्थम्

किरणधूतपापा च, पुण्य तोया सरस्वती।
गंगा च यमुना चैव, पंच नद्योऽत्रकीर्तिाः।।
अत्राप्लुतो न गृहणीया, देहानां पञ्चभौतिकम्।। (सक.का. ५९)

श्री शुक्राचार्य जी ने उमा, गणेश, स्कन्द द्वारा ज्ञात महाविद्या मृत्संजीवनी को श्री भगवान् शंकर से प्राप्त किया।

साक्षी स्वभासकता

सर्वसाक्षी (आत्मतत्व) स्वयं ही अहंकार-बुद्धि-सहित विषयों को भी प्रकाशित करता है अहंकार आदि न भी रहे तब भी पूर्व के समान स्वयं ही भासित रहता है। इस सभा में अहंकार स्वामी समान है (राजा) सभी रूप रसादि विषय सभा में उपस्थित दर्शक श्रोत्रादि हैं, बुद्धि ही नर्तकी है, इन्द्रियाँ ही तालादि वाद्य धारिणी हैं, साक्षी अवभासक ही दीपक है।

पञ्चनद तीर्थम्

१. किरणा, २. धूतपापा, ३. पुण्यतोया सरस्वती, ४. गंगा, ५. यमुना। ये पाँच नदियाँ प्रसिद्ध हैं इनमें स्नान करने वाला पुरुष पाँच भौतिक देह नहीं पाता।

सप्तब्रह्मणः

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यःॠतुरङ्गिराः।
वशिष्टश्च महाभागो ब्रह्मणो मानसाः सुताः।।

संभूतिरनुसूया च क्षमा प्रीतिश्च सन्नतिः।
स्मृति रूर्जा ॠमादे पत्न्यो लोकस्य मातरः।। (स्क.का. १८)

भूर्लोकाच्च भुवर्लोक ब्रह्मावधिरुदाहृतः। आत्यिादाध्रुवं स्वर्गः। योजनानां नियुतेभूमेर्भानुर्व्यवस्थितः। भानोः सकाशादुपरि लक्षलक्ष्यः क्षपारः। नक्षत्रमण्डलं-सोमाल्लक्ष योजनमुछ्रितम्। उडुमण्डलतः सौम्य उपरिष्टाद्रिलक्षतः। द्विलक्षेतुवुद्याच्छुक्रः, शुक्राद्भौमोद्विलक्षके। माहेयादुपरिष्टाच्च, सुरेज्यो नियुचे द्वये। द्विलक्षयोजनोत्ससेदः सौरिर्देवपुरोहितात्। दशायुतसमुच्छ्रायं सौरे सप्तर्षिमण्डलम्। सप्तर्षीणांशतादूर्ध्वं सहस्रं तु ध्रुवः स्थिता। महर्लोकःक्षितेरूर्ध्वं, एक कोटिप्रमाणतः। कोटिद्वयेजनोलोकः, चतुष्कोटिस्तपोमतम्। अष्टौ तु सत्यलोकोऽस्ति। कोटि षोडशकं सत्याद् वैकुण्ठोस्ति प्रमाणतः। ततस्तु षोडश गुणः कैलाशः। (स्क.काशी ख. २३)

ब्रह्मा के सप्त मानस पुत्र ब्राह्मण

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और वशिष्ठ, संभूति, अनसूया, क्षमा, प्रीति, सन्तति, स्मृति, ऊर्जा ये सात लोक मातायें इन सातों ऋषियों की शक्तियाँ हैं।

भूलोक से ऊपर भुवलोक है ये सूर्यलोक तक है, सूर्य लोक से ध्रुवलोक तक स्वर्ग है, पृथ्वी से १ लाख-योजन ऊपर सूर्य है, सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्र है, चन्द्र से एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र मण्डल है, इससे लाख योजन ऊपर बुध है। बुध से दो लाख योजन ऊपर शुक्र है, शुक्र से भौम दो लाख योजन ऊपर है। भौम से दो लाख योजन ऊपर गुरु है, गुरु से दो लाख योजन ऊपर शनि है शनि से एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल है सप्तर्षियों से एक लाख योजन ऊपर ध्रवुलोक है, पृथ्वी से एक करोड़ योजन दूर महर्लोक है, दो करोड़ जनोलोक है, चार करोड़ दूर तपो लोक, आठ करोड़ ऊपर सत्य लोक है, सत्यलोक से षोडष (सोलह) करोड़ योजन ऊपर वैकुण्ठ है उससे सोलह करोड़ ऊपर कैलाश है।

कालः

खड्गपाशधरः श्रीमान् कुण्डली कवचान्वितः।
षड्भुजः षण्मुखो वाह्यावृतः किंकर सेनया।। (योगवशि.स्थि. १)

मुक्तिदमुपायत्रयम्

पूर्वंपाशुपतोयोगः, ततस्तीर्थं सितीसितम्।
ततोप्योक मनायासं, अवि मुक्तं विमुक्तिदम्।। (स्क.पु.का. २५)
अमूर्तेन स्वमूर्तिं च, तेनाकल्पि स्वलीलया।
सर्वैश्वर्यगुणेपेता, सर्वज्ञानमयी शुभा।
सर्वगा सर्वरूपा च, सर्वदृक्सर्वकारिणी।। (स्क.पु.का. २६)
परिकल्प्येति तां मूर्तिमीश्वरीं शुद्धरूपिणीम्।
अन्तर्दधे पराख्यं यद्, ब्रह्म सर्वगमव्ययम्।। (स्क.प्र.का. २६)
न पदा भूमि वलयं, न यदाऽवां समुदमवः।
तदा विहर्तुमीशेन, क्षेत्रमेतत्विनिर्मितम्।। (स्क.प्र.का. २६)

काल

कालपुरुष अपने हाथों में खड्ग-पाश-धारण किये हैं, कुण्डल व कवच से शोभित हैं, षड् भुजाधारी षड्मुख वाले स्व सेवकों से आवृत रहते हैं।

मुक्ति प्राप्ति के उपायत्रय (श्रीकाशी)

पहला है पाशुपात योग (पाशुपत व्रतोपासना) तदनन्तर सित असित (गंगा यमुना) समागम तीर्थराज प्रयाग और सबसे बढ़कर है अनायास विमुक्ति प्रदान करने वाला दिव्य तीर्थ अविमुक्त काशीतीर्थ है।

उन अमूर्त (निराकार) परमात्मा ने अपनी लीला शक्ति से स्वयं की स्वयं ही ऐसी दिव्याति दिव्य मूर्ति को प्रकट किया जिसमें सर्वविध ऐश्वर्य हो, सर्वविध गुण हो, सर्वविध ज्ञान हो जो सर्वथा शुभ हो, जो अवाधगति से सर्वत्र गमन शील हो, सर्वरूप हो, सब को अपनी दृष्टि में रखने वाली, सर्वकार्य करण दक्षता जिसमें हो।

उस शुद्धरूपा ईश्वरी मूर्ति की परिकल्पना करके वह सर्वत्र गमनशील अव्यय पर ब्रह्म अन्तर्ध्यान हो गये।

श्री काशी अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र को ईश्वर ने तब स्व विहार के लिए निर्मित किया

काशी

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः।
अतोनामापरं चास्तु, काशीति प्रथितं विभो?।। (क.पु.का.ख. २६)

आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं, यत्किंचिज्ञन्तु संज्ञिकम्।
चतुर्षुभूतग्रामेषु, काश्यां तन्मुक्तिमाप्स्यतु।। (विष्णु वरपञ्चा)

अविमुक्तंस्तुमहत्क्षेत्रं, पंचक्रोशपरीमितम्।
ज्योतिलिङ्गं तदेकं हि, ज्ञेयं विश्वेश्वराभिधम्।।
(स्क.पु.का. २६।४८)

वाश एव हिगंगायां, ब्रह्म ज्ञानस्य कारणम्।
तीर्थमन्यंप्रशंशन्ति, गंगातीरेस्तिताश्च ये।
गंगां न बहुमन्यन्ते, ते स्युर्निरयगामिनः।। (स्क.पु.का. २७।८०)

जब प्रपञ्च में न भूमि थी और न ही जल की ही उत्पत्ति की काशी प्रलय के पूर्व भी प्रलय के पश्चात् भी काशी सृष्टि के पूर्व भी सृष्टि के पश्चात् भी सदा विद्यमान रहती है शिव त्रिशूल पर स्थित श्रीकाशी को कभी विश्व प्रलयकाल में भी नहीं छोड़ते अत: ये दिव्य क्षेत्र अविमुक्त तीर्थ कहा जाता है।

श्री काशी

यहाँ श्रीकाशी में अवर्णनीय (अनाख्येय) ईश्वर ही दिव्य ज्योति रूप से प्रकाशित होते अतः इस दिव्यधाम का द्वितीय अद्वितीय नाम (अ = नहीं परं = श्रेष्ठ) उससे बढ़कर दूसरा नाम नहीं। हे प्रभो वैसा ये काशी नाम प्रसिद्ध हो। स्वयं श्रीनिवास भगवान विष्णु ने ये वर माँगा है ब्रह्म से लेकर तृण पर्यन्त (तुच्छातितुच्छ जीव पर्यन्त) उद्‌भज स्वेदज-अण्डज जरायुज चतुर्विध जितने भी जीव हैं वे सब काशी में जन्म लेने से अधिक पुण्य है धर्माचार पूर्वक सात्विकता सदाचार पूर्वक निवास सर्वातिशय पुण्यों का सुकृतों का फल है काशी मरण काशी में मृत्यु मिले ये सबसे कठिन है।)

पाँचकोश परिमित ये अविमुक्त महाक्षेत्र श्रीकाशी मुक्ति का खुला भण्डार है यहाँ विश्वेश्वर नाम से प्रसिद्ध दिव्य ज्योतिर्लिंग है इन्हीं की कृपा श्रया है।

काशी गंगा के तट पर रहना ही ब्रह्मज्ञान का कारण है।

गंगा किनारे रहकर जो अन्यतीर्थों की अनावश्यक प्रशंसा करते है गंगा को सबसे बढ़कर नहीं मानते वे निश्चित् ही निरय दुख दारिद्र्य नरक गामी होते हैं।

अष्टांगार्घः। अतीवरवितोषणः।

आपः क्षीरं कुशाग्राणि, घृतं मधु गवां दधि।
रक्ताणि करवीराणि, रक्तचन्दनमित्यपि।।

(स्क.पु.का.खा. २७।९८)

श्रीगंगा मन्त्रः (स्क.पु. काशी ख.)

ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा।।

उपनिषद्

उप : सामीप्य

नि : निश्चित

सद् : गतिः, विशरणं, अवसादः

सूर्यार्घ्य

सूर्य को प्रसन्न करने के लिए इन आठ वस्तुओं से युक्त अर्घ देना चाहिए जब कोई रोग विशेष बहुविध उपचार करने पर भी शान्त न होता हो तो ये उपासना परक आध्यात्मिक उपचार अवश्य करें अनुभूत प्रयोग है श्रद्धा तथा विश्वास की कसौटी पर कसा गया समर्पण भरा (दैन्यभाव भरा) अर्घ्यरूपात्मक आराधक रोग दुख दारिद्रयादि अंधकार को मिटाकर स्वास्थ्य-सौख्य-सौभाग्य सहित सम्पन्नता का जीवन में नव प्रभात लायेगा नया सवेरा आयेगा विशेष विधि—**'कर्मठगुरु'** पुस्तक में देखें—अर्घ में आठ द्रव्य है—१. पवित्र जल, २. गोदुग्ध, ३. कुशाओं के अग्रभाग, ४. गोघृत, ५. शुद्ध मधु (शहद), ६. गोदधि, ७. लाल कनेर के पुष्प, ८. लाल चन्दन घिसकर उसमें मिला ले शेष विधि वहीं देखें।

श्री गंगा मन्त्र

श्री गंगा जी की प्रीति विशेष की प्राप्ति के लिए—**'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा'**। अनुपनीत (जिनका यज्ञोपवीत नहीं है) प्रणव रहित इस मन्त्र को देखें—ये मन्त्र गंगा दशहरा के दिन दश विध पापों के शमनार्थ गंगा पूजन में आता है। सदा भी पुण्य फल प्रद है।

उपनिषद्

उपसर्ग—उप = समीप। **उपसर्ग**—नि = निश्चित। **षदलृधातु**—सद् = गति-अवसाद।

सामीप्योपलक्षित ब्रह्मस्वरूप निश्चिय प्राप्तिः, ततोऽविद्याशैशिल्यं ततस्तदवसादो यया सा विद्योपनिषद्।

गंगा

द्रवरूपेण काप्येषा, शक्ति, सादाशिवी परा। श्रुत्यक्षपाणिनिश्चयोत्य, कारुण्याच्छम्भुना मुने?। एषा प्रवर्तिता गंगा, जगदुद्दारणायवै। (स्क.पु.का.ख. २८)

गृहस्थम्

धर्मस्यार्थस्य कामस्य, यत्र योगोह्ययोगिनाम्। (श्रीमद्भाग. ८।१६।५)

धम्धिक्पदं तुदेवानां, परं दृष्ट्वात्र शंकरम्।

लभ्यते यन्न निर्वाणं, सर्वदुःखान्तु कृत्तुयत्।।

(स्क.पु.का.ख. ३१।७८)

समीपता से उपलक्षित निश्चित ही ब्रह्म की प्राप्ति

अविद्या बन्धन की शिथिलता पूर्वक जगत से अवसाद होना ही उपनिषत् विद्या है— जो अनुपम विद्या हमें निश्चित ही ब्रह्म के समीप ले जा रही है वह है उपनिषद् उपनिषद्विद्या अन्तर्मन वीणा के सुप्त तारों की झंकृत करने वाली विद्या है उपनिषद् विद्या आन्तर याज्ञा की पथ प्रदर्शिका है अन्दर की यात्रा ही अन्दर का अद्वितीय आनन्द है।

गंगा

सदाशिव ने करूणा करके अपनी कोई शक्ति को वेदाक्षरों से समन्वित कर द्रवरूप में प्रवाहित किया जिससे जगत् का उद्धार है। अतः गंगा को नीराकार ब्रह्म द्रवीभूत ब्रह्म ब्रह्मद्रव कहते हैं।

गृहस्थाश्रम

श्री कश्यप जी अपनी पत्नी अदिति से कहते हैं—देवि ये गृहस्थाश्रम अद्भुत है जो योगी नहीं है उनको भी अनायास अतिथि सेवा, अग्निहोत्र वलिवैश्य देव श्राद्ध तर्पण, संत-गुरु-वृद्ध सेवा करके धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति हो ही जाती है 'अयोगियों को भी योग प्रदान करने वाला है गृहस्थाश्रम्।

काशी

देवताओं को धिक्कार है जो यहाँ काशी में आकर सदाशिव के सन्निधान मात्र से सर्वविध दुःख नाशिनी मुक्ति को नहीं पा सके।

क्षेत्र संन्यासः

विज्ञायक्षेत्रसंन्यासं, ये वसन्तीह मानवाः।
जीवन्मुक्तास्तु ते देवि, तेषां विघ्नं हराम्यहम्।। (स्क.का. ३२)
अन्यत्रविहितं पापं, नश्येत् काशीनिरीक्षणात्।
काश्यां कृतानां पापानां, दारुणेयं सुयातना।। (स्क.पु.का.ख. ३३)
संन्यस्ताखिलकर्माणि, दण्डयित्वाचलंमनः।
एक दण्ड व्रता मुक्त्यै, भवेयुर्मणिकर्णिकाम्।।
(स्क.पु.का.ख. ३४)

मणिकर्णिकासीमा

आगमध्याद्देवसरितं, आहरिश्चन्द्रमण्डलात्।
आ गंगाकेशवाच्च च, स्वर्द्वारान्मणिकार्णिका।।
स्वर्गद्वारात्पुरोभागे। (स्क.पु.का.ख.)

क्षेत्रसन्यास

भगवान् सदाशिव कहते हैं, हे देवि जो मनुष्य काशी जी में क्षेत्र सन्यास लेकर रहते हैं, (क्षेत्र सन्यास अर्थात् ये संकल्प करना कि मैं कदापि अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी काशी नहीं छोड़ूगा पल भर भी पगभर भी) वे जीवन्मुक्त ही हैं उनके विघ्नों का अपसारण मैं करता हूँ।

श्रीकाशी

अन्यत्र कहीं भी पाप किया हो कैसा भी पाप हो वह काशी दर्शन मात्र से नष्ट हो जाता किन्तु काशी में रहकर किया गया पाप दारुण भैरव यातना द्वारा ही शान्त होता है।

सर्वविध सकाम कर्मों को (अखिल कर्मों को) त्यागकर चंचल मन को नियन्त्रित करके (दण्डित करके) एक दण्डी सन्यासी होकर मुक्ति प्राप्ति की कामना से मनिकर्णिका का सेवन करें।

मर्णिकंर्णिका सीमा

हरिश्चन्द्र मण्डप से लेकर केशवादित्य तक सम्पूर्ण दिव्यधारा गंगा का परिक्षेत्र स्वर्गद्वार के पूर्वभाग में स्व-द्वार तक सब मणिकर्णिका ही है।

स्थावरा कृमयोऽब्जाश्च, पक्षिणःषशवोनराः।

क्रमेणधार्मिकास्त्वेते, ह्येतेभ्यो धार्मिकाः सुराः।। (स्क.पु.का.ख.)

सदाचारोहि सर्वार्हः।

विद्वेष राग रहिता, अनुत्तिष्ठन्ति य मुने?।

विद्वांसस्तं सदाचारं, धर्ममूलं विदुर्वुधाः।। (स्क.पु.का.ख. ३५)

कामं क्रोधं मदं मोहं, मात्सर्यं लोभ एव च।

अमून् षड्रिपून जित्वा, सर्वत्र विजयी भवेत्।। (स्क.पु.का.ख. ३५)

स्थावर की अपेक्षा कृमि इनकी अपेक्षा जल-जन्तु इनकी अपेक्षा पक्षि-पक्षियों की अपेक्षा पशु, पशुओं की अपेक्षा मानव मानवों की अपेक्षा देवता धार्मिक होते हैं।

सदाचार सबके लिए उपयुज्य है (सर्वैदेव अर्हणीय) सर्वार्ह सदाचार का पालन सबके लिए अवश्य कर्तव्यता कोटि में ग्राह्य है।

सदाचार क्या है?

हे मुने! रागद्वेष रहित चित्त वाले विद्वज्जन जिस आचार का पालन करते हैं, उस धर्म के मूल आचार को ही विद्वानों ने सदाचार माना है।

काम-क्रोध-मद-मोह-मात्सर्य व लोभ इन छः स्वान्तः करण के शत्रुओं को जीतकर सर्वत्रविजयी हो जाता है।

काम—विषयों का ध्यान करने से आसक्ति हो तो तदनन्तर कामोत्पन्न हो जाता है।

क्रोध—कामना की पूर्ति में बाधा ही क्रोध, 'इच्छा के प्रतिकूल कुछ भी हो क्रोध आयेगा (असमर्थ होगा तो कुढेगा समर्थ होगा तो सब कुछ करेगा)।

मद—कुछ भी पाकर बडप्पन का भाव गर्व का उदय, स्वयं को अन्यों से श्रेष्ठ मानने की कुवृत्ति ही गर्व है।

मोह—(अन्धा) बुद्धि अत्यन्तासक्त भाव के कारण सिद्धान्त का पोषण नहीं कुल पोषण में लग जाती पापपुण्य नीति अनीति का विचार समाप्त हो जाय।

मात्सर्य—परोत्कर्ष को देख मन में असामान्य भाव आना व्यर्थ में पर अमंगल सोचना (परहित घृत जिनके मन माखी)।

लोभ—सकल प्रपंच को पाने पर भी जिसकी भूख मिटेगी नहीं वही लोभ है। (जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।)

उपस्तरणमसि
अन्नम्
अमृतापिधानमसि

१. भुः पतये स्वाहा, २. भुवन पतये स्वाहा, ३. भूतानां पतये स्व्हा।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषः, त्वंगुष्ठं च समाश्रितः।
ईशान सर्वजगतः, प्रभु; प्रीणातु विश्वभुक्।।

न द्विर्भुजात चैकस्मि, न्दिवा द्यापिद्रिजोत्तमः।। (स्क,.का.ख. ३६)

ब्रात्यस्तोनयज्ञेन, वात्यदोषो निवर्तत्ते।। (स्क.पु.का.ख. ३६)

उपवीतं क्रमेणस्यात्, कार्पासं शाखा माविकम्।।
(स्क.पु.का.ख.३६)

भोजन कैसे करें—भोजन करने से पूर्व आचमन करे तब बोले आपोपस्तरणमसि भोजनोपरान्त आचमन करे अमृतापिधानमसि।

भोजन से पूर्व ही भूमि पर जल का आसन देकर तीन आहुति दे (दाहिनी ओर)— १. भू: पतये स्वाहा, २. भुवन पतये स्वाहा, ३. भूतानां पतये स्वाहा।

अंगुष्ठाश्रित अंगूठे मात्र प्रमाण वाले चेतन पुरुष जो सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर है वे विश्वभोक्ता प्रभु तृप्त हो जायें। (भोजन काल में स्वयं की तृप्ति का चिन्तन न करके प्रभु की तृप्ति के लिए हम होम कर रहे हैं ये भाव हो।)

एक पात्र में कभी भी दो लोगों को भोजन नहीं करना चाहिए दिन में नहीं करना चाहिए? या कभी भी तब अन्य शास्त्रीय वचनों का समाकलन करने से ये सिद्ध है कभी भी नहीं करना चाहिए **नोच्छिष्टं कस्य चित् दद्यात्** स्त्री अपना जूठा यदि पति को खिलाये तो पति आयु क्षीण होती है।

व्रात्यस्तोम यज्ञ करने से व्रात्य (संस्कारकाल के बीतने पर लगा दोष) दोष नष्ट होते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का यज्ञोपवीत क्रमशः कपास, सन व ऊन का होता है।

गृहाश्रमं समाश्रित्य, यःपुनर्ब्रह्मचर्यभाक्।
नासौ यतिर्वनस्थोवा, स्यात्सर्वाश्रम वर्जितः।।
विधिक्रतोर्दशगुणो, जयक्रतुरुदीरितः।।
सर्वत्रममताशून्यः, सर्वत्र समतायुतः।
वृक्षमूलनिकेतश्च, मुमुक्षुरह सिध्यति।। (स्क.पु.का.ख.)
नखेषुविन्दवः श्वेताः, प्रायः स्युः स्वैरिणीस्त्रियाः।
पुरुष! अपिजायन्ते, दुःखिनः पुष्पितैः नखैः।। (स्क.पु.का.ख. ३७)
भ्रुवारन्तललाटेन, मसको राज्यसूचकः।
गृहस्थःपरपाकादी, प्रेत्याततपशुतां व्रजेत्।
श्रेयःपारत्रपुष्टस्य, गृहणीयादन्नदोयतः।। (स्क.पु.का.ख. ३८)

गृहस्थ में जाकर जो फिर व्रह्मचर्याश्रम में आता है न वह यति है न वानप्रस्थी, सर्वाश्रम वर्जित ही है वह तो हाँ गृहस्थ से वानप्रस्थी बने फिर से सन्यासी से जपयज्ञ होमयज्ञ से दश गुना श्रेष्ठ है। ममता रहित समतायुक्त वृक्षमूल वासी ही मुमुक्षु है।

स्त्रियों के नाखूनों पर यदि श्वेत विन्दु जैसे चिन्ह हो तो प्राय: वे स्वच्छन्दता स्वेच्छा चारिता से जीनेवाली होती है पुरुष के नाखूनों पर हो तो पुरुष दुखी जीवन वाला होता है।

दोनों भौंहों के मध्य भौंहों के बीच यदि मसक चिन्ह हो अथवा ललाट में हो तो राज्ययोग का सूचक है जहाँ भी रहेगा राजा जैसा प्रभुत्व होगा।

परान्न भोगी

जो गृही प्राणी दूसरे का अन्न विना श्रम के खाता है वह मरकर उस घर में ही पशु बनता है क्यों? क्योंकि इस शरीर से उसके अन्न का शुल्क नहीं देगा तो पशु बनकर भरेगा भरना पड़ेगा ही।

तस्य पशुतां तत्पशुतां व्रजेत्। उसी का पशु बनता है फिर चाहे चार पैर वाला या दो पैर वाला बने, आजकल बैल, घोड़ा, गदहा, गौ पालन का चलन खत्म हो गया, अत: ये मानो कि अगले जन्म में आयेगा तो पशु की तरह पिसता रहेगा खायेगा पीयेगा कम श्रम करेगा ज्यादा। समझ लो ये पूर्वजन्म का कर्जदार है। कर्जदार है कि कर्जा चढ़ा रहा है ये कैसे पहचाने? प्रीति पूर्वक लुटा रहा है, दे रहा है, खिला रहा है, विना माँगें दानवृत्ति, धर्मवृत्ति, दयावृत्ति, सेवावृत्ति, यज्ञवृत्ति से निरभिमान हो विनम्रता पूर्वक दे रहा है तो समझो सब पर कर्जा चढ़ा रहा है, यदि चोर उकैत ले गये, जेबकटी, बाढ में

मरवार्थं ब्रह्मणा सृष्टाः, पशु द्रुम मृशौषधीः।
निघ्नन्नहिंसकोविप्रः, तासामपि शुभागतिः।। (स्क.पु.का.ख. ४०)
सुखं वा यदि वा चान्यद्, यत्किंचित्क्रियते परे।
तत्कृतं हि पुनः पश्चात्, सर्वमात्मनि सम्भवेत्।। (स्क.पु.का.ख.)
विधिहीनं तथाऽपात्रे, योददाति प्रतिग्रहम्।
न केवलं हि तद्याति, शेषं तस्य च नश्यति।। (स्क.पु.का.ख.)

गया, आग में गया, करते जाता है झींक रहा है, खीज रहा है, रो रहा है, दान भी कर रहा है, दुनिया को सुनाकर अहसान भी कर रहा है विना चाहे देना पड़ रहा है तो समझो कर्जा चुका रहा है, कई होते हैं ये कहते सुने जाते हैं मेरा भाग्य फूटा है मैं ही करता हूँ रात दिन सब खाते हैं पड़े-पड़े, जो विवशता लाचारी में कर रहा है वह कर्जा चुका रहा है) दूसरे का अन्न खाने वाले भोक्ता का सर्वपुण्य-सुकृत-श्रेय उसको चला जाता है जिसका वह अन्न खाता, वस्त्र पहनता, भूमिपर रहता है। कोई ये न सोचे कि चलो मौज आ रही है फ्री में मिल रहा है, सब को भरना भोगना पड़ता है चाहे जो हो चाहे जैसा हो सबको देना ही पड़ेगा। इसीलिए भण्डारे आदि में भी प्रसाद मानकर थोड़ा सा पाले पेट न भरे-लेवे अवश्य कदाचित् सन्त का आग्रह हो या प्रसाद का तिरस्कार न हो जाये, किन्तु संभलकर कोई मुस्कराकर ही तो हमें लूट नहीं रहा। अतः सावधान परिश्रम का ही पाओं सत्यामृत शुद्ध पाओं, घर का पाओ, अन्न वाले के दोषपाप, बनाने वाले के दोष पाप, परोसने वाले के दोष पाप अन्न में आते हैं।

यज्ञार्थ

ब्रह्माजी ने यज्ञ के लिए ही पशु-वृक्ष-औषधि मृग बनाये हैं, अहिंसकभाव से परमात्म प्रीति के निमित्त विप्र इनका सुदुपयोग यज्ञार्थ करे तो विप्र भी तथा यज्ञ में समुपयुक्त ये सब भी शुभ लोकों को शुभ गतियों को पाते हैं।

कर्म विपाक

हम दूसरों को जो भी दे रहे हैं वह चाहे दुःख हो या सुख मान हो या अपमान निन्दा हो या प्रशंसा, दूसरों के साथ जैसा व्यवहार कर रहे हैं वही सब हमें मिलता है मिल रहा है मिलेगा। ये सिद्धान्त विलक्षण है प्रकृति का। खेत में जो बोते हैं वही पाते हैं, राम राम कहोगे तो राम राम मिलेगा आदि। दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुप कारिणे।।

दान-दया

श्रीमद्भगवत्गीता में लिखा है—दातव्यमितियद्दानं दीयतेऽनुप कारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।

माता पिता गुरुः पत्नी, त्वपत्यानि समाश्रितः।
अभ्यागतोऽतिर्थिथिश्चाग्निः, पोष्य वर्गा अमी नम।।
(स्क.पु.का.ख.)

सजीवतिप्रमान्योत्र, बहुभिश्चोपजीव्यते।
जीवन्मृतोथ विज्ञेयः, पुरुषः स्वोदरंभरिः।। (स्क.पु.का.ख.)
वेदाक्षराणि यावन्ति, नियुञ्जयादर्थकारणे।
तावतीर्वै भ्रूणहत्या वेद त्रयं कुलं लभेत्।। (स्क.पु.का.ख.)

इस विधि का अनुपालन किये बिना (पवित्र देश-पवित्र काल-पवित्र आचरण वाला ही प्रतिग्रहीता हो जिसे दान दे रहे हैं। वो साधक-पुण्यात्मा-विद्वान ज्ञानी सन्त-ब्राह्मण होना चाहिए, दान ब्राह्मण ही ले सकता है, ब्राह्मण को ही लेना चाहिए, **ब्राह्मण के हाथ में ही देना चाहिए।** किसी अपात्र अनाधिकारी को प्रतिग्रह दे रहे हैं, तो जो दिया जा रहा है वह तो गया ही (नष्ट हो गया) जो शेष बचा वह भी अपात्र को देने के कारण जो पाप लगा (अपात्र करेगा दुरूपयोग) उससे नष्ट हो जाता है। भूखे नंगे-अपाहिज-असमर्थ की सहायता करना भोजन वस्त्र देना अनुक्रोश है, दया है, दान नहीं हैं। प्राणिमात्र पर जीवमात्र पर दया करना प्राणीमात्र का धर्म है। दया देश काल पात्र की शर्त नहीं लगाती। किन्तु दान भिन्न है दान में नियमतः चलना होगा संकल्प करना होगा, दया नियम की बाधा संकल्प की आवश्यकता नहीं समझती है। दया को दान मत समझो दान को दया मत समझो, दया दूसरों पर कारूण्य की भावना से होती है दान स्वयं पर कृपा करने के लिये होता है। दया कभी भी, कहीं भी, किसी पर भी, कैसे भी की जा सकती है, किन्तु दान विधान का पालन चाहता है।

पोष्यवर्ग

माता-पिता, गुरु-पत्नी-सन्तति-आश्रित सेवकादि-अभ्यागत, अतिथि-अग्नि—ये नौ पोष्य हैं इनका पालन पोषण करने पर पोषक के पुण्य बढ़ते हैं। उनके आशीष से ये अभ्युन्नति पाता है। नहीं करता तो घोर पाप का भागी हो नरक जाता है। अभ्यागत, अतिथि।

जीवन उसी का है जो औरों के लिए जी रहा है जो केवल अपन पेट भरने में लगा है वह तो जीते हुए भी मृतक समान है।

वेद विक्रेता

धन कमाने के लिए जो विप्र वेद के जितने अक्षरों का प्रयोग करता है उतनी ही भ्रूण हत्या करने का पाप उस वेद विक्रेता ब्राह्मण को लगता है। (दक्षिणा को परिश्रमिक

करपात्रीतिविख्यातो, भिक्षापात्रविवर्जितः।
तस्य शतगुणं पुण्यं, भवत्येव दिने दिने।। (स्क.पु.का.ख. ४८)
यावद्वद्धोमरुदेहे, यावचेतोनिराश्रयम्।
यावद् दृष्टिर्भुवोर्मध्ये, तावत्कालभयं कुतः।। (स्क.पु.का.ख.)
विश्वेश्वरो विशालाक्षी, धुनदीकाल भैरवः।
श्रीमान्ढुण्ढिर्दण्डपाणिः, षडंगोयोग एष वै।। (स्क.पु.का.ख.)
गंगा स्नानं महा मुद्रा।
काशी वीथिषु संचारो, मुद्रा भवति खेचरी।

भाव से देने लेने पर श्रद्धा नहीं रहती; दाता सामर्थ्य रहने पर कृपणता की खटाई से श्रद्धारूपी दूध को नष्ट कर लेना सत्यरूपी घृत नहीं पावेगा। विद्वान् दक्षिणा माँगने लगे तो विक्रय दोष लगेगा। जो मिल जाये उसी में सन्तुष्ट रहे तो कर्मकाण्ड धर्मरक्षा का हेतु है, यथा लाभ सन्तोषी, वैदिक विधि ज्ञाता, आस्तिक, उपासक, विद्वान को कर्मकाण्ड करने पर वेद विक्रय का दोष नहीं लगता प्रत्युत् उस सत्कर्म का दशांश पुण्य प्राप्त होता है व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा, श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

करपात्री

भिक्षा के लिए पात्र न रखने वाले ही करपात्री कहे जाते हैं, परिणामतः शत गुणित पुण्य उनके प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं (हाथ ही जिनके पात्र हैं, परिग्रह और प्रतिग्रह से शून्य हैं)।

निर्भयता

जब तक प्राणी प्राणायाम परायण है, जब तक चित्त सांसारिक आश्रय से मुक्त है, जब तक दृष्टि दोनों भौहों के मध्य आज्ञा चक्र में स्थित हो ध्यानस्थ हैं, तब तक किसी भी प्रकार का कुछ भी भय कहा है अर्थात् वह तब तक सर्वथा निर्भय है।

काशीयोग

श्रीकाशी षडङ्गयोग बाबा विश्वनाथ, माताविशालाक्षी माँ गंगा, कालभैरव, ढुण्डिगणेश, दण्डपाणि महाकाल यही षडङ्गयोग है।

महामुद्रा—श्रीकाशी जी में उत्तर वाहिनी में गंगा स्नान ही महामुद्रा है।

खेचरी—श्रीकाशी की गलियों में शिवशिव जपते घूमना खेचरी मुद्रा है।

उड्डीय सर्वतो देशात्, यानवाराणर्स्यं प्रति। उड्डियाणो महाबन्धः।
जालंधरं शिरे यत्स्यात्, शिवनिर्माल्यधारणाम्।
वृतो विघ्नशतेनापि, यत्रकाशींत्यजेत्सुधीः। मूलवन्धः सृतोधेषुः।
सूर्येसप्तमराशिस्थे, जन्मर्क्षस्थे निशाके।
पौष्णः स कालो द्रष्टव्यो, पदायाम्ये रविर्विहेत्।।

(स्क.पु.का.४३।८)

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव, विष्णो स्त्रीणि पदानि च।
आसन्न मृत्युर्नौ पश्येत चतुर्थं मातृमण्डलम्।।
अरुन्धतीभवेज्जिह्वा, ध्रुवोनासाग्रमुच्यते।
विष्णोः पदानि भ्रूमध्ये, नेत्रयो मातृमण्डलम्।।

(स्क.पु.का. १३,१४)

भवभावनयाग्रस्ता, मोहवासनया युताः।
आशापाश निवद्धास्ते, ततः कृपणतां गताः।।

उड्डीयन वन्ध—सभी देशों से वाराणसी की ओर आना ही उड्डीयान महावन्ध है।

जालंध—शिव निर्माल्य को शिर पर धारण करना ही जालन्धर वन्ध है।

मूलवन्ध—सैकड़ों विघ्नों के द्वारा घिर जाने पर भी काशी न छोड़े यही मूल वन्ध है।

सूर्य सप्तराशि में हो चन्द्र जन्म नक्षत्र पर हो सूर्य नाड़ि का पिंगला (दायी) से स्वर चलने लगे तो ये समय ठीक नहीं है।

मरणासन्न की दशा

मरणासन्न प्राणी को अरुन्धती (स्वजिह्वा) नहीं दिखती ध्रुवतारा (स्वनासाग्रभाग) नहीं दिखता, विष्णुपड़ त्रय (भ्रूमध्य) नहीं दिखते, चौथे मातृमण्डल (उभय नेत्र गोलक) नहीं दिखतौ ये योग की अवस्थायें हैं जो प्राणी स्वजिह्वा का सदुपयोग अमृत तत्व रसास्वाद में नहीं करता, जो नासाग्र पर या भूमध्य में ध्यान दृष्टि नहीं रखता, वह तो आसन्न मृत्यु क्या मृतकवत ही है।

संसार की भावना से ग्रस्त (संसार है, मित्र, शत्रु, सुख, दुःख है ये मानना) तदनन्तर भारी क्लेश मोह (मूढ़ता के भाव) की वासना से युक्त आशारूपी पाश में जकड़े बँधे हुए

स्थिरो भवतु मे देहः, सुखायास्तु धनं मम।
इति वृद्धधियां तेषां, धैर्यमन्तर्तिमाययौ।। (यो.वा.सा.स्थि. २)
मरिष्यामो मरिष्यामो–इति चिन्ता हताशयाः।।
अलोक मेवत्वद्भावो, मद्भावोऽलीक मेव च।
प्रतिभासमयी काचिज्जीव शक्तिः परात्मनः।। (यो.वा.सा.स्थि.)
सत्यंसं वेदनं शुद्धं, बोधाकाशं निरंजनम्।
तस्य शक्ति समुल्लासामात्रं जगदिति स्थितम्।। (यो.वा.स्थि. २)
सर्वत्र सर्वमिदमस्ति यथानुभूतम्।
नो किंचन क्वचिदिहास्ति न चानुभूतम्।।
शान्त सदेकमिद माततमित्तमास्ते।
संत्यक्तशंकमयभेदमतस्त्वमास्व।। (यो.वा.स्थि.)

प्राणी कृपणता, आत्महनन की दशा में पड़ जाते हैं। व्यर्थ के अनर्थ भरे मनोरथ करते हैं, मेरा देह स्थिर हो जायें (चेहरे पर झुर्रियां न पड़े, शरीर युवा जैसा दिखे, बाल काले दिखे) सुख प्राप्ति में मेराधन सह भागी बने (धन से सुविधा तो मिल सकती है, किन्तु सुख नहीं प्राप्त हो सकता) ऐसी सांसारिकता से बढ़ी-चढ़ी बुद्धि वाले ऐसे प्राणियों का धैर्य विलीन हो जाता है वे अधीर हो जाते हैं, पल-पल में थोड़ी सी बात पर चिन्तातुर विलाप प्रलाप करने लगते हैं।

हम मर जायेंगे-कहीं मर न जायें ऐसी चिन्ता में डूबे हैं जो उनके अन्तःकरण चिन्तन ध्यान मनन के लायक नहीं रह गये।

परब्रह्म परमात्मा की कोई दिव्य तेजोमयी जीव नामक शक्ति है जो सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है अन्यथा तेरापन व मेरापन तो मिथ्या है।

सत्य संवेदनरूप शुद्ध ज्ञानाकाश की शक्ति के समुल्लास मात्र का चमत्कार निरंजन संसार है।

सभी का सभी जगह ये सब कुछ अनुभूत ही है ऐसा त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं जो अनुभूत न हो, वह शान्त सत् तत्व इस विश्व को व्याप्त करके स्थित है, इसीलिए सभी शंकाओं उपभेदों को मिटाकर तुम भी शान्त सत्व में स्थित हो जाओ।

क्या अनुभव है—यही कि, चेहरे बदले पर पीड़ा नहीं है सब आ रहे हैं विनाश

इदं मे ह्यादिदं मेस्या, दिति बुद्धिर्महामते।
स्वेन दौर्भाग्य दैन्येन, न सत्यमुपतिष्ठति।।

वृत्तिनित्यमुदारात्मा, त्रैलोक्यमपियस्तृणाम्।
तं त्यज-त्यापदःसर्वाः, मृगा इव जात्तृणाम्।।

परिस्फुरतियस्यान्त, र्नित्यं सत्य चमत्कृतिः।
ब्रह्माण्डमिवाखण्डं, लोकेशाः पालयन्ति-तम्।। (यो.वा.स्थि. ३)

वपुषा विद्यया वाण्या वस्त्रै।

धर्मोहि रक्षितो येन, देहे सत्त्वर गत्त्वरे।
त्रैलोक्यं रक्षितं तेन, किं कामार्थैः सुरक्षितैः।।

(स्क.पु.का.ख. ४६)

की ओर धीरे-धीरे ये परिवर्तन इसकी अनित्यता में प्रमाण है—'संसरतीति संसारः या गच्छतीति जगत्' दूसरा अनुभव नहीं बदला (वीर्य विन्दु गर्भस्थ जीव-शिशु-कुमार-युवा प्रौढ़-वृद्ध मौत) कुछ तो इस सकल प्रपञ्च का नियामक परमात्मा (जो पलपल बदल रहा है वह अनात्म है मिथ्या है माया है जगत है विनाशी है, जो एक रस है तीनों कालों में अपरिवर्तनीय है वह अव्यय आत्मतत्व, सत्य अविनाशी ब्रह्म है।)

ये मुझे प्राप्त हो जाये, ये मेरा हो जाये हे महामते! राघवेन्द्र! ऐसी स्वकीय दुर्भाग्य एवं दैन्य से दूषित बुद्धि में सत्य नहीं स्थित हो पाता।

जो पारावरविद् उदारात्मा नित्य ही त्रैलोक्य सम्पदा को भी तृण्वत् जानता है, उसका सर्वापदायें ऐसे ही त्याग देती हैं, जैसे तृणोदकहीन वन को मृग त्याग देते हैं।

जिसके अन्तःकरण में नित्य सत्य का चमत्कार परिभाषित होता है उसका पालन ठीक वैसे ही ब्राह्मी सत्ता स्वयं करती है जैसे अखण्ड ब्रह्माण्ड का पालन पोषण करती है।

पाण्डित्य द्योतक लक्षण

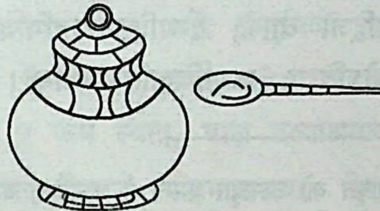
शरीर सौष्ठवसौन्दर्यादि, विद्या ज्ञान वाक् चातुर्य सुव्यवस्थित वस्त्र, और वैभव ये सब विद्वत्ता के द्योतक है।

धर्मार्थकाम इन त्रिविध पुरूषार्थों में से जिसने इस शीघ्रविनाशशील देह द्वारा धर्म की रक्षा कर ली, उसने त्रैलोक्य की रक्षा कर दी, काम और अर्थ की सुरक्षा कर भी दी तो क्या? **स्वल्पमप्यस्यधर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** धर्म रक्षा बिना इनकी रक्षा से क्या

स्कन्द उवाच–

आकर्ण्य मुने पूर्वं, पञ्चवक्त्रो हरः स्वयम्।
पृथिव्यां पंचधा-भूत्वा, प्रादुरासीज्जगद्धितः।। (द्रौपदी)
उमापि च जद्धात्री, दुपदय महीभुजः।
यजतो वह्निकुण्डाच्च, शदुश्चेक इति सुन्दरी।। (पार्थाः)
(स्क.पु.का.ख. ४९)

सदर्वीं सर्पिधानां च, स्तालिका भक्षयां ददौ।
रस व्यंजन निधि, रिच्छा भैक्ष्य प्रदायिनी।।



सामान्याधिरण्यं च, विशेषण विशेष्यता।
लक्ष्य लक्ष्यक भावश्च पदार्थ प्रत्यागात्मनाम्।।

प्रयोजन, इसका मूल तो धर्म ही है, जड़ रक्षित है तो पुष्प पत्र फल शाखादि सब सुरक्षित हैं। जड़ कट गयी तो चाहे फिर जो करो कुछ नहीं बचेगा।

स्कन्द जी कहते हैं—हे महात्मन! सुनो पूर्व में महादेव पञ्चानन ही पृथिवी पर पञ्च पाण्डव बनकर आये भगवती उमा पार्वती जगदम्बा भी द्रुपद राजा के यहाँ यज्ञ कुण्ड से अतिसुन्दरी द्रोपदी बनकर आयी थी।

इन्हीं द्रोपदी को भगवान भुवन भास्कर से (धौम्य कृपया) चमचा व ढकना सहित अक्षय पात्र के रूप में पतीली मिली जो कि षड्रसों की निधि, इच्छानुरूप भिक्षान्न प्रदान करने वाली थी (लाखों लोगों के लिए भी पर्याप्त एवं इच्छानुरूप विविध व्यंजन इस अक्षय पात्र से तब तक प्राप्त किये जा सकते थे जब तक कि द्रोपदी भोजन न कर ले—द्रोपदी के भोजन करते ही पात्र रिक्त हो जाता था)।

सामान्य अधिकरण-विशेषण-विशेष्यता लक्ष्यलक्षक भाव आत्मज्ञान में ये पदार्थ उपयुज्य हैं। जैसे दीपक की प्रभा से अन्धकारावृत्त घट (घट) दीख जाता है (दीपप्रभा घट

मुक्त्यभिव्यज्यतेबोधात्, प्रदीयेन पटो यथा।
तमोमात्रान्तरायत्वा, तमसोविद्ययाहतेः।। (वार्तिक सा. १)

सुषप्त नरवच्छ्रुत्या, बोध्यते प्रेर्यते न तु।
जिज्ञासोरदिकारोत्र, नसिषार्धायबोरिति।। (वार्तिक सा.)

वर्णाश्रमवयोऽवस्थाः ध्यासं कर्मोपजीवति।
वर्णाश्रमादिदहत्येतत्, परब्रह्मात्मवेदनम्।। (वार्तिक सा.)

कर्तृभोक्तादि रूपत्वं, प्रत्यग्ज्ञानहेतुजम्।
ज्ञाते प्रतीचितद्रूप, मपैति स्वप्नरूपवत्।। (वार्तिक सा.)

करोभ्यन्धोद्विजो वालो, दग्धश्छिन्नोऽहमित्यपि।
इयमनात्मनोऽविद्या, कर्माधिकृतिकारणम्।। (वार्तिक सा.)

पट को उत्पन्न नहीं करती आवृत को अनावृत करती है प्रकाशित करती है) वह मात्र अन्धकार को निवृत्त कर देती है वैसे ही ज्ञान द्वारा मुक्ति व्यक्त हो जाती है अन्धकार रूपा अविद्या के निवृत्त होते ही मुक्ति प्रकट हो जाती है।

उदाहरण पर ध्यान दें दीपक का प्रकाश जैसे वस्तु दर्शक है वैसे ही ज्ञान मुक्ति का अभिव्यंजक है जनक नहीं मुक्ति तो है ही (वस्तु जनक नहीं) मुक्त तो जीव का स्वस्वरूप ही है। जो अल्पज्ञता-अल्पशक्ति मत्ता-दैन्य-परतन्त्रता आदि के काल्पनिक पाश है वे ज्ञान से निवृत्त हो जाते है शेष जो बचा वह मुक्तात्मा स्वस्वरूप ही है)।

जैसे सोते पुरुष को सुषुप्ति में से जगाया जाता है (बोध कराया जाता है) प्रेरित नहीं किया जाता श्रुति भी साधन की इच्छा वाले जिज्ञाषु के लिए है।

वर्णाश्रम-वय-अवस्था ध्यान कर्म तब तक ही है जब तक स्वयं पर ब्रह्मत्वेन आत्मज्ञान नहीं हो जाता ज्ञान होते ही ये सब विलीन हो जाते है, क्योंकि वर्ण आश्रम-वय-अवस्थादि सब शरीर से जुड़े है जब तक शरीर भाव में जीवन है तब तक वर्ण आश्रमोचित आचार पालनीय ही है, तदनन्तर इनका क्या प्रयोजन।

कतपिन-भोक्तापन, आत्म ज्ञान न होने के कारण हैं। (प्रत्यक) आत्म ज्ञान होते ही स्वप्न जगत् की भाँति विलीन हो जाते है। (प्रतीचि)।

मैं करता हूँ, अन्धा हूँ बालक हूँ, द्विज हूँ, जन्म गया, कह गया, ये सब आत्मा का अज्ञान है कर्मादि कारण भी यही है।

ब्रह्मत्वमात्मनोदृष्ट्वा, नोत्तरेत्संसृतिं कथम्।
उत्तीर्यसंसृतिंभूयः, कर्तृत्वादीन्न वीक्षते।। (वा.सा. १)

कर्तृत्वादिस्वभावस्य, दृश्ययत्वानु दृगात्मनि।
अविद्याकल्पितत्तवँस्याद्, दृगात्मा तु न दृश्यते।। (वा.सा.)

प्रमाता साक्षिणदृश्यो, मातुर्मानं प्रजायते.
मानेनमीयते मेयं, साक्षिदृश्यं त्रयं ततः।। (वा.सा.)

र्भावक्रियस्य भोक्तृत्वं, स्यादहं बुद्धिविभ्रपाद्। (टी.)

मातृस्थं मेयगं मानं, प्रतीचि त्रयसक्षिणि।
नव्यापारवितुं शक्यं, वह्निं दग्धुमिवो उत्मुकम्।। (भू.)

अन्तरङ्गं हि विज्ञानं, प्रत्यक्मात्रैक संश्रयात्।
बहिरङ्गं तु कर्म स्यात्, बाह्य द्रव्याश्रयत्वतः।।

यथावस्त्वात्मविज्ञानं, मोहमात्राश्रयाः क्रियाः।
सम्यग्ज्ञानेकुतः कर्म, कर्म हेतूपमर्दनात्।। (वृ.वा.सा. १)

स्वयं को ब्रह्मत्व भाव में देखकर इस संसार को क्यों न पार किया जाये। इस संसार को पार करके फिर कर्तृत्व भोतृत्व नहीं दिखते।

स्वभाव में कर्तृत्वादि की प्रतीति है वह दृश्य होने से दृष्टा में होती है। यद्यपि है ये अविद्या कल्पित ही वास्तव में दृगात्मा दृश्य नहीं है।

प्रमाता साक्षि द्वारा दृश्य है प्रमाता से प्रमाण उत्पन्न होता है मान द्वारा मेय का बोध होता है साक्षी ही त्रिविध दृश्यरूप में हो जाता है।

अविकारी आत्मा में जो भोक्तापन दिख रहा है वह अहं बुद्धि के भ्रम से है।

प्रमाता में रहने वाला मेय बोधक मान अवस्था त्रय के साक्षी (मातामेयमान) के साक्षी को नहीं न व्यापृत कर सकता जैसे उल्मुक (आग का अंगार) अग्नि को नहीं जला सकता।

विज्ञान अन्तरंग है क्योंकि वह आत्माश्रित है, कर्म वहिरंग है, क्योंकि वह वाह्य द्रव्यों के आश्रित है। जैसे आत्म विज्ञान ही वस्तु है, क्रिया मोहाश्रया हैं, सम्यक् ज्ञान होने पर जब कर्म का हेतु ही नष्ट हो गया तब कर्म कहाँ।

श्री आद्यशंकराचार्य कृतं

श्रीहनुमत्पंचरत्न स्तोत्रम्

वीताखिलविषयेच्छं, जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्चम्।
सीता पतिदूताद्यं, वातात्मजमद्य भावयेहृद्यम्।।१।।

तरुणरुणमुखमलं, रुणरसपूरपूरिताङ्गम्।
संजीवनमाशासे, मंजुल महिमानमञ्जनाभाग्यम्।।२।।

शम्बरवैरिशरातिग, मम्बुजदलविपुललोचनोदारम्।
कम्बुगलमनिलदिष्टं, बिम्बं ज्वलितोष्ठ मेकमवलम्बे।।३।।

दूरीकृत सीतार्तिः, प्रकटी कृत रामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः, पुरतोमम मातुहनुमतो मूर्तिः।।४।।

वानरनिकराध्यक्षं, दानकुलकुमुदरविरसहक्षम्।
दीनजनीवनदीक्षं, पवनतपः पाकपुञ्जमुद्राक्षम्।।५।।

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य कृतम्

।। श्रीहनुमत्पञ्चरत्नस्त्रोत्रम् ।।

जो सभी विषयों की कामना से रहित (निष्काम) है, भगवत्स्मरण जन्य आनन्दाश्रुपूरित रोमाञ्च जिनकी शोभा बढ़ा रहा है, ऐसे राघवेन्द्र के दूत वायुनन्दन श्री हनुमान जी का आज में ध्यान करता हूँ।।१।।

नूतन रक्त कमल की आभा जैसा जिनका मुख कमल है। करुणा रस से परिपूर्ण जिनका अंग अंग है, आशा रूपी संजीवनी के प्रतीक-पवित्र महिमा वाले माता अंजना के मूर्तिमान भाग्य।।२।।

(शम्बरासुर के शत्रु है काम उस) कामदेव के उद्दीपन उत्तेजक तीरों का भी मान मर्दन करने वाले) (अखण्ड बाल ब्रह्मचारी) कमलदल के समान विकसित विशाल नेत्रों वाले उदारहृदय (दृष्टि संकुचित नहीं विशाल है हृदय भी विशाल है जिनका) शंख के समान ग्रीवा वाले, वायु के सौभाग्य, रक्तोष्ठ वाले हनुमान जी का मैं आलम्बन लेता है।।३।।

सीता शोक नाशक, राम वैभव स्फूर्ति के साकार रूप, रावण के यश का मर्दन करने वाले हनुमान जी की मूर्ति मेरे सामने भाषित होवे।।४।।

वानर सेनाधीश-दानवकुल कुमुदनी के लिए सूर्य प्रभा सदृश, दीनजनों की रक्षा में कृत सङ्कल्प, वायु कृत तप के परिपक्व पुञ्ज श्री हनुमन्त लाल मेरी दृष्टि का विषय बने।।५।।

एतत्पवनसुतस्य, स्तोत्रं यः पठति पंच रत्नाख्यम्।
चिमिहनिखिलान् भोगान्, भुक्त्वा श्रीराम भक्तिया भवति।।६।।
(हनुमदाङ्के)

हनूमानंजनीसूनु, र्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः, पिंगाक्षोमितविक्रमः।।

उदधिक्रमणश्चैव, सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च, दशग्रीवस्यदर्पहा।। (हनुमत्कवचनम्)

नित्यमुक्तात्मविज्ञानं, वाक्याद्भवति नान्यतः।
वाक्यार्थस्यापि, च ज्ञानं, पदार्थ स्मृति पूर्वकम्।। (वार्तिक सा. १)

अमात्र शंकाऽसद्भावात्, मान्तरैश्चाविरोधतः।
सदसीत्यादि वाक्येभ्यः, प्रमा स्फुटतरा भवेत्।।

वाक्याधिकार हेतौ च, पदार्थ प्रतिशोधनो।
संन्यास उपकारीति, प्राहतुर्हि श्रुति स्मृति।।

उपासनस्य स्वातन्त्र्यात्, कर्मानधिकृतोपि च।
मनसा कल्पयित्वाश्वं, विराड्रूपेण चिन्तयेत्।।

जो हनुमान जी के इस हनुमत्पंजरत्न स्तोत्र का पाठ करता है वह चिरकाल तक सम्पूर्ण भोगों को इसलोक में भोगकर श्रीराम की भक्ति पाता है॥६॥

हनुमान, अञ्जनीसुनु, वायुपुत्र, महाबल, रामेष्ट, अर्जुन सखा, पिंगाक्ष अमित विक्रमः, उदधिक्रमण, (समुद्र का लंघन करने वाले) शीता शोक विनाशक लक्ष्मण प्राणदाता, दशग्रीव के दर्प का दलन करने वाले।

नित्य मुक्त आत्मविज्ञान महावाक्य द्वारा ही होता है अन्यथा नहीं वाक्यार्थ का ज्ञान पदार्थ ज्ञान पूर्वक होता है।

अमात्व शंका के न होने से अन्य मानों के विरोध विना सत् असि तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों द्वारा प्रमा स्फुटतर हो जाती है।

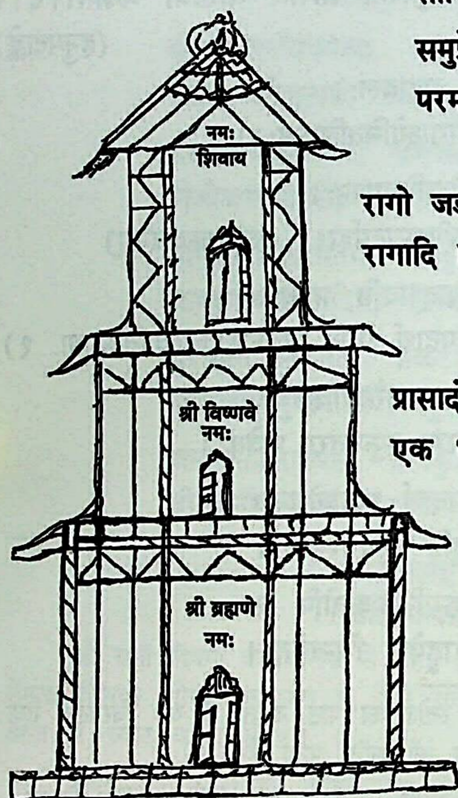
श्रुति स्मृतियाँ कहती है, पदार्थ शोधनार्थ, व महावाक्य प्राप्ति की पात्रता के लिए सन्यास आवश्यक है।

उपासना की स्वतन्त्रता वश कर्मों में अनधिकृत होने पर भी मन द्वारा ही कल्पना करके स्वयं को विराट् रूप में जानो।

हिरण्यगर्भ प्राप्तिर्या, कर्मोंपासन साधिता।
सापि संसार एवातो, विधैवैका विमुक्तिदा।।

समुप्रेवडवायद्वद्, उत्पद्याश्रित्य वर्तते।
परमानि विराडश्वः, तथैवेति विचिन्तयेत्।।
(वा.सा. ?)

रागो जडस्य धर्मश्चेलत, त्किमायातं चिदात्मनि।
रागादि हीन आत्मैव, बोध्योऽस्माभिर्नचेतरः।।



प्रासादं कारयेच्छक्त्या, ह्यष्टास्त्रं पद्मसक्तिमम्।
एक भूमिं समारम्य, सपाद शतभूमिकम्।।
(शुक्रनीतिसारे ४।४।१३१)

कर्मोंपासना से हिरण्य गर्भ की प्राप्ति होती है पर वह भी तो संसार ही है वास्तव में तो मुक्ति का एक मात्र कारण विद्या ही है।

जैसे सागर में वड़वानल उत्पन्न होकर वहीं रहती है (पानी में आग) परात्मा में विराद को उसकी प्रकार समझ लें।

राग तो जड़ता का धर्म है वह चिदात्मा में कैसे आ सकता है रागादि हीन आत्मा ही हमारे लिए बोध्य है कुछ और नहीं।

महामाया का प्रासाद (भवन) अष्टदलकमल के समान एकमंजिल से लेकर सवासौ मंजिल तक बनवाया जा सकता है।

श्रुत्याचार्य प्रसादेन, योगभ्यासवशेन च।
ईश्वरानुग्रहेणाणि, स्वात्मबोधो यदाभवेत्।।
(श्रीदक्षिणार्मूतस्तो.वा. १।१४)

ज्ञानक्रिये शिवेनैक्या, संघान्ते सर्व जन्तुषु।
ईश्वरत्वं तु जीवानां, सिद्धं तच्छक्ति संगमात्।। (श्रीदक्षिणार्मूतस्तो.वा.)

कालरूप क्रियाशक्त्या, क्षीरात्परिणमते दधि।
ज्ञार्तृ ज्ञान ज्ञेय रूपं, ज्ञान शक्त्या भवेज्जगत्।।
(श्रीदक्षिणार्मूतस्तो.वा. २।१४)

चतुष्क शिवसंयुक्तं, अनन्तायाम् विस्तृतम्।
कालचक्रं तत्र देवि पर्यकेन सदाशिवः।
तत्र कामकलातीतं, महाकामेश्वरं परम्।। (शक्तिसंगमतन्त्र. २)
इच्छा ज्ञान क्रियापूर्वा, यस्मात्सर्वा प्रवृत्तयः।
सर्वेपि जन्तवस्तस्माद्, ईश्वरा इति निश्चिताः।।
(श्रीम.मू.स्तो.वा. ४४)

श्रुति प्रसाद से (शास्त्र कृपा) आचार्य प्रसाद (गुरुकृपा) से योगाभ्यास (आत्मकृपा) से ईश्वरानुग्रह (भगवत्कृपा) से इन सबके संयुक्त प्रयास से आत्म बोध होता है।

ज्ञान एवं क्रिया ये दोनों शक्तियाँ शिव से संयुक्त हैं सभी जन्तुओं में उनकी कृपालेश से ये आती है, अतः उस शक्ति से युक्त होने के कारण ही जीव ईश्वर है ये सिद्ध हो गया।

कालरूपी क्रियाशक्ति के द्वारा दूध दधि रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञातृ ज्ञान व ज्ञेय रूप जगत् ज्ञान शक्ति से ही होता है।

ब्रह्मा-विष्णु-रूद्र-महेश्वर इस चतुष्क से संयुक्त सदाशिव ही अनन्त में विस्तृत है कालचक्र रूप में वहाँ महादेवी कामकलातीत परम महाकामेश्वर सदाशिव वद्ध पर्यंक पर विराजमान है।

इच्छा ज्ञान व क्रिया इन तीनों का ही प्रपंच प्रसाद है सभी प्रवृत्तियाँ इनसे ही चली है, इसी से सिद्ध है कि सभी जीव ईश्वर है। ज्ञानेच्छा क्रिया ईश शक्ति है, सभी प्राणियों में पायी जाती है अतः सिद्ध हुआ कि जीव ईश्वर ही है।

योे चेच्छा शक्ति वैचित्री, सास्य स्वच्छन्द कारिता।
यया कर्तुमथाऽकर्तुमन्यथा कर्तुमर्हति।। (श्रीमद.भू.स्तो. ९३)

सोयं माया विलासोहि, जगत्कर्तृत्वमात्मनः।
बन्धमोक्षोपदेशादि, व्यवहारोपिमायाया।। (श्रीमद.भू.स्तो.)

ॐ-अ, उ, म्, नादः, ०।
ब्रह्मा विष्णु रुद्रः, ईश्वरः, सदाशिवः।
एते पंच महाप्रेताः प्रणवं च समाश्रिताः।। (शक्ति सं.त. ३)

चतुष्ट्यंतुकशिपुः, मृतकश्च सदाशिवः।
आछादनं तु कापेज्यः, तत्रस्या सुन्दरी कला।
प्रणवः सुन्दरीरूपः, कला सप्तक संयुतः।। (श्रीमद.भू.स्तो.)

ईश्वरश्चाहमित्येव, भासते सर्वजन्तुषु।। (श्रीमद.भू.स्तो.वा.)
हंसरूपाकामला तत्स्वरूपं निगद्यते।
हकारेणवहिर्याति, सकारेण विशेत्युनः।।

हकारस्य सकारस्य, लोपे वाम कलाभवेत्।
पक्षद्वयेनरहितो हंसः कामकलाभवेत्।। (श.सं.त. ३)

ये जो विचित्र इच्छाशक्ति है वह उस परमेश्वर की स्वच्छन्द कर्त्री है। जिसके द्वारा कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं करने न करने अन्यथा करने में सर्व समर्थ बनाती है।

आत्मतत्व का जगत् रूप में भान ये सब माया का ही विलास है, क्योंकि वन्ध मोक्षादि के उपदेश का व्यवहार भी तो माया ही है माया द्वारा ही है।

अ + उ + म + नाद + विन्दु = ॐ। ब्रह्मा-विष्णु-रूद्र-ईश्वर-सदाशिव—ये पाँच महाप्रेत प्रणव का आश्रय लिए हैं।

इनमें पहले चार तो पलंग बने हैं सदाशिव स्वयं मृतक बने हैं, आच्छादन कापेज्य है वहाँ सुन्दरीकला स्थित है। सप्त महायुग प्रणव ही सुन्दरी रूप में वहाँ है।

मैं ईश्वर हूँ यही सभी जन्तुओं में भासता है।

हंस रूप काम कला के स्वरूप को कहते हैं—हकारोच्चारण करने से श्वास बाहर जाता है सकारोच्चारण करने पर पुनः प्रविष्ट हो जाता है।

हकार व सकार को लोप होने पर वाम कला होती है। दोनों पक्षों से रहित हंस रूपी काम कला होती है।

निर्विकल्पश्च शुद्धश्च, मलिनश्चेत्यहंत्रिधा।
निर्किल्पं परं ब्रह्मं, निर्धूताखिलकल्पनम्।
धूल्यन्धकार धूमाभ्र, निर्मुक्तं गगनोपमम्।।

विवेक समयेशुद्धं, देहादीनां व्यपोहनात्।
देहेन्द्रियादि संसर्गा, न्मलिनं कलुषी कृतम्।। (द.भू.स्तो.वा. ४)

माययाधिक संमूढो, विधयेशः प्रकाशते।
निर्किल्पानुसंधाने, सम्यगात्मा प्रकाशते।। (द.भू.स्तो.वा.)

अर्थो विद्वान्समर्थोऽधिकारी। (चातुर्वण्यसंस्कृ.वि.)

चिदात्माहं नित्यशुद्धबुद्दमुक्त सदद्वयः।
परमानन्दसंदोह-वासुदेवोऽहमोमिति।।

मकारं कारणं प्राज्ञं, चिादत्मनि विलापयेत्।
उकारं तैजसं सूक्ष्मं मकारे प्रविलापयेत्।
अकारं पुरुषं विश्व मुकारे प्रविलापयेत्।। (पंचीकरण वा.)

मायाऽविद्ये प्रभोः शक्ती मानोश्छाया प्रभोयमे। (द.मू.स्तो.वा.)

निर्विकल्प शुद्ध और मलिन इस प्रकार में तीन प्रकार का है निर्विकल्प परब्रह्म है, अखिल कल्पना रहित धूल अन्धकार आदि से निर्मुक्त गगन की तरह।

विवेक काल में शुद्ध (देहादि के व्यपोहन के कारण) दे हेन्द्रियादि के संसर्ग से वही तत्त्व मलिन कलुषीकृत माना जाता है।

मायाधिक्य से आच्छादित ईश विद्या द्वारा प्रकाशित होता है, किन्तु निर्विकल्प के अनुसंधान करने पर आत्मा सम्यकतया प्रकाशित हो जाता है।

अर्थ ज्ञाता अर्धज्ञ विद्वान होता है, समर्थ अधिकारी होता है।

मैं नित्य शुद्ध वुद्ध मुक्त सत् अद्वयरूप चिदात्मा हूँ मैं ही परमानन्द संदोह वासुदेव हूँ।

प्रणव का प्रविलापन

मकार को सकारण (प्राज्ञ सहित) चिदात्मा में लीन करे, तैजस सूक्ष्म उकार को मकार में लीन करें, विश्व पुरुष अकार को उकार में लीन करे।

माया और अविद्या प्रभु की दो शक्तियाँ हैं जैसे सूर्य की दो शक्तियाँ हैं—१. प्रभा, २. छाया।

पूर्वतोमणि कर्णीशो, ब्रह्मेशो दक्षिणोस्थितः।
परिचमे चैवगोकर्णी, भारभूतस्तथोत्तरे।। (काशी ख. ७४।४५)

कन्था कौपीनवासायो, दण्डधृग्ध्यानतत्परः।
एकाकी रमतेनित्यं, तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।
(व्यास इति यति धर्म सं.)

परं वा व्रजते नित्यं, परं चोत्सृजते पुनः।
हित्वा चैव परं जन्म, परिव्राजक उच्यते।
(व्यास इति यति धर्म सं.)

परिबोधात्परिच्छेदात्, परिपूर्णव लोकनात्।
परिपूर्णफलत्वाश, परिब्राजक उच्यते।। (व्यास इति यति धर्म सं.)

यत्कर्मक्रूयते येन, शुभं वायदिवाशुभम्।
स एवभुङ्क्ते तत्तथ्यं, विधिसूत्र नियन्त्रितः।। (का.ख. ८२)

काशी जी में पूर्वदिशा में—मणिकर्णिकेश्वर, दक्षिण में—ब्रह्मेश, पश्चिम—गोकर्णेश्वर, उत्तर में—भारभूतेश्वर स्थित हैं।

कन्था और कोपीन वस्त्र मात्रधारी, दण्डहस्त, ध्यान निरत नित्य एकाकी रमण करने वाला जो महापुरुष है उसे देवों ने ब्राह्मण कहा, है इसका तात्पर्य है कि ब्राह्मण को ऐसा होना चाहिए। (जो ऐसा करे वह ब्राह्मण है ये अर्थ कदापि न लगाया जाये)।

परिव्राजक शब्दार्थ

परं परमेश्वर भाव में ही आव्रजन कर्ता परमेश्वरभाव में ही उत्सृजन करने वाला यति परजन्म को त्यागकर ही परिव्राजक कहा जाता है।

परिबोध होने से रागादिमुक्त होने से पूर्णावलोकन करने से परिपूर्णफल वाला होने से ही परिव्राजक होता है। (परितः सब तरफ बोध=सर्वत्र ज्ञानमयभाव से परिच्छेद=सब तरफ से स्वयं को अलग करने से।

जो कर्म जिसने किया है शुभ या अशुभ उसका फल कर्ता को भोगना ही पड़ता है विधि द्वारा वद्ध होने के कारण वच नहीं सकता किसी भी प्रकार।

निज बोध की भूमि जो सप्त लहै
इस भाति वशिष्ठ मुनी का कहै
शुभ साधन सम्पति आदि लहै
श्रवणदिविचार द्वितीयग है
निदिध्यासनतीसरि भूमि गहै
अपरोक्षनिजात्मयचौथि लहै
हंताममत विन पंचम है
छटमी सब वश्तु अकार दहै,
सतवी तुरिया जुवरिष्ठित है। (विचार.च. १३)

परलोक भयं यस्य, नास्ति मृत्यु भयं तथा।
तस्यात्मज्ञस्य शोच्याः स्युः, सब्रह्मेन्द्रा अपीश्वरा।।२७।।
ईश्वरत्वेनक्तितस्य ब्रह्मेन्द्रत्वेनगपुनः।
तृष्णा चेत्सर्वतश्छिन्द्रा, सर्वदैन्योद्भवाऽशुभाः।।२८।।
अहमित्यात्मधीर्या च, ममेत्यात्मीयपीरपि।
अर्थशून्ये यदायस्य, स आत्मज्ञो भवेत्तदा।।२९।।

हिन्दी भजन

सात आत्म ज्ञान भूमिका—१. शुभ साधन सम्पत्ति, २. श्रवणादि विचार, ३. निदिध्यासन, ४. अपरोक्षानुभूति, ५. अहंता ममता सहित, ६. वस्तु तत्व का दर्शन, ७. तुरीयावस्था।

आत्मज्ञानी

जिस आत्मज्ञानी को परलोक भय तथा मृत्यु भय नहीं है उस आत्मज्ञ के लिए तो ब्रह्मा इन्द्रादि ईश्वरादि भी शोचनीय ही हैं।

दैन्य (दीनता) याचना की वृत्ति को जगाने वाली तृष्णा के नष्ट होने पर उन ब्रह्मज्ञानी को ईश्वर या ब्रह्मेन्द्र से क्या प्रयोजन।

जिस अवस्था में मैं भाव (मैं बुद्धि) व मेराभाव दोनों ही अर्थ शून्य हो जाये जिस साधक के वह साधक आत्मज्ञ हो जाता है।

प्रसन्नेविमलेव्योम्नि, प्रज्ञानैकरसेऽद्वये।
उत्पन्नात्मधियोब्रूत, किमत्कार्यमिष्यते।।३१।। (उपदेशसाहस्री १४)
अप्राणस्यामनस्कस्य, तथाऽसंसर्गिणो दृशेः।
व्योमवद्व्यापिनी तस्य, कथं कार्यं भवेन्मम।।३४।।
असमाधिं न पश्यामि, निर्विकारस्य सर्वदा।
ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य, शोध्यं नान्यद्पापिनः।।३५।।
(उपदेशसाहस्री)

वराभय करं नित्यं, श्वेतपद्म निवासिनम्।
महाभय निहन्तारं, श्रीगुरुं प्रणामाम्यहम्।।
ब्रह्मरन्ध्रे महापद्मे, तेजोविम्बे निराकुले।
योगिमिध्यानगम्ये च, चक्रेसुक्ले विराजिते।।
महाशुक्लभासुरकि-कोटि कोटि महौजसम्।
वेदोद्दाररं करं नित्यं, परं हंसं परात्परम्।। (रुद्राया.)

प्रसाद गुण युक्त विमल हृदयाकाशस्थ एवं प्रज्ञानरूपी अद्वय रस में जिसकी आत्मधी हो गयी हृदयाकाशस्थ उसे अन्य कार्य से क्या प्रयोजन।

जो अप्राण है अमनस्क है, असंसर्गी है व्योमवद् व्यापी है उस मुझ दृष्ट साक्षी का क्या कार्य शेष है।

मैं निष्पाप निष्कल्मष विशुद्ध ब्रह्म हूँ तब मेरा क्या शोधन मैं सर्वदा निर्विकार समाधिस्थ ही हूँ एक पल भी असमाधि में (समाधि रहित) नहीं है।

गुरुवन्दन

महाभय निहन्ता, वर मुद्रा व अभय मुद्रा सम्पन्न श्वेत पद्मासन पर विराजमान श्री गुरु के चरणों में वन्दन करता हूँ।

वे ब्रह्मरन्ध्रवर्ती सहस्रार महापद्मस्थ निराकुल तेज विम्ब के शुक्ल चक्र में विराजित महायोगियों के द्वारा ध्यानगम्य हैं।

उन करोड़ों महाशुक्ल भासुर सूर्यों के समान महातेजस्वी नित्य वेदोद्धारक परहंस परात्पर के लिए प्रणाम है।

आनन्दभैरवी उवाच–

इदानीं शृणु योगार्थं मयि संयोग एव च।
ममोद्भवःखेक्रमले च, सर्वाकार विर्वाजते।।

भ्रूमध्येसर्वदेहे च, स्थापयित्वा च मानरः।
मान्यते चा परिच्छिन्नं, ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम्।।

शनैः शनैर्विजेतव्याः, सत्त्व रजस्तमोगुमणाः।
सर्वत्यागिनमात्मानं, कालः सर्वत्ररक्षति।।

ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च, ईश्वरश्च सदाशिवः।
ततः पर शिवो देवः, षट्शिवाः षट्प्रकाशकाः।। (रुद्राया. ४२)

ऊर्ध्व शक्ति निपातेन, अधः शक्ति निकुञ्चनात्।
मध्य शक्तिस्थ संलग्न-ममृतं स्वाद्धयेत्परम्।
अनेनाभ्यासयोगेन हनेत्कालं न संशयः।।

आनन्द भैरवी कहती है—अब योग के लिए एवं मुझसे संयुक्त होने के लिए श्रवण करो—मेरा उद्भव सर्वाकार विवर्जित विमल आकाश में हुआ।

मुझको भ्रमध्यस्थ आज्ञाचक्र किंवा पूरे शरीर में स्थापित करके प्राणी ब्रह्मविष्णुशिव से अपरिच्छिन्न रूप में मुझे व्यक्त करते हैं।

धीरे धीरे सत्वरज तमो गुणों को जीतना चाहिए क्योंकि सर्वत्यागी इस आत्मा की रक्षा सर्वत्र काल करता है।

ब्रह्म-विष्णु-रूद्र-ईश्वर-सदाशिव-परशिव देव ये षट्चक्रों के प्रकाशक छह शिव हैं।

योग

उर्ध्वचक्रवर्ती अमृत विन्दु रूपी शक्ति निपात से अपानादि के साहचर्य से अधशक्ति के निकुञ्चन द्वारा और मध्यवर्ती शक्ति से संलग्न होते ही परम अमृत का स्वाद प्राप्त हो जाता है। इस अभ्यास योग द्वारा निःसंशय काल को भी मारा जा सकता है। (हुं हुं मन्त्र के त्वरित उच्चारण को उर्ध्वशक्ति निपात, मूलाधारतल के अश्वयोनिवत् आकुंचन को अधःशक्ति निकुंचन हृदस्थ महाशक्ति से संयुक्त हो सहस्रदल पद्मस्थ अमृत विन्दु के स्वाद के लिए खेचरी मुद्रा सम्पादन)।

या सा कुण्डलिनी देवी, कुण्डलाकार संस्थिता।
तस्य मध्यस्थितात्मानं, अमृताधारवर्षणम्।।

परामृतेन दिव्येन, सिञ्च्यमान मनुस्मरेत्।
अनेनाभ्यासयोगेन, हनेत्कालं न संशयः।। (गोरक्षसं. २२)

नेत्रे ययोन्मेष नियेषशून्ये, वायु र्यथा वर्जितरेच पूरः।
मनश्च संक्लपविकल्पशून्यं, मनोन्मनी सामयि संनिधत्ताम्।।
(योगतारावली १७)

अहं ममत्वाद्यपहाय सर्वं, श्रीराजयोगेस्थिरमानसानाम्।
न द्रक्षता नापि च दृश्यभावः, सा जृम्भते केवल संविदेव।।
(योगतारावली १६)

विश्रान्ति मासाद्य तुरीयतल्पे, विश्वावद्यवस्थात्रितयोपरिस्थे।
संरिन्मयों फामपि सर्व कालं, निद्रां सखे निर्विशनिर्विकल्पानं।।
(योगतारावली २६)

साक्षी
प्राज्ञः
तैजसः
विश्वः

ये जो कुण्डलिनी शक्ति है जो सर्ववत् कुण्डलाकार में स्थित है, उसके मध्य में स्थित आत्मतत्व की प्राप्ति ही अमृतधार वर्णन है।

दिव्य परमामृत से सिंचमान (अभिसिक्त) होता हुआ ही मन्त्र जपे इस अभ्यास योग से काल को भी जीता जा सकता है।

नेत्र निमेषोन्मेष रहित प्राण रेचक पूरक रहित (कुम्भक्) मन संकल्प विकल्प रहित (अमनस्क) ये अवस्था मनोन्मनी है यह अवस्था मुझे प्राप्त हो।

मैं और मेरा सबको त्यागकर, श्रीराजयोग में स्थिर मन वाले योगियों के लिए न दृष्टा है न दृष्य वे तो केवल संवित् (ज्ञानमयभाव) में ही जीते हैं।

तुरीयावस्था रूपी कोमल शय्या पर विश्रान्ति पाकर विश्वादि तीन अवस्थाओं से ऊपर होकर सर्वदा के लिए हे सखे! निर्विकल्पक ज्ञानमयी किसी योग निद्रा में प्रविष्ट हो जा।

वे विश्वादि तीन अवस्था हैं—विश्व तैजस प्राज्ञ इनसे ऊपर है साक्षीभाव।

२ अन्तर्लक्ष्यम्। तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये फूत्कार शब्दः जायते। तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यनील ज्योतिः पश्यति। एवं हृदयेऽपि। (मण्डलब्रा.उप. १९।३)

सहजानन्दे यदामनोलीयते तदाशाम्भवी भवति। तामेव खेचरी माहुः।
(मण्ड.ब्रा.उ. ६१)



आकाशादि पदार्थानां, वाचकः प्रणवः स्मृतः।
सर्वावभासकत्वेन, ब्रह्मणसदृशः स्मृतः।।

जपेन्मन्त्रवरं भक्त्या, लक्षणां दशकंद्विजाः।
ततः सिद्ध्यतिमन्त्रोऽयं, सत्यमेव न संशयः।। (सूतसंहिता)

यतीन्द्रवृन्दा हृदिसंनिविष्टं, गुरुप्रसादाच्चशिव प्रसादात्। अहं पदप्रत्यय साक्षिभूतं, चिदात्मरूपं विदुरेनमेव। (शिवम्) (सूतसंहि.य.वैखं. १५)

योग में शाम्भी मुद्रा

तर्जनी उगली के अग्रभाग से दोनों कर्ण छिद्रों को वन्द करने पर फूत्कार ध्वनि (ऐसी ध्वनि होगी जैसी फूँक मारने पर होती है करके देख लो अभी करो कैसी आवाज आती है) इस अवस्था में मन के स्थित रहने पर कुछ समयोपरान्त दोनों आँखों के मध्य भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र में) में नील ज्योति दिखने लगती है ऐसे ही हृदय में भी।

सहजानन्द में जब मन लीन हो जाता है तब शाम्भवी मुद्रा होती है। इसी मुद्रा को खेचरी भी कहते हैं।

प्रणव (प्राचीन होने पर भी नया का नया) आकाशादि पदार्थों का वाचक है सर्व प्रकाशक होने से ब्रह्मसदृश कहा जाता है।

हे द्विजो! भक्ति पूर्वक इस मन्त्रराज को दश लाख संख्या में जपने पर ये मन्त्र सिद्ध हो जाता है इसमें संशय नहीं ये सत्य है।

चित्कला

हे यतीन्द्र समूह (हे सन्तो!) शिव प्रसाद से एवं गुरु प्रसाद से हृदय में स्थित जो अहं पद प्रत्यय साक्षी चेतन है यही चिदात्मा है ऐसा जान लो।

एक एव शिवः साक्षा, त्सत्य ज्ञानादि लक्षणः। स्वशक्त्या पंच चास्थित।

ईशानः	तत्पुरुषः	अघोरः	वासदेवः	सद्योजातः
शब्दः	स्पर्शः	रूपम्	रसः	गन्धः
सदाशिवः	ईश्वरः	रुद्रः	विष्णुः	ब्रह्मा
आकाशः	वायुः	वह्निः	अम्भः	भूमिः
स्पन्दः	परिस्पन्दः	प्रक्रमः	परिशीलनः	प्रचारः(रजः)
छादकम्	बाधकम्	मुग्धम्	नोदकम्	भञ्जकम् (तम्)

(सू.सं.य.वै.ख. १५)

चिन्मात्राश्रयमायायाः, शक्त्याकारे द्विजोत्तमाः।
अनुप्रविष्टा या संवित्, निर्विकल्पा स्वयं प्रभा।।
सदाकारा परानन्दा, संसारोच्छेद कारिणी।
सा शिवा परमादेवी, शिवा भिन्ना शिवंकरी।। (सू.सं.य.वै.ख.)

कला

१. भूमौ–निवृत्ति–पार्थिवे तत्त्वेऽन्य्याभोगोनिवर्त्यते।

२. पयसि–प्रतिष्ठा–अचेतनानि तत्त्वानि ययापुरुषत्र्वस्थाप्यन्ते।

३. वह्ने–विद्या–मायात्कार्याद्विक्तिमात्मात्मानंयनावेत्ति।

एक शिव ही साक्षात्सत्यादि (सत्य ज्ञान अनन्त) लक्षण युक्त है तथा अपनी शक्ति से पाँच रूप में स्थित है। (वे पाँच रूप स्पष्टतया आप मूल में बने चार्ट में देख ही रहे हैं।)

हे द्विजोत्तमो! चिन्मात्रा के आश्रय से जो माया है उस माया के शक्ति रूप में प्रविष्ट जो संवित् है वह निर्विकल्प स्वयं प्रभा है।

सत् (ब्रह्मकारा) अकारा परानन्द रूपा संसार का उच्छेदन करने वाली वह शिवा परमा देवी कल्याण कारिणी है तथा शिव से अभिन्न है।

पञ्चकलायें

भूमि में—निवृत्ति कला है इसके द्वारा पार्थिव तत्वों से भोग निर्वत हो जाता है।

जल में—प्रतिष्ठा कला है—इसके द्वारा अचेतन तत्वों का पुरुषत्व में स्थापन होता है।

अग्नि में—विद्या कला है—इसके द्वारा माया तथा माया के कार्यों से आत्मा भिन्न है ये ज्ञान होता है।

४. वायौ–शान्तिः–मलमाया कर्मलक्षणपाशजालस्योपशमोगया।
५. व्योम्नि–शान्त्यतीता–परमशिवस्वरूपबोध हेतुः। (सू.सं.टी.)

शुद्धानि पञ्च तत्त्वानि

१. शिवतत्त्वम्–अप्रेमयमनिर्देश्यमनौपभ्यामनामयम्।
२. शक्तित.–उन्मेषः प्रथमः अभिन्नं परमात्मनः।
३. सदाशिवतत्त्व–क्रिया ज्ञान समाक्षकम्।
४. ईश्वरतत्त्व–सर्वैश्वर्य समावृतम्।
५. विद्यातत्त्व–क्रियाशक्त्यापरिक्षीणं ज्ञानशक्त्यधिकम्।

तूष्णींभाव मनोराज्य इव सृष्टि लयाविमे। (पं.द. ६।१८५)

शिवामेता मुमामेमां, जडशक्तिं तथैव च।
जडकार्यं जगज्जीवं, तेषां भेदं तथैव च।।

अन्यच्चास्तितयाभातं, तथा नास्तीति शब्दितम्।
सर्वं पूर्णं शिवं पश्यन्, स्वयं पूर्णः शिवोभवेत्।। (सू.सं.म.ख.)

वायु में—शान्ति कला है—इसके द्वारा मल माया कर्मलक्षण पाशो जालों का शमन होता है।

आकाश में—शान्त्यतीताकला है—ये परम शिव के स्वरूप का बोध कराती है।

शुद्ध पाँच तत्व

शिव तत्व—ये अप्रमेय है, अनिर्देश्य है, अनुपम है, अनामय है।

शक्ति तत्व—परमात्मा से अभिन्न प्रथम उन्मेज है।

सदाशिव—क्रिया ज्ञान समांशक है (क्रिया व ज्ञान शक्ति समान हैं)।

ईश्वर तत्व—सर्वेश्वर्य से समायुक्त है।

विद्यातत्व—क्रिया शक्ति की अपेक्षा ज्ञान शक्ति की अधिकता।

सृष्टिलय

ये सृष्टि और प्रलय दिन-रात की तरह हैं, जगने-सोने जैसे हैं, आँख खोलने बन्द करने जैसे हैं अथवा तुष्णीभाव निर्विकल्प (चुपरहना) और मनोराज्य (काल्पनिक चिन्तन) सविकल्पक मन होने जैसे हैं।

ये शिवा-उमा-जडशक्ति जडकार्य-जगत्-जीव और इनके भेद ये जो भी दिख रहा है (अस्तित्व) यह सब मायाशक्ति द्वारा ही प्रतित सा है (अस्ति और नास्ति इन दो शब्दों

स्वपूर्णात्मातिरेकेण, जगज्जीवेश्वरादयः।
न सन्ति नास्ति माया च, तद्विशुद्धात्मवेदनम्।। (सं.सं.म.ख.)

बाला–ऐं क्लीं सौः।

दक्षिणामूर्तिः ऋषिः। पंक्तिश्छन्दः। श्री त्रिपुराबाला देवता। मध्यशक्तिः। अन्तिमं बीजम्। (मन्त्रमहौदधिः)

भक्तिः

एका शंकर सायुज्य श्रद्धा, सारतरा परा। (सू.सं.)

सायुज्यं-प्रत्यगात्मनः परशिवस्वरूप साक्षात्कारेण तदात्मनावस्थाने। (टी.)

परात्परतरं पदम्

यत्सत्तायोगतः सर्वं, सत्यवद्भवति द्विजाः।
यस्यैव चित्प्रकाशेन, सर्वं चेतयतेजगत्।
यस्यानन्दाभिसंबन्धा, त्सर्वंप्रेमास्पदं भवेत्।। (सू.सं.म.वै.ख. २७)

से व्यक्त) और नास्ति शब्द से भी जो कहा जा रहा है। इस सब में पूर्ण शिव को देखते हुए स्वयं पूर्ण शिव हो जाये।

स्वपूर्णात्मातिरिक्त न जगत् है न जीव है, न ईश्वर है न ये माया ही है यही विशुद्ध आत्मज्ञान है।

बाला त्रिपुर सुन्दरी मन्त्र—ऐं क्लीं सौः।

श्री विद्या क्रम का एक मन्त्र है—इस मन्त्र के दक्षिण मूर्ति ऋषि हैं, पंक्ति छन्द है, श्री त्रिपुरा बाला देवता है मध्यशक्ति (क्लीं), अन्तिम (सौः) बीज है।

भक्ति—शंकर सायुज्य के प्रति एक सारतरा अपरा श्रद्धा ही भक्ति सायुज्य क्या-प्रत्यगात्मा का पर शिव स्वरूप साक्षात्कार द्वारा शिव भाव में स्थित होना। स्वस्वरूप के अनुसंधान को भक्ति कहते हैं।

हे सन्तो! जिनकी सत्ता के संयोग से ये सकल प्रपञ्च जड होने पर भी सत्य जैसा प्रतीत होता है, जिनके चित्प्रकाश द्वारा ये सारा संसार चैतन्यवत् हो जाता है, जिस आनन्दघन के सम्बन्ध से इस दुखमूलक जगत् में प्रीति का अनुभव होता है। इस जगत् में अस्तिभाव (सत्), इस जगत् में चित् भाव (चित्), इस जगत् में आनन्दभाव (आनन्द)—रूप परमात्मा के सम्बन्ध से प्रतीत होता है, है नहीं

सोपान क्रमतो देवा, नृणां संसारमोचकाः।
तप्तायः पिण्ड वध् विप्राः, रुद्रमूर्तिपरस्य तु।। (सू.सं.म.वै.ख.)
विशुद्ध सत्त्वगुणोहि रुद्रस्योपाधिः।
तमस्तु संहरणाय तत्स्वरूपाद्वहि वर्तते।। (टी.)
शिव एव स्वयं लिङ्गं, लिङ्गं गमक मेवहि।
अतः साक्षी शिवः साम्बः स्वप्रकाशैक लक्षणाः।।
तेन सर्वमिदं गम्यं, गम्यतेऽसौ न गम्यते।
ज्ञानं हि लिङ्गं भवेत्।
आलयं लिङ्गं मित्याहुरपरे वेद वित्तमाः।
आलयो नाम चा धारः, सर्वाधारः शिवः खलु।। (सू.सं.म.वै.ख.)
लयनाल्लिंगमित्याहु, रपरे वेदवित्तमाः।
तदापि लिङ्गं भगवान्, स्वयमेव महेश्वरः।
लीयमानोमदंसर्वं, ब्रह्मण्येबहि लीयते।। (सू.सं.य.वै.ख. २२)

हे सन्तों! देवता भी मनुष्य को संसार बन्धन से छुड़ाते हैं किन्तु क्रमशः सीढ़ी दर सीढ़ी, किन्तु परमेश्वर की रूद्रमूर्ति तो जलते हुए लोह पिण्ड के समान पल भर में मुक्ति देती है।

विशुद्ध सत्वगुण ही रूद्र की उपाधि है। ये जो प्रसिद्धि है कि शिव तमोगुणी हैं ऐसा तो मात्र प्रलय काल में होता है अतः तमः प्राधान्य शिव स्वरूप से पृथक् ही है।

शिव ही स्वयं लिंग है लिंग भी बोधक रूप है अतः साम्ब शिव साक्षी स्वप्रकाश स्वरूप हैं।

इसी के द्वारा ये सकल प्रपंच गम्य है पर ये किसी भी द्वारा गम्य नहीं है।

ज्ञान को ही लिंग कहा जाता है।

वेदवेत्ताओं ने लिङ्ग को आलय कहा है (आ समन्तात् लीयते यस्मिन् सर्वम इति) जिसमें सब लीन हो जाये वह आलय (लीनं गमयति सर्वं इति लिङ्गम्) आलय आधार को कहते हैं, सबका अन्धकार निश्चित ही शिव हैं।

लय होता है सकल जगत् इसमें इसीलिए वेदज्ञों ने लिङ्ग कहा है। स्वयमेव भगवान् महेश्वर लिङ्ग रूप में इस सब दृश्यमान् को लीन कर लेते हैं, लीन होता है ब्रह्म में ही अतः लिङ्ग शिवस्वरूप साक्षात् ब्रह्म है।

वाणमुद्भुतम्। (सू.सं.य.वै.ख.) (वाणमितिस्थूलशरीरम्) (टी.)।

निस्तरङ्ग शिवे परमात्मनि, प्रत्ययस्य लयः परयोगिनः। मुख्यमर्चनमित्यभिपद्यते, पुष्पतोयफल प्रमुखाः कृशाः। (सू.सं.य.वै.ख.)

ज्ञानमेव शिवार्चनमिष्यते, स्तूलमेव बहिरर्चनं नृणाम्।
वेद एव सदामितिकरणं, बोध एव परमंपदमास्तिकाः।।
(सू.सं.य.वै.ख. २९)

भस्म

महाभस्म महादेवो, महामाया व भासकः।
भर्त्सनात् सर्वपापानां, भासनं तस्य विद्यया।।
विद्या वेदोद्भवा साक्षात्।
हकारो हुं फडग्रस्तो हार्दोहृत्यावानोऽवधिः। (सू.सं.य.वै.)
हुं–तेजो तेजस्पदेहो गृह्यतेकवचं ततः। (टी.)

मन्त्रानुष्ठानप्रतिबन्धक भौमान्तरिक्ष रक्षः पिशाचादिनिवारकमाग्नेयं तेजः–फट् शब्दार्थः। (टी.)

वाण (शरीर) अद्भुत है, स्थूल शरीर को वाण कहते हैं।

निस्तरङ्ग परमात्मा शिव में परयोगियों के प्रत्यय का लय ही मुख्य पूजा है पुष्प-फल जल प्रमुखा पूजा तदपेक्षा कृश है, स्थूल है।

ज्ञान ही वास्तविक शिवार्चन है, मानवों द्वारा कृत वाह्यपूजा स्थूल है। आस्तिकों के लिए ज्ञान ही परम्पद है और वह बोध वेद द्वारा सम्भव है।

भस्म

महादेव की महाभस्म महामाया की अवभासक है। सब पापों को भस्म करने के कारण तथा शिव विद्या को प्रकाशित करने के कारण इसे भस्म कहा जाता है।

विद्या वेद से उद्भूत को ही कहते हैं।

हकार हुं फट् से ग्रस्त है हृदय को पवित्र करने के लिए।

हुं = तेज = तैजस शरीर ही कवच को गृहण करता है स्थूल शरीर पर वह नहीं दिखता।

फट् शब्द का अर्थ—मन्त्र अनुष्ठान में प्रतिबन्धक (वाधक) भूमिस्थ व अन्तरिक्षस्य राक्षस पिशाच प्रेतादि के निवारण के लिए ये आग्नेय तेज है—फट्।

द्विपंचवारं यस्यैव, तुला साम्यं न जायते।
नद्यां वा प्रक्षियेद्भूयो, यदा तदुपलक्ष्यते।
तदा बाणं समाख्यातं, शेषं पाषाण सम्भवम्।। (श्रीकालोत्तरे)

संस्थाप्यवाणलिङ्गंतु, रत्नात्कोटिगुणं भवेत्।
रस लिङ्गे ततो बाणात्, फलं कोटि गुणं स्मृतम्।। (श्रीकालोत्तरे)

अन्ये प्रामयि सर्वेषां, नराणां मुनि पुंगवा।
पूजा देवालयं दृष्ट्वा, प्रणानस्तस्य कीर्तितः।। (सू.सं.वि.मा.)

अबुद्धिपूर्वः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः। (सू.सं.वि.मा.)

ज्ञानेच्छाप्रयत्नविरहात् प्राणिकर्मप्रेरणाया तदावरणमायायायत्स्फुरणम्।

आत्ममन्त्रः—सोहम्। ऋषिः-ब्रह्मा, छन्दो-गायत्री, देवता-आत्मा।

सः-शक्तिः	हं-वीजम्	
↓	↓	
प्रकृतिः	पुरुषः	ध्यायेत्साम्बं महादेवम्।
↓	↓	
विद्या	शिवः	

वाणलिङ्ग की पहचान—नर्मदाखण्ड के धारावर्ती नार्मद (नर्मदा प्राप्त) शिव लिङ्ग को २ बार या ५ बार तोलने पर भी वजन समान न रहे नदी में डालकर देख ले तौलने पर सम नहीं रहे तो वाण लिङ्ग है नहीं तो पाषाण लिङ्ग है।

वाण लिङ्ग की स्थापना करके पूजने से रत्नलिङ्ग की पूजा करने की अपेक्षा कोटि गुणित फल होता है, किन्तु रसलिङ्ग (पारद लिङ्ग) की पूजा करने से वाण लिङ्ग से भी कोटि गुणित फल होता है।

हे सन्तों! देवालयस्थ पूजा को देखकर अन्य सभी मानवों के पापादि भी नष्ट होते हैं।

अविवेक पूर्वक जो सृष्टि हुई वह तमोमयी हुई।

ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न से रहित प्राणी कर्म प्रेरणा से आवरण माया द्वारा जिसका स्फुरण हो वह तमोमयी सृष्टि है।

आत्म मन्त्र

सोऽहम् = मैं वहीं हूँ, वही मैं हूँ। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा है, छन्द गायत्री, देवता आत्मा है, सः शक्ति, है बीज है, सः ही प्रकृति है विद्या है हं ही पुरुष है शिव है इस

अरुण कनक वर्णा षद्म संस्थ च गौरी-
हरनियमित चिह्नं सौम्य तानून पातम्'।
भवतु भवदभीष्ठ प्राप्तये पाश टडाका-
मयवरद विचित्रं रूपम र्धाम्वि केशम्।। (आचार्याः)

अथवा जीवमन्त्रोयं, जीवात्म प्रतिपादकः।
शक्ति मन्त्रः सकाराख्यः, परमेश्वर वाचकः।।

संसारित्वेनमातोहं, स एव परमेश्वरः।
सोहमेव न संदंहः, रचानुभूति प्रमाणतः।।

हंसयोः शबलंहित्वा, पदयोः स द्वितीययोः।
पूर्णोहमेवं जानीयाद्, वोधमात्र स्वभावतः।। (स.स.म.वै.स्व. ५)

जीवस्य जाग्रदाद्यवस्थासु व्यावर्तमानसु ऐक्यरूपेणनुवृत्तेः सद्रूपत्वम्।
तत्साक्षित्वेन चिद्रूपत्वम्। परप्रेमास्यदत्वेना नन्दरूपत्वम्। स्वानुभव सिद्धम्।
(सू.सं.टी.)

प्रकार सोऽहं = शिव शिव की एकता का प्रतिपादक मन्त्र अम्बासहित महादेव का ध्यान करना चाहिए।

स्वर्ण वर्ण सम अरुण कमल पर स्थित है माँ पार्वती सदाशिव स्वायत्त समस्त नियमित चिन्हों से युक्त है। पाश, टङ्क, अभय, वरद मुद्राओं से विचित्रत ये अर्धाम्बिकेश स्वरूप आपके अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाला हो।

अथवा ये मन्त्र जीव मन्त्र है जीवात्मा का प्रतिपादक है। सकार शक्ति मन्त्र है परमेश्वर वाचक है।

मैं सांसारित्वेन भास रहा हूँ पर वही परमेश्वर हूँ। स्वानुभूति के प्रमाण से इसमें सन्देह नहीं कि मैं वही हूँ।

हं और स इन दोनों में से स को छोड़ दे जो दूसरा पद है। तब बचता है अहं शेष जो बचा वह पूर्ण बोधमात्र स्वभाव वाला मैं ही हूँ ऐसा जानना चाहिए।

जीव ही सच्चिदानन्द है

जीव की जाग्रत आदि अवस्थाओं में व्यावर्तमान जो एक रूपता की अनुवृत्ति है (स्वप्नसुषुप्ति) वही जीव सद्रूपता है जीव सत् है।

उन सबका साक्षी होने चिद्रूपता भी सिद्ध—जीव चित् है। परं प्रेमास्पद होने से आनन्द रूपता स्वानुभव सिद्ध है—जीव आनन्द रूप है।

परस्पर तादात्म्यं भागत्यागा लक्षणा या हंस मन्त्रः प्रतिपादत्ति।।

मिथ्यात्वादि पदध्यस्तं, ब्रह्मण्येतस्यवाधनम्।
नाना पदैर्विनानेति, ब्रह्मतैरुप लक्ष्यते।। (टी.)
ज्ञातमज्ञात मप्यर्थं, सदाहं वेद केवलः। (मू.)
हंसविद्या पराचैणा, पर मन्त्र प्रमोदिनी।
सर्वैश्वर्य प्रदासर्व,-देवता तृप्ति कारिणी।
आरोम्यं विजयं विद्यां, अवारनोति न संव्रायः।।

(सू.सं.य.वै.ख. ७)

हंसाण्डाकारमे नंस्नुत परमसुधं मूर्ध चन्द्राद्गलन्तम्,
नीत्वा सौषुम्न मार्गं निशित मति रथन्यारत होपगाषम्।
स्मृत्वा संज्ञाप्यमन्त्रं पलितविषशिरोरुग्ज्वरोन्मादमूता,
पष्मारादीश्च मन्त्री हरति दुरित दौर्भाग्यदारिद्र्यदोषान्।।

(आचार्याः टी.)

आत्मा सर्वगतोऽच्छेद्यः अदाह्य रतिया मतिः। सा चाहिं सापरा पोक्ता।
सर्वं सत्यं परंब्रह्म, सत्य मेवं मतिर्भवेत्।

हंसः मन्त्र में भाग त्याग लक्षणा द्वारा परस्पर तादात्म्य प्रतिपादित है।

मिथ्यात्वादि के द्वारा जो अध्यस्त है जगत् ब्रह्म में उसका वाध है, नेति इस प्रकार विविध पदों के विना भी ब्रह्म उपलक्षित होता ही है।

कुछ भी हो अर्थ ज्ञात हो या अज्ञात पर सदा केवल इतना जानो कि मैं सत् हूँ।

हं सविद्या पराविद्या है पर मन्त्रों का भेदन करने वाली है। सर्वैश्वर्य प्रदात्री, सर्वदेवताओं की प्रीति सम्पादिनी ये विद्या आरोग्य-विजय-विद्या प्रदान करती है जापक को।

सहस्रारचक्रस्य अमृत कला पूर्ण दिव्येन्दु से निर्गलित परमसुधा द्वारा इस हंसाण्डकार के तत्व को निरन्तर स्नपन करके सुषुम्ना मार्ग में ले जाकर समस्त शरीर में व्याप्त कर ले स्मरण करके मन्त्र को जपकर योगी-पलित विष-शिरोवेदना-ज्वर-उन्माद भूत अपस्मारादि दोषों रोगों दुरितों दुर्भाग्य दारिद्रय को हर लेता है नष्ट कर देता है।

आत्मा सर्वगत है अच्छेद्य है, अदाह्य है ये जो बुद्धि है यही परा अहिंसा कही गयी है।

सब सत्य है पर ब्रह्म है यही मति होनी चाहिए।

आत्मनोऽनामावेन, युपहारविसर्जनम्। अस्त्येयम्।

ब्रह्मभावेमनश्चार, ब्रह्मचर्यं परं तथा।

ऐकरूपं मुने यत्त दार्जवं। चित्त क्षोम निवृत्तिर्या क्षमसा।

वेदादेवविनिर्मोक्षः अहमात्मा न मर्त्योस्मि-धृति रेषा मति र्भवेत्। अहं शुद्ध इति ज्ञानं शौचम्।। (सू.सं.ज्ञान यो. ख. १४)

रागाद्यपेतं हृदयं, वागदुष्टाऽ नृतादिना।
हिंसा विरहितः कायः, एत च्चेश्वर पूजनम्।।

(सू.सं.ज्ञान यो. ख.)

कोहं मोक्षः व्ययं केन संसारं प्रति पन्न वान्। इत्यालोचनं तपः।

ब्रह्मादि लोक पर्यन्ता,-द्विरक्तस्य परात्मनि।
प्रियंयत्त-महाप्राज्ञाः, संतोषं परमं विदुः।। (सू.सं.ज्ञा.यो.स्व.)
श्रौते स्मार्ते च विश्वासो, यत्तदास्तिक्य मुच्यते।

आत्मा के होने से ही अपहार नष्ट हो गया।

न भाव = अभाव (नहीं होना)। न अभाव = अनाभाव (होना)।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मभाव में मन का आचरण ही परं ब्रह्मचर्य है।

आर्जव—एक रूपता समरूपता ही हे महामुने! आर्जव है ऋजुता सरलता है चित्त क्षोभ की निवृत्ति की क्षमा।

(ज्ञान) वेद से ही मोक्ष होगा ऐसी बुद्धि होना ही धृति है, मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ ये ज्ञान होना ही शुचिता है शौच है।

ईश्वर पूजा—रागद्वेषादि रहित हृदय-असत्यादि से अदूषित वाणी हिंसा भाव रहित शरीर यही ईश्वर की पूजा है।।

मैं कौन हूँ? मोक्ष कैसे? किसने संसार बनाया—ये चिन्तन करना ही तप है।

ब्रह्मादि लोक पर्यन्त जिस विरक्त को परमात्मा में ही प्रीति हो जाये हे महाप्राज्ञ सन्तों यही परं सन्तोष है।

श्रोत स्मार्त कर्मों में विश्वास ही आस्तिकता है।

न्यायार्जितं धनं ज्वान्नं, शुद्धया वैदिके द्विजे।
अन्यद्वा यत्प्रदीयेत, तद्दानं प्रोच्यते मया।। (सू.सं.ज्ञा.यो.स्व.)

गुरुणा चोपदिष्टोवि, तन्त्र संवन्धवर्जितः।
वेदोक्ते नैव मार्गेण, मन्याभ्यासो जय-स्मृतः।
ऋपिं छन्योऽछिदैवं च, ध्यायमानो जपेन्नरः।। (सू.सं.ज्ञा.यो.स्व.)

छर्मार्थ मात्म शुद्धर्य, मुपाय ग्रह शां व्रतम्।

षऽक्षरं प्रवक्ष्यामि, येन संसार विच्छित्तिर्ब्रह्मेन्द्रादि विभूतयः। ऋषिर्ब्रह्मा, गायत्रं छन्दः। ॐ नमः शिवाय।।

मन्त्रार्थः

सत्य ज्ञान परानन्द-स्वरूपस्यशिवस्यतु।
असंपृत्त्या शिवस्यायं, शिवशब्दस्तुवाचकः।
नमः शब्दः प्रहवाची, मायय्या सानच स्वतः।। (सू.सं.य.वै.)

समन्थएव तेनैव, सोपि तादात्म्य लक्षणः।
नित्यसिद्धः शिव साक्षा,-स्वरूपः सर्व देहिनाम्।। (टी.)

दान—न्याय द्वारा उपार्जित धन या अन्मादि कुछ भी श्रद्धापूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मण दिया जाये उसी को दान कहा जाता है।

जप—भले ही गुरु द्वारा उपदिष्ट क्यों न हो फिर भी तन्त्र सम्बन्ध से युक्त मन्त्र जप उचित नहीं। वेदोक्त विधि से किया गया जप ही (मन्त्राभ्यास ही) जप है। जप करे तो मन्त्र के ऋषि-छन्द व देवता स्मरण कर ले।

व्रत—धर्मार्थ (धर्मप्राप्ति के लिए) व आत्म शुद्धि के लिए स्वीकृत उपाय व्रत है।

ॐ नमः शिवाय—इस षडक्षर मन्त्र के जप से संसार वन्धन कट जाता है ब्रह्मेन्द्रादि विभूति देवता, ब्रह्मा ऋषि, (वामदेव) गायत्री छन्द।

सत्यज्ञान परानन्द स्वरूप शिव है। ये जगत् शिव से असमुक्त है। ॐ शिव शब्द तो वाचक है इसका। नमः शब्द प्रह्व वाची है माया द्वारा स्वतः नहीं।

मन्त्र के साथ शिव का तादात्म्य सम्बन्ध है सर्व प्राणियों का स्वरूप होने से शिव साक्षात् नित्य सिद्ध है। अहित वस्तु को भी स्वरूपतः सहसा न त्यागे।

न हेयेमहितं तद्वद्वस्तो नस्वरूपतः।
नोपादेयं हितं सदां इति नकारार्थः।।

मकारो मम शब्दार्थो लुप्त स्त्वेको मकारकः।
तस्माच्चतुर्थी शब्दस्तु, प्रोच्यते नहि वस्तुतः।

ॐ कार शब्दः सर्वार्थ, वाचकः परिकीर्तितः। सर्वार्थः शिव एवहि।
(स.सं.य.न.स्व. ८)

स्वरूपत्वेन वा विप्रा, धर्मत्वेन वा मिदा।
अपिवर्ष शतेनापि, वस्तुनोननिरूप्यते।। (टी.)

सापेक्षत्वा त्सावधेश्च, तत्त्वे द्वैत प्रसङ्गतः।
एकाभावादसंदेहा, न्नरूपं वस्तुनोभिदा।। (चित्सु. २)

अन्यतोऽन्यस्य भदेः स्या, न्नैकस्यैव सदा खलु।
अन्यत्वं वस्तुनो भेदे, सिद्धे सिध्यति यौक्तिकम्।। (सू.सं. ५।१०)

विशेषणां विशेष्यं च, संबन्धं लौकिकीं स्थितम्।
गृहीत्वा संकलय्येतत्, तप्पा प्रत्येति नान्यथा।। (टी.)

उपादेयवस्तु सदा हितकारक नहीं होती ये नकार के अर्थ हैं।

मकार मम शब्द का अर्थ है—मम का एक म लुप्त हो गया नमम से ही नमः बना है इसीलिए चतुर्थी शब्द मात्र है, वस्तुतः नहीं कहा गया।

ॐ शब्द सर्वार्थ वाचक कहा गया है सर्वार्थ है शिव।

हे विप्रों! सौ वर्षों में भी वस्तु तत्व के स्वरूपतः या धर्मतः भेद सम्भव ही नहीं है।

सापेक्षता या सावधि की दृष्टि से प्रसंग वश तत्व में द्वैत प्रतीत हो भी तब भी एकातिरिक्त का अभाव होने से असंदेह से सिद्ध है कि वस्तु रूप में कोई भेद नहीं।

अन्य का अन्य से भेद हो सकता है, किन्तु एक का भेद कैसे सम्भव है और वस्तु का अन्यत्व भेद सिद्ध होने पर भी निश्चित ही वह युक्तिगत होगा श्रुतिगत नहीं होगा। (क्योंकि वस्तु तत्व तो एक ही है।)

अर्थानुसन्धान की प्रक्रिया में विशेषण-विशेष्य-सम्वन्ध लौकिक स्थिति इन सबका संकलन करके ही आगे बढ़ने पर अर्थ प्रत्यय होगा अन्यथा नहीं।

युगपद्ग्रहणायोगा, दनवस्था प्रसंगतः।
परस्परा श्रमत्वाच्च, धर्मभेदेपि नाक्षधीः।। (चिन्सु. २)

गुणवादस्तु।। जैमिनिसू. १।२।१०। स–आत्मनो वपाभुदखिदत्। श्रुतिः। नित्यः कश्चिदर्थः प्रजापतिः-वायुः आकाशः आदित्यो वा। स आत्मनो वयां-वृष्टिं वायुं रश्मिं वा उदखिनत्। वैद्युते आर्वो स लोकिके वा अग्नौ प्रागृह्णात्, ततो-अन्नं वीजं विसद् वा तमालम्य पशून्प्राप्नोति इति गौणाः शब्दाः। (शाबर भा.) चत्वारि शृङ्गा./ शा.भा.- याग स्तुतिःचतस्नो होत्राः श्रृङ्गा सीस्वास्य। त्रयो पादा-सवनदभिप्रायं, देशीर्षे-पत्नी यजमानौ। सप्त हस्तासः-छन्दांसि। त्रिधावद्धः-त्रिभिर्वेदैः। ऋषभः कामान्वर्षीति। रैन्रवेति शब्द धर्मा। महोदेवोमर्त्यामनुष्याधिकारः।

सतः परमविज्ञानम्।। (जै.सू. १।२।४२) नियमानोप्यर्थः प्रमादालस्यक्षिम नोंपलम्यते। निगम निरुक्त व्याकरण धातुतोर्थः कल्पयितव्यः। (शाब. भा.) सृण्येव जर्मरी तुर्फरीतू. (क्. वे.)।

स्मृत्याचार प्रमार्णाधिकरणाम्–अपि वा कर्तृ सामान्यान्प्रमाण मनु मा नं स्यात्। (जै.सू. १।३।२)

शाखानांविप्रर्थार्णात्वा, पुरुषां प्रमादतः।
नाना प्रथणा स्थत्वा, त्स्मृतेर्मूलं दृश्यते।। (तन्त्रवार्तिकार)

श्लोक की हिन्दी नहीं हुई है।

गुणवादस्तु जैमिनिसूत्र। स = का अर्थ है—(नित्य को अर्थ है वह प्रजापति का बोधक) वह प्रजापति वायु-आकाश अथवा सूर्य वह अपनी वपा को अर्थात् वायु-वृष्टि-रश्मियों को प्रसारित करते हैं। नभगत विजली या लौकिक अग्नि में डाला गया वह द्रव्य फिर अन्न-बीज-लतादि के आश्रय से पशुओं को प्राप्त होता है शब्द गौण है यज्ञ की महिमा—चार होता, ही चार शृङ्ग हैं, तीन पाद ही त्रिविध सवन प्रातसवन सायं सवनादि। दो शीर्ष हैं यजमान व यजमान पत्नी। साथ हाथ हैं, सात छन्द हैं। तीन स्थानों से बँधा=तीन वेदों द्वारा वद्ध। ऋषभ=कामनाओं की वर्षा करने वाला, रोरवीति=शब्द करने वाला महादेवोमर्त्यां अविवेशः=मनुष्याधिका है यज्ञ।

सत का अविज्ञान=विधमान भी अर्थ प्रमाद-आलस्यादि द्वारा उपलब्ध नहीं होता निगम-निरूक्त व्याकरण-धातुओं से अर्थ कल्पना करनी चाहिए जैसे (जर्फरी तुर्फरी)।

स्मृति जन्याचार विषयक प्रमाण अधिकरण—कर्तृ सामान्य से भी प्रमाण का अनुमान होता है।

शाखाओं के यत्र तत्र भिन्न रूपों में होने से, पुरुषों के प्रमाद वश विविध प्रकरणों

न चावश्यं मन्वादयः सर्वं शाखाध्यायिनः।

तं हि प्रयत्नेन शाखान्तरापर्यायिभ्यः युत्त्वार्थ मत्रं स्व वाक्यै-सर्वस्मरणार्थं निवध्नीयुः। (तन्त्रवार्तिकार)। ये दृष्टार्था ते तत एव प्रमाणं, ये त्वदृष्टार्था स्तेषु वैदिक शब्दानुमानम्।

शिखा, प्रवा, गुरु अनु गमनम् तन्नियमाहधृस्य त्वैकात्तैतैवानन्यगतित्वात् पुरुषार्थता। तेन स्मृतीनां प्रयोजवती प्रामाण्यसिद्धिः। तत्र यावद्धर्भ मोक्षसम्बन्धि तद्वेदप्रभवम्। य स्वार्य सुखविषयं, तल्लोक व्यवहारपूर्वकमिति विवेक्तव्यम्।

एवेति हासपुराणायोरप्युषदेश वाक्यानां गतिः। उपाख्यानानित्वर्थ वादेषु व्याख्यातानि। पृथिवीविभाग कथनं तद्धर्माधर्मसाधन फलोपभोग प्रदेर्शा विवेकाम। किंचिद्दर्शनपूर्वकं किंच्चिद्वेद मूलम्। (तन्त्र वा.)

उत्सर्गश्चापवादश्च, सर्वत्रैवोपलभ्यते।
तत्र नोत्सर्गामात्रेण, सर्वमेवावरुध्यते।।

विषयाविषयौ ज्ञात्वा, तेनोत्सर्गापवादयोः।
वाधावाधौ विवेक्तव्यौ, न तु सामान्य दर्शनात्।। (तन्त्र वा.)

के होने से स्मृति में मूल है ये दिखता है मनुजी ने भी ऐसा पुरुष नहीं देखा जिसने सभी शाखा पढ़ी हो।

मनु ने प्रयत्न पूर्वक अन्य अन्य शाखाओं के अध्येताओं से सुनकर अर्थ मन्त्र आदि अपने वाक्यों में लिख लिए भूल न जाये इसलिए। जो दृष्ट थे वे तो प्रत्यक्षतया प्रामाण्य कोटि में आ गये किन्तु जो अदृष्टार्थ थे वे वैदिक शब्दानुसार नत्वात् प्रमाण माने गये।

शिखर प्याऊ व गुरु को अनुगमन

इससे स्मृतियाँ प्रयोजनवती है ये प्रमाण सिद्ध हुआ जितने भी धर्म मोक्षंसम्बन्धी हैं वे सब वेद द्वारा ही समुद्भूत हैं, जो स्वार्थ सुख विजय हैं वे सब लोक व्यवहार पूर्वक होते हैं उसे विवेचन करना चाहिए।

इसी प्रकार इतिहास पुराण आदि के उपदेश वाक्यों को भी जानना चाहिए। उपाख्यान तो अर्थवाद में प्रवृत्त किये गये, पृथिवी विभाग कहना उसके धर्म अधर्म साधन व फलादि का उपभोग सब प्रदेश ज्ञान के लिए है कुछ दर्शन मूलक कुद वेद मूलक है।

उत्सर्ग व अपवाद सभी जगह मिल जाते हैं, उत्सर्ग मात्र से ही सब अवरूद्ध नहीं होता। विषय और विषयी को जानकर उसी से उत्सर्ग व अपवाद के वाध व अवाध का विवेचन करना चाहिए केवल सामान्यतया नहीं पहले सिंहावलोकन कर लो।

अय वालां युवक्ष्यामि। ऐं क्लीं सौः। दक्षिणामूर्तिः–ऋ.। पङ्क्तिः–छ.। त्रिपुरावाल-दे.। क्लीं–रा.। सौः-वी.।।

ध्यानम्

रक्ताम्वरां चन्द्रथलावतंसां, समुघदादित्यनिमां त्रिनेत्राम्। विछाक्षमालामय दानहस्तां, ध्यायामि वालां अरु साम्मुजस्याम्। लश्त त्रयं जयेन्मन्त्रंम्। (मन्त्र होदधिः ८)

वर पीयूषकलश,-पुस्तका मीति धारि रणीम्।
सुधां स्ववन्तीं ज्ञानाप्तौ, ब्रह्मरन्ध्रे विचिन्तयेत्।।
शुक्ताम्बरां शशांकामां, रोगनाशे स्मरेच्छिवाम्।
अकारादिक्षकारान्त-,वर्णावयव रूपिणीम्।। (मन्त्र होदधिः)

शाप मोचनम्

ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः सौः क्लीम्। इति नवार्णास्य रातं जापेन शापमुक्तिः।

मन्त्रौ

चैतन्या ह्लादिमन्त्रौ जप्त्वौ, निष्कीलता करौ। चेतनी मन्त्रः–ऐं ई औ। आह्लादिनी म.–ऊं क्लीं नमः।

ऐं क्लीं सौः ये बाला त्रिपुर सुन्दरी मन्त्र है, इस मन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि है पङ्क्ति छन्द, त्रिपुरा बाला देवता है, क्लीं शक्ति, सौः बीज है।

जिन जगदीश्वरी के दिव्य वपु पर रक्त साटिका शोभित है चन्द्र कला जिनके मुकुट प्रान्त पर शोभित है, त्रिनयना माँ की दिव्याभा उदाचलासीन सूर्य के समान है, विद्या-अक्षमाला-अभयदान संयुक्त हाथ वाली उन जगदम्बा का मैं ध्यान करता हूँ जो लालकमल पर विराजमान है। तीन लाख जपने से पुरश्चरण होता है मन्त्र सिद्ध होता है।

वरमुद्रा-अमृतकलश-पुस्तक-अभयमुद्रा शोभित चार हाथ वाली अमृत स्राविणी देवि का ज्ञान प्राप्ति के लिए ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करे। श्वेत वस्त्रायुक्तचन्द्राभ सम्पन्न अकारादि क्षकारान्त वर्ण स्वरूपा माँ शिवा का रोग नाश के लिए ध्यान करें।

शाप मोचन

ऐं सें स्रौः, क्लीं क्लीं ऐं, सौः सौः क्लीं इस नवार्ण मन्त्र का सौ बार जप करने से शाप मुक्ति होती है।

चैतन्यीकृत व आल्हादित मन्त्र ही जपना चाहिए निष्कीलन भी करें। चैतन्य संस्कार—ऐं ई औं। आल्हादक संस्कार—ॐ क्लीं नमः।

बीज त्रयाणां दीपन त्रयम्-ऐं-वद वद ऐं। नवार्णाः। क्लीं-क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु ।११। सौः-ॐ मोक्षं कुरु।५।

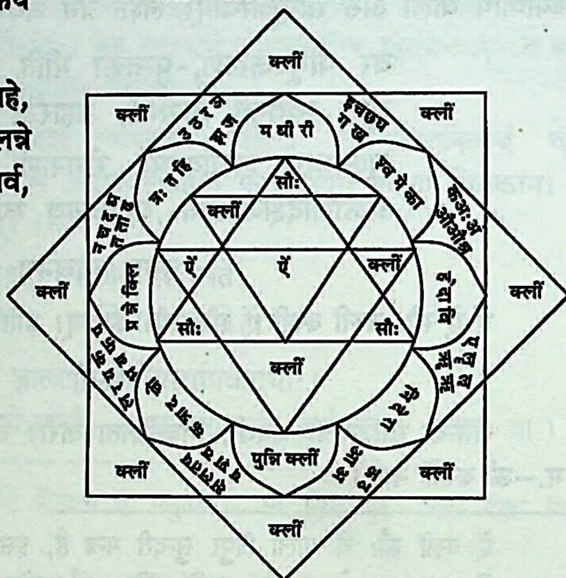
दीपिनायन्तण वाला राधितापिनप्तिध्यति।।

(मन्य महोद. ८)

कामान्त्यवाणी वीजानिमुक्तये नियतो जपेत्-क्लीं सौ. ऐं।

क्लीं त्रिपुरा देवि विद्महे, कामेश्वरि धीमहि। तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्। गायत्री त्रिपुरा सर्व, सिद्धिदा सुर सेविता।।

श्री बाला धारणा यन्त्रः



शिव शक्ति मयं ह्येतत्प्रंत्यक्षं दृश्यते जगत्।
लिंगां कं च भगों कं च नान्यदेवांकितं कचित्।। (स्क.पु.कौ. १२)

तीन बीजों का तीन बार दीपन—ऐं—वद वद वाग्वादिनी ऐं—(नवाक्षर)। क्लीं—क्लिन्ते क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु (ग्यारह अक्षर)। सौः—ॐ मोक्षं कुरु (५ अक्षर)।

दीपन बिना आराधित वाला सिद्धि प्रदान ही होती।

ऐं ये वाक् बीज है—वाग्बीज अन्त में करके जपने से मुक्ति प्राप्त होती है—क्लीं सौः ऐं।

क्लीं त्रिपुरा देवि को हम जाने, कामेश्वरि का ध्यान करें। वह क्लिन्ते हमें सत्मार्ग पर प्रेरित करे। ये त्रिपुरा गायत्री सर्व सिद्धि प्रदा है देवता द्वारा भी पूजित है।

श्री बाला त्रिपुर सुन्दरी का ये मन्त्र है—ये जगत् प्रत्यक्षतया शिव शक्ति रूपात्मक दिख रहा है। यावत् स्त्रीत्वावच्छिन्न संरचना है वह शक्ति द्योतक भागांकित है यावत् पुंस्त्वा वच्छिन्न संरचना है वह शिवतद्योतक लिङ्गाङ्कित है।

अङ्गिरसः सुभा-भार्या सन्ततिः—वृहत्कीति, वृहज्ज्योति, वृहद्ब्रह्मा, वृहद्मनाः, वृहन्मन्त्रो, वृहदभासः, वृहस्पतिः। (महामा. वनप. १२१८)

कन्याः—भानुमती, रागा, सिनीवाली, अविष्मती, अर्चिष्मती, महिष्मती, महामती, कुहू। (वहामान्धन.)

वृहस्पति सन्ततिः—शंयुः, भरतः।

मलम्

मायोयं नामयोषोत्थं, पौरुषं कार्मकंमलम्।
आणावं नाम संयुक्तं, मिलितं तन्मलद्वयम्।। (प्रपञ्चसा-१।१३)
ऋषयो ज्ञान लिंगं च चिरं स्थानेति नाम च।। (स्क. पुन्कौ. १३)
तपसा शंकरस्तुष्येत्, कर्मणा च पितामहः।
यज्ञैर्व्रतोपवासैश्च, तुण्य द्विषणुः सनातनः।
ददाति केवलं भावं, येन कैवल्य माप्यते।। (स्क.पु.के. ३०।१४)
निरंतरं निर्गुणां ज्ञप्तिमात्रं, निरंजनं निर्विकारं निरीहम्।
सत्तामात्रं ज्ञानंगम्यं स्वसिद्धं, स्वयं प्रभं सुप्रभं बोधगम्यम्।।
(स्क.पु.के. ५३)

अंगिरा ऋषि पत्नी सुभा इनसे पुत्र हुए—१. वृहत्कीर्ति, २. वृहज्ञ्योति, ३. वृहदुह्मा, ४. वृहद्मना, ५. वृहत्मन्त्र, ६. वृहत्भास, ७. वृहस्पति।

पुत्रियाँ—१. भानुमती, २. रागा, ३. सिनीवाली, ४. अविष्मती, ५. अर्चिष्मती, ६. महिष्मती, ७. महामति, ८. कुहु।

वृहस्पति के पुत्र शंयुः एवं भरतः (भरद्वाज)।

स्त्री समुत्पन्न मल माया है, पौरुष मल कार्मक है। इन दोनों मलों के (माया व कार्मक) संयुक्तरूप को आणव मल कहते हैं।

ऋषि ज्ञान लिङ्ग की चिरस्थान नाम से पूजा करते हैं।

तपस्या से शिव प्रसन्न होते हैं विविध कर्मों से ब्रह्मा जी यज्ञ व्रत उपवासादि से विष्णु प्रसन्न होते हैं केवल भाव प्रदान करते है। जिससे कैवल्य प्राप्त होता है।

निरञ्जन-निर्गुण-निर्विकार-निरीह, ज्ञानरूप निरन्तर सत्तात्मक स्वसिद्ध ज्ञानगम्य, स्वयं प्रभावान-सुन्दर प्रभावान ज्ञानैकमात्र गम्य है महादेव।

संस्मृतिः कल्यनामूलं, रज्जु वुद्धिर्यथोरगो।
सिद्धिः स्वातन्त्र्य वर्तित्वं, पारतन्त्र्यंहिवन्धनम्।। (स्क.पु.के. ५६)
मुक्तः स्वातन्त्र्य भावनः।
ज्ञानिजस्तेहि विद्वांसरे, वीतरागा जितेन्द्रियाः।
यैस्त्यक्तो ममता भावो, लोभ कोपौ निराकृतौ।। (स्क.पु.के. ५६)
यावत्कामश्चलोमश्च, राग द्वेषौव्यवस्थितौ।
नाप्नुवन्ति च तां सिद्धिं, शब्द मात्रैक बोधकाः।। (स्क.पु.के.)
एकोह्यनेकधा चैव, दृश्यते भेदभावनः।
यथा भ्रमरिका द्रष्टा, श्रम्य ते च महीयम!
तथात्मा भेद बुद्धया च, प्रतिभाति ह्युनेकधा।। (स्क.पु.के. ७१)
मायामयोऽयं संसारो, ममता लक्षणो महान्।
ममतां च वहिः कृत्वा, सुखं वधा प्रमुच्यते।। (स्व.पु.के. ३०।७४)

ये संसृति कल्पना के कारण ही है जैसे रज्जु में सर्पोदि बुद्धि हो जाती है, स्वतन्त्र भाव में जीना सिद्धि है परतन्त्रता ही बन्धन है।

स्वतन्त्र भाव ही मुक्ति है।

वास्तव में वही ज्ञानी है—विद्वान है, जितेन्द्रिय है, वीतराग है, जिन्होंने ममता व लोभ क्रोध त्याग दिया है (अन्यथा बड़े नाम दर्शन छोटे तो सारे जग में भरे है) ममत्व चला गया-लोभ का लेश नहीं रहा—क्रोध शान्त हो गया है यही अवस्था है ज्ञानी की सच पूछो तो यही सन्त हो सकता है बाकी सब व्यर्थ है।

जब तक काम लोभ रागद्वेष नहीं मिटेगें, तब तक सिद्धि नहीं मिलेगी शब्दाडम्बर से क्या।

एक होने पर भिन्न होकर अनेक कैसे दिखता है जैसे घूंमर (तेज घूमने पद) को ये पृथ्वी घूमती नजर आती है, वैसे ही आत्मा ही भेद बुद्धि के कारण अनेक रूपों में प्रतिभासित हो रहा है। हे यम!

ये संसार मायामय है ममता रूपात्मक है ममता को त्यागते ही सुखपूर्वक इस बन्धन से मुक्त हो जाओगें।

उपजागलस्तनस्येव, प्रपञ्चोयं निरर्थकः।
तस्मांत्सर्व प्रयत्नेन, आत्मानं स्मर वै यम?।। (स्व.पु.के. ७६)

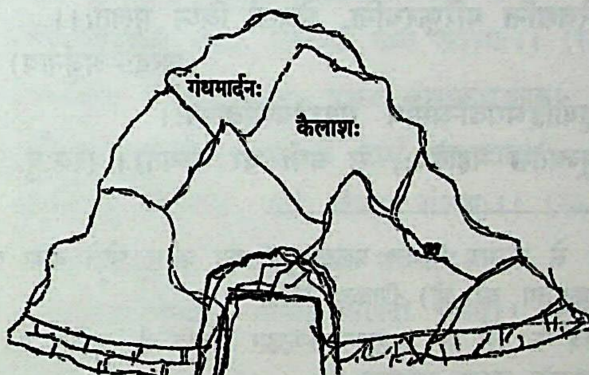
ददाह तंकाल मनेक वर्णां, न्यात्ताननं भी मबहूग्र रूपम्। शिवः—श्येतरक्षार्थम्।
(स्व.पु.के. ३२।३७)

शिवः

वीरभद्रः (शिवरात्रिप्रसंगेन)

विचित्रवीर्यः (स्व.पु.के. ३३)

दुःसहः कर्मचाण्डालः



बकरी के गले में लटकते स्तन के समान ही ये प्रपंच भी व्यर्थ है, हे यम! इसीलिए सर्वप्रयासों द्वारा आत्मा का ही स्मरण करो।

अपने भक्त राजा श्वेत की आयु पूर्ण होने पर उनको लेने यमदूत-यम-काल आये यम तो समझ गये शिवभक्तिनिष्ठ राजा के समीप नहीं गये, किन्तु काल क्रोधपूर्वक जैसे पहुँचा राजा के पास समाधि लीन भक्त की रक्षा में शिव जी ने तृतीय नेत्राग्नि से अनेक वर्ण के भयंकर उग्ररूप वाले काल को जला दिया ये है भक्त वत्सलता भक्त के आग्रह पंर जिला भी दिया।

स्वेच्छा चारिणी विधवा ब्राह्मणी को किसी चण्डाल के संसर्ग से दुःसह नामक अधमाधम पुत्र प्राप्त हुआ, किन्तु एक दिन चोरी के भाव से शिवालय गया शिवरात्रि में प्रसंगतः व्रत हुआ दर्शन हुआ तथा जागरण भी हो गया—फलतः पुण्यात्मा का फिर चित्रांगद राजा का पुत्र विचित्रवीर्य बना। रातभर रोता शिव भक्ति में लीन रहता था सायुज्य मुक्ति प्राप्त

वासुकिः कण्ठलग्नश्च, कम्ब लश्वतरौ कर्ण भूषणौ। (स्क.पु. ३४।३५)

दृष्ट्वा तौ दम्पती शुद्धौ, राजमानौ जगत्रये।
अभिन्नौ भेदमापन्नौ, निर्गुणौ गुणिनौ च तौ।। (स्क.पु. ५१)

द्योषिद्भिः संगतिः पुसां, विडम्बायोपकल्पते। (नारदः)

योषि त्संगतिमात्रेण, पुंसांपतनमेव च। (शिवः) (स्क.पु. ३५।४९)

मसाकस्थायिनं मृत्युं, यदिपश्येदयं जनः।
आहारोपिन रोचेत, किमुता कार्य कारिता।।
(स्क.पु. कौमारिकाव. १।४६)

मुनीनामपि चेतांसि, तीर्थ यात्रासु पाण्डव!।
रिवद्यन्ति परिफुरयन्ति, श्रेयसां विघ्न मूलतः।।
(नारदः–अर्जुनाय) स्क.पु. २।४)

वृषोहिभगवान्धर्मोव वृषभोयस्यवाहनः।
पूज्यतेस महादेवः, स धर्मः पर उच्यते।। (स्क.पु. ४४)

की। तथा शिवांश से वीरभद्र बनकर प्रकट हुआ इस प्रकार भोले बाबा की अल्पोपासना से जीव को (निकृष्टतम को भी) शिवत्व मिला।

भगवान शिव के गले का आभूषण कण्ठहार वासुकि है, कम्बल एवं अश्वत नामक नाग कानों के कुण्डल सदृश आभूषण हैं।

ये दोनों उमामहेश्वर परिशुद्ध हैं तीनों लोकों में शोभित है। अभिन्न होने पर भी लीलया भिन्न हो गये हैं निर्गुण होने पर भी सगुण हो गये हैं।

नारद—स्त्रियों का संग पुरुष के जीवन को विडम्बना का पात्र बना देता है।

शिव—स्त्रियों का संग करने मात्र से पुरुष का पतन हो जाता है।

यदि ये प्राणी शिर पर बैठी मौत को देख ले (समझले) तो इसे भोजन भी अच्छा न लगे फिर अकार्यों के करने की तो बात ही क्या।

नारद अर्जुन से—हे पाण्डव! तीर्थयात्रा में बड़े-बड़े यति मुनियों का भी चित्त खिन्न हो जाता है, उन्हें कोप आ जाता है, क्योंकि शुभकर्मों में विघ्न होते ही हैं। (अव्यवस्थायें अधिक परिश्रम के कारण तितिक्षा भी डोल जाती है)।

धर्म ही वृषभ है और नेक वृषभ (धर्म) की सवारी करने वाले हैं महादेव शिव वे धर्म से भी परे है इसीलिए पूज्य हैं।

सदाचारः—शिष्टै र्धर्म वुध्या नुष्ठीयमानोःऽलौकिको काव्यवहारः।

(मधुसूदन सरस्वती, गी.टी. २।११)

दातुरेवोपकाराय, वदत्यर्थीति देहि मे।
यस्माछाता प्रयात्यूर्ध्वं, अधस्ति ष्ठे प्रतिग्रही।। (स्व.पु.कौ. २।६७)

नारदः

कौपीन दण्डात्म धनो, धनं स्वल्पंहि नास्ति मे।

(स्व.पु.कौ. १००)

न्यायार्जितं च योदद्याद्, यौवने स दश्नुते।
तमो वृतस्तुयो दद्यात्, भयात्त्रोधात्तयैव च।
मुङ्क्ते दानफलं तद्धि, गर्भस्थो नाव संशयः।। (स्व.पु.कौ. १०३)
कलत्वेपि च सोऽश्नाति, यक्षतं दम्भकारणात्।
दत्तंमन्यायतो वित्तं, तथा वै चार्य कारणात्।
वृद्धत्वेहि समश्नाति, नरो वौनाव संशयः।। (स्क.पु.कौ. १०५)
यद्यप्ययंत्रिभुवने, अर्थोऽस्माकं पराग्रहि।
तथात्यन्यप्रार्थितोहि, तस्मैव फलदो भवेत्।। (स्क.पु.कौ. ११२)

सदाचार—शिष्टजनों द्वारा धर्म बुद्धि से अनुष्ठीयमान लौकिक व्यवहार ही सदाचार है।

याचक (माँगने वाला) दाता (देने वाले के) कल्याण के लिए ही कहता हूँ कि दो मुझे, जिससे दाता अभ्युन्नति पाता है प्रतिग्रही नीचे रह जाता है।

नारद—कौपीन दण्ड और आत्मधन वाला हूँ मेरे पास कमधन नहीं है।

न्यायोपार्जित धन का दान करने पर उसका फल युवावस्था में मिलता है, तामसिक भाव भयपूर्वक क्रोध पूर्वक दिया गया दान उसका फल गर्भावस्था में प्राप्त होता है।

दम्भपूर्वक दिया दान वचपन में फलीभूत होता है।

अन्यायपूर्वकोपार्जितधन-धन प्राप्ति के निमित्त दान करने पर उसका फल वृद्धावस्था में प्राप्त होता है।

यद्यपि तीनों लोकों में धन हमारे लिए पराग्र ही है, फिर भी दूसरे से माँगने पर जिससे माँगा जाता है उसी को उसका फल मिलता है।

आश्रमंभृगोः

यत्ररेवा नदीपुण्या, सप्त कल्प स्मरावरा।
यथा सा पिङ्गला नाड़ी, देहमध्ये व्यवस्थिता।
इयं ब्रह्माण्डपिण्ऽस्य, सथाने तस्मिश्रकीर्तिता।। (स्क.पु.कौ. ३।५)

तत्रास्तेशुकतीर्थाख्यं, रेवायांपाप नाशनम्।

दुर्लभ पञ्चकं-भारते जन्म, मनुष्यता, ब्रह्मणत्वं, मुनित्वं, तपः सिद्धः।।
(स्क.पु.कौ. ३६)

नरोहि गृहिणी हीनो, अर्धदेह इति स्मृतः।

यो नरः स्त्रीषु देहेषु, अनरूपस्त्व सौ पशुः।
अनयोर्हि फलंग्राह्यं, सारता नाथ काचन।। (स्क.पु.कौ. ६६)
परार्थायभवत्येष, पुसणोऽन्ये पुरीषकाः। (स्क.पु.कौ. ७०)

भृगु आश्रम (भड़ौच) गुजरात

जहाँ पवित्रतम नर्मदा नदी है जिसका स्मरण सप्त कल्प तक फल देता है। हे अर्जुन! जैसे शरीर के मध्य भाग में पिंगला नाड़ी है ठीक वैसे ही ब्रह्माण्ड के मध्य भाग में नर्मदा है इनका (नर्मदा) स्मरण पूजन स्नान जलपान दिव्यफल देता है।

नर्मदा में वहाँ शुक्ल तीर्थ है जहाँ ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होते हैं स्नान करते ही। इसी के उत्तर तट पर भृगु आश्रम था।

पाँच बहुत दुर्लभ हैं—१. भारतवर्ष में जन्म, मनुष्यता, ब्राह्मणत्व, मुनि होना उतने पर भी तपलीन होना बहुत-बहुत दुर्लभ।

मनुष्य पत्नी बिना अधूरा है (देहार्ध है)।

जो पुरुष (स्त्री में व देह) में आसक्त है वह इनका पशु है इन दोनों स्त्री व देह का फल लेने में ही निपुणता है **क्योंकि (स्त्रीका फल पुत्र, देह का फल मोक्ष है)** ये दोनों सारहीन है।

एक लाइन की हिन्दी छूटी है।

सागर मही संगमः

कल्लोल कोला हल कौतुकी तटे।
उपविश्येद मचिन्त यंतदा।। (नारदः) (स्क.पु.कौ. ८६)

ये कहां है अन्वेषणीय है मालव प्रान्त से निकलकर दक्षिण सागर में मिली।

द्रव्यं त्रिविधम् (स्क.पु.व्यौ. ४।३-५)

शुक्लं-उत्तमम्-श्रुतेः संपादनाच्छिण्यात्।
शबलं-मध्यं-कृत्पीद वाणिज्य कृषि याचित मेव च।
कृष्णं-अधमं-द्यूत चौर्य साहस व्याजै रुपार्जितम्।

झुल्कवितेन योधर्मं, प्रकुर्याच्छ्रूद्धयान्वितः।
तीर्थं पात्रं समासाद्य, सदेवत्वे समश्लुते।।६।।

राजसेन च भावेन, वितेन शवलेन च।
प्रदद्याद्दान मर्थिभ्यो, मानुष्यत्वे तदश्नुते।।७।।

सागर मही संगम

नारद कहते हैं—कल्लोल-कोलाहल से कौतुकमय उस दिव्य मही नदीं के सागर मिलन की ये भावमयी अवस्था देख मैं बैठ गया और चिन्तन करने लगा। ये महीनदी कौन सी है तथा दक्षिण सागर में यहाँ मिली है। ये अन्वेषण का विषय है क्योंकि है दिव्यतम।

द्रव्य तीन प्रकार का होता है

१. शुक्ल-उत्तम—वैदिक कर्म करने से अथवा शिष्यों से श्रद्धापूर्वक सम्प्राप्त धन।

२. शवल मध्य—नौकरी-व्यापार-कृषि-याचना द्वारा अर्जित धन।

३. कृष्ण-अधम—जूआ-चोरी-डाका-ठगी व्याजादि से उपार्जित धन।

सश्रद्धः शुक्ल (उत्तम) वित्त से धर्म करने वाला तीर्थपात्र होकर देवयोनि में दान फल पाता है।

रजोगुणी भाव से शवल (मध्यम) धन याचकों को दान करने पर मनुष्य योनि में फल भोगता है।

तमोवृत्तस्तु यो दद्यात्, कृष्ण वृत्तेन मानवः।

तिर्यक्त्वे तत्फलां प्रेत्य, समशाति नराधमः।।८।।

द्विहेतुं[१] षऽधिंष्ठानं[२], षडंङ्गं[३] च द्विपाँकयुक्[४]।

चतुः प्रकारं[५] त्रिविधं[६], त्रिनाँशं दान मुच्यते।। (स्क.पु.कौ. १७)

१. श्रद्धा, शक्तिः। २. धर्ममर्थं च कामं चव्रीडाहर्षमयानि च। ३. दाता प्रतिगृहीता शुद्धि र्देणं धर्मयुक् देश कालौ। ४. परत्रेह च। पन्द्भ्यो यद्दीयतेकिंचित्, तत्परत्रोपतिष्ठति। असत्सुदीपतेकिंचित्, तद्दानमिहभुज्यते। (स्क.पु.कौ. ७१)

५. ध्रुवं—प्रमारामतडागादि सर्व काम फलम्। त्रिकं—अपत्यस्त्री बालविजयार्थम्। नैमित्तिकं—कालापेक्षांक्रियापेक्षं गुणपेक्षं होमरहितम्। काम्यम्—इच्छा संर्स्थम्।

(स्क.पु.कौ. ४।७३)

६. अष्टोत्तमानि—गृह प्रासाद विद्या भू गो कूप प्रारण हाटकम्। चत्वारि मध्यमानि—अन्नारामंवासांसि वाहनम्। कनीयां सिशेषानि—उपानच्छचपात्रादि। (७६)

तामसिक भाव से कृष्ण (अधम) धन दान करने पर तिर्यक् (पशुपक्षी) योनि में फल पाता है।

१. दान के दो हेतु होते हैं—१. श्रद्धा, २. शक्ति।

२. दान के ६ आधार होते हैं—१. धर्म, २. अर्थ, ३. काम, ४. ब्रीडा, ५. हर्ष, ६. भय।

३. दान के ६ अंग होते हैं—१. दाता, २. प्रतिग्रहीता, ३. शुद्धि, ४. धर्मपूर्वक दान, ५. देश, ६. काल।

४. दान २ पाक वाला है—१. यहाँ इस लोक में, २. अगले जन्म में। सज्जनों को दिया दान परलोक में (दो बार फलित होता है) असज्जनों को दिया दान यहीं फलित होता है (नाम हो जाता है यही दान फल है)।

५. दान चार प्रकार का होता है—१. ध्रुव—प्याऊ-वाग-तालाब-धर्मशाला-विद्यालय-आश्रमादि सर्वफलप्रद और स्थायी होते हैं। २. त्रिक—पुत्र-पत्नी-वालकादि की प्रीति के लिए। ३. नैमित्तिक—काल ग्रहादि (समय) पुत्र जन्मादि क्रिया-गुण आदि का ध्यान करके होम रहित दान। ४. काम्य—इच्छानुरूप।

६. दान तीन प्रकार का होता है—१. उत्तम आठ प्रकार का दान। गृह-प्रसाद्-विद्या-भूमि-गौ-कूप-प्राण सोना। २. मध्यम चार प्रकार का दान—अन्न, वाग-वस्त्र-वाहन। ३. अधम जैसे भी दिया—जूता, छाता, पात्रादि।

७. यद्दत्त्वा तप्यते–आसुरम्। अश्रददया–राक्षसम्। आकुश्य–दैशाचम्।
(नारदः–धर्मवर्म शो) (स्क.पु.कौ. ८२,८३)

न क्षेयानि ९–सामान्यं याचितं न्यासं, आधि दानंच तद्धनम् अन्वाहितं चनिः क्षेपः सर्वस्वं चा न्वये सति।



अनाचारो विप्रः–कर्णवर्जितानौः। अनधीयानः ब्रह्मणः–तृणाग्निरिव। मूंर्खः–ऊषरः, मित्रमाण्डाम् भस्म। (स्का.प्र. ५।१२)

---

७. तीन प्रकार का दान नष्ट हो जाता है—१. आसुर को मिलता दान करके पश्चात्ताप करने पर दान नष्ट होना। २. राक्षस को मिलता है अश्रद्धा पूर्वक दिया दान राक्षस कोटि का। ३. पिशाच को मिलता है अपमान करके गाली देकर गर्वपूर्वक।

अदेय है—१. सामान्य—अत्यन्त तुच्छ या सबके अधिकार की वस्तु, २. याचित—माँगी हुई, ३. न्यासः—धरोहर, ४. आधि—बन्धक रखी वस्तु, ५. दान—दी गयी वस्तु, ६. दानधन—दान में प्राप्त, ७. अन्वाहित—दूसरे के यहाँ रखी वस्तु को फिर उससे दूसरे के यहाँ रख दिया है, ८. विक्षिप्त—किसी के विश्वास पर उसके यहाँ छोड़ी वस्त्र, ९. सान्वय सर्वस्व—परिवार वालों के रहते सर्वस्व देना। इन नौ प्रकार के द्रव्य का दान करना निषेध है।

नौ अदेय है—१. सामान्य—अत्यन्त तुच्छ या सबके अधिकार की वस्तु, २. याचित—माँगी हुई, ३. न्यासः—धरोहर, ४. आधि—बन्धक रखी वस्तु, ५. दान—दी गयी वस्तु, ६. दानधन—दान में प्राप्त, ७. अन्वाहित—दूसरे के यहाँ रखी वस्तु को फिर उससे दूसरे के यहाँ रख दिया है, ८. विक्षिप्त—किसी के विश्वास पर उसके यहाँ छोड़ी वस्त्र, ९. सान्वय सर्वस्व—परिवार वालों के रहते सर्वस्व देना इन नौ प्रकार के द्रव्य का दान करना निषेध है।

आचार रहित विप्र विना नाविक की नाव जैसा है (भगवान मालिक क्या होगा)।

अपठित ब्राह्मण—तृण रहित भूमि की आग जैसा व्यर्थनाशगामी या तिलकों की आग जैसे क्षणिक होती है।

मूर्ख ब्राह्मण—ऊषर भूमि जैसा, फूटेम बर्तन जैसा, अग्नि शून्य भस्म जैसा।

तस्माघेगूढ तपसोगूढस्वाध्याय साधकाः।
स्वदार निरताः शान्ताः, तेषु दत्तं सदाक्षयम्।। (स्क.पु.कौ. ५।१६)

देवर्षेर्छादश्रप्रश्नाः–पात्रपरीक्षा

१. मातृका का कतिधा, २. पंच पचाद्भुती गेहः, ३. बहुरूपां स्त्रियमेकरूपांव्यतुम् ४. चित्र कथो वन्धः, ५. आरविमहाग्राहः, ६. अष्टविधं ब्राह्मण्यम्, ७. चतुर्युगामां मूलदिवसाः, ८. चतुर्दशमनूनां मूल गसराः, ९. मास्करः पूर्वं कस्मिन्दिने रथं प्राय, १०. कः कृष्णाहि रिव भूतान्युद्वे जर्यंति, ११. घोर संकारे दक्ष दक्षतमः कः, १२. कौ द्वौ पन्थानौ।

कलाप ग्रामः

शतयोजनविङ्गीर्णम् यच कृत युगस्यर्थं वीजम्।
सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मत्रं च। (स्क.पु.कौ. ५।३२)
खेचरो हियया=यम्य, परंपारं गतस्ततः।
शतयोजन मार्गं तुहिममार्गम तीत्य केदारं समुपायातः।
आकाशेनसुशक्यः विलेनाथ सदेशकः।
तथा स्कन्द प्रसादतः नान्यथा।

इसीलिए जो गूढ तपस्वी है (दम्भी नहीं) गहन स्वाध्याय साधक है, एकपत्नी व्रती हैं (परदारेसु मातृभावाः) शान्त हैं उनको दिया गया दान अक्षय फल वाला होता है।

पात्र की परीक्षा में नारद जी के १२ प्रश्न—१. मातृका किसे कहते है और वे कितने प्रकार की हैं? २. पंचपंचाद्भुत देह क्या है? ३. बहुरूपा स्त्री एक रूप करने का प्रकार? ४. चित्र वन्ध क्या है? ५. आर्णव महाग्राह क्या है? ६. आठ प्रकार का ब्राह्मण्य? ७. चारों युगों के मूल दिवस? ८. चौदह मनुओं के मूल दिवस? ९. सूर्य ने किस दिन सबसे पहले रथ पाया? १०. कौन कृष्णसर्पवत् जीवों को उद्वेलित करता है? ११. घोर संसार में दक्षतम दक्ष कौन है? १२. दो रास्ते कौन हैं?

कलापग्राम

सौ योजन विस्तार वाला है जहाँ सतयुग के बीज सुरक्षित हैं।
सूर्यवंश सोमवंश और ब्राह्मणों के भी मूल तत्व वहाँ है।
खेचर (आकाशचारी) वर्फ को पार करके तब वहाँ गये।

सौ योजन के हिमाच्छादित मार्ग को पार करके केदार में पहुँचे—आकाश से या

मातृका (सुतनुः)

ॐ = अः = ब्रह्मा, उः = विष्णुः, मः = रुद्रः = सदाशिवः।

१.	अः	स्वायंभुवः—श्वेतः	९.	लृ	ब्रह्मसा.—धूमः
२.	आ	स्वारोचिः—पाण्ड	१०.	लॄ	सद्सा—सुपिसंगः
३.	इः	औत्तमः—रक्तः	११.	ए	दक्षसा—पिसांः
४.	ईः	रैवतः—तम्रः	१२.	ऐ.	धर्मसा. त्रिवर्ण
५.	उः	तामसः—पीतः	१३.	ओः	रोच्यः—सबाः
६.	ऊः	चाक्षुष—कापितः	१४.	औः	मौत्यःकारमन्धुर
७.	ऋ	वैवस्वतः—कृष्णाः	१५.	ं	जरायुजः
८.	ॠ	सावर्णिः—श्यामः	१६.	ः	अण्डजः
	ᳵक ᳵख	स्वेदजः		ᳵप ᳵफ	उद्भिज

पाताल (विल) से अथवा स्कन्द भगवान के कृपा प्रसाद से ही वहाँ जाया जा सकता अन्य कोई विधि नहीं।

उत्तर—मातृका बता रहे हैं सुतनु जी—ॐ = अ = ब्रह्मा, उ = विष्णु, म = रूद्र = सदाशिव।

१.	अ	= स्वायंभुव–श्वेत वर्ण	९.	लृ	= ब्रह्म सावर्णी–धूम्र वर्ण
२.	आ	= स्वारोचिष–पाण्डु वर्ण के	१०.	लॄ	= रुद्र सावर्णी–सुपिसंग
३.	इ	= औतम–रक्त वर्ण	११.	ए	= दक्षसावर्णी–पिसंत्र
४.	ई	= रैवत–ताम्र वर्ण	१२.	ऐ	= धर्मसावर्णी–त्रिवर्ण
५.	उ	= तामस–पीले	१३.	ओ	= रोच्य–सबाः
६.	ऊ	= चाक्षुष–कपिल वर्ण	१४.	औ	= भौत्य–करमधुर
७.	ऋ	= वैवस्वत–कृष्ण वर्ण	१५.	ं	= जरायुज
८.	ॠ	= सावर्षि–श्याम वर्ण	१६.	ाः	= अण्डज
	कᳵ = खᳵ =	स्वेदज (जिह्वामूलीय)		पᳵ = फᳵ =	उद्भिज (उपध्यलीय)

१.	कः	धाता
२.	खः	मित्रः
३.	गः	अर्यमा
४.	घः	शक्तः
५.	ङः	वरुणः
६.	चः	अशुः
७.	छः	भगः
८.	जः	विवस्वान्
९.	झः	सविता
१०.	ञः	पूषा
११.	टः	त्वष्टा
१२.	ठः	विष्णुः
१३.	डः	कपाली
१४.	ढः	पिङ्गलः
१५.	णः	भीमः
१६.	तः	विरूपाक्षः
१७.	थः	विरोहितः
१८.	दः	अजकः
१९.	धः	शसनः
२०.	नः	शास्ता
२१.	पः	शम्भुः
२२.	फः	चण्डः
२३.	बः	भवः
२४.	भः	ध्रुवः
२५.	मः	घोरः
२६.	यः	सोमः
२७.	रः	आपः
२८.	लः	अनलः
२९.	वः	अनिलः
३०.	शः	प्रत्यूहः
३१.	षः	प्रभासः
३२.	सः	दस्रः
३३.	हः	नासत्यः

१.	क	धाता
२.	ख	मित्र
३.	ग	अर्यमा
४.	घ	शुक्र
५.	ङ	वरुण
६.	च	अशु
७.	छ	भग
८.	ज	विवस्वान्
९.	झ	सविता
१०.	ञ	पूषा
११.	ट	त्वष्टा
१२.	ठ	विष्णु
१३.	ड	कपाली
१४.	ढ	पिंगल
१५.	ण	भीम
१६.	त	विरूपाक्ष
१७.	थ	विरोहित
१८.	द	अजक
१९.	ध	सशन
२०.	न	शास्ता
२१.	प	शम्भु
२२.	फ	चण्ड
२३.	ब	भव
२४.	भ	ध्रुव
२५.	म	घोर
२६.	य	सोम
२७.	र	आप
२८.	ल	अनल
२९.	व	अनिल
३०.	श	प्रत्यूह
३१.	ष	प्रभास
३२.	स	दस्र
३३.	ह	नासल

अक्षरा स्तुद्धि पञ्चाशत् मातृकायाः प्रकीर्तिताः। ॐकारः प्रथमः चतुर्दशस्वरास्तया, श्पर्शाश्चैवत्रयस्त्रिगत्। अनुस्वारः विसर्जनीयः जिह्वाम् उपध्मानीयः।। (५२)

भावार्थः कथितस्तत्त्वार्थं शृणु–

(१)

येपुमांसरत्त्वमून्देवा, न्समाश्रित्यकियापराः।
अर्थमात्रात्मवे नित्ये, वदेलीना त एवहि।। (स्क.पु.कौ. ५)

(२)

पंचभूतानि पंचैवकर्म ज्ञानेन्द्रियणि च।
पञ्च विषयाः मनो वुद्धहमेव च।।
प्रकृतिः पुरुषश्यैव, पंचविंशः सदा शिवः।
देहमेतदिदंवेद, तत्त्व तो यात्यसौ शिवम्।।

मातृका में ५२ अक्षर माने गये है—ॐ प्रथम, १४ स्वर, स्पर्शादि—३३, अनुस्वार-विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्माकीय।

१	ॐ
१४	स्वर
३३	स्पर्श
१	अनुस्वार
१	विसर्ग
१	जिह्वामूलीन
१	उपध्मानीय
५२	मातृका

भावार्थ तो कह दिया अब तत्वार्थ सुनो—

उत्तर-१—जो पुरुष देवताओं के आश्रय से क्रिया परायण हुए वे ही अर्धमात्रात्मक नित्य पद में लीन है।

उत्तर-२—५ महाभूत (पृथिवी जल-तेज वायु आकाश)। ५ कर्मेन्द्रियाँ (वाक्-पाणि-पाद्-पायु-उपस्थ) क्रिया सम्पादन हेतु। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र-त्वक्-नेत्रं-जिह्वा-घ्राण) ज्ञानार्जन हेतु। ५ विषय हैं तन्मात्रायें (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध) इन्हीं पाँच में सबयोग समाहित हैं।

(३)

बहुरूप स्त्री-बुद्धिः। नानार्थभजनान्नाना रूपा। धर्मस्यैकस्य संयोद् बहुधाप्येकि का इतियोवेद तत्त्वार्थं नासौ नरक माप्नुयात्।

(४)

मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तं, यन्न मन्येत दैवताम् न्।
सचित्र कथो वन्धः, पच्च कामान्वित वाक्यम्।।

(५)

एक्रो लोभो महा-ग्राहो लोभात्-पापं प्रववर्तते
क्रोधः कायो मोहोमाया स्तम्भो मानं परेप्सुता अविद्या।
देहे स्त्रोतांसि रित्त्यानि, पूरयित्वानि लोवली
करोति विविधान्व्याधीन्, सर्वां गैकांग संश्रितान्।।

(च.चि. २८।१८)

अप्रज्ञता स्तेयं परक्षर्णाम्थ मर्शनं साहसंसर्वं लोभा प्रवर्तते।। (स्क.पु.त्कौ. ५)

---

३ अन्तःकरण (मन-बुद्धि अहंकार)। १ प्रकृति। १—पुरुष। सदाशिव इस प्रकार २५ रूपात्मक सदाशिव हैं इस देह को तत्वतः जानने पर ज्ञाता शिव को पाता है।

उत्तर-३—बहुरूप वाली स्त्री है बुद्धि विविध विषयों के सेवन के कारण वह नानारूपा होती है। एक धर्म के संयोग से ये नानारूपा भी एक रूपा हो जाती है जो तत्वतः इसको जान लेता है वह नरक नहीं जाता।

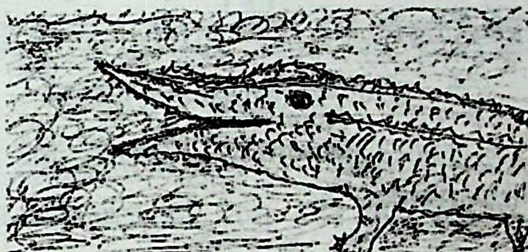
उत्तर-४—जो मुनियों ने भी नहीं कहा—जो देवताओं की मान्यता स्वीकार नहीं करते उसे विद्वानों ने विचित्र वाक्य विन्यास कहा है अथवा कामयुक्त वचन भी इसी श्रेणी में आते हैं।

उत्तर-५—एक लोभ ही महाग्राह है लोभ से ही पाप होता है (लोभ पाप कर मूल) क्रोध-काम-मोह-माया-स्तम्भ-मान-परेप्सा-अविद्या शरीर में स्रोत रिक्त हैं बलवान वायु उनको पूर्ण कर देता है वायु जन्य विविध व्याधियों को उत्पन्न करता है, जो साक्षी अंगों में रहती हैं।

अप्रज्ञता-स्तेय-परस्त्रीदुर्भाव-साहस—सब कुछ लोभ से उत्पन्न होते हैं।

दम्भोद्रोहोनिन्दा पैशून्यं मत्सरः।
लोभ ग्रस्ता (महांत्यपि शास्त्राणि धारयन्ति छत्तारः संशयानां च) व्रजन्त्यधः।।

सलोमः सहकामेन, विजेतव्यो त्रितात्मना।
लोभ कोध प्रसक्ताः शिष्टा चार वर्जिताः।
धर्मावतंसकाः क्षुद्राः मुल्णन्ति ध्वजिनोजगत्।
एतेऽति पापिनो ज्ञेयाः नित्यं लोभ समन्विताः।
तस्मत्त्यजन्ति येलोभं तेऽतिकामन्ति सागरम्।।



दम्भ-द्रोह-निन्दा-चुगली-मत्सरता—सब लोभ ग्रस्त।

बड़े-बड़े लोग बड़े पण्डित शास्त्रज्ञ संशयच्छेत्ता होने पर भी इस लोभ से ग्रस्त होने के कारण ही पतित हो जाते हैं।

जितात्मा को—इस लोभ को काम के सहित जीत लेना चाहिए।

लोभ और क्रोध के गर्त में डूबा शिष्टाचार नहीं निभा सकता (क्रोधी आग वर्णाकर अपशब्दादि कहकर आपे से बाहर हो जाता है अतः शिष्टता कहाँ? लोभी अधिकाधिक धन पाने की कल्पना में चिपका डूबा रहता है आपे में नहीं रहता तब शिष्टता कहाँ (अर्थातुर न भाई जाने न बाप पैसा जानता है)। धर्म के ठेकेदार (मृकुटमणि बने) क्षुद्र धर्म ध्वजी दम्भी दिखावे के धार्मिक।

धर्मध्वजी = धर्म को ध्वज के रूप में जिवनाचार विचार व्यवहार में नहीं) केवल बातों में वस्त्रों में मकान का रंग, वाहन का रंग, माथे पर टीका, माला गले में बातें बड़ी धर्म सम्मत, किन्तु आचरण घोरतम) मानों समस्त धार्मिकता शर्मसार हो गयी इनकी कथनी करनी के महाभेद से अतः हृदय छोड़कर (घर छोड़कर) बाहर आ गयी इसीलिए आडम्बरों से धार्मिक दिखने वाले लोग धर्म ध्वजी है) जगत को ठग रहे हैं। ये सब पापी हैं नित्य लोभाभिभूत परलोक परिणाम को भूल पापरत है। इसीलिए लोभ को जो त्याग देगा वही इस महासागर को पार कर पायेगा लोभ (ग्राह) पर विजय पाये बिना संसार सागर को पार होना असम्भव है।

६. ब्राह्मद्भेदा अंष्टौ

१. मात्रः—ब्राह्मणकुलेजातोऽनुपेतः कियाहीः। २. ब्राह्मणः—एकोद्देश्यमतिकम्य वेदास्याचारवान्ध्वः निभृतः सत्यवाग्घृणी। ३. श्रोत्रियः—एकांशाखा सकल्पा षड्मिणैधीत्यबद् कीति। ४. अनूचानः—वेदवेदांग तत्त्वज्ञ शब्दातापाप वर्गितः। ५. भ्रूणः—अनूचान गुणोपेतो यज्ञस्वाध्यायन्यितः शेषभोजी जितेन्द्रियः। ६. ऋषिकल्पः—वैदिकं लौकिं ज्ञानमवाप्य आ अस्यो वशी। ७. ऋषिः—ऊर्ध्व रेतानियताशी शापानुगयोः शक्तः सत्यसंच। ८. मुनिः—निवृत्तः सर्व तत्त्वज्ञः कामको विवर्जितः ध्यानावस्यो निष्क्रियो दान्त स्तुल्य मृत्कांचन। (स्कन्द पु.कौ. ५)

७. युगादयः—दत्तस्याक्षय द्वारकाः

कार्तिक शु.-९-कृतादिः, वैशाश्वस्यु श.-३-त्रेतादिः, माघे पंचदशी-क्षपणदिः, त्रयो दशी नमस्ये कृ.-कलेरादिः।

उत्तर-६—आठ प्रकार के ब्राह्मण—१. मात्र—क्रिया हीन, विना जनेउ वाला ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मात्र। २. ब्राह्मण—सदाचार सम्पन्न, सरल-सत्यशील-कारुणिक-निभृत शान्त। ३. श्रोत्रिय—छहों अंगों सहित वेद की एक शाखा को कल्पान्त पढ़कर ब्राह्मणोचित् षट् कर्म सम्पन्न। ४. अनूयान—वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञ, शुद्धात्मा, पापरहित। ५. भ्रूण—अनूयानोचित गुण वाला-यज्ञ स्वाध्यायशील, शेषभोजी जितेन्द्रिय (यज्ञशिष्टान्न भोगी)। ६. ऋषिकल्प वैदिक लौकिक ज्ञानयुक्त आश्रम में रहने वाले जितेन्द्रिय। ७. ऋषि उध्र्वरेता-अल्पवनिश्चित भोजनकर्ता-शाप अनुग्रह करने में समर्थ सत्यसंध। ८. मुनि-निवृत्त-सर्व तत्वज्ञ-काम क्रोध रहित ध्यानरत-निष्क्रिय दान्त मिट्टी व स्वर्ण के प्रति समभाव कर्ता।

उत्तर-७—युगों के प्रथम दिवस—**सतयुग**—कार्तिक शुक्ल नवमी को आरम्भ। **त्रेता**—वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया। **द्वापर**—माघ पंचदशी को। **कलि**—भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी।

इन तिथियों में दिया दान अक्षय फल प्रदान करता है कई ऐसे वृक्ष है एक बार फल देकर छुट्टी किन्तु कई ऐसे जो अनन्तकाल तक निरन्तर फल देते रहते हैं कई दान (कर्म) ऐसे हैं जो फल दिया और पूर्ण किन्तु इन तिथियों का दान फल कभी भी खत्म नहीं होता।

८. मन्वाद्यास्तिथयः दत्तस्याक्षयकारकाः

१. अश्वयुक्शुक्लनवमी–स्वायं भुवस्य। २. द्वादशी कार्तिके थे–रुवारोचिष। ३. तृतीया चैत्रमासस्य–औत्तमस्य। ४. तृतीया भाद्रपदस्य–रैवतस्य। ५. फाल्गुन-स्याभावास्या–तामसस्य। ६. पौषस्येका दशी–चाक्षुषस्य। ७. आषाढस्य दशमी–वैवस्वतस्य। ८. माघस्थ सप्तमी–सावर्णोः। ९. श्रावस्याष्टमी कृ.–ब्रह्मसावर्णोः। १०. आषाढी पूर्णिमा–रुद्रसाव। ११. कार्तिकी–दक्षसाव। १२. फाल्गुनी–धर्मसा। १३. चैत्री–रौच्यस्य। १४. ज्येष्ठे पंचदशी सिता–मौत्यस्य।

(९)

माघं शुकृ सप्तमी दत्तं हुतं अक्षयं दारिद्रय शमनं भास्कर प्रीति करम्।

१०. नित्योद्वेजकः

यश्च याचनिक्रो नित्यं, न स स्वर्गस्य भाजनम्।
यथा चौरस्तथैव सः नरकं याति पापात्मा।।

११. दक्ष दक्षः

इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा, क च प्रयात व्यमितो मयोति। विचार्य चैवं प्रतिकार व्यारी, वुधैः सचोक्तोद्विज दक्षदक्षः। (स्कषुष कौ ५)

उत्तर-८—मन्वतरों की आद्यातिथियाँ इनमें किया दान भी कभी फलशून्य नहीं होता सदा मिलता रहता है—१. आश्विन शुक्ल नवमी—स्वायम्भुव मन्वन्तर। २. कार्तिक द्वादशी—स्वारोचिष। ३. चैत्र तृतीया—औत्तय। ४. भाद्र पद तृतीया—रैवत। ५. फाल्गुन अमावस्या—तामसमन्वन्तर। ६. पौष एकादशी—चाक्षुणमन्वन्तर। ७. आषाढ दशमी—वैसस्वत। ८. माघ सप्तमी—सावर्णि। ९. श्रावणकृष्णाष्टमी—ब्रह्मसावर्णि। १०. आषाढी पूर्णिमा—रूद्रसावर्णी। ११. कार्तिकी पूर्णिमा—दक्षसावर्णी। १२. फाल्गुनी पूर्णिमा—धर्म सावर्णी। १३. चैत्रीपूर्णिमा—रौच्य (रुचि)। १४. ज्येष्ठपूर्णिमा—भौत (भूति)। सूर्य ने इस दिन रथ पाया।

उत्तर-९—माघ शुक्ल सप्तमी इस दिन को किया दान हवन अक्षय हो जाता है दरिद्रता नाशक तथा सूर्य प्रीति जनक होता है। (इसी को अचला सप्तमी कहते हैं)।

कृष्ण सर्पवत् नित्य उद्विग्न करने वाला

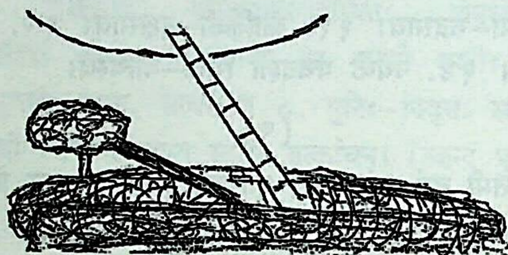
उत्तर-१०—नित्य याचना करने वाला (माँगने की प्रवृत्ति वाला) स्वर्ग नहीं जा सकता। वैसे ही चोर भी स्वर्ग नहीं पा सकता वो पापात्मा नरकगामी होता है।

उत्तर-११—दक्ष दक्ष कौन है? जो विचार करे कि यहाँ इस लोक में किस कर्म

१२ द्वौपन्थानौ

१. अर्चिः—नैष्कर्म्येण—मोक्षः। २. धूम्रः—यज्ञैः—स्वर्गः।

यो देवान्मन्यते नैव, धर्मश्चिं मनु सूचितान्।
नै तौ सयाति पन्थानौ, तत्त्वार्थोयं निरूपितः।।



देश काल वस्तुपरिच्छिन्नं मिथ्या।
मूर्तं सर्व देशावृत्ति-देदा परिच्छित्रम्।
किंचिद्देश वृत्तिरत्यन्ताभावः।

से सिद्धि मिलेगी तथा मुझे किस लोक में जाना है जो इस प्रकार विचार करके पहले ही निराकरण कर लेता है वह चतुर शिरोमणि दल है ऐसा विद्वान मानते है इस प्रकार विचार कर जो प्रतिकार करे विद्वान् उसी को दक्षों में दक्ष कहते हैं।

उत्तर-१२

दो मार्ग?	हेतु	फल
अर्चि मार्ग	निष्कर्म द्वारा	मोक्ष प्राप्ति
धूम्र मार्ग	यज्ञ द्वारा	स्वर्ग प्राप्ति

जो देवताओं को नहीं मानता तथा मनुस्मृति प्रतिबोधित धर्माचार को भी नहीं मानता वह इन दोनों मार्गों से नहीं जा सकता यह तत्व कहा गया है।

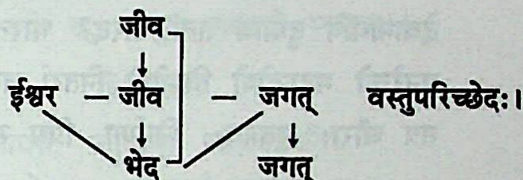
देश काल वस्तु से परिच्छिन्न को मिथ्या कहते हैं?

देश परिच्छेद? मूर्त है तो सब देशों में नहीं रह सकता। एक ही देश में है अतः देश परिच्छिन्न।

किञ्चिद्देश वृत्ति का अत्यन्ता भाव हुआ। जैसे घट मूर्त है एक देशवर्ती होने से अन्न देश में उसका अभाव अतः देश परिच्छेद सिद्ध होने से घट मिथ्या है।

ध्वंसप्रागभाव प्रतियोगि-कालपरिच्छित्रम्।
सजातीय विजातीय स्वगत भेदवत्–वस्तु परिच्छिन्नम्।
(गी.टी.मधु. २।१६)

अथवा–



सर्वत्रानुगते सद्वस्तुनि अननुगतं व्यभिचारि वस्तु कल्पितं रज्जु खण्डे सपार्दिवत्।
इतिहासपुराणानि, धर्म शास्त्राणि चाध्यसेत्।
वृथा विवाद वाक्यानि, परिवादांश्च वर्जयेत्।। (अत्रिः)

कालपरिच्छेद

- ध्वंस प्राग् अभाव का प्रतियोगी (अभाव) होने से काल परिच्छिन्न
- ध्वंस के प्राक् अभाव का अभाव अर्थात् ध्वंस का भाव तब ये लक्षण ध्वंसप्राग् अभाव
- प्रतियोगि जिसमें घटे वह अनित्य जिसमें न घटे वह नित्य। जैसे घट नहीं था (बनने से पहले)

तब ध्वंस का भाव या घट बन गया तब ध्वंस का अभाव हो गया जो वस्तु तीनों कालों में न रहे वह काल परिच्छेद है अनित्यता का बोधक है, किन्तु परमात्म सत्ता में ये नहीं घट सकता।

वस्तु परिच्छिन्न—सजातीय विजातीय स्वगत भेद के समान

घट अन्य घटो सजातीय भेद = एक आम्रवृक्ष अन्य आम्रवृक्षों से भिन्न है—ब्राह्मण अन्योवर। घट पटादि विजातीय = आम्रवृक्ष अन्य वृक्षों से या घटादि से भिन्न है ब्राह्मण क्षत्रियादि। घट कपालादि के स्वगत = आम्रवृक्ष की एक शाखा अन्य शाखा से भिन्न है ब्राह्मण के हस्त की।

सर्वगत सत् वस्तु में अननुगत व्यभिचारि वस्तु कैसे कल्पित है जैसे रज्जू में सर्प कल्पित है।

व्यर्थ के वादविवाद परिवाद को छोड़कर इतिहास (महाभारत) पुराण और धर्म शास्त्रों को पढ़े।

दिवा स्वापंन कुर्वीत, स्त्रियं चैव विवर्ज येत्।
आयुर्हन्ति दिवा निद्रा, दिवा स्त्री स्त्री पुण्य नाशिनी।। (दक्षः)

शातातपः-कलापग्रामे।

देवानामपि दुष्प्रायं तत्यं नारद? भारतम्।
पुनरेको महान्दोषो विभीमो नितरां ततः।
तत्र चौराः सुबहवः, निर्घृणा, प्रिय साहसाः।।

स्पर्शेषु षोडशं चैकविंशं गृहणन्ति नो धनम्।
धनेन तेन ही नानां, कीदृशं जन्म नो भवेत्।।

कामक्रोधादयश्चौरा, स्तप एव धनं तथा।
जाग्रतांतुमनुष्याणां, चौरा, कुर्वन्ति किं खलाः।। (स्क.पु. ६)

भयभीतश्चाल सश्च, तथा चाशुचिरेवयः।
तेनकिं नाम संसाध्यं, भूमिस्तं ग्रसते नरम्।।

दिन में न सोये, स्त्रीसंयोग तो कदापि न करे दिन में। दिन में सोने से आयुनाश-दिन में स्त्रीसंग से पुण्य नाश होता है।

कलाप ग्राम में शतातप नारद जी से—हे नारद! भारतवर्ष सचमुच देवताओं को भी दुष्प्राप्य है, पर वाँ एक भारी दोष है जिससे सदा हम डरते हैं, वहाँ बहुत से कठोर ह्दय वाले दुस्साहसी चोर है हमारे तप रूपी धन को चुरा लेते हैं। (स्पर्श वर्णों में १६वाँ त २१वाँ प = तप)। उस तप रूपी धन से हीन हंमारा जीवन (जन्म) वही कैसे होगा।

कामक्रोधादि चोर है तपस्या ही धन है, जाग्रत् मनुष्य का ये खल चोर क्या कर सकते हैं, (जाग्रत = आचार निष्ठ शुचि कर्तव्य परायण) किन्तु भयभीत-आलसी-अपवित्र (तनमन वाले) व्यक्ति को क्या मिलेगा। ऐसे प्राणी को तो भूमि ही खा जाती है (मिट्टी में पड़ा मिट्टी ही हो जाता है) आलसी व्यक्ति का सर्वोत्तम कार्य सर्वप्रिय कार्य विना अवसर और सुविधा के भी लेटने की कोशिश करेगा और सारी जिन्दगी लेट सकता है।

हारीतः

प्रतिग्रहश्चवै घोरः, षष्ठांश फलदस्तय।
प्रति गहेण विप्राणं, ब्राह्मं तेजो शाम्यति।।

महादानं हिगृह्णानो, ब्राह्मणः स्वंशुभं चयत्।
ददाति दग्त दति च, अशुभं यच्छाते स्वकम्।।

चिरकारी

पिताह्यात्मानमाधत्ते, जायायां जज्ञिवानिति।
शील चारित्र्यगोत्रस्य, रक्षणार्थं कुलस्य च।
सोयमात्मा स्वयं पिता, पुत्रत्वे परिकल्पितः।।

देवतानां समावाप, मेकत्वं पितरं विदुः।
मत्यानां देवतानांच, पूजोनात्येति मातरम्।।

पतितागुरव स्त्याज्या, माता च कथं चन।
गर्भधारण पोषाभ्यां, तेन माता गरीयसी।। (स्क.पु. ६)

इन्द्रो ब्राह्मण रूपधृक् अनृता हिस्त्रियः सर्वाः।
अतस्ताभ्यः फलं ग्राह्मं, न स्याद्दो षेक्षणः सुधीः।।

प्रतिग्रह (दान लेना) बड़ा घोर है तप का छठा भाग दाता को चला जाता है प्रतिग्रह से ब्राह्मणों का दिव्य तेज नष्ट होता है। महारस लेने वाला ब्राह्मण-अपने शुभ कर्म जन्य फल दाता को देता है दाता दान के रूप में अपने अशुभ देता है। प्रतिग्रह तप के छठे भाग को नष्ट करता है फलं द्यति खण्डयति इति फलदः।

गौतम पुत्र चिरकारी कहते हैं—पिता ही पत्नी के गर्भ से पुत्रत्वेन जन्म लेता है। क्यों लेता है? शील-चरित्र-गोत्र-कुल की रक्षा के लिए जन्म लेता है। यही आत्मा पिता होकर भी पुत्रत्व में परिकल्पित हो गयी है अतः देवताओं और पिता में एकत्व जानना चाहिए। वैसे मनुष्य हो या देवता इनमें कोई भी माता से बढ़कर पूज्य नहीं है।

गुरु पतित हो जाये तो त्यागा जा सकता है, किन्तु माता कथमपि त्याज्य नहीं। गर्भ धारण करने और पोषण करने के कारण माता इन सबसे श्रेष्ठ है।

इन्द्र ब्राह्मण वेष में आकर कहते हैं—सभी स्त्रियाँ असत्य मूला हैं अतः इनसे सन्तति रूप फल मात्र गृहण किया जाये इनके दोष न देखे बुद्धिमान्।

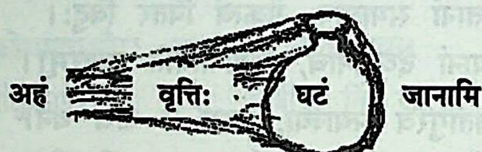
हारीतः

निद्रार्तश्च भयार्तश्च, कामतिः शोकपीडितः।
हृतस्वश्चान्य चित्तश्च, शून्या ह्येते भवन्ति हि।।

सदेव सोम्ये दमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्स्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेत केतो।। श्रुतिः

सत्तातोऽपि न भेदः स्याद्, द्रव्य त्वादेः कुतेन्यतः।
एकाकाराहि संवित्तिः, सद् द्रव्यं सद् गुणस्तथा।। (वार्तिकम्)

'घटाद्भिन्नः पटः' इत्यादि प्रतीत रपि न भेद साधिका, घट पट तद्भेदानां सद मेनैक्यात्। (मधुसू.गी.टी. २)



देशकालवस्तु परिच्छेदः—विनाशः। (मधुसू.गी.टी. २।१७)

सद्रूपं स्फुरणं अविनाशी।

निद्रापीड़ित-भयार्त-कामार्त-शोकपीड़ित-नष्टवित्त-अन्यचित्त (किसी के चिन्तन में डूबा) ये सब शून्य होते हैं।

हे सौम्य! ये पूर्व में भी सत् ही एक अद्वितीय मात्र था हे श्वेत केतो! ये सब कुछ आत्म विलास ही है सत्य है वह आत्मा भी तत् = वह आत्मतत्व, त्वम् = तुम, असि हो।

सत्तागत भेद नहीं है फिर द्रव्यगत भेद कैसे हो सकता है। संवित्ति एकाकार ही है द्रव्य और गुण भी सताश्रित होने से सत् ही हैं।

घट से पट भिन्न है ये प्रतीति भी भेद साधिका नहीं है, क्योंकि घटपटगत जो भेद है उनका सत् से तो अभेद ही है। यही ऐक्य है घट पट परस्पर भिन्न हैं, किन्तु सत साथ तो इनका सम्बन्ध एक ही है।

मैं घट को जानता हूँ, मुझसे घट भिन्न है तो वस्तुभेद, कालभेद व देशभेदता है।
देशकाल वस्तु परिच्छेद = विनाश।

सद्रूप का स्फुरण अविनाशी है।

घटादि स्तदज्ञानावस्थाभासके स्फुरणो कल्पितः। य एव प्रागज्ञातः स एवे दानीं मया ज्ञात इति प्रत्यभि ज्ञानात्।

महभूतमनन्तम पारम् ठिज्ञम घन एव। (सु.)

महत्वं–स्वाध्यस्त सर्वान्वयित्वम्।

अनन्तत्वं–त्रिविधपरिच्छेद शून्यत्वम्। (म.टी.)

१. मार्कण्डेय सप्त कल्प स्मरः भारते।

२. नाडी जंघो वकः हिमालये १४ क. स्म.।

पूर्वजन्मनि-वको विश्वरूपमुनि सुतः पितुमरिकतं लिंगं चापल्या दप हृत्य संक्रान्तौ मकस्य घृत कुम्भे निहितम्।

काले प्रमीलः, नृपालये आनर्तस्य जातो जाति स्मरः सुतः। ततः संस्थापितं लिंगम्। लिंगानि घृते नाच्छदयामि। (स्क.पु.कौ. ७)

प्रसन्नोभगवान् वृत प्रादाद्गाणपत्यं गराकोटीश्वरं व्यधात्।

विद्यामपिजनं लक्ष्मीं, प्राप्य नीचजंनो यथा।
आपदांशत्रता मेति, सिन्धूनामिव सागरः।।

घट पट आदि तो उसके अज्ञान अवस्था के प्रकाशक स्फुरण में कल्पित हैं। जो घड़ा पहले अज्ञात था वह मेरे द्वारा अब जान लिया गया ये प्रत्यभिज्ञान है।

मह तत्व अनन्त है अपार है विज्ञानघन है।

महत्व क्या है? स्वाधिष्ठित सर्वान्तर्यामी आत्मा ही मह है। अनन्त क्या है? त्रिविधि परिच्छेद रहित (देश काल वस्तु भेद रहित)।

१. मार्कण्डेय ऋषि भारत में सातकल्प तक स्मृति सम्पन्न रहे।

२. नाड़ी जंघा वगुला हिमालय पर १४ कल्प तक रहे।

पूर्व जन्म में ये वक् विश्वरूप मुनि के पुत्र थे वालचपलता कहा। पिताजी के मरकतमणि के शिवलिंग को चुराकर मकरसंक्रान्ति के (घृतकुम्भ) दिन घी में छुपा दिया। पश्चात आनर्त देश में जातिस्मर पुत्र बने वहाँ लिङ्ग स्थापन किया और प्रतिज्ञा कि लिङ्गों को घी से सरावोर करूँगा—सदाशिव प्रसन्न हो गये तथा करोड़ गणों के अधिपति बना दिये गये।

विद्या आभिजात्य कुल, लक्ष्मी को प्राप्त करके जैसे नीच व्यक्ति विपत्तियों में घिर जाता है जैसे सारी नदियों से सागर घिर जाता है।

तथामति स्तथामित्रं, व्यवसाय स्तथा नृणाम्।
भवेदवस्यं तद् भावि, यया पुंभिः पुरा कृतम्।।

प्राकारकर्णा उलूकः, कैलासे २८ कल्पाः पूर्व जन्मनि घंट शिवपूजकः कश्यम्।
निरधिष्ठान भ्रमायोगात् निरवधिवाधायोगात् शून्य वादः प्रत्युक्तः।।
(गी.मधु.टी. २।१७)

गवां पश्चाद्विजस्याङ्घ्रि, योगिनां हृत् कवेर्वचः।
परं शुचितमं विघात्, मुखं स्त्रीवह्नि वाजिनाम्।। (शम्भुरहस्ये)
मानसोव्रह्मणः पुत्रो, दक्षो नाम प्रजापतिः।
षष्ठि सोऽजनयत्कन्या, वीरिण्या नामफाल्गुन।। (स्क.पु.कौ. १४)

वज्रांगः – वराङ्गी
↓
तारकः
सत्त वासरवालात् मृत्युः।
(स्क.पु.कौ. १५)

यस्य त्रयस्त्रि शद्देना अंगे विभेजिरे।
तान्वैत्रिंश त्रयो देवाने के ब्रह्मविदो विदुः।। (अथर्व वे. १०।७।२७)

पुरुष ने पहले जैसे कर्म किये हैं उनके अनुसार ही वैसी बुद्धि वैसे मित्र, वैसा ही व्यवसाय, होने लगता है, क्योंकि जो भवितव्य है वह अवश्य होकर रहती है।

प्राकार कर्ण उल्लू कैलाश पर २८ कल्प तक जाति स्मर रहा पूर्वजन्म में घण्ट नामक शिवार्चक काश्यपगोदीय रहा।

अधिष्ठान रहित भ्रम के न रहने से नित्वधि वाधा के रहने से शून्यवाद प्रयुक्त हुआ।

गायों का पृष्ठभाग (पृच्छादि) ब्राह्मण के चरण, योगियों का हृदय, कवियों की वाणी स्त्री वह्नी और घोड़ा इनका मुख है, ये सब पवित्रतम होते है।

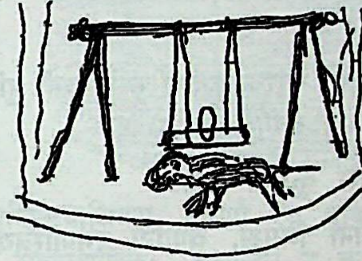
हे फाल्गुन! ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष प्रजापति के वीरणी पत्नी से ६० कन्यायें प्राप्त की।

वज्रांग वराङ्गी का पुत्र हुआ तारकासुर इसकी मृत्यु सप्तदिवसीय बालक से होगी। (असम्भव को भी सम्भव किया) स्वामी स्कन्द (कार्तिकेय) ने जन्म के सातवें दिन इसे मार दिया।

जिसके अंगों की शोभा ३३ देवताओं ने बढ़ाई उन तैतीस देवों को ब्रह्मवेत्ता एक ही मानते जानते हैं।

शताब्द शिवं विल्पपत्रैस्त्रिकालार्थनात् शिवभगवतः अजण्यरत्ववराप्तिः।

४. गंधमादने गृधः ५६ कल्पाः, पुरा मर्कटः–लकुटै मृतः शिवरात्रौ दमनकोत्सवः। (स्क.पु.कौ. ९)



शिवान्दोल माहात्म्यात् व्यातो हं नृपमन्दिरे काशिराजस्य तनयः कुशध्वजः जाति स्मरः।

प्राप्तराज्यः

शिवदीक्षामुपागम्य शिवा चायै र्विमुक्तो हं पशुपाशैः
निवहि दीक्षापर्यन्ता-संस्कारा न वाप्य।
आराधयामि देवेशं, प्रत्यक्तित्तयुमा पतिम्
जप भुद्गीथगम्यार्थं भाव शन्नष्ठमं रसम्।।

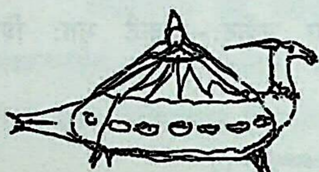
दुष्टोऽब्रवीद्हर = वरं वरय वाञ्छितम्। मूयासं तेगणोहमनेनैव शरीरेण।

सौ वर्ष तक विल्वपत्रों से त्रिकाल शिवार्चन करने पर भगवान शिव से अजरत्व अमरत्व की प्राप्ति।

गंधमादन पर्वत पर गीध ड॰ढ कल्प से जीवित व स्मृति स्थिर था पूर्वजन्म में वन्दर था शिव रात्रि में दमनोत्सव (झूला झुलाना) में अन्दर आया तथा वानर स्वभाव से रातभर झूलता रहा भगवान भी झूलते रहे, पूरी रात बीती प्रातः लोगों में लकुटों द्वारा मारा गया। फलतः (झूला झुलाने के कारण) काशिराज के पुत्र कुशध्वज हुए—जातिस्मर।

शिवाचार्य के शिवदीक्षा पाकर में पशुपाशों से मुक्त हुआ निर्वाह पर्यन्त दीक्षा संस्कार पाकर मैं उमापति देवेश की आराधना करता हूँ जप गानादि द्वारा प्रभु को मनाती है। सदाशिव ने कहा मैं प्रसन्न हूँ वर मांगो मैंने कहा इसी शरीर से अपना गण बना लें।

कैला समानीय विमान सम चादिशत्।



गवाधिष्ठि तोऽपश्यर अग्नि वेशसुताम्

अवतीर्याहमहरम् सा दीर्घ महस्वनकुवाण रुरोद वतो मुनि म्यगात् संस्त भ्यतपसा गतिम् मामाह कुपितः गृध्रोभव द्रुतम्। (स्क.पु. ९)

मानसे सरसि कूर्मोमन्यरकः।

अग्नि र्द्विजानां विप्रश्च, वर्णानां रमणस्त्रियाम्।

गुरुः पिता च पुत्राणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।। (स्क.पु. १०)

कूर्म उवाच—अनेन यमानेन रौचकाख्ये पुरापुरे यज्ञपावक दग्धामे, पृष्टि नीघापिनिर्वणा। इति वाक्यावसाने कूर्मस्य।

पपात पुण्य वृष्टि खात् विमुक्तारसरसां गणौदहशु विमानं पुरतः इन्द्रद्युम्न कृते। विमानमालम्ब्य देवदूत इन्द्र घुम्नमुवा च। नवीकृताधुना कीर्तिस्तव भूपालनिर्मला। गभ्यतां ब्रह्मणो लोकम्? (स्क.पु.कौ. १०)

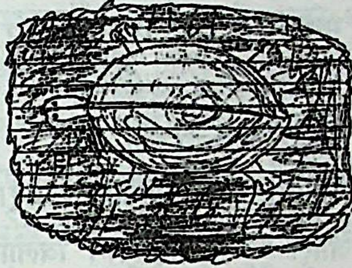
विमान को कैलाश पर लाकर मुझको आदेश दिया। मैंने गवाधिष्ठित ही स्नान करती अग्निवेश पुत्री को देखा और उसका हरण कर लिया। वह ऋषिकन्या जोर से शोर करती हुई रोने लगी। उसका रोना सुनकर मुनि आ गये तप से मेरी गति को स्तम्भित कर क्रुद्ध हो मुझसे बोले शीघ्र ही तुम गीध हो जाओ।

मानसरोवर में मन्थरक नामक कछुआ रहता था।

द्विजों का गुरु अग्नि, सभी वर्णों का गुरु ब्राह्मण, स्त्रियों का गुरु पति, पुत्रों का गुरु पिता, अतिथि सभी का गुरु होता है।

(पूज्य) कूर्म बोला—पूर्व में रोचकपुर में इस राजा की यज्ञाग्नि में मेरी पीठ जली जो आज भी व्रण रहित (घाव रहित) नहीं है इस वाक्य के अन्त में आकाश से पुष्पवृष्टि हुई विमुक्त होकर सामने अप्सरा गणों सहित विमान देखा। अर्थात् ये राजा इन्द्रद्युम्न इतने बड़े धर्मात्मा हुए हैं मैं जानता हूँ। राजा इन्द्रद्युम्न के लिए आया हुआ विमान देखा देवदूतों ने इन्द्रद्युम्न से कहा—हे राजन्! आपने अपनी कीर्ति को पुनः नवीन कर दिया अतः अब ब्रह्मलोक जाइये।

दरिद्रारागिणोऽसत्य, प्रतिज्ञातागुरु द्रुहः।
मित्रावमानिनः पापाः, प्रायो नरकमण्डनाः।। (स्क.पु.कौ.)



अविशुद्धिक्षयाधिक्य, दूषणौ रेव दूषितः।
स्वर्गः सदानुश्रविकः, तस्मादेनं न कामये।। (स्क.पु.कौ.)

लोमशः कलाप ग्रामे।
अथ तेदहशुः पार्थ?, संयमस्थं महामुनिम्।
क्रियायोग समायुक्तं, तपोमूर्तिधरं यथा।।

सव्य हस्ते तृणौघं च, छायार्थे विप्रसत्तमम्।
दक्षिणो चाक्षमाला च, विप्रतं मैत्रमर्णागम्।। (स्क.पु.कौ. १२)

य: सिद्धिमेति जप्येन, स मैत्रो मुनि रुच्यते वक भूपद्विलोक गृध्रकूर्माः। तस्माद्विवेक वैराग्य, मालिंग्याविद्या पाप नाशनम्। यतिष्यामि योरय पोघं विमुक्तये। (इन्द्र द्युम्नाः)

दरिद्र, रागी, असत्याश्रयी, प्रतिज्ञाभंगी, गुरुद्रोही, मित्र का अपमान करने वाले पापी प्राय: नरक के शृङ्गार होते हैं।

अपावन शौचाचार हीन—दोषों से दूषित स्वर्ग वैदिक कर्मकाण्ड जन्य पुण्य लब्ध है, पुण्यक्षीण होने पर नष्ट अतः मैं स्वर्ग की कामना नहीं करता।

हे अर्जुन! उन पाँचों के साथ इन्द्रद्युम्न (मार्कण्डेय-नाडीजंघ वक-प्राकारकर्ण उलूक चिरायु गीधराज मन्थर कछुआ) ने कलापग्राम में एक सन्त को क्रियायोग साधनारत देखा मानो तप ही मूर्त हो गया हो। बाये हाथ में तृण समूह लिया (छाया के लिए) दाये हाथ में अक्षमाला मैत्र मार्ग का आश्रय ले तप करते थे।

(अपने आहार व्यवहार वाणी आदि से किसी को कष्ट दिये बिना सिद्धि पाना) राजा ने कहा—हे महात्मन् (रोमश लोमश ऋषि है) मैं अविद्या पाप नाश करने वाले विवेक वैराग्य द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष के लिए प्रयास करूँगा।

परोपकरणं साधूनां, व्रतं, विशेषतः प्रणोद्यानां शिष्यवृत्तिमुपेयुषाम्। अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्राक्ते मसंशयम्। विद्वेषं वापि मरणं कुरुतेऽन्यतरस्य च। (कूर्मः)

प्रति कल्पं मच्छरीरा, देक रोमपरिक्षराः। (लेपक्षः)

लोमशस्य पूर्ववृत्तम्

अहमाशं पुराशूद्रो, दरिद्रोऽवनी तले।
भ्रमामिवसुधा पृष्टे, ह्यशनापीडितो भृशम्।।
ततो मया जालि मध्ये, महल्लिगं विलोकितम्।
तल्लिंगंस्नापितं पूजा विहिता कमलैशुभैः।।
अथक्षुत्क्षामकण्ठे हं श्रीकंठं तंनमस्य च।
पुनः प्रचलितो मार्गे, प्रमीतो मुनिसत्तम्।।
ततोऽइं ब्राह्मगृहे, जातः जाति स्मरः सुतः।
स्मरन्विलसितं मिथ्या, सत्यामासमिदं जगत्।।
अविद्यामयमित्येवं, ज्ञात्वा मूकत्वमर्यस्यतः। (स्क.पु. १२)
षेनाम ईशान इति कल्पितम्।।
यौवन मासाद्य, निशिहित्या निजंग्रहम्।
सम्पूज्य धमलैशम्मुं, तत शयनभ्यगाम्।।

साधु का धर्म तो परोपकार करना है ही विशेषतया पीड़ित शिष्यभाव से समागत के प्रति तो अवश्य ही। पाप पुण्यादि के विषय में साधु द्वारा उक्त ही असन्दिग्ध होता है।

लोमश ऋषि बोले—प्रतिकल्प में मेरे शरीर का एक रोम गिरता है जब सारे रोम गिर जायेंगे तब मेरा जीवन पूर्ण होगा।

लोमश पूर्वजन्म वृत्तान्त उनके ही मुख से—पहले जन्म में मैं शूद्र था दरिद्र भूखा प्यासा भूतल पर घूमा करता था एक दिन मैंने जल में शिवलिङ्ग देखा उसका अभिषेक कर मैंने कमल पुष्पों से पूजा की मैं भूखा प्यासा श्रीकण्ठ को नमन कर चला तो प्राणान्त हो गया तदनन्तर में शिवप्रसाद से जातिस्मर ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ सकल प्रपञ्च को मिथ्या मानकर मैं मूक के समान रहने लगा।

मेरा नाम ईशान था। युवा होने पर मैं रात में घर छोड़कर चला जाता कमल पुष्पों से शिवार्चन करके फिर शयन में आ जाता था। पिता जी के मरने पर बान्धवों ने मुझे मूर्ख जानकर

ततः प्रमीतेपितरि, मूढ इत्युज्जितः सम्बधिभिः।
प्रतीतः पूजयामीशं अब्जै र्वहविधै स्तथा।।
अथवर्ष शतस्यांते, वरदः शशिशेखरः।
प्रत्यक्षो याचितो देहि, जरा मरण संक्षयम्।।
अजरामरतानास्ति, नाम रूप भृतोयतः।
ममापि देह पातः स्या, दवधि कुरु जीविते।।
कल्पन्ते रोम पातः स्या,न्मरणां सर्व संक्षये।
ततस्तवगणो भूया, मिति मेऽमीप्तितोवरः।। (स्क.पु.कौ. १२)

लोमशः

वहिः प्रवृत्तिं संगृह्य, ज्ञानकर्मेंप्रियादि च।
लयः सदा शिवेनित्यं, अन्तर्योगोऽयमुच्यते।
दुष्वरत्त्वाद्वहिर्योगं, शिव एवस्वयं जगौ।।
इयं हिनिष्फला भूमिः, सफलं भारतं मुने?।
वाराणस्यां संवर्तः गुप्तलिंगभृत् भिक्षाशी
मलदिधरेः विवसनः करपात्रकृताहारः सवर्था निष्पारिग्रहः।
भावयन्ब्रह्मपरमं, प्रणवामि धमीश्वरम्।।

त्याग दिया। अब तो मैं प्रसन्न हो शिव की कमलों से पूजा करने लगा। १०० वर्ष बाद शशि शेखर प्रत्यक्ष आये। मैंने जरामरण रहित जीवन माँगा, शिव ने कहा हे वत्स अजर अमर नहीं हो सकता ये नाम रूप नाशवान हैं तुम अवधि निश्चित कर लो।

मैंने कहा प्रभों प्रतिकल्प में मेरा एक रोम गिरे सारे रोम गिरने पर मैं आपका गण बन जाऊं। यही मेरा वर है।

बाह्य प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर (ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियों को) सदाशिव में लीन रहने का नाम ही अन्तर्याग है। अन्तर्याग को कठिन जान शिव जी ने वहिर्योग का उपदेय किया।

ये भूमि निष्फल है सफल तो भारतवर्ष है। वाराणसी में संवर्त नामक महायोगी आज भी नित्य गूढ रूप में भिक्षार्थ आते हैं, दिगम्बर होते है गन्दे (मलदिग्ध) हाथों में ले जाते हैं संग्रह कुछ नहीं होता। प्रणवरूप ईश्वर का सदा ध्यान करते हैं।

महीनदी

अमुनाराज सिंह्ले, इन्द्रद्युम्नेन कीमता।
यजनाद्धुंगुलोत्सेधा, कृतेयंवसुधायथा।।

तदा संताप्यमानाया, भुवः काष्ठस्य वैयथा।
सुस्त्रख योजलौद्यश्च, सर्व देवनमस्कृतः।।

महीनाम नदी साच, देशे मालव कामिथं। दक्षिणं सागरं प्राप्ता।
न कुलं सकतं ब्रूयान्न कंचिन्मर्मणि स्पृशेत्। (स्क.पु.कौ. १२)
साम दानं भेदो दण्डः नीतौ त्रया त्रयोक्तव्याः साम–आर्येषु गुणावत्सु।
दानं–लुब्धेषु, भेदः–शङ्कितेषु, दण्ड–दुरात्मसु। (स्क.पु.कौ. १६)

दुर्जनः सुजनत्वाय, कल्पते न कदाचन।
लालितः पालितो कपि स्वभावंन मुच्चति।।

पर्यायै र्हन्यमानानां अभिहन्ता न विद्यते।
मौद्यमेतत्तुयद्द्वेष्टा, कर्ता हमिति मन्यते।।

देहवत्पुण्य कर्माणि, जीव वत्काल उच्यते।
द्वयोः समागमे दैत्य?, कार्याणां सिद्धिरुत्त्यते।।

मही नदी

इन राजसिंह इन्द्रद्युम्न के यज्ञ करने से पृथिवी दो अंगुल ऊपर उठ गयी थी उस यज्ञीय ताप से जो जल स्त्रवित हुआ वह सर्वदेव नमस्कृत मही नामक नदी बना। मालवदेश से निकली दक्षिण सागर में समायी है।

कुलहीन को भी कुलीन कहे कभी भी। किसी को भी मार्मिक चोट पहुँचाने वाली बाते न कहे।

सामनीति—गुणी श्रेष्ठजनों के प्रति अपनानी चाहिए।

दान—लोभियों में। भेद—शङ्कालुओं में। दण्ड—दुरात्माओं में।

दुर्जन सुजन हो सके ये सम्भव नहीं लालित पालित होने पर भी स्वभाव नहीं छोड़ते।

श्लोक की हिन्दी नहीं है।

जैसे देह की तरह पुण्य कर्म है। जीव की तरह काल है, दोनों का योग होने पर है तारक कार्य सिद्धि होती है।

मुंचेच्छां कमभोगेषु, मुंचेमं भयं भदम्।
एदैश्वर्य नाशेत्वां, शोकः सणपीड़यिष्या।। (विष्णुः तारकाय)

धैरेवकर्मभिः सौख्यं, दुःखं तैरेवकर्मपिः।
प्राप्नोतिपुरुषो दैत्य, पश्य कालस्य चित्रताम्।।
(विष्णु) (स्क.कौ. १६)

अहमप्येवमेवेनं, लोकं जानाम्य साश्वतम्।
कालाग्नावाहितं घोरे, गृह्ये सतत गत्वरे।। (तारकः)

ईर्ष्याभियान लोषेषु, व्याम क्रोधभयेषु च।
स्पृहा मोहति वादेषु, लोकः सक्तो न बुद्धयते।।

केचिद्भजन्तित्वांभक्त्या, वैरेण हेलभापरे।
सर्वेद नुकम्प्यास्ते तुम्य, मन्तरात्मा सिदेहि नाम्।। (स्क.कौ. २१)

विराट् देवानां ब्रह्मण स्तुतिः

पातालं पाद मूलं, पार्णि पादे सातलम्।
महातलं चास्यगुल्फौ, जघे चापि तलातलम्।।

काम भोगों की इच्छा को त्यागो, भय मद त्याग दो। इस ऐश्वर्य के नष्ट होने पर तुमको शोक पीड़ित करेगा। विष्णु भगवान तारक से कहते हैं। यही मूढ़ता है कि स्वयं को कर्ता मान लेता है जीव (मूलपुस्तक मिले तो देखें)।

विष्णु भगवान तारक से—हे दैत्य! जिन कर्मों द्वारा सुख प्राप्त होता है, दुःख प्राप्ति में भी कर्म ही हेतु है, पुरुष को भोगने ही पड़ते है यही काल की विचित्रता है।

मैं भी इस जगत् को इसी प्रकार अशाश्वत जानता हूँ। ये निरन्तर घोर कालाग्नि से जलता हुआ जा रहा है नाश की ओर।

तारक विष्णु से—ईर्ष्या अभिमान-लोभ-काम-क्रोध-भय-स्पृहा-मोह-अतिवाद इन दुर्गुणों से ग्रस्त प्राणी जान ही नहीं पाता।

कुछ तुमको भक्तिपूर्वक भजते हैं कुछ वैर पूर्वक हेला उपेक्षा बुद्धि से। हे नारायण ये सब है तो तुम्हारी अनुकम्पा के पात्र ही न आप ही तो सब प्राणियों की अन्तरात्मा है।

देवताओं ने की ब्रह्म की स्तुति—पादतल ही पाताल है, एड़ियाँ ही रसातल है, एड़ी से ऊपर

सुतलं जानुनी चास्य, ऊ रू च वितलातलम्।
महीतलंच जघनं, नामिश्चास्य नमस्तलम्।।

ज्योतिपदमुरस्थानं, स्वर्लोक वाहु रुच्यते।
ग्रीवामहश्च, वदनं, जन लोकः प्रकीर्त्यते।।

ललाटं च तपोलोकः, शीर्ष सत्य मुदाहुतम्।
चन्द्र सूर्यौचनयने, दिशः भरेचे नाहिकाश्विनी।।

आतानंब्रह्मरन्ध्रस्थं, आहुस्त्वों वेदवादिनः।
एवं येते विराड्ररूपं, संस्कान्त उपासते।
जन्मवन्धविनिर्मुक्ता, यान्ति त्वांपरमं पदम्।। (स्क.पु.कौ. २२)

ब्रह्मेवा च–

ममैवेयं कृति देंवा, भवतां यद्विडम्बना।
अहं अपश्यं पुरः स्थितम्।
अर्थ नारीश्वरं देवं, व्याप्य विश्वमवास्थितम्।।

ततोनारी पृथग्ज्ञाता, पुरुषश्च तथा पृथक्।
तांनारीमहमालोक्य, पुत्रं पक्ष मया ब्रुवम्।।

भजस्वपुत्रीं जननीं, तपापि ममापि च।।

की गाँठ महातल हैं, पिण्डलियाँ तलातल हैं, घुटने सुतल हैं, जाँघे वितल, भूतल पेड़ है, नाभि नभ है, हृदय ज्योर्तिलोक स्वर्लोक बाहु है कण्ठ ही महलोक, मुख जनोलोक है।

ललाट तपोलोक है शीर्ष सत्यलोक, नेत्र चन्द्र सूर्य, कान दिशायें है नासिक अश्वनी कुमार, ब्रह्मरन्ध्र ही आत्मा का आवास वेदवेत्ता बताते हैं इस प्रकार जो आपके विराट रूप को भजते हैं वे जन्ममरण से मुक्त तुम्हारे परं पद को पाते हैं।

ब्रह्मा जी बोले—हे देव ये तुम्हारी विडम्बना मेरी ही है विश्व को व्याप्त करके अर्धनारीश्वर रूप में अवस्थित इनको मैंने ही अपने सामने देखा था। फिर नारी पृथक् और पुरुष पृथक् हो गये। उन नारी को देखकर मैंने पुत्र दक्ष से कहा हे पुत्र! इन पुं नामक नरक से रक्षा करने वाली तेरी और मेरी माता की उपासना करो (ये उपासना से प्रसन्न हो तुम्हारी पुत्री बनेंगी) जो जगत् जननी है वही तो पुत्री बनकर आती है पुत्री ही जननी बनती है।

पुंदुःख नराकत्रात्री, पुत्री ते भाविनीखियम्।।
यथानियुक्तेस्मि तथा करोमि। (पं.द. ६।१७६)

मनोहश्यमिदं द्वैतं, यत्किंचित्सचरा चरम्।
मनसो ह्यमनीभावे, दैतं नैगेप लभ्यते।।

आत्म सत्यानुभावेन, न संकल्पयते यदा।
अमनस्तां तदा याति, ग्राह्यभावे तवग्रहः।। (माण्डू.का. ३।३१,३२)

अव्यल्पक मजं ज्ञानं, ज्ञेयामिभिन्नं प्रचक्षते।
ब्रह्म ज्ञेय मजं नित्यं, अजनोजं विबुध्यते।।

जगत् मनो मात्रं तद्भावे नियत भावात् मृद्घटनत्। (आ.मि.)

अश्रद्धा चैव दुर्मेधा-अविद्या या सुते उभे। मेधाश्रद्धा विद्यातिन्यौ। (ब्रह्मोत्तर स्व.)

अवधेय—पुत्र ही नरक से रक्षा करता है केवल ये हठ भरी धारणा का यहाँ शोधन ब्रह्मा जी ने कर दिया पुत्री भी परम्परया अपने पुत्र के द्वारा पितृकुल की तारने वाली होती ही है। (स्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड)

धर्माधर्म मैं जानता हूँ पर धर्म में रुचि नहीं होती अधर्म से मैं बच नहीं पाता हूँ। मेरे हृदय में जो अनन्तसत्ता विद्यमान है वह जैसा निर्देश करती है मैं तो वैसा ही करता हूँ यही यथार्थ उक्ति है। (यही बात महाभारत में दुर्योधन भी कहता है) वहाँ दैव पर आरोप अपना वचाव है।

ये द्वैत जो सचराचर रूप में दिख रहा है सब मन द्वारा ही दृश्य है मन अमनी भाव में आ जाये तो ये द्वैत नहीं उपलब्ध होगा।

आत्मा के सत्य अनुभाव से जब मन संकल्प रहित हो जाये तब अमनस्कता आती है ग्राह्य का अभाव हो जाता है।

अकल्पक अज ज्ञेय से अभिन्न को ज्ञान कहते हैं। ब्रह्म ज्ञेय है अज है नित्य है इस अज ज्ञान द्वारा अज ब्रह्म का बोध होता है।

जगत् मनोमात्र है मन रहता है तो जगत् है मन नहीं तो जगत् भी नहीं जैसे मिट्टी है तो घट है मिट्टी नहीं तो घट भी नहीं।

अश्रद्धा और दुर्मेधा अविद्या की पुत्रियाँ हैं, ये श्रद्धा और मेधा को नष्ट करने वाली हैं।

त्रिधा व्यामः

अमुक्तितः कामनया—तामसम्। सुख्वुद्धास्पृहा या—राजसम्। केवलं यावदर्थम्—सात्विव्यम्। (स्क.पु.कौ. २४)

भद्रे यच्छुचि नैवस्या, द्यचैवावज्ञया कृतम्।
सदोषणो कृतं यच्च, तदादद्यान्न व्यर्हिन्नित्।।
(वृद्धविप्ररूपः शिवः उमायै) (स्क.पु. २५)

नरं नारी प्रोद्धरति, मज्ञन्तं भववारिधौ।
एतसंदर्शनाथयि, तथा चक्रे शिवाशिवः।। (स्क.प्र.कौ. २५)

१. धार्मिकता ३३, २. आवश्यकता ३३, ३. साधक सामग्री ३३—कर्तव्यनिर्णाय। (वि.च.ज.स्वा.)

उमा

सर्वं जगदस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः।
गुणयय मयं सूलं शूली वस्त्राद्बिमर्ति सः।।
अवदा सर्वातोमुक्ता भूता एव च तत्पतिः।
श्यशानं ज्वापि त्रिसट्टं, तद्दासी कृपयार्थिनाम्।।

त्रिधा काम—तामस—अमुक्ति पूर्वक की गयी कामना। राजस—सुख पाने की इच्छा वाली बुद्धि। सात्विक—प्रयोजन मात्र के लिए।

विप्र वृद्धरूप में शिव उमा से कहते हैं—हे भद्रे! जो पवित्र न हो, जो उपेक्षा पूर्वक किया हो, जो दोषपूर्ण किया गया है। तब किसी भी तरह देना नहीं चाहिए।

भवसागर में डूबते पुरुष को नारी पार कर देती है (निकाल लेती है) यही शिक्षा देने के लिए सदाशिव व जगदम्बा माँ शिवा ने ऐसा किया।

कर्तव्य निर्णय में धार्मिक हेतु—आवश्यकता हेतु व साधक सामग्री का समान चिन्तन करना चाहिए।

उमा कहती है—सारा जगत शिवरूप ही है अतः उन्हें **दिगम्बर** कहते हैं। तीन गुण युक्त शूल (त्रिशूल) है इसीलिए वे शूली है **शूल** है शूल धारण करते हैं।

भूतपति इसलिए कहते हैं ये अबद्ध है सब तो मुक्त है सबके स्वामी है।

श्मसानवासी—संसार न होना ही श्मसान है—संसार से मुक्ति देते हैं याचकों को।

भूतयः कथिता भूतिः, तां विभर्ति स भूतिभृत्।
वृषो धर्मः इति प्रोक्तः, तमारूढ स्ततो वृषी।।

सर्पाश्च दोषाः कोधाद्या, स्तान्नि मर्ति जगन्ययः।
नाना विधाः कर्म धोगा जटा रूपा विभर्तिसः।।

वेदत्रयी त्रिनेत्राणि, त्रिपुरं त्रिगुणां वपुः।
भस्मी करोति तद्देवः, त्रिपुरघ्न स्ततः स्मृतः।
एवं विधं महादेवं, विदुर्ये सूक्ष्म दर्शिनः।।

(उमा शिववटवे) (स्क.पु.कौ. २५)

प्राह तां च महादेवो, दासोस्मि तव शोभने!।
तपो द्रव्येण क्रीतश्च, समादिश यथोशितम्।।

(शिवः उपायै) (स्क.पु.कौ.)

मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो!, दत्तं तं च मया तब।
वपुषः पितरा वीशौ, तौ सम्मानयितुमर्हसि।। (स्क.पु.कौ.)

भूतिभृत्—भूमि सर्वैश्वर्य अथवा चिताभस्म उसको धारण करने से ये नाम।

वृषी—वृष नाम है धर्म का वृष पर बैठते हैं।

सर्पधारी—क्रोधादि दोष ही सर्प हैं जगन्मय शिव उनका भी पालन करते हैं।

जटी—नानाविध कर्म योग ही जटा हैं अत: उनको भी धारण कर।

त्रिनेत्र—तीन वेद ही त्रिनेत्र है जिनके। **त्रिपुर**—त्रिगुणात्मक देह को भस्म कर दिव्यभाव प्रदाता है। सूक्ष्मदर्शी विद्वान् शिव को इस प्रकार जानते हैं।

शिव जी बोले—हे शोभने! मैं तुम्हारा दास हो गया तुमने अपने तप रूपी धन से मुझको खरीद लिया अब आप आज्ञा करें।

उमा ने कहा—मन के स्वामी महादेव आप हैं अत: वो मन मैंने आप को दे दिया शरीर के स्वामी माता-पिता हैं अत: अब उनका सम्मान रखे आप उनसे मुझे माँग ले। (कैसी निश्छलता पवित्रता छुपी है भावों में आज की उच्छृङ्खल स्वेच्छाचारी सन्तति को ये पाठ पढ़ाये जाने चाहिए पिता की आज्ञा बिना कोई कार्य नहीं करना चाहिए)।

उमा

त्रयस्त्रिंशत्सहस्त्राणि त्रयास्तिवशच्छतानि च।
त्रयस्त्रिंशच्च ये देवाः त्रयस्त्रि शच कोटयः।।



शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभ ध्वजः।

वलं तेजश्च योगांश्च, सर्वेषां जगृहे प्रभुः।। (स्क.पु.कौ. २५)
ब्रह्मध्यानमुपाश्रित्य, व्रुवोध हरि चेरितम्।
तारक प्रमुखा दैत्याः, संकुद्धास्तत्र प्रोचिरे।
कोयमंग महादेवो, न मन्यामो वयं च तम्।।
ततः प्रहस्य वालोसौ, हुंकारं लीलया व्यधात्।
हुंकारेणैवते दैत्याः, स्वमेवनगरं गताः।। (स्क.पु.कौ.)
पादयोः स्थापयामास, मालां दिव्यां सुगन्धिनीम्।।
हेकूपत्वं चिरंजीव जीव, स्वल्प तोये बहुव्ययः।
गुणावद्रिक्त प्रात्राणि, प्राप्नुवन्ति हिपूर्णताम्।। (सु.भा.र.भा.)

---

३३ कोटि देवता ३३ हजार, ३३ सौ, ३३ देवता पार्वती के स्वयंवर में आये। महादेव बालरूप में क्रीडार्थ ही आये।

इन्द्रादि देवताओं ने अपने शस्त्रों से बालरूप शिव को हराना चाहा तो प्रभु ने सभी का बल तेज-योग हर लिया, ब्रह्मा जी ने ध्यान द्वारा हरि की चेष्टाये जानी, तारकादि असुर क्रुद्ध हो बोले ये महादेव कौन है हम नहीं जानते हम नहीं मानते। इसके बाद उस बालक ने लीला पूर्वक हुंकार मात्र से ही उनको अभिभूत कर अपने घरों को लौट गये।

दिव्य सुगन्धित माला को चरणों में रख दिया।

हे कूप! तुम चिरंजीवी भव थोड़ा सा पानी होने पर भी निश्चिन्त हो लुटा रहे हो। गुणयुक्त (रस्सी बँधें) खाली पात्र भी तेरे सहारे पूर्ण हो जाते हैं सौशील्य गुण युक्त सृजन

परीक्ष्यज्ञापयन्नर्थान्, न पश्चात्परि तप्यते। (महामा.शा. १११।६७)

ऊधः पृथिव्या देशोऽयं, यो गिरे २ चा र्णवांतरे।

अर्वुदाचलः

३३०००
३३००
३३
३६३३३

जडः प्रकृति भागोऽयं, नार्यश्चार्हति निन्दनाम्।

पुरुषाणां प्रसादेन, मुच्यन्ते भवसागरात्।। (उमा) (स्क.पु.कौ. १२९)

कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्-४

गार्गोवालाथिरनूचानः अजातशत्रुं काश्यमेत्योवाच ब्रह्म ते ब्रवणि। तंहोरा चा जात शत्रुः सहस्त्रं दद्य एतस्यां वाचि।

	बालाब्दिः	अजातशत्रुः
१.	आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	अतिष्ठा, मूर्धा

कूप सदृश ही होते हैं, अल्पधन होने पर भी गुणवानों को कृतार्थ करना उनका स्वभाव होता है।

परीक्षा कर के बोलने वाला अर्थ प्रकाशित करने वाला पश्चाताप में नहीं पड़ता।

पृथिवी से नीचे पर्वत व सागर के मध्य है ये अर्वुदाञ्चल।

प्रकृति का जड़ भाग होने से नारी निन्दा की पात्र होती है। पुरुषों के प्रसाद से ये भव सागर से पार हो जाती है।

गर्ग गोत्रीय बलाक पुत्र गार्ग्य वेदार्थ तत्वज्ञ थे वे एक दिन काशीराज अजात शत्रु से बोले हम तुम्हें ब्रह्मोपदेश करते हैं प्रसन्न हो अज्ञात शत्रु ने कहा महाराज आपकी इस वाणी पर हम एक सहस्त्र गौ देते हैं, (यहाँ बलाक जो बोले प्राजात शत्रु उसे पूर्ण करते हैं)।

१. बलाक कहते हैं—हे राजन! आदित्य मण्डलस्थ अन्तर्यामी पुरुष की हम उपासना करते हैं, जो भी इनकी उपासना करता है वह सबसे ऊँचा जगत शिरमौर बन जाता है।

	बालाब्दिः	अजातशत्रुः
२.	य ए ष चन्द्रसि पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	सोमो राजा अन्नस्यात्मा
३.	य ए ष विद्युति पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	तेजस्यात्मा
४.	य ए ष स्तयिनौ पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	शब्दस्यात्मा
५.	य ए ष आकाशे पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	पूर्णम प्रवर्ति ब्रह्म
६.	य ए ष वायौ पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	इन्द्रो वैकुष्ठोऽपर्णाता सेना
७.	य ए ष अग्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	विषासहिः
८.	य ए ष अप्सु पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	नान्यस्यात्मा इत्यधिदेवम्
९.	य ए ष आदर्शेः पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	प्रतिरूपः अहमुपासे
१०.	य ए ष प्रतिश्रुत्काया पुरुषस्तमेवाहमुपासे।	द्वितीयोजनपरा इति वा

२. चन्द्रमण्डलस्थ पुरुष की ब्राह्मी भाव से उपासना करता हूँ ये सोम राजा अन्न की आत्मा है। (चन्द्रोपासनारत अन्न की आत्मा अन्नराशिवान होता है)

३. विद्युन्मण्डलान्तर्गत पुरुष की ब्रह्मभाव से उपासना करता हूँ, अजात शत्रु बोले महाराज ये तेज की आत्मा है।

४. मेघ में स्थित पुरुष की ब्रह्मभाव से उपासना करता हूँ, तो राजा बोला—महाराज ये शदात्मा है।

५. बलाक बोले मैं नभस्थ ब्रह्मोपासक हूँ राजा ने कहा ये पूर्ण निष्क्रिय ब्रह्म हैं।

६. मुनि बोले मैं वायु स्थित पुरुष ब्रह्म का उपासक हूँ। राजा बोला—ये ऐश्वर्य सम्पन्न अकुण्ठित अपराजित सेना है।

७. मुनि बोले मैं अग्निस्थि ब्रह्म का उपासक हूँ। राजा बोला—प्रभों ये विषासहि दूसरों के आक्रमण को सहने वाला।

८. मैं जलस्थ पुरुष ब्रह्मोपासक हूँ राजा बोला महाराज ये तो सबकी आत्मा ही है।

ये अधिदैव उपासना है जो जिस तत्व का उपासक है वह उसी की सामर्थ्य वाला हो जाता है।

९. मुनि बोले दर्पण में स्थित पुरुष का उपासक हूँ। राजा बोले ये प्रतिरूप है मैं भी इसकी उपासना करता हूँ इसके उपासक की सन्तति परम्परा इसकी ही प्रतिरूप होती है।

१०. मैं प्रतिध्वनि में स्थित ब्रह्म का उपासक हूँ—ये द्वितीय एवं अनपग है मैं भी उपासक हूँ इनका।

बालाब्दिः	अजातशत्रुः
११. य एवैष शब्दः पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	असुरिति अह मुपासे
१२. य एवैष छायायां पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	मृत्युरिति अह मुपासे
१३. य एवैष शरीर पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	प्रजापतिः अह मुपासे
१४. य एवैष प्राज्ञ आत्मा पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	यमो रांजा अह मुपासे
१५. य एवैष दक्षिणोऽक्षन्पुरुष पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	नाम्न आत्मा ज्योतिष्ट आ. अह मुपासे
१६. य एवैष सव्येऽक्षन्यु पुरुषमन्वेति तमहस पासे।	सत्यस्थात्मा

तृष्णीम् इत्यध्यात्मम् यौ वै बालकं एतेषां पुरुषाणांकर्ता यस्यवैतत्कर्म स वेदितव्य। जगद्वाचित्वात्। (ब्र.सू. १।४।१६)

---

११. मुनि बोला—यह जो शब्द ध्वनि पुरुष का अनुगमन करती है उसकी ब्रह्मभाव से उपासना करता हूँ राजा बोला महाराज ये प्राण है मैं भी इसकी उपासना करता हूँ, इसका उपासक अकाल मृत्यु नहीं मरता।

१२. मैं छायामय पुरुष का उपासक हूँ, राजा बोला ये मृत्यु रूप है मैं भी उपासक हूँ।

१३. मैं शरीरस्थ पुरुष का उपासक हूँ—ये प्रजापति हैं इनका उपासक पशुप्रजारत सम्पन्न होता है।

१४. मैं प्रज्ञा सम्वद्ध प्राणात्मा (स्वप्नोदर्शक) का उपासक हूँ ये यम है इनकी उपासक संयमन श्रेष्ठ होते हैं।

१५. मैं दक्षिण नेत्रस्थ ब्रह्मोपासक हूँ—ये सर्वात्मा अग्नि ज्योति की आत्मा है मैं भी इनकी उपासना....।

१६. मैं वाम नेत्रस्थ ब्रह्मोपासक हूँ, ये सत्य तेज विधुत् का आत्मा है मैं भी उपासक हूँ।

ये अध्यात्म यहाँ वलाका मुनि चुप हो गये, तब अजात शत्रु राजा बोले अरे! महात्मन! आप द्वारा वताये पुरुषों का (सोपाधिक पुरुषों) कर्ता है ये सारे कर्म जिसके हैं, वहीं जानने योग्य है ब्रह्मविद्या विलक्षण है उपदेश शुरू किया। गार्ग्य ने स्वभिमान पूरा किया राजा ने विनम्र हो। ब्रह्मज्ञान जब तक अभिमान का लेश भी है तब तक होते हुए भी नहीं है निरभिमान तो ब्रह्मीभाव में है हीं। वह ब्रह्म ही वेदितव्य है जगद्वचित्वात्।

संनियम्येन्द्रियग्रामं पत्रः व सेद्यतिः।
तचर कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा।। (वृद्ध शतातयः)
चतुरोयं व सेन्मासान् द्वौवा कौशिक वार्षिकौ।
स्थानायावाद्व्रजेत्तावद्, याव द्धवति पञ्चमी।
प्रायश्चित्तेन युज्येत, पञ्चम्यूर्ध्वं व्रजेद्यति।। (अत्रिः)
चतुर्धा माधुरी तस्य, व्रज एव विराजते।
ऐश्[1]वर्यक्रीड[2]यो [3]वेणे, स्तथा श्रीविग्[4]रहस्य च।। (वृहद्भागव तामृतम्)
पूतनावधात्कंसवधावधि।
हाथलात घातसों ही खेलत अरुखात मे,
नाचत नचात मे करामात दिख रायो है।
लालश्कटि गोपी गवाल उर लायो है।

देव प्रसादाः मत्स्य पु. २६९।। [1]मेरु, [2]मन्दर, [3]कैलास, कुम्[4]भ, सिंह[5], [6]मृगास्तथा। अष्टा[7]स्त्रः, षोड[8]शाश्च, व[9]र्तुलः, स[10]र्वभद्रकः। विमा[11]नच्[12]छकस्तछ[13]चतुरस्त्रस्तथैव च। सिहा[14]स्यो न[15]न्दनश्चैव, नन्दिव[16]र्द्धनक स्तथा। [17]हंसो वृ[18]षः सु[19]वर्णोशः, प[20]द्मको ऽथस[21]मुद्रकः। प्रासादा नामतः प्रोक्ताः।

अपनी इन्द्रियों को वश में करके जहाँ जहाँ यति वसता है वहीं नैमिषारण्य है कुरुक्षेत्र है पुष्कर है।

हे कौशिक! चातुर्मास्य के चार मास अथवा वर्षा ऋतु के दो मास तक एक ही स्थान पर रहे स्थानाभाव के कारण कहीं जाना पड़े तो श्रावण कृष्ण पञ्चमी तक जा सकता है यदि पञ्चमी के उपरान्त यति जाता है तो प्रायश्चित्त करना है।

श्री कृष्ण चन्द्र की चतुर्धा माधुरी व्रज में ही है—१. ऐश्वर्य, २. क्रीड़ा, ३. वंशीवादन, विग्रह की, ४. अपूर्व शोभा। पूतना वध से लेकर कंस वध तक।

देव प्रसाद भेद—१. मेरु, २. मन्दर, ३. कैलास, ४. कुम्भ, ५. सिंह, ६. मृग, ७. अष्टस्त्र, ८. षोडसास्त्र, ९. वर्तुल, १०. सर्वभद्रक, ११. विमान, १२. छन्दक, १३. चतुरस्त्र, १४. सिंहास्य, १५. नन्दन, १६. नन्दिवर्धन, १७. हंस, १८. वृक्ष, १९. सुवर्गेश, २०. पद्मक, २१. समुद्रकः। इन नामों से प्रसिद्ध प्रसाद होते हैं।

शत श्रृङ्गो चतुद्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः।
नाना विचित्र शिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते।।

मन्दरो द्वादश प्रोक्तः, केलासो नव भूमिकः।
विमानश्छन्दक श्तद्ध दनेक शिखराननः।।

सचाष्ट भूमिक स्तद्वत् सत्तभि नन्दि वर्धनः।
विषाणाक समायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः।।

षोडशास्त्र समायुक्तो, नाना रूप समन्वितः।
अनेक शिखस्तद्वत् सर्वतोभद्र उच्यते।।

चित्र शाला समापेतो, विज्ञेयः पंच भूमिकः।
बल भीच्छन्दव्य स्तछ दनेक शिखरा ननः।

वृषस्योच्छ्रायत स्तुल्यो मण्डलश्चास्त्र वर्जितः।।

सिंह सिंहा कृति ज्ञेंये, गजो गजसमस्तथा।
कुम्भः कुम्भा कृति स्तद्वद् भूमिकानवृकोच्छ्रितः।।

अंगुली पुटसंस्थानः पंचाण्डक विभूषितः।
षोडशासः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्रव्यः।।

मेरु—सौ शिखर, चारद्वार, सोलह मंजिल विचित्र विविध श्रृङ्गो वाले को मेरु कहते हैं।

मन्दर—बारह मंजिला। **कैलाश**—नव मंजिला। **विमान छन्दक**—अनेक शिखर और द्वार वाले आठ मंजिला होता है।

मन्दि वर्धन—सात मंजिला। **नन्दक**—श्रृङ्गयुक्त सातमंजिल वाला।

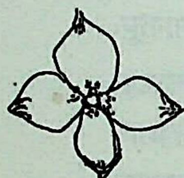
सर्वतोभद्र—सोलह अरे वाला (कोण युक्त) विविधरूप वाला विविध शिखरवाला।

छन्दक—चित्रशालायुक्त पाँच मंजिला मण्डल रहित वृक्ष अनेक शिखर वाला। किन्तु मण्डल और चौकोर नहीं रहता।

सिंह—सिंह के आकार का। **गज**—गजाकार। **कुम्भ**—कुम्भाकार नौ मञ्जिला।

समुद्रक—अंगुली पुट संस्थान, पाँच खण्ड वाला, षोडष कोण वाला। दोनों भागों में चन्द्रशाला वाला, दो मञ्जिला समुद्रक है।

पार्श्वयौश्चन्द्र शालोस्य उच्छ्रायो भूमिकात्रयम्।
तथैव पद्मव्यः पोत्त्य उच्छ्रायो भूमिका त्रयम्।।
घोडशास्त्रः स विज्ञेयो, विचिचशिखरः शुभः।
मृगराज स्तु विख्यात चन्द्रशालविभूषितः।।
प्राग्ग्रीवेण विशालेन, भूमिकासुषडुन्नतः।
अनेक चन्द्रशालश्च गज प्रासाद इष्यते।।
ॐ ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा।। (दे.भा. ९।४८)



गुदलिङ्गान्तरे चक्रं आधाराख्यं चतुर्दलम्।
प्रकृतिर्महदहंकारंतन्मात्रा दलानि हि।। (दण्डै श्वर्यवि.सा.)

ग्रहना	अर्वी	इंग्लि.	अधिका.	परिधिः	वूरी ५.	दू.सूर्यात्
सूर्य	शम्श	सन्	राजा	१ कोटिः को.१७	५ के.	
चन्द्र	कमर	मून	मन्त्री	३४९००	१०२...	५ को.
भौमः	मिर्रीख	मास	सेननी	७...	–	७...
वुधः	उतरादि	मरकरी	मुन्शी	६९२		२को.
गुरुः	मुश्तरी	ज्युपिटर	गुरुः	१४...		१४को.
शु.	जुहरः	वीनस	पुरोहित	१३....		४को. ३ला.

पद्मक—तीन मञ्जिला वाला सोलह कोणवाला वैसा ही जैसा समुद्रक है।

मृगराज—चन्द्रशालाभूषित विशाला वास।

गजप्रसाद—छः मञ्जिला अनेक चन्द्र थाला वाला।

मनसा देवी का मन्त्र—इसके जप से अभीष्ट सिद्धि होती है।

मूलाधार चक्र गुदा व लिंग के मध्य चार दल वाला है इन चार दलों में प्रकृति-महत्-अहंकार व तन्मात्रायें हैं।

नवग्रह मण्डल स्पष्ट ही है। मूल में ही देखें।

श्रद्धा हानि स्तयाऽसूया, दुष्टचित्तत्त्वमूढते।
प्रकृतेर्वश वर्तित्त्वं, रागद्वेषौचपुष्कलौ।
पर धर्मरुचित्त्वं चे, त्त्युक्ता दुर्मार्ग वाहक्तर।।

(मधुसूदनी टी.गी. ३।३५)

कर्म ज्ञानयो र्भेदः (सु.वा.)

हेतुस्वरूप कार्येषु, विरोधस्त्व नयोः स्फुटः।
अध्यासः कर्मणो हेतुः, प्रमाणं बोधकारणाम्।।

न भासकं कर्मरूपं, वोधरूपं तु भासकम्।
धर्म कार्यं भाविजन्म, तन्निवृत्ति स्तु वोधजा।
समुच्चितात्केवलाद्वा, नातो मोक्षोस्ति कर्मणः।। (वृ. ३।३)

श्वसूकरखरोष्ट्राणां, गोजाविमृग पक्षिणाम्।
चाण्डाल मृतपानाञ्च, ब्रह्महायोनि मृच्छति।। (विचार विन्दुरी. १)

ब्रह्मघात निष्कृतिः

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य, ब्रह्म हत्यां व्यपोहति। (वि.वि. १।२१)
(छत्र पादुकादि वर्जन दोषोद्घोषणा दूरदेशगमन-भिक्षा भोजनादि पूर्वकम्। (टी.)

श्रद्धा हानि तथा असूया (परगुणों में दोषदर्शन) द्वारा चित्त दूषित हुआ राग द्वैष की बहुतायत ये सब प्रकृति वश में व्यवहार से है। परधर्म रूचित्व = दुर्मार्ग पर चलने वाले

कर्मज्ञान में भेद

हेतुतया-स्वरूपतया-कार्यतया-ज्ञान और कर्म में विरोध स्पष्ट है। कर्म का हेतु अध्यास है, ज्ञान का हेतु प्रमाण है।

कर्म स्वरूप भासक नहीं है, ज्ञान स्वरूप भासक है। कर्म का कार्य जन्मान्तर देना है, ज्ञान कार्य जन्मान्तर निवृत्ति है। मोक्ष कर्म द्वारा सम्भव नहीं है।

कुत्ता-वराह-ऊँट-गदहा-गोत्रा-अवि-(भेड़)-मृग-पक्षियों चण्डाल अथवा मृत करक्षक (डोम) आदि योनियों में ब्रह्म हत्यारा जन्म लेता है।

ब्रह्महत्या का निवारण

समुद्र के राम सेतु को (धनुष्कोटि) (रामेश्वरं आदि) देखकर ब्रह्महत्या से मुक्ति मिलता है। कैसे दर्शन करें, हवाई जहाज, रेल, बस, कार से नहीं पैदल-पैदल भी नंगे पाँव छत्रादि

शिष्टाः

धर्मेणाधिगतोयैस्तु, वेदः सपरिवृंहणः।
तेशिष्टा ब्राह्मण ज्ञेयाः, श्रुतिप्रत्यक्ष हेतवः।। (मनुः १२।१०९)

कनिष्ठा ब्रह्म दण्डे च, तर्जनी विष्णु दण्डके।
मध्यमा रुद्र दण्डे च, आसुरेऽङ्गुष्ठकं तथा।। (यतिधर्म नि.)

१. वैशाखी–आचार्य क्षौरम्। २. आषाढी–व्यास क्षौरम्। ३. भाद्रवदी–विश्वरूपक्षौरम्। ४. कार्तिकी–ज्योतिः क्षौरम्। ५. पौषी–ब्रह्मक्षौरम्। ६. फाल्गुनी–दत्तात्रेयक्षौरम्। (यति द्य. नि.)

अवधूतः

योयमवधूतमार्गस्यो लोके दुर्लभ तरो नतु वा हुल्यः। नित्य पूतो वैराग्य मूर्तिः ९ ज्ञानाकारो वेदपुरुषः तच्चित्तं मध्येवावतिष्ठते अहंच तस्मिन्नेवावस्थितः।

(अवधूतोपनिष्ठद्)

रहित स्व-दोष का वर्णन करते हुए दूर देश गमन भिक्षा माँगकर खाये इस प्रकार यात्रा करने पर ही पाप शान्त होता है।

शिष्ट कौन है?

धर्मपूर्वक जिन्होंने वेद के विज्ञान को विस्तार सहित जाना है श्रुति के प्रत्यक्ष में हेतु भूत वे ब्राह्मण शिष्ट है।

ब्रह्मदण्ड में कनिष्ठा, विष्णुदण्ड में तर्जनी, रूद्रदण्ड में मध्यमा तथा आसुरदण्ड में अंगुष्ठ प्रमाण ग्राह्य है।

किस पूर्णिमा के क्षौर की संज्ञा क्या है—१. वैशाखी पूर्णिमा—आचार्य क्षौर। २. आसाढी पूर्णिमा—व्यास क्षौर। ३. भाद्रपदी को—विश्वरूप क्षौर। ४. कार्तिकी की—ज्योति क्षौर। ५. पौसी को—ब्रह्म क्षौर। ६. फाल्गुनी की—दत्तात्रये क्षौर। दो माह उपरान्त क्षौर विधि।

ये जो अवधूत मार्ग के राही हैं वे लोक में दुर्लभतर हैं। कोई एक लाखों में होगा बहुत नहीं (पाखण्ड अधिक किये मिलेंगे) वे नित्यान्तःकरण से पवित्र, वैराग्यमूर्ति, ज्ञानस्वरूप वेदपुरुष उनका चित्त मुझमें ही लगा रहता है मैं भी उनमें ही अवस्थित रहता हूँ।

वस्तुः (मत्स्यपु. २५२ अ.)

पुरान्धक वछे छोरे, घोररूपस्यशूलिनः।
ललाट स्वेद सलिला, पतद्भुवि भीषणारम्।।
करालवदनं तस्माद्, भूतमुद्भूतमुल्पराम्।
त्वदेहेनान्तरिक्षंच सन्धानं प्रतपद्भुवि।।
भीतभीतैस्ततो देवै र्ब्रह्मणा चायशूलिना।
दानवासुररक्षोभि, खष्टबन्धं समन्ततः।।
येनयत्रैव चाक्तन्तं, स तत्रैवावसत्पुनः।
निवासात्सर्व देवानां, वास्तुरित्यमिधीयते।।

गृहकालनिर्णयः (२५३)

वैशाखे धेनुरत्नानि, ज्येष्ठे मृत्युम्।
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवमिवाप्नुयात्।।
श्रावणो भृत्य लाभस्तु, हानिं भाद्रपदे तथा।
पत्नी नाशोऽशिने विहात्, व्यार्तिके धन धान्यकम्।।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं, पौषे तस्करतो भयम्।
लाभं चवहुशोविन्द्यात् अग्नि माघे विनिदिशित।
फाल्गुनेकञ्चनं पुत्रान्, चैत्रे व्यधिमवाप्नोति।।

वास्तु

पूर्व में घोरूप अन्धकासुर को मारकर घोर रूपी सदाशिव के पसीने से एक भीषण विशालकाय अद्भुत तीनों लोकों को अवरूद्ध करता हुआ रूप प्रकट हुआ—देवतादि सब डर गये ये क्या है तथा सबने उसको चारों ओर से अवरूद्ध कर वश में किया तथा वहीं बैठ गये। सभी देवताओं के आवास होने से ही वह वास्तु कहा गया।

वैशाख—में घर बनाने से धेनु रत्नप्राप्ति। ज्येष्ठ—में मृत्यु। आसाढ़—सेवक, रत्न, पशु आदि। श्रावण—भृत्य लाभ। भाद्रपद—हानि। आश्विन—पत्नी नाश। कार्तिक—धन धान्य। मार्गशीर्ष—भक्त। पौष—चोरभय। माघ—वहुशः लाभ, अग्नि। फाल्गुन—स्वर्ण, पुत्र। चैत्र—व्याधि प्राप्ति।

इदं रम्यमिदं नेति, वीजं ते दुःख संततेः।
तस्मिन्साम्याग्निनादाधे, दुःखस्यावसरः व्युतः।। (यति धर्म सं.)

कामं कोधं भयं स्नेह, मैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ बिदधतो, यान्ति तन्मयतां हि ते।।
(भागवतं १०।२९।१५)

संप्रधार्येतिविभुः, तया शक्त्या महेश्वरः।
सव्ये व्यापार यां चक्के, दशमेङ्गे सुधा सवम्।।
ततः पुमानाविरासी, देकस्त्रैलोक्य सुन्दरः।
(विष्णुः) (शिवपु.रु.सृ. ६।३८)

ह्रीं श्री राधायै स्वाहा।। (दे.भा. ९।५०)

श्री वातूल नाथ सूत्राणि

१. किमप्यनवकासं परं तत्त्वम्। २. महा साहसवृत्या स्वरूप लाभः। ३. सर्व वृत्ति महा सामरस्यम्। ४. तल्लाभाद्वयगपद वृत्ति प्रबृत्तिः।

यह रम्य है यह रम्य नहीं ये विचार दुख परम्परा के बीज हैं। इन दुःख बीजों के साम्य रूपी अग्नि से जलने पर दुःखावसर कहाँ?

काम-क्रोध-भय-स्नेह-ऐकता-सौहार्द हरि में नित्य इनका सम्बन्ध बनाने से तन्मयता (हरिभावापन्त्रता) की प्राप्ति होती हैं। कोई भी सम्बन्ध बनाओं चाहे गोपियों जैसा, काम, भाव, शिशुपाल जैसा क्रोध, भाव, कंस जैसा भयभाव यशोदा जी जैसा स्नेहभाव, अर्जुनोद्धव जैसा सौहार्दभाव सम्बन्ध यद्यपि वन्धन का कारक है तथापि भगवद् बन्धन हो करोड़ों मुक्तियों से श्रेष्ठ है।

सर्वव्यापक सर्वेश्वर, महेश्वर स्वशक्ति के साथ व्यापाररत हुए। तदनन्तर एक त्रैलोक्य सुन्दर पुरुष आविर्भूत हुआ।

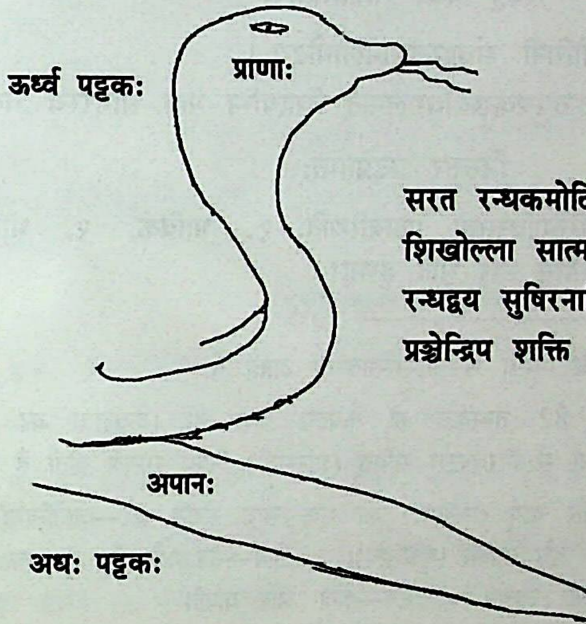
'ह्रीं श्री राधायै स्वाहा'—ये मन्त्र श्रीराधिका रानी के कृपा प्रसाद का सहज सम्प्राप्ति साधक है।

वातुलनाथ सूत्र—योगमार्गी साधकों के लिए उपयोगी विज्ञान है—१. कोई अनवकास परं तत्व है जिसके ज्ञान से परम सौख्य निश्चित है। २. महासाहस वृत्ति से स्वरूप का लाभ होता है! (आगे स्पष्ट होगा)। ३. सभी वृत्तियों महासमरसता में हैं (समत्वयोग ही सामरस्य है)। ४. समरसता प्राप्ति के अनन्तर एक साथ ही साहस वृत्ति की प्रवृत्ति होती है।

अहमि प्रलयं कुर्व, न्निदमः प्रतियोगिनः।
पराकमपरोमुङ्क्ते, स्वात्मानमशिवापहम्।। (टिप्पणी)

पुस्तक कथा

३. उभय पट्टो द्घट्टनान्महाशून्यता प्रवेशः।।



सरत रन्ध्रकमोदितः सप्त
शिखोल्ला सात्मकः पूर्ण वृत्युदयः।
रन्ध्रद्वय सुषिरनालिका प्रवाहः
प्रञ्चेन्द्रिप शक्ति पञ्च फलद्यर्मी।।

अशिव हन्ता स्वात्मा का आनन्द तो पराक्रम परायण साधक ही ले सकता है। जो साधक इस इदम् प्रतिद्वन्द्वी का (जगत् आदि का) मैं में ही लय कर ले। अहनि (अपने में) यहाँ इदम् को प्राप्ति पदिक व अहम् को प्रातिपदिक मान लिया इदमः सप्ठी अहमि स...।

उभय पट्ट (प्राण पट्ट व अपानपट्ट) के एकरूप होने से महाशून्यावस्था में प्रवेश होगा।

सप्तरन्ध्रों से क्रमशः उदित सप्त शिखाओं को उल्लासित करने वाली पूर्ण वृत्ति का उदय होता है जब प्राणावान समान हो जाते हैं। प्राणायानादि रन्ध्रद्वय में सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह पञ्चेन्द्रिय शक्ति व पञ्चफल धर्मी है।

प्राणापननिरो धात्। सामर स्यावस्थितिः।। (टीका)

४. कैवल्यफलं तन्मयता–युग्मग्रासा निरवकाक्षसंविन्निष्ठा।

१. पृथ्वी–श्राणम्, पायुः। २. आपः–रसना, उपस्थः। ३. तेजः–नेत्रेम्, पादौ। ४. वायुः–पाणी, त्वक्। ५. व्योम–श्रोत्रे, वाक्।

संघट्ट यथा साक्षात्कारः

५. सिद्धयोगिनी संघट्टान्महामेलायोदयः।

अहंत्तेदन्तफ्यकछयविगलनात् चिद्वयम्नि महा सामरस्यं भवति।

निरुत्तर प्रदप्राप्तिः

६. त्रिकञ्चुक परित्यान्निराख्य पदावस्थितिः–१. भाविकं, २. भौतिकं, ३. शून्यम्। सर्व वाक्यप्रथासु स्वर भूति जृम्भा।

प्राण और अपान के निरोध से सामरस्यावस्था आती है।

कैवल्य फल क्या है? तन्मयता ही कैवल्य फल है। (केवलता का भाव) (ज्ञानकर्मेन्द्रिययोग) युग्म ग्रास से निरवकाश संवित् (ज्ञानमयी) निष्ठा सम्पन्न होती है कैसे?

१. पृथ्वी—प्राण और वायु (मलद्वार) का एक साथ सेवन करे—ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रिया। २. जल—रसना और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय)। ३. तेज—नेत्र और पैर का एक साथ। ४. वायु—पाणी (हाथ) और त्वचा। ५. नभ—श्रोत्र और वाणी।

संघट्ट कथा साक्षात्कार

सिद्ध योगिनी के संघट्ट से महामेलाप का उदय होता है (कुण्डलिनी शक्ति)।

अहंता और इदंता मैं और यह इन दोनों के विगलित होने से चिताकाश में महासामरस्यावस्था आती है (संमत्वयोग) गीता का (मैं (अहन्ता) भाव और मुझसे पृथक प्रतीति ये जगत् (इदन्ता) भाव ये दोनों मिलकर एक होना ही समरसता है सामरस्थ है) बात एक ही है शब्द भेद से दुरूहसी है।

निरूत्तर पद प्राप्ति

तीन कञ्चुकों के त्याग से निरूत्तर पद स्थिति होती है, भाविक (भावगत) भौतिक (देहरात) शून्य (ध्यानगत) सर्व विध वाक् प्रथा में स्वर भूति जृम्भा है (विस्तारित है)।

७. वाक्चतुष्टयोदयविरामप्रथासु स्वरः प्रथते–१. परा–अण्डासवत् सामरस्या। २. पश्यन्ती–वटधानिकावत्, द्रष्ट् स्वभावा। ३. मध्यमा–शिम्बिका फलवत् वर्णपुञ्जम्। ४. वैखरी–वृक्षवत् वर्णविभवः। (टी.)

परंधाम प्रकाशः

८. रस त्रयास्वाप नेनानिच्छोच्छलितं विगत वन्धं परंब्रह्म।

१. सृष्टिः ↓ मूलाधारः   २. स्थितिः ↓ पयोधरः   ३. संहारः ↓ आधारः

देवी चतुष्टय कथा साक्षात्कारः

९. देवीचतुष्टयोल्लासेन सदैव स्व विश्रान्तिः–१. क्षत्, २. तृड्, ३. इर्ष्या, ४. मननम्।

द्वादशवासचत्ररहस्यम्

१०. द्वादशवाहोश्येन महा मरीचि विकासः। ज्ञान कर्मेंद्रिय मनो वुद्धयः।

चार प्रकार की वाणी के उदय व विराम का कारण स्वर है—१. परा—ये अण्डरसवत् समरसता में है (गोप्यतम) तुरीया नाभिगत परंयोगी। २. पश्यन्ति वह धानिकावत्—दृष्टस्वभावा है सुषुप्ति हृदयगत ध्यानी। ३. मध्यमा शिम्विका फलवत्—वर्णपुञ्जरूपा है स्वप्न कण्ठगत ज्ञानी। ४. वैखरी वृक्षवत्—वर्ण विस्तार रूपा है जाग्रत् जिह्वापर साधारण

परंधाम प्रकाश

रसत्रय के आस्वाद द्वारा अनिच्छ-उच्छलित विगतवन्ध ही पर ब्रह्म है।

रसत्रय— सृष्टि - स्थिति - संहार

मूलाधार - पयोधर - आधार

देवी चतुष्टय का साक्षात्कार

इन चार देवियों के उल्लसित होने से यज्ञ ही स्व की विश्रान्ति होती है। आत्मबोध नहीं रहता—१. भूख, २. प्यास, ३. ईर्ष्या, ४. मनन (चिन्ता)।

द्वादश अश्वों के उदय से महामरीचि का विकास—५ ज्ञानेन्द्रि, ५ कर्मेन्द्रिया, १ मन, १ बुद्धि = १२ वाह हे इनके उदय से ज्ञान किरणों का विस्तार होने लगता है।

उद्यांगावभास चर्वणालं ग्रास विश्रान्ति रूपाणं महा संविद्रश्मीणं विकासः, नियता निपत चिदचित्प्रथा विगल नेन नित्य विकसवार स्वभावो नह वोधः सततं सर्वत्र स्थितः। (टी.)

चर्चा पञ्चम संप्रदायः

११. अर्था पञ्चकोदये निस्तरंग सम्वावेशः-१. अनाश्रिताव[१] धूतोन्[२]मत्त[३] सर्वमक्ष्य[४] महाव्यापक[५] स्वरूपम्। २. आणव शाक्त शान्भव रूपं विना निरुत्तरनिसत्तर सल वेशः।

१. शोतृ शक्ति, २. दृक्शक्ति सर्वच उन्मिषिता, ३. विचित्तवत्स्वतन्त्रता, ४. पक्ष्यसंस्कार कवलनशीला, ५. अशेश स्पर्श स्वीकरणाय उन्मिषिता। (टी.)

पुण्यपाप निवृति काथा

१२. महावोध समावेशात्पुण्य पापा संबन्धः-१. ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय संकल्प कालुष्य हीनः परतर ज्ञान स्वभावः। २. अकरण कमेणं त्याग स्वीकरद हीनेन सतत मच्युत वृत्या स्फुरणान्।

स्वरसिद्ध मौन कथा

अकथन कथा वलेन महाविस्मय मुद्राप्राप्त्या रव स्वरता।

उद्योग के अवभास आहार लेने से विरत विश्रान्ति दशा में महा संवित् रश्मिया विकसित होती हैं। अनियत् नियत् अचित् चित् प्रभा के विगलित होते ही नित्य विकास कर आत्मबोध सर्वत्र स्थित होता है।

चर्चा पञ्चक के उदय में निस्तरंगता आती है—अनाश्रित, अवधूत, उन्मत्त, सर्वभक्ष्य महाव्यापक स्वरूप—ये चर्चा पंचक आणव-शाक्त-शाम्भव इलादि रूपों के विना निरूत्तर समावेश होता है।

१. श्रवणशक्ति, २. दृक् शक्ति, ३. विचित्र वत्स्वतन्त्रता-भक्ष्य, ४. समावेश संस्कारा, अशेष स्पर्श स्वीकरणार्थ उन्मिषिता।

पुण्यपाप

महाबोध (ज्ञान) और समावेश से पुण्य पाप का सम्बन्ध होता है। ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय संकल्प की कालिख से रहित होता है श्रेष्ठ ज्ञान स्वरूप होता है। (अकतपिन के भाव, त्याग और अंगीकार से रहित निरन्तर अच्युत भाव में जीना ये समावेष।

स्वर सिद्ध मौन

अकथन (कथा) वल से महाविस्मय मुद्रा प्राप्ति होती है उससे नभस्वर बोध होता है। महाविस्मय मुद्रा—मित द्वारा अमित का आहार दर्पनाश के अनन्तर महामोद प्राप्ति।

अः

१. हतः–कण्ठादि घातः, जाग्रत्। २. अनाहतः–तन्त्री मध्यमा स्वरः, स्वप्नः। ३. अनाहतहतः–पर नादः, वामा, सुषुप्तः। ४. अनाहतहतोत्तीर्णः–महास्पन्द-स्वरपरमविकास तुर्या। रूपः। रौद्रीरूपः। कथनं–कवत्राम्नाय चर्चा।

प्रयात्रथिभान रहितनिस्तरंगचिद्धामवद्धास्पदो दैशिकवरः, कार्यकरणा कर्म निरपेक्षतया यत्किंचित्स्वरूपप्रतिपत्तावालोकयति तत्परतरचिन्मयमेव सततं भवति।।

अन्या व्याख्या–कथनं–षड्दर्शनादिः, उपासादिभिः स्फुरति। इह–पूज्य पूजक पूजन सम्बन्धं विना सिद्ध वक्त्राम्नायदृशा-महामरीचिविकासः स्वरूपाभिन्नः सर्वदैव राजते।

विस्मयः–मिताभिताहिकार दर्प नाशः महामों दो-मुद्रा, खं-स्वेनराति-खस्वरः।

न देवा मानुषीं मार्या, कुर्वन्ति च कथंचन।
श्लेष्म मूत्र पुरीषाणां, संस्थानं या विगर्हिता।।
(स्क.पु.ना. १२१।३१)

अः स्वर चतुर्विध

१. हत—कण्ठादि के घात से उत्पन्न, जाग्रतावस्था के स्वर। २. अनाहत—वीणादिजन्य मध्यमा स्वर, स्वप्न में। ३. अनाहत हत—पर नाद, वामा, सुषुप्ति। ४. अनाहत हत्तोत्तीर्ण—महास्पन्द स्वर का उच्चतम विकास, तुरीयावस्था रौद्रीरूप।

प्रमातापन के अभिमान से रहित निस्तरंग-चितधाम में वद्धास्पद सन्यासी (श्रेष्ठयति) कार्य करण कर्म निरपेक्ष होकर जो कुछ भी स्वस्वरूप प्रतिपत्ति का अवलोकन करता है वह अवस्था उच्चतम ज्ञानमयी ही होती है।

षडदर्शन भी उपासना द्वारा ही स्फुरित हुए हैं। यहाँ पूज्य पूजक पूजन सम्बन्ध के बिना सिद्ध वक्त्राम्नाय दृष्टि से महामरीचि विकास (ज्ञान रश्मि विस्तार) स्वरूप (आत्मा) से अभिन्न हो सदा शोभित रहता है।

विस्मय—मित का अमित आहार दर्प का नाश। मुद्रा—महामोदः खं = स्वेन राति इति स्वर। खस्वर—आकाश में स्वतः प्रकट हो वह खस्वर है।

देवता मानवी स्त्री से विवाह कभी नहीं करते क्यों? क्योंकि मानवी स्त्री श्लेष्म-मूत्र-पुरीष का संस्थान होने से विनिन्दिता होती है।

आनर्ते

सत्यसंधः—कर्णोत्पला।

वृहद्वलः—सप्तसप्ततिमः।

अनृतं च समुत्कर्षे, राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः, समानि ब्रह्म ठत्यया।। (मनुः ११।५५)

हिमालयः

गंगाघरं शुक्लतनुं, सर्पैरा कीर्त्त विग्रहम्।
शिववत्सुखदं पुंसां अपश्यत्स हिमालयम्।।

दधीचिः। (स्क.पु.प्र. ३३।५)

ज्वालामुखी (शिवमु.रु.सती. १)

सती देह समुत्पन्ना ज्वाला लोक सुखा वहा।
पतिता पर्वते तत्र पूजिता सुखदायिनी।
ज्वाला मुखीति विख्याता, सर्वकामफल प्रदा।।

रामः

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।
नक्षत्रेडेदितिदैवत्ये, स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु।।

आनर्त देश के राजा सत्यसंध अपनी पुत्री कर्णोत्पला के लिए अनुरूप वर की जिज्ञासा में ब्रह्मलोक गये वहाँ से आये कन्या ने जगदम्बा का आराधना किया तब वृहद्वल के साथ विवाह हुआ।

समुत्कर्षों के प्रति असत्य, राजसम्बन्धी चुगली, गुरु से अनैतिक अनुचित निर्वन्ध—ये पाप ब्रह्म हत्या के समान है।

दधीचि ने हिमालय को देखा—गंगाधर है (गंगा पुत्री है), श्वेतवर्ण भी है (हिम के कारण), सर्पों से शोभित देह भी है (पर्वतों में सर्प तो है ही)। ये हिमालय तो शिव के समान सबको सुख देने वाले हैं।

ज्वालामुखी—सती शरीर से समुत्पन्न ज्वाला संसार को सुख देने वाली है पर्वत पर गिरी इस ज्वाला की पूजा से सौख्य प्राप्नि होती है। ज्वालामुखी नाम से प्रसिद्ध ये तीर्थ कामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

बारहवें चैत्र मास की शुक्लपक्षीय नवमी तिथि में अदिति देवता स्वामी हैं जिस

ग्रहेषु कर्कहे लग्ने, वाक्पति ना सह।
विन्दुप्तोद्यमाने जगन्नाथं, सर्व लोक नमस्कृतम्।।
कौशल्या जनयद्रामं, दिव्यलक्षण संयुतम्।

१. पुनर्वसौ। २. विभौम शनि–(वाल्मी.वा. १८) गुरुशुक्रेषु। मेष मकर तुला कर्क मीनस्थेषु। ३. लग्ने उदयं गच्छति। (टी.)

कंस वधे गोपीनां पत्रम्

विपिनं सदनं यासां, सदनं विपिन नवभूव गोपीनाम्।
तासां त्वद्वियुजांकिं, मृति जीव योविपर्ययो न स्यात्।। (गो.च. ५)

यासां चन्दन चन्द्र, प्रभृति च मस्तु तापनं भवति।
हरिरहितानां तासां, वह्निः किं वत न शीतता मयिता।।

सुभगोपयस्टी. ७

सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीय रम्ये,
सुकल्प द्रुमाकस्य कादम्बसन्ये।
स्फुरत्स्वर्णसिंहासने रत्नीपीठे,
भवाङ्के निषण्णां मजाम्यन्नपूर्णाम्।। (सुभगोदया.टी. ७)

नक्षत्र के उस पुनर्वसु नक्षत्र में उच्चस्थ पाँच ग्रहों के पवित्र काल में (मध्याह्न काल) कर्क लग्न के उदयकाल उच्च के पाँच ग्रह—रवि (मेष), भौम (मकर), शनि (तुला), गुरु (कर्क), शुक्र (मीन)। वृहस्पति लग्नस्थ—सर्वलोक नमस्कृत जगन्नाथ दिव्य लक्षणयुक्त राम को कौशल्या ने उत्पन्न किया।

गोपियो का पत्र

विपिन ही जिनका घर था। (कृष्ण विपिन में रहते थे तो सब गोपियाँ घर छोड़ वनों में घूमती रहती दिनरात) अब उन गोपियों का घर ही वन हो गया है। हे कृष्ण तेरे वियोग में क्या जीवन और मृत्यु में विपर्यय (उलटा) नहीं हो गया (अर्थात् वो जीती हैं तो मरी जैसी मरे तो चैन आये)।

जिनके लिए चन्दन-चन्द्र आदि वस्तु जलाने वाली होती है। तब हरि से रहित उनके लिए ये आग भी क्या शीतल नहीं होनी चाहिए।

सुधा समुद्र के बीच दिव्य मनोरम मणिद्वीप में सुन्दर कल्पद्रुम के समान कदम्ब वृक्षों

विन्दु स्थानं सुधासिन्धुः, पंचयोन्यः सुरद्रुपाः।
तत्रैव नीष श्रेणी च, तन्मध्ये मणिमण्डयम्।।

तत्रचिन्ता मणिकृतं, देव्या मन्दिर मुत्तम्।
शिवात्मके महामञ्चे, महेशानोपवर्हणे।। (वामकेश्वर तंत्रे)

नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये, मनसो मण्डलं विदुः।
शाम्भव स्थानमेतत्ते, वर्णितं पद्मसम्भव!।।(या.शि.उ.अ. ५)

सुभ.स्तो. ६

यत्कुमारी मन्त्रयते, यद्योषित्पतिवुता।
अरिष्टं यत्किंचक्रियते, अग्निस्तदनुवेछति।।

(तैत्तिरीयारण्यकं. १।२७)

श्रीशुभगोदय स्तुतिः, श्लो. ५

पृथिव्यापस्तेजः पवनगगन तत्प्रकृतयः,
स्थितः स्तन्मात्रास्ता विषय दशकं मानसमिति।
ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः,
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः पर कला।।

के मध्य स्वर्ण सिंहासन मण्डित रत्नपीठ पर देवाधिदेव महादेव की गोद में विराजमान माँ अन्नपूर्णा का मैं ध्यान करता हूँ।

विन्दुस्थान सुधा सिन्धु है पाँच योनियाँ ही कल्पवृक्ष हैं, वही नीव (कदम्ब) श्रेणी है, उसके मध्य में मणिमण्डप है वहाँ चिन्तामणि रचित देवी का उत्तम मन्दिर है। वहाँ शिवात्मक महातल्प पर (मंच पर) महेशान का विस्तार लगा है वहाँ माँ जगदम्बा विद्यमान है।

दोनों भौंहों के मध्य मन का मण्डल है। यही शाम्भव स्थान है ब्रह्मा जी ने ऐसा कहा है।

जो पतिव्रता स्त्री तथा कुमारी के प्रति कुभाव रखता है अग्नि उसको जलाकर भस्म कर देता है।

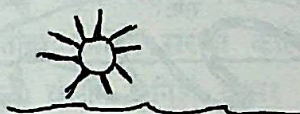
पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये सब ब्रह्म की प्रकृतियाँ हैं, इनसे सूक्ष्म वहीं तन्मात्रा रूपा है दश इन्द्रियों के दश मानस विषय भी वही है इनसे सूक्ष्म माया विद्या

ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च, ईश्वरश्चसदाशिवः।
एते पंच महाप्रेहा भूताधिपतयो मताः।।

चत्त्वारो मञ्चचरणाः, पंचमः प्रच्छदः पटः।
संवित्प्रकाशरूपेण, शिवेनाभिन्नविग्रहा।
तत्रासने समासीनां, निर्भरानन्दरूपिणीम्।। (यामते)

आनन्द मयी मा

१. यत्र भवान् तत एवमेव दृश्यते। २. न च दृश्य ईश्वरः। (वि.ष.ज.)



नारदः हिलयाय

एका विलक्षणारेखा, तत्फलं शृणु तत्त्वतः।
योगी नग्नोऽगुणोऽव्यामी, मातृ तात विवर्जितः।।
अमानोऽशिव वेषश्च, पतिरस्या, किलेदृशः।।

(गौर्याः) (शि.पु.रु.पा. ८)

महेश शिव है इससे भी पर तत्वातीत है प्रकृति पुरुष का मिलित वपु चन्द्र की पर कला रूप में।

ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, ईश्वर, सदाशवि (पलंग के पाये है चरण है)—ये पाँच भूतेश्वर महाप्रेत हैं।

इनमें पूर्व के चार मन्त्र के (शय्या) खाट पाये हैं, पाँचवें सदाशिव पीठ है फलक हैं, विछाने के वस्त्र हैं, ज्ञानप्रकाश रूप से शिव से अभिन्न देह वाली निर्भरानन्द स्वरूपा माँ वहाँ आसन पर समाचीन है।

जहाँ तक आप दिख रहे वह तो (आप दृश्य है) जगत ही है। जो दिख रहा है वह ईश्वर नहीं है।

नारद हिमालय से—हे नगाधिराज, तुम्हारी कन्या के हाथ में एक विलक्षण रेखा है उसका फल सुनो—इसका पति जो होगा वह योगी, नग्न, अगुण, अकामी, माता-पिता हीन, अमान-अशिववेषधारी होगा।

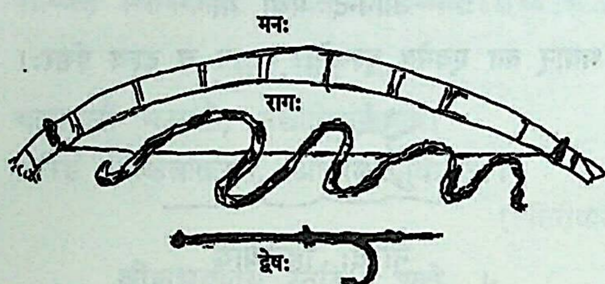
पापो वद्धोनरके नियुज्यताम्। (अथर्ववे. २।२।२)

अचिन्त्य रचना रूं मायै वाकिलं जगत्। (पं.द. ६।४६)

तन्त्रराज वासना पटले

मनो भवेदिक्षुधनुः, पाशो राग उदीरितः।

द्वेषः स्यादंकुशः प्रञ्च,-तन्मात्राः पञ्च सायकाः।



विन्दु स्थानं सुधासिन्धु, पञ्च योन्यः सुरद्रुमाः।

तथैव नीय श्रेरी च, तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्ता मणिकृतं, देव्या मन्दिरमुत्तमम्।

शिवात्मके महामञ्चे, महेशानोप वर्हणो।। (म.या.वा.त.)

कशिपुश्च सदाशिवः।

पाप पाशवद्ध जीव को नरक में डाल दो।

विलक्षण अचिन्त्य (समझ से परे) रचना वाला ये संसार निश्चित ही माया ही है (मिथ्या है) इस प्रकार निश्चित कर वस्तु तत्व को अद्वैत सत्य परिक्षेत्र से समझना चाहिए।

मन ही ईख (गन्ना) का धनुष, राग ही पाश है बन्धन कारक है, द्वेष ही अंकुश है और पञ्च तन्मात्रायें ही पाँच वाण है।

विन्दु स्थान ही सुधा समुद्र है—पाँच योनियाँ ही कल्प वृक्ष है वैसे ही नीच श्रेणी है, उनके बीच में मणिमण्डप है।

वहाँ चिन्तामणि निर्मित देवी का उत्तम मन्दिर है। वहाँ शिवात्मक महामञ्च पर महेशान के उपवर्हण पर (विस्तार तकिया) भगवती का विश्राम स्थान है। पलंग = सदाशिव है।

जगच्चित्रं स्व चैतन्ये पटे चित्रमिवार्पितम्।
पायया तदुपेक्ष्यैव चैतन्ये परिशेष्यताम्।। (पं.द. ६।२८९)
अप्रवेश्यचिदात्मानं पृथक्यश्य नहं कृतिम्।। (२६२)

श्री

शुभगोदय स्तुतिः। श्री गौ.पा.आ.।

भवानि त्वां वन्दे भव महिषि सच्चित्सुख वपुः,
पराकाणं देवीं ममृत लहरी मैन्दव कलाम्।
महाकाला तीतां कलित सरणी कल्पित तनुम्,
सुधासिन्धोरन्त र्वसति मनिशं वासर मयीम्।।१।।

महाकुण्डलिनीरूपे, संच्चिदानन्दरूपिणि।
प्राणग्निहोत्र विद्ये ते, नमो दीपशिखात्मिके।।
(टी. देवी भा. ४।१५)

कला तु षोड शो भागः। (अमर को. ३।१३), **जगौकलम्** (श्रीमद्भा. १०।२९), **कलं तु मधुरास्फुटे।** (कोशः अखण्डानन्दः)

माया द्वारा जगत् चित्र को चैतन्य तत्व पर ऐसे खींचा है जैसे वस्त्र पर चित्र बनाया जाता है अतः इस कल्पित जगत् चित्त की उपेक्षा करके आत्म चैतन्य को परिशेष वृत्या सत्यशुद्ध समझो।

चिदात्मा को अहं में प्रविष्ट किये बिना ही अहंकार को भिन्न देखता हुआ प्राणी पश्चात् कोटि वस्तु की इच्छा करे, किन्तु ग्रन्थि भेद होने पर फिर मोक्ष में बाधा नहीं आती।

हे सच्चित सुखरूपा, सदाशिव सहचरी, हे इन्दुकला सम्पन्न पराकारा हे अमृत लहरी, हे महाकालातीत हे कल्पित देह धारिणी, निरन्तर दिव्यप्रकारा युक्त सुधासिन्धु में निवास करने वाली भवानी मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

हे महा कुण्डलिनी रूपा हंसच्चिदानन्दरूपा हे प्राण का अग्निहोत्र करने की महाविद्या हे दीप शिखात्मिके देवि आपको नमन है।

कला = सोलहवाँ भाग मधुर गान किया कलम = मधुर व स्पष्ट।

गृहे लिङ्ग छयं नार्च्यं, शालग्रामद्वयं तथा।
द्वेचके द्वारकायास्तु, नार्च्ये सूर्य द्वयं तथा।। (वाराहे पाद्मे च)

प्रथमं चर लिङ्गेषु रस लिङ्गं पकथ्यते।
रस लिङ्गं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्ट प्रदं भवेत्।।

वाणालिङ्गं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदंशुभम्।
स्वर्णालिङ्ग तु वैश्यानां महा धनपतित्वदम्।
शिला लिङ्ग तु शूद्राणां महशुद्धिकरं शुभम्।। (शिव पु.वि.सं. १८)

श्रीराधामनुः

ह्रीं श्रीराधार्ये स्वाहा (देवीया. ९।५०) जग्राह प्रथमं श्रीकृष्णः मूलदेव्याः गोलोके रासमण्डले।

कृष्णार्चायांनाधिकारो यतोराधार्चनं विना।

रामा माधव सर्दास कथेयं

स्निग्ध कण्ठ उवाच—नरकवधंविद्याय...सर्व शर्म विधान-रूपः स्वपुरं समागतवान् तदः व्रज साधारण्ये न राधादिषु दिव्यालंकार रत्नानि विहायि तानियत्र द्वित्रिवर्णकम वलनया समस्तकलनया चित्रित मिवलिखितं विलक्ष्यते स्म।

घर में दो शिवलिङ्ग, शालग्राम शिला भी दो, दो द्वारिका चक्र, दो सूर्य भी नहीं पूजने चाहिए। गृहस्थी के लिए निषेध है (गृहे) मन्दिर के लिए तीर्थ के लिए आश्रम के लिए तो निषेध नहीं है।

चर लिङ्गों में सर्वश्रेष्ठ पारद लिङ्ग है, ब्राह्मणों के लिए विशेषकर अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करने वाला है।

बाण लिङ्ग क्षत्रियों के लिए साम्राज्य प्रदायक व शुभ है। स्वर्ण लिङ्ग वैश्यों के लिए विपुल वैभव दाता है। शिलालिङ्ग शूद्रों के लिए संस्कार व शुद्धि प्रदान करने वाला है।

ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा—इस मन्त्र को भू देवी के साथ श्रीकृष्ण ने गोलोकस्य रासमण्डल में लिया।

कृष्णोपासना का अधिकार राधार्चन के विना नहीं मिलता।

स्निग्ध कण्ठ बोले—नरकासुर को मारकर-सर्वसुख विधानरूप श्रीकृष्ण अपने नगर द्वारिका में लौट आये। व्रज में साधारणतया सभी ने दिव्य अलंकार त्याग दिये। श्रीराधा में प्रतिक्षण दो तीन वर्ण निरन्तर आते जाते रहने से चित्र लिखित सी प्रतीत होती थी।

व्याकारा निचितामया वहुविद्या युष्मछवि छायया,
कालं क्षेप्तुमथा जनिप्रतिपदं निर्वेदखेदपरम्।
यावद्वन्धनमात्मना विरचितं तत्तद्विचित्रंवलात्,
छित्त्वा तत्र समेभि तावदसकृत्प्राणान्प्रिया रक्षत।।

तदेतदपि वहि ईष्टचापेक्षया, वस्तुतस्तुयद्यदत्रकिलरच्यते वहि स्तत्तवङ्ग वहिरेवमन्यतं अन्तरेऽहमपि यूयमप्यहो, केलिमेव कलयामहेमिथः।

अथ समापनं स्निग्ध कण्ठः सोत्कण्ठमाह–इन्द्रजालमिनविद्धिराधिके, तत्तदाधिवलनं पुनः पुनः। पश्यकृष्टामिह तृष्णगन्तरः त्वन्मुखे सुखवशान्निरीक्षते। (गोपाल च. १८)

मथुरागमन काले श्री कृष्णस्य स्वेदजल कुंकुमरागेणा गोपीनां चाक्षु जल कज्जलभागेन लिखितानि मधुमंगल द्वारा प्राप्ति तानि पत्राणि–कृष्णस्य–आशु आयास्थामि मोचयि त्वापितॄन् किय छूरे किल प्रियाः? कुत्र दुखम् अन्यत्कि किमपि उचितं विछत्त प्रवस्याः?

आपकी छवि की छाया से मैंने बहुत से विशिष्ट आकार चुन लिये (छविसमुद्र की तरंग मालाओं से कुछ मनोहारी लहरें) ये समय विताने के लिए। किन्तु ये क्या वे ही अब प्रतिक्षण निर्वेद जन्य परं खेद के कारण बन रहे हैं, जितना बन्धन हमने स्वयं रचा उस विचित्र वन्धन को बलपूर्वक (बारम्बार) काटकर हे प्रिय! अपने प्राणों की रक्षा करना।

यह भी बाह्य दृष्टि के अपेक्षा से ही है वास्तव में तो जो जो यहा बाहर रचित है वह सब तुम्हारे अंग से ही बाहर हुआ है, अन्तरंग में तो मैं और आप सभी परस्पर के लिए रत ही हैं।

सन्देश पूर्ण करते हुए उत्कण्ठा पूर्वक स्निग्ध कण्ठ बोले—हे राधे! ये जो आधि (मानसिक चिन्ता प्रिय वियोगादि) वलन बार-बार प्राप्त हो रहा है ये सब इन्द्र जाल के समान मायावी है काल्पनिक है। देखो यहाँ कृष्ण सतृष्ण तुम्हारे मुख को सुख वश निहार रहे हैं।

मथुरा जाते समय श्रीकृष्ण का स्वेज जल (पसीना) कुम्कुम राग मिश्रित, गोपियों का अश्रुजल (आँसू) कज्जल मिश्रिय स्याही से लिखित मधुमंगल द्वारा प्राप्त होने वाले पत्र जो कृष्ण ने भेजे—'जल्दी माता पिता को मुक्त करके आऊँगा। हे प्रिये! कितनी दूर है कहा दुख है कुछ भी उचित करते हुए रहना।

गोपीनाम्—दयित मोः कंस घातंविधाय राजभावं विधाय कथं मवता दागतिस्तै व्रजाय। तीर्थे सर्वार्थ देनः स्मृतिमनु ददतामंज लीनां त्रयाणि।।

श्रीकृष्णस्य—नालंमे राज्यलिप्सा यदूनां सुखमभिवलयन् अस्मि चायात कल्पः। वद्धः स्याद् विधिवशात् न सुखाय न वनं कापि कान्तासु संगः।।

गोपीनाम्—वृन्दं कीडावजानां राजकन्याः प्रभूताः विभववशादूभविष्यन्ति धन्याः। तत्तल्लामेनस्ते कथमिहभवितास्मासु।

श्रीकृष्णस्य—सत्यं ताः केलिवत्याः, क्षोणीपालकन्याः सत्यं कुर्वे त्रिलोकी मम नहि रतिदा यद्वदेता भवत्य।

गोपीनां—सा ते सर्वांग शोभा वत येन नेत्रेणालब्धा श्रोचेराश्राविवंशी वपुषा येन चशपर्शलक्ष्मीसमगमि, तेनैवा लक्षिदूरं गमनं अवगतं संद्विष्टमुग्रम्। तेन स्वं विप्रलब्धं रचितं ह हाजीवितं छिग् विधिंधिक्।

अकूरः क्रूरभाषं विधिरशुयविधिं मित्रमभित्रत्रर्याम्। यस्यामस्यांदशायां सरभसभगमत्तत्रः कान्यस्य वार्ता। अस्मज्जीवोप्यजीव स्थितिमिहनियतं प्राप्नुयादेवमत्र। स्वामिन्न व्याधिवत्तत्प्रतिविधिसदियात्काल कल्पे विलम्बे।

गोपियों का पत्र—हे प्रिये! कंस को मारकर राजा बन जाने पर तुम्हारा व्रज में आगमन कैसे होगा। सर्वार्थ देने वाले तीर्थ में हमारी स्मृति को तीन अंजली देकर तर्पण कर देना।

श्रीकृष्ण—मुझे राज्य लिप्सा नहीं है। यदुवंशियों का सुख सम्पादन कर मैं आऊँगा ही। विधिवश परतन्त्र प्राणी को न तो वन सुख देता है न कान्ता शोभित भवन सुख देता है।

गोपियाँ—क्रीडासक्त वैभवशालिनी राजकन्यायें धन्य हो जायेंगी उनमें लीन तुम्हारा मन होगा तब वह मन हमारा चिन्तन कैसे करेगा।

श्रीकृष्ण—ये सच है कि राज कन्यायें विविध केलि कला कुशल होती है पर मैं सत्य कहता हूँ जैसा अन्तरंग आत्मीय भाव मुझे तुमसे मिला वैसा त्रिलोकी में अन्यत्र सम्भव नहीं।

गोपियाँ—जिन नेत्रों ने आपके अंग अंग की कान्ति का आस्वाद लिया जिन कानों ने आपकी मधुर तान छेड़ती वंशी को सुना, जिस देह ने आपकी दिव्य काया का स्पर्श सुख पाया। वहीं आँखें आज आपको दूर जाते कैसे देखेंगी। हम जान गयी ये भाग्य बड़ा कठोर है, उसने विरह रचना की हा जीवन को धिक्कार उस विधाता को धिक्कार।

ये अक्रूर क्रूर भाषी है निधिः विधाता अशुभविधि मित्र की शत्रु जैसी करनी जिसकी इस दशा में भी जबर्दस्ती जीने की जिद दिख रही है वहाँ अन्य की क्या बात।

श्रीकृष्णस्य—आयास्याम्येवशीघ्रं न भवतीर्जातु दीनास्त्य जानि। मध्येया मदाप्ति र्मुहुरिहभविता तां स्वध्नरूपां मा शंकध्वम्। यथा प्रागसति विरहे शंकमानावभूव।

एतावन्मानमन्यासां वाचिके हरिणाइजनि।
राधायामूकतानूकाममितं तत्तुनिममे।। (गोपाल च. ३)

हा हरसा रास गोष्ठी नवनवमिलनोल्लासक्षश्वछिलासाः। ततलीला कल्पवल्ली समुदयजनुवामंकरश्रीः कयाता?।। (गो.च.)

अस्माकं राग जाति र्वत लषति ननः शर्म तस्याणि राज्यम्?
किन्त्वेकान्त स्थमिच्छत्यनु लवमपि तं सेवितुं प्राणकान्तम्।
आत्माप्यन्तर्धियातद् हगमृतविरहं मीन वच्छंक मानः,
तत्प्रागेवातिशुण्य-गणयतिन परं नापरं किंयनात्र।। (गो.च. २)

हे स्वामी! यहाँ हमारा जीवन भी मृत्यु दशा में पहुँच ही जायेगा जैसे रोग के उपचार करने में विलम्ब होने पर।

श्रीकृष्ण—मैं शीघ्र ही आऊँगा—मैं कदापि आपको त्याग न सकूँगा। बीच-बीच में मेरी प्राप्ति होगी (स्वप्नरूपा) उस पर शंकामत करों। जैसे पहले रासक्रीडा काल में विरह हुए विना भी तुमको शंका हो गयी थी।

ये इतना मान तो अन्य गोपियों का वाचिक ही है, किन्तु राधा ने अमित मूकीभाव का निर्माण कर लिया।

हाँ वह रास गोष्ठी जिसमें निरन्तर नवमिलन का उल्लास होता था, उस लीला कल्पलती के उदय कर्ता (अंकुर शोभा) कहा चली गयी।

हमारी प्रीति प्रकट्भाव में नहीं दिखती सुख साम्राज्य सा ही है। किन्तु एकान्त में स्थित हो प्रतिक्षण प्राणनाथ के सेवन की इच्छा रहती है। आत्मा अन्तर्गत बुद्धि भी उस दृष्ट अमृतरूप विरह के प्रति मछली की भाँति शंकारत रहती है। वह पहले ही अत्यन्त शुष्क ही कुछ भी पर या आपस की गणना नहीं करती।

कंस वूधे गो. पूत्रम्

विश्लेषस्तवभद्रः, क्लेशंसंहरेद्भवन्नेव।

आशा सेयं धृष्टा, त्वत्सृष्टा तत्रविघ्र मातुते।। (गो.प. ५)

मवतामर्यादार्थं यः खलु पर्यापितः कालः। कालः समवन्नघहर? लवशः कल्पाय कल्पतेऽस्माकम्।।

अघहरविरहव्रणाता, नहि नः कृच्छ्राय तादृशश्रयति।

सधालणियगलनं, यदि वलनं तत्रनापि कुर्वीत।। (गो.च. ५)

नृणांनिः श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

अव्यपस्याप्रमेयस्य निर्गुस्य गुणात्मनः।।

कामं कोधंभय स्नेहं ऐक्यं सोहृदमेव च।

नित्यं हरौविदधतो यान्ति तन्मयतांहि ते।। (श्रीभद्धा. १०।२६)

भगवन्सबंन्धे कमादयः षट्कारणानि कामः–स्त्रीणाम्। त्रोधः–शवूणाम्। भयम्–वध्यानाम्। स्नेहः–संवन्धिनाम्। सौहृदं–भक्तानाम्। ऐक्यम्–ज्ञानिनाम्।

हे भद्र! तुम्हारा विरह क्लेश का संहार कर दे। आपकी ही धृष्ट ये आशा तुम्हारी रची है।

आपके द्वारा मर्यादा के लिए जो समय निश्चित किया है। हे अघहर! वह काल हमारे लिए पल पल कल्प के समान हो रहा है।

हे अघहर्ता केशव ये विरह के छाले (घाव) उस प्रकार हमें दुःख नहीं दे पा रहे जैसे श्रीराधिका की लावण्यता का क्षरण दुखदायी है।

हे राजन! मनुष्यों के निःश्रेयस के लिए भगवान् अव्यय-अप्रमेय-निर्गुण-गुणात्मा होने पर भी सगुण साकार हो जाते हैं।

भगवान में कामभाव-क्रोधभाव-भयभाव-स्नेहभाव-ऐक्यभाव सौहार्दभाव चाहे जैसे हो भाव सम्बन्ध बनाने वाले तन्मय हरिमय हो जाते है।

षट्कारण है भगवान से सम्बन्ध बनाने के—**काम**—गोपाङ्गनायें (स्त्रियाँ)। **क्रोध**—शत्रु रावण द्वन्तवक्रादि। **भय**—वध्य (कंसादि)। **स्नेह**—सम्बन्धी (यदुवंशी)। **सौहार्द**—भक्त (नारदोद्धवादि)। **ऐक्य**—ज्ञानी (शुक सनकादि)।

त्रिपुर भेदन कालः-वरयञ्चा

पुरेष्वेतेषुभोब्रह्मन् एकस्थानस्थितेषु च।
मध्याह्नाभिजितेकाले शीतांशौ पुष्य संस्थिते।।

उपर्युणर्युपसि दृष्टेषु व्योम्नि लीलाभ्रसंस्थिते।
वर्षत्सुकालमेघेषु पुष्करावर्त नामसु।।

तथा वर्षसहस्रान्ते समेष्यामः परस्परम्।
एकी भावंगमिष्यंति पुराण्येतानि नानाथा।।

सर्वदिवमयोदेवः सर्वेषां मेकुहेलया।
असंभवे रथे तिष्ठन् सर्वोपष्करणान्विते।।

असंभाव्येककाण्डेन भिनत्तु नगराणिनः।
निर्वैरःकृत्तिवासास्तु योऽस्माकमितिनित्यशः।
वन्द्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च तादृशोभुविदुर्लभः।। (शिवपु.रु.सं.यु.ख. १)

नाशोऽभिचारतो नास्ति धर्मिष्ठानांन संशयः।।
(शिवपु.रु.सं.यु.ख. ३)

त्रिपुरासुर की वर याचना

हे ब्रह्मन्! जब ये तीनों पुर एक स्थान पर स्थित हों, मध्याह्न अभिजित मुहूर्त हो, चन्द्र पुष्य नक्षत्र स्थित हो, आकाश में माया रचित मेघ छाये हों, (घनघोर ऊपर स्थित पुष्कर सावंर्तकादि प्रलयकालीन मेघ वर्षा करते हों। इस अवस्था में एक हजार वर्षोपरान्त ये पुर एकीभाव को प्राप्त हो अन्यथा नहीं (पहले तो पुरों का एक होना ही कठिन)।

फिर पुर नष्ट कर्ता की पात्रता

सर्वदेवमय कोई देवता (जो सब देवताओं का एक रूप हो) असम्भव रथ पर बैठकर सर्व उपष्करों से युक्त होकर, असम्भाव्य एक ही वाण से हमारे नगरों को भेदें। वह भी निर्वैर हो, कृन्ति वासा हो (चर्म ही है वस्त्र जिसका) हमारे द्वारा नित्य वन्द्य हो पूज्य हो अभिवादन योग्य हो, ब्रह्मा जी ऐसा दुनिया में दुर्लभ है अतः हम सुरक्षित रहेंगे। ब्रह्मा का दिमाग बहुत तीव्र चलता शिव में समाधान खोजा और तथास्तु कह दिया।

इन त्रिपुरासुरों का वध अभिचार कर्म से हो नहीं सकता; क्योंकि ये धर्माचरणशील है (धर्म में स्थित पर जादू-टोना, टोटका, उच्चाटन, वशीकरणादि नहीं चलते।

यावच्चवेदधर्मास्तु यावद्वैशंकरार्चनम्।
यावच्चशुचिकृत्यानि तावन्नाशो भवेन्नहि।।

मायामयं शास्त्रं षोडश सहस्त्रकम्। श्रैत शास्त्रविरुद्धं च वणाश्रिम विवर्जितम्। अणभ्रंशमयं कर्मवादमयं रचय (विष्णुः–मायाविष्णावे)। (शि.पु.रु.यु. ४)

मायां प्रवर्तयामास मायिनामपि मोहिनीम्।
शिवार्चन प्रभावेण विपुरे नचचालाशु, निर्विण्णोऽभक्तदायतिः।।
(शि.पु.रु.यु. ४)

अरिहन्-उपदेशः–

अनादि सिद्ध संसारः कर्तृ कर्म विवर्जितः।
स्वयं प्रादुर्भवेदेव स्वयमेव विलीयते।।
आत्मैवेकेश्वर न द्वितीय स्तदीशिता।
ब्रह्मविष्णुरूद्राख्या देहि नामिमाः।।

जब तक ये वैदिक धर्म का पालन करेंगे, जब तक शिवार्चन करेंगे। जब तक पवित्र कर्म करेंगे, तब तक इन त्रिपुरासुरों का नाश नहीं हो सकता।

इनके नाश के लिए सोलह हजार मन्त्रात्मक मायामय शास्त्र बनाया जो श्रौत व स्मार्त कर्मों से विरूद्ध वर्णाश्रम धर्म वर्जित था अपभ्रंश भाषा में कर्मवाद की प्रधानता वाला रचो (विष्णु जी मायावी विष्णु जो बुद्ध बनकर त्रिपुरासुर के यहाँ भेजे थे)।

उन मायावी गुरु ने मायावियों को भी मोहित करने वाली माया रची, परन्तु शिव पूजा के प्रभाव से इनका असर किसी पर (असुर पर) नहीं हुआ, ये खिन्न हो गये।

फिर इनके चेला नारद बने इन्होंने अरिहन् उपदेश में सहयोग किया लोगों ने कहा अरे इतने बड़े ज्ञानी भक्त विरक्त नारद इनके चेला है तब तो बाबा में जान है चलो ये संसार अनादि सिद्ध है इसमें कर्म या कर्ता की जरूरत ही नहीं है, ये दुनियाँ अपने आप उत्पन्न होती व अपने आप विलीन हो जाती है। आत्मा ही ईश्वर है और कोई इस जगत् का शासक नहीं है। ये ब्रह्मा, विष्णु, रूद्रादि ये सब शरीरधारी हैं। कोई देवता नहीं मन्दिर नहीं पूजा नहीं आत्मा सो परमात्मा, खाओ पीयो मौज करो।

हाँ थोड़ा-सा ध्यान कर लो हो गया काम (इनसे पूछो जब कोई है ही नहीं तो ध्यान क्या इनके बाप का कर लें)।

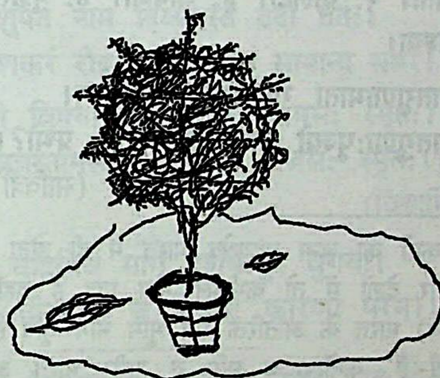
जवां जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः।
जनंजनेन हरते तं देवं भज साम्प्रतम्।।

(शंखचू. तुलस्यै) (देवी भा. ९।२०)

तुलसी मनुः (देवी.भा. ९।२५)–श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा।

नामाष्टकं स्तोत्रम्

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपाविनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च, तुलसी कृष्ण जीवनी।
यः पठेतां संपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्।। (देवी भा.)



शंखचूड़ अपनी पत्नी तुलसी से कहते हैं—मनुष्य को मनुष्य के द्वारा उत्पन्न करने वाला—मनुष्य की रक्षा मनुष्य के द्वारा करने वाला, मनुष्य की मृत्यु भी मनुष्य के द्वारा ही करने वाला जो देव है। हे देवि उस देव का भजन करो इस समय।

तुलसी पूजा मन्त्र—'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा'।

नामाष्टक जरूर पढ़े—

वृन्दा-वृन्दावनी-विश्वपूजिता-विश्वपावनी।
पुष्पसारा-नन्दिनी-तुलसी-कृष्णजीविनी।।

जो इस मन्त्र का जप इन नामों का पाठ करके तुलसी की पूजा करता आरती भोग जल देता है उसके जीवन की दरिद्रता मिट जाती अमंगल नष्ट होते व अश्वमेध समान फल मिलता है।

शुभानामशुभानांच कर्मणां जन्म भारते।
पुण्यक्षेत्रेचनान्यत्र सर्वं च मुञ्जते जनाः।। (दे.भा. ९।२९।१४)

राधा कृष्णायो रेकं मनः एक आत्मा तया समं हेम मुरलीं वादयन् अनुरागसंवक्ति तां कल्पतरोर्मूले आस्ते। (राधोपनिषद् २)

नारायणा क्षेत्रम्

प्रवाहभवधिकृत्वा पावद्धस्त चतुष्टयम्।
तत्र नारायणाः स्वामी गंगा गर्यान्तरे वसेत्।।
तत्र नारायणा क्षेत्रे मृत्वा याति हरेः पदम्।। (दे.भा. ९।३४)

१. पतिव्रता चैकपतौ। २. कुलटा। ३. धर्षिणी। ४. पुंश्चली। ५. वेश्या। ६. पुंगी। ७. तऊर्ध्वं महावेश्या।

पितुः शतगुणामाता गौरवेचेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणाःपूज्यो ज्ञान दाता गुरुः प्रभो?।।
(सावित्री) (देवीभा. ७।३८)

शुभ और अशुभ कर्मों का जन्म पुण्यक्षेत्र भारत में ही होता है अन्यत्र (भारत के अतिरिक्त) नहीं अन्यत्र और देशों में तो कर्मफल भोग मात्र है वहाँ किये गये कर्म का कोई फल नहीं (जन्मान्तरीय) भारत के अतिरिक्त सब भूमि भोग भूमि हैं, मनुष्य के अतिरिक्त सब योनियाँ भोग योनियाँ हैं, कर्मोत्पादक भूमि व शरीर भारत और मानव है।

राधाकृष्ण एक मन और एक ही आत्मा है। राधा जी के साथ स्वर्ण निर्मित मुरली बजाते हुए अनुरागरस में सरावोर कल्पतरु के नीचे बैठे थे।

नारायण क्षेत्र

गंगा के प्रवाह से प्रारम्भ कर (जहाँ धारा बहती है जल है) चार हाथ दूरी तक के पवित्र भाग में गंगा गर्भ में नारायण का वास है। उस नारायण क्षेत्र में प्राणत्याग से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।

स्त्रीभेद

१. पतिव्रता, २. कुलटा, ३. धर्षिणी, ४. पुंश्चली, ५. वेश्या, ६. पुंगी, ७. इससे भी ऊपर की महावेश्या कहलाती है।

पिता से १०० गुनी अधिक माता पूज्य है माँ से भी सौगुणित अधिक गुरु (ज्ञानदाता गुरु) सावित्री ने यमराज से कहा था।

विष्णोनिवेदितं चैव नैवेघंवा फलं जलम्।
प्राप्तिमात्रेणाभोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महाभवेत्।। (देवीभा. ४०)

पुंश्चत्यनामवीरान्न शूद्रश्राद्धान्नमेव च।
चिकित्सक छिजान्नं च देवलान तथैव च।
एते सर्वे विशुद्दन्ति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्।। (देवीभा.)

विश्वामित्रः

ऐश्वर्यं विपदां हेतुः ज्ञानप्रच्छलकारणम्।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्ते रच व्यवधायथम्।। (देवीभा.)

अथदिव्यं धनुस्तस्मै ददौ तूणीरभक्षयम्।
महापाशुपतं नाम दिव्यमस्तं ददौ ततः।
जगन्नाशकरं रौद्रं न प्रयोक्तव्यं सामान्य समरे।। (पद्म पु.शि.गी. ५)

द्विविधो विषयान्धश्च राजस स्तामसः स्मृतः।
अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः।।
(विश्वामित्रः) (दे.भा. ९।४०)

शास्त्रं चद्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुर वुंगव!।
प्रकृत्ति वीजमेकं च निवृत्तेः कारणां परम्।। (दे.भा.)

विष्णु भगवान को निवेदित नैवेद्य-जल-या फलादि प्राप्त होते ही पा ले प्रसाद का परित्याग करने से ब्रह्म हत्या का भागी बनता है प्राणी।

पुंश्चली (वेश्या विशेष) का अन्न अदीक्षितान्न-क्षूद्र श्राद्धान्न, चिकित्सकाल ग्राम पुरोहित का अन्न यदि खा लिया हो तो विष्णु नैवेद्य को पाने से वह दोष शान्त हो जाता है।

ऐश्वर्य विपत्तियों का कारण-ज्ञान का आच्छादक, मुक्तिमार्ग का उच्छेदक और भक्ति में व्यवधान है।

इसके अनन्तर उसको अक्षय तूणीर व दिव्य धनुष दिया। दिव्य महापाशुपत्यस्त्र भी प्रदान कर दिया जो कि जगत् का नाश करने वाला है, किन्तु कहा कि साधारण युद्ध में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

विषयान्ध प्राणी दो प्रकार के होते हैं अशास्त्रज्ञ (तामस) शास्त्रज्ञ (राजस)।

हे सुरश्रेष्ठ! शास्त्र ने दो प्रकार के मार्ग दिखाये हैं, एक प्रवृत्ति मार्ग जिसकी यात्रा कभी खत्म नहीं होती। दूसरा निवृत्ति मार्ग मुक्ति का साधक।

साधुः तत्त्व प्रदीपेन मुक्ति मार्ग प्रदर्शयेत्।। (दे.भा.)

सम्पत्तिर्वाविपत्तिर्वा नश्वरा श्रम रूपिणी।
सर्वेषाचभवत्येव शश्व ज्जन्मनि जन्मनि।। (दे.भा.)

सुषुम्ना

श्लेष्मणा मिहितानाड़ी सुषुम्नायावदेवहि।
व्यक्तवसर्व चवदनं तावछक्तं न शक्यते।। (शि.गी. ८)

वामानां मायया मूढो न किंचिद्वीक्षते जगत्।। (शि.गी.)

सार्धकोटित्रयं रोम्णां श्मश्रुकेशास्त्रिलक्षकाः।। (शि.गी. ८)

महा विपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य संपत्तिः भवेदित्याह शंकरः।।
(वृहस्पतिः) (देवीभा. ९।४०)

श्रीं ह्रीं क्लीं मैं कमल वासिन्यै स्वाहा।
मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्प वृक्षश्च सर्वतः।। (देवीभा. ४२)

साधु को चाहिए कि तत्वोपदेश द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाये।

सम्पत्ति या विपत्ति नश्वर है श्रमस्वरूपा हैं, सभी को ये दोनों हर जन्म में प्राप्त होती ही हैं।

जब तक सुषुम्ना नाड़ी कफादि द्वारा बन्द रहती है तब तक कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

स्त्रियों की माया से मूढ़ जगत् कुछ भी नहीं देख पाता।

शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम, मूँछ-दाढ़ी केश ३ लाख होते हैं।

घोर विपत्ति ग्रस्त प्राणी मधुसूदन का स्मरण करे तो उसकी विपत्ति सम्पत्ति में बदल जाती है ऐसा सदाशिव कहते हैं (वृहस्पति कह रहे हैं)।

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा—ये मन्त्र ब्रह्मा जी से प्राप्त हुए सर्वदा कल्प वृक्ष समान है।

पतिः

भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते।
शरीरेशाच्च सस्वामी फामदः कान्त उच्यते।। (देवीभा.)

रति दाना द्रमणः। (दे.भा. ९।४५)

क्रम मुक्तिः

अथ दिव्यः पुमान्कश्चिद् ब्रह्मलोकादिहैति च।
दिव्येवपुपि संधाय जीवमेवं नयत्यसौ।।
ब्रह्मलोके दिव्यदेहे भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
तत्रोषित्वा चिरंकालं ब्रह्मसा सहमुच्यते।। (शिव.गी. ११)

केवल्य मोक्षः

शुद्ध ब्रह्म रतोयस्तु न स यात्येव कुत्रचित्।
तस्य प्राणा विलीयन्ते जले सैन्धवखिल्यवत्।
एवप्नदृष्टा यथा सृष्टिः प्रवुद्धस्य विलीयते।। (शिव.गी.)

१. सम्पद्–अनन्तं वै मनः। २. आरोपः–अमित्युद्गीथमुपासी। ३. संवर्गः–वायुः संवर्गः। ४. अध्यासः–योषरवा अग्निः।

भरण करने से भर्ता, पवित्र करने से पति, (रक्षवात् वा) शरीर का स्वामी होने से स्वामी-कामनाओं का पूरक होने से कान्त एक ही पति की ये संज्ञायें हैं।

रति दानात् रमण कहलाता है।

क्रम मुक्ति-कोई दिव्य पुरुष ब्रह्मलोक से यहाँ आये और दिव्य देह में संयुक्त करके जीव को ले जाये और वहाँ ब्रह्मलोक में दिव्य देह द्वारा अभीष्ट विविध भोगों को भोगकर चिरकाल तक वही रहे फिर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त हो जाता है।

कैवल्य मोक्ष

शुद्ध ब्रह्म में निरत योगी कहीं नहीं जाता उसके प्राण तो ऐसे विलीन हो जाते हैं जैसे जल में नमक घुल जाता है, स्वप्न संसार की तरह ही ज्ञानी की दृष्टि में जगत् विलुप्त हो जाता है प्रबोध होते ही जैसे जगते ही स्वप्न प्रपञ्च नहीं रहता।

चतुर्विध अध्यास

१. सम्पत्—अनन्त है मन। २. आरोप—ॐ इस उद्गीथ की उपासना करें। ३. संवर्ग—वायु संवर्ग। ४. अध्यास—योषा अग्नि।

उपासनम्

ज्ञानान्तरानांन्तिरित-सजाति ज्ञानसंततेः।
सम्पन्नदेवतात्मत्त्व मुपासनमुदीरितम्।। (शि.णी. १२)

वेद वाक्यैलभ्योऽहं न शास्त्रैर्नापि चेतसा।
ध्यानेन वृणुते वो मां सर्वदाहे वृणोमिताम्।। (शि.णी.)

पञ्चधामुक्तिः

१. सालोक्यं—निष्कामपूजातः ज्ञानवर्जि तस्य। २. सारुप्यम्—निष्कामपूजातः ज्ञानयुक्तस्य। ३. साष्ट्यम्—तत्प्रीत्यै इष्टा मूर्तादि कर्म। ४. सायुज्यम्—तर्दपणाखिलाचारः। ५. कैवल्यम्—शान्त्यादियुक्तः सन्मानत्वेन दर्शनिन। (शि.गी. १३)

दक्षिणाकालः

कृत्वा कर्म च कर्तावै तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
मुहूर्ते समतीतेतु द्विगुणा सा भावेद्ध्रुवम्।। (देवीभा. ९।४५)



लोहेन वाथ रङ्गेन अथवा पार देनैव।
प्रतिमा शिवलिङ्गं वा फलं कोटिगुणोत्तरम्।। (शि.गी. १६)

ज्ञानान्तर से व्यवधान रहित सजाति ज्ञान परम्परा का उदय होता है। उससे दिव्यत्व देवतात्मत्व सम्पन्न होता है इसी को उपासना कहते हैं।

केवल वेद वाक्यों द्वारा केवलान्य शास्त्रों द्वारा, मनन भर से भी नहीं प्राप्त होता है, मैं ध्यान द्वारा जो मुझे प्राप्त करता है सर्वदा मैं भी उसी का वरण करता हूँ।

पाँच प्रकार की मुक्ति

१. **सालोक्य**—विशेष ज्ञानादि विना भी निष्काम साकारोपासना से। २. **सारुप्य**—ज्ञानयुक्त हो साकारोपासना। ३. **साष्ट्य**—भगवत्प्रीति के लिए (नाम के लिए पत्थर लगवाकर ढिढोरा पीटकर नहीं) इष्ट व अपूर्व करना (ईष्ट = यज्ञादि अपूर्त-कूप-तालाब-धर्मशाला-वगीचा-आश्रमादि)। ४. **सायुज्य**—भगवदर्पण बुद्धि से ही सारा व्यवहारादि। ५. **कैवल्य**—शमदमादि युक्त सत् दर्शनमात्र निरत ज्ञान से।

अनुष्ठान कर्म सम्पन्न होते ही तुरन्त दक्षिणा दे देनी चाहिए। एक मुहूर्त बीतने पर दोगुनी दक्षिण हो जाती है। (संसार की सब व्याज वृद्धि छोटी पड़ जायें।)

लोहा—रांगा अथवा पारद का शिवलिंग बनवाकर पूजे तो कोटिगुणित फल प्राप्त होता है।

विल्ववृक्षं समाश्रित्य योमन्यान्विधितायजेत्।
एकेन दिवसेनैर तत्पुरश्चरणां भवेत्।। (शि.गी.)

तृणावत्त्यज्यतां सर्वं सर्वचिंत्तां परित्यज्य, अचिन्त्यं चित्तमाश्रयेत्।। (शि.गी. १८)

कायक्लेशो मनः क्षोभेद्यन हानिर्न चात्मनः।

निदिध्यासनम्–नि–निरंतरं! दिदीर्घकालम्। छी–छियः आसनम्–आत्मनिह स्थितिः। (वि.च.टी. १)

विचार हेतवः–१. ईश्वर कृपा–सद्धुस निरोग सूक्ष्ममतिरानुकूत्यम्, २. शास्त्र कृपा–व्युत्पत्तिः, ३. गुरुकृपा–यथार्थोपदेशः, ४. आत्मकृपा–श्रद्धा तत्परताजितेन्द्रियता। (वि.च.)

मलः–पापजन्य भोगेषु सतत्त्व रमणीयत्व वुद्धि पूर्वकं रुचिः। पुनर्द्विधा-गुणाजन्या वासना। कर्मजौ पुण्य पापौ।

बिल्व वृक्ष के आश्रय में विधिपूर्वक जो मन्त्र जपा जाता है। एक दिन मात्र से ही उस मन्त्र का पुरश्चरण माना जाता है।

सब कुछ तिनके तरह त्याग देना चाहिए, सभी चिन्ताओं को त्याग कर अचिन्त्य ब्रह्म में आश्रित हो जाये।

शारीरिक कष्ट, मन का क्षोम, धन की हानि ये सब सांसारिक है इनका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं ये आत्महानि नहीं है। अत: इनकी हानि होने पर चिन्तित नहीं होना चाहिए।

निदिध्यासन—नि = निरन्तर (ब्राह्मी भाव में जीने की प्रक्रिया), दि = दीर्घकाल तक, धी = बुद्धि को, आसान = आत्मतत्व में दृढता पूर्वक स्थापित रखना।

विचार हेतव—१. ईश्वर कृपा—सद्गुरु निरोग सूक्ष्म मति की अनुकूलता। २. शास्त्र कृपा—व्युत्पत्ति विचार क्षमता ज्ञानादि। ३. गुरुकृपा—वे प्रसन्न हो पदार्थ का उपदेय करें। ४. आत्म कृपा—श्रद्धा तत्परता जितेन्द्रियता।

मल—पापजन्य भोगों में रुचि पूर्वक सत्यत्व रमणीयता की बुद्धि होना ही मल है। ये दो प्रकार का होता है—१. गुणों से उत्पन्न वासना। २. कर्म से उत्पन्न पुण्य पाप।

योगानन्द स्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः।
सर्वज्ञान प्रकाशोऽहं मुख्यविज्ञान विग्रहः।। (तेजो विन्दूप. ६।६८)

आनन्दात्माप्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा वन्धवर्जितः।
लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तृष्णीमात्मश्चभाववान्।।
(तेजो विन्दूप. ४।३५)

अहंकारोऽत्रचिद्युक्तः कर्ता भोक्ता हृदि स्थितः।
वृत्यवच्छिन्न चैतन्यं घटाकाशवद्, एतया।
वृत्या सह छहिर्गत्वा तत्रा ज्ञानं नुदेत्क्षणात्।।

वर्तिनिष्ठो यथादीपोत्तमो नाशयते तथा।
चैतन्यं वृत्तिनिष्ठं तत् दज्ञानस्य नाशकम्।।

एषहृन्निष्ठ चैतन्य पदार्थाऽक्ष्णा वहिर्गतः।
व्याप्नुवन्निखिलं तत्र व्यथां नाप्नोति काञ्चन।
प्रतिकूलात्तु विषया-घा व्यथा सातु मानसी।।

यः साक्षी चित्पदार्थोऽसौ जीवात्मा तस्य जीवता।
अहं कारेणा तादात्म्याभ्रान्त्यैव परिकल्पिता।। (अनु.भूतिप्र. १)

मैं योगानन्द स्वरूप हूँ, अब मुख्य आनन्द का महा उदय हो रहा है। सर्वज्ञान का प्रकाशक मैं मुख्य विज्ञान का साकार रूप हूँ।

ये आत्मा आनन्द रूप व प्रिय है—सर्ववन्धन रहित ये मुक्त ही है। ये लक्ष्य भूत आत्मा ललित है अत: शान्त हो सर्वतोभावेन आत्मभाव सम्पन्न हो जाये।

यहाँ अहंकार चित् से युक्त होकर हृदय में बैठ गया बन गया कर्ता भोक्ता जबकि वृत्ति से युक्त (अवच्छिन्न) जो चैतन्य है वह घटाकाश (घटगत आकाश) की तरह इस वृत्ति के साथ बाहर जाकर अज्ञान को क्षण मात्र में नष्ट कर देता है। जैसे वत्ती और तेल युक्त दीपक अन्धकार को मिटाता ही है वैसे ही वृत्ति निष्ठ चैतन्य उस अज्ञान का नाश कर देता है। ये हृदयस्थ चैतन्य पदार्थ आँखों से बाहर जाकर सकल प्रपंच को व्याप्त कर लेता है, जबकि किसी का व्याप्य नहीं होता। प्रतिकूल विष्यादि जन्य व्यथा मानती है यथार्थ नहीं।

साक्षी चित्पदार्थ जो जीवात्मा है उसकी अहंकार के साथ एकता दिख रही है वो भ्रान्ति वश ही परिकल्पित है यथार्थ नहीं।

राधा

राध्नोतिसकलान्कामान् तस्मादाधेतिकीर्तिता।

पस्तुदुष्टैस्तु दण्डाधै र्वचसापि च ताडितः।
न च क्षोभमवाप्नोति स साधुःपरि कीर्तितः।।

ताडयेत्ताऽयन्तं यो न च साधुः स पारा भाक्।
क्षमयाऽहर्णातां प्राप्ता साधवो ब्रह्मणवयम्।। (ब्र.पु.)

विषयेषु न संसक्तिः समत्वं सर्व जन्तुषु।
येषां हर्ष विषादौ च न जातु सुख दुःखयोः।।

त एव साधवो लोके गोविन्द पदसेविनः।
तेषां दर्शन मात्रेणा कृतार्थो जायते नरः।। (प.पु.ड.ख. २१२)

सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः, प्रतिमाः सर्वदेवताः।
लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि, माणिभिः कल्पितानि य।। (वारा.पु.)

यथा यथा शिला सूक्ष्मा, तथा स्यात्तु महत्फलम्। (पाद्मो)

यवमात्रं तु गर्तः स्यात्, यवार्धलिङ्ग मुच्यते।
शिव नाभिरिति स्थात्, स्विषु लोके षु दुर्लभः।।

सभी कामनों को पूर्ण करती है इसीलिए राधा कहलाती है।

दुष्टों के वाणी प्रहारों-दण्ड प्रहारों से ताडित होकर भी विचलित न हो वह साधु है।

जो पीटने वाले को पीटने लगे वह साधु नहीं वह तो पाप का भागी है। साधु ब्राह्मण तो क्षमा के कारण ही पूज्यता पाते हैं।

जो विषयों में आसक्त नहीं है, सभी प्राणियों में समभाव रखते हैं सुख-दुख में कभी हर्ष विषाद नहीं करते वे गोविन्द पाद पद्मानुरक्त वास्तविक सन्त हैं इनके दर्शन मात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

सभी देवताओं की प्रतिमायें सभी वर्णों द्वारा पूज्य है। मणि द्वारा रचित शिव लिङ्ग भी पूजे जा सकते है (नर्मदेश्वर व शालिग्राम की पूजा बिना जनेऊ वाला ब्राह्मण भी नहीं कर सकता फिर अन्य शूद्र स्त्री की तो बात ही क्या)।

जैसे-जैसे शिला सूक्ष्म होगी वैसे-वैसे महाफल प्रदान करने वाली होगी।

यव (जौ) के बराबर गर्त है। (गङ्गा हो-योनिभाग हो-जलहरी हो)। आधे जौ के बराबर शिव लिङ्ग हो वे शिव नाभि के नाम से प्रसिद्ध तीनों लोकों में दुर्लभ है।

अथ श्रीश्रुतिषडिलंग संगहः

उपोद्घातः—

विषयासक्तिमानस्यः मेयस्य संशयभ्रमाः।
तत्त्वाए प्रतितवन्धाः स्युः ज्ञाना दार्ढचस्य हेतवः।।१।।

आद्यस्य विनिवृत्तिः स्या, द्वैराग्यादिचतुष्टयात्।
श्रवणोन द्वितीयस्य मननात्ता तींपस्य च।।२।।

ध्याने तु चतुर्थस्यानै—वोत्तरोत्तरपूर्वपूर्वानिवृत्यानाशनम्।।३।।

विषयासक्ति नाशेन विना नो श्रवणां भवेत्।
ताभ्यामृते न मननं न ध्यानं तैर्विना भवेत्।।४।।

स्व वर्णाश्रम धर्मेण तपसा हरि तोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम्।।५।।

तत्सिद्धावपसन्नः सन् गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम्।
ज्ञानोत्पत्यै महावाक्य-श्रृति कुर्या द्धितन्मुसात्।।६।।

तत्सिद्धौ छापर भ्रांति प्रहाणाप मुमुक्षुभिः।
श्रवणां मननं ध्यान यनुष्ठेयं फलावधि।।७।।

ज्ञान की अदृढता के चार हेतु—१. विषय, २. आसक्ति ये दो मान में, ३. संशय, ४. भ्रम ये मेय में रहते हैं। ये ही चार प्रतिबन्ध ज्ञान की अदृढता में हेतु है। विषय की निवृत्ति तो—इहा मुत्रार्थफलभोग विराग आदि (वैराग्य-विवेक शमादि षटक सम्पत्ति व मुमुक्षुत्व) इनके द्वारा हो जाती है। श्रवण के द्वारा द्वितीय की (आसक्ति) निवृत्ति। मनन के द्वारा तृतीय की संशय की निवृत्ति ध्यान के द्वारा चतुर्थ की भ्रम की निवृत्ति हो जाती है। पूर्व-पूर्व की निवृत्ति होने से उत्तरोत्तर का नाश होता जाता है।

विषया सक्ति नाश के बिना श्रवण (फलप्रद) नहीं हो सकता इन दोनों के विना मनन नहीं होगा, इन सबके विना ध्यान नहीं हो सकता। अपने वर्ण व आश्रम धर्म के अनुरूप तप करते हुए भगवान को प्रसन्न करने से साधक में वैराग्य विवेकादि साधनचतुष्ट्य सम्पन्नता आती है। इन साधनों के सिद्ध होने पर ब्रह्म वेत्ता सद्गुरु की शरण में जाये तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए उनके पवित्र मुख से महावाक्य श्रवण करे। इसके अनन्तर भ्रान्ति नाश के लिए मुमुक्षु को जब तक मोक्षरूपी फल न मिल जायेय तब तक श्रवण मनन

श्रवणास्य प्रसिद्धैव भवतोऽन्त्ये तथा सति।
वैदाना मशेषाणां आदिमध्यावसानतः।
ब्रह्मत्मन्यैव तात्पर्य मितिधीः श्रवणं भवेत्।।८।।
उपक्रमोपसंहारा-वभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्तीच लिंग तात्पर्य निर्णये।।९।।

(आनन्दगिरिकृत तत्त्वा लोके विशेषवणिनम्)

सर्वोपनित्सु अनेकधो पासनं चित्तशुद्धिकरं ज्ञानं शेषं ज्ञेयम्।।

(अथेशावास्योनि-लिंगकथनम्)

सुखं मोक्षसुखंलोके न च मूढोऽवगच्छति। (महाभा.शा. २८८)
धर्ममर्थनिमित्तं च चरेयुर्यत्र मानवाः।
नताननु व सेज्जातु तेहिपाप कृतो जनाः।। (महाभा.शा. १८७)
अन सूयार्जवंशौचं सन्तोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति पुरात्मनाम्।। (म.भा.उ. ३४)

निदिध्यासन का अनुष्ठान विधेय है श्रवण की सिद्धि ही शेष की उपकारक है श्रवण द्वार है मनन-वन्ध्यान में जाने का। श्रवण किसी को दत्तचित्त होकर सुनना समझना जीवन में उतारना ये सब श्रवण के ऊपर टिके हैं।

सभी वेदान्तों का आमूल चूल यही तात्पर्य है कि ब्रह्म ही सत्य है। (आत्मा एव ब्रह्म ब्रह्मैव आत्मा) इत्याकारक बुद्धि होना ही वास्तविक श्रवण है।

उपक्रम उपसंहार-अभ्यास-अपूर्वता फल की—अर्थवाद-उपपत्ति ये छः लिंग है तात्पर्य निर्णय में। सभी उपनिषदों में अनेक प्रकार से उपासनायें कहीं वे सभी चित्त शुद्धि एवं ज्ञान शेष ही जाननी चाहिए।

सुखों में सुख है मोक्षसुख, किन्तु सांसारिक मूढ़ प्राणी जान नहीं पाता।

जहाँ के लोग धन के लिए ही धर्माचरण करते हों उनके बीच में किसी भी हाल में जाकर न वसे वे पाप कर्ता होते हैं।

अनसूया (ईर्ष्या का अभाव असूया का अभाव) आर्जव = सरलता। शौच वाह्य व आन्तरिक पवित्रता, सन्तोष प्रियवाणी। दम = इन्द्रियों का नियन्त्रण, सत्य ये गुण दुरात्मा में अनायास नहीं आ सकते। (अर्थात् आ तो सकते हैं, किन्तु बहुत प्रयास के बाद किसी सन्त की कृपा से ही)।

आत्म ज्ञानमनायास स्तितिक्षा धर्म नित्यता।
वाक्यैवगुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत?।। (म.उ. ३४)

आक्रोश परिवादाभ्यां विहिंसन्त्य वुधा वुधान्।
कर्ता पाप मुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते।। (म.उ.)

हिंसा वलमस्युनां राज्ञां दण्डविधिर्वलम्।
क्षुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणावतां बलम्।। (म.उ.)

अभ्यावहति कल्याणां विविधंवाक्सुभाविता।
सैव दुर्भाषिता राजन् अनर्थायोपपद्यते।। (म.उ.)

यताहारोजितक्रोधो जितसंगो जितेन्द्रियः।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशी परिग्रहः।। (तेजोवि.उ. १)

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्म कारेर्ण चिन्तयेत्।
विद्वान् नित्य सुखेतिष्ठेद् धिया चिद्रस पूर्णया।। (तेजोवि.उ.)

अनायास आत्मज्ञान, तितिक्षा-नित्य धर्माचरण शीलता विना व्यक्त किये कृत दान (वाक् गुप्त जो कहा न जाये दाया हाथ दान करता हो तो बायें को भी खबर न लगे)। ये सब हे भारत! अन्त्यवर्णजातों में नहीं होते।

अज्ञानी-ज्ञानियों को आक्रोश (गाली) निन्दा, परिवाद, मिथ्यारोप द्वारा पीड़ित करते हैं, किन्तु क्षमा करने वाला मुक्त हो जाता है और आक्रोश कर्ता पाप का भागी होता है।

असज्जनों का बल हिंसा, राजा का दण्ड विधान, स्त्रियों का बल सेवा, गुणशीलों का बल क्षमा होता है।

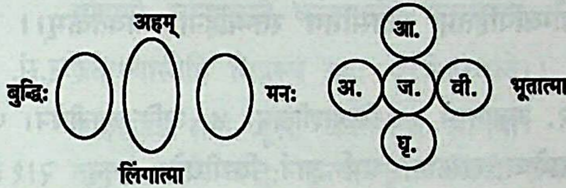
सुभाषित (सत्य व मधुर बोली) विविध कल्याणों की कारक होती है। हे राजन! दुर्भाषा (कटुव मिथ्या) विविध अनर्थों का मूल होती है।

अल्प आहार वाले-अक्रोधी-संगरहित-जितेन्द्रिय-सुखदुखादि द्वन्द्व रहित अहंकार रहित, आशापाश मुक्त, अधिक संग्रह न करने वाले ही योग में नैपुण्य प्राप्त करते हैं।

दृश्य को अदृश्यावस्था में ले जाये निरन्तर ब्रह्माकार दृष्टि से चिन्तन करें। चिदरस पूर्ण बुद्धि से विद्वान नित्यसुख (ब्रह्मसुख) में रहे।

प एष वाह्यावष्टम्भनेनोर्ध्वमुत्क्रान्तो व्ययमानोऽव्यथमान स्तभः प्रणुदत्येष आत्मा।

य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूप संपद्य स्वेन रुपेणाभिनिष्पद्यते एष आत्मा।। एतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म। (मै.त्रा.उ. २)



संकल्पा दयव सायायिमानलिंगः।

पत्यन्नं ब्रह्म चार्यन्नं अवीरान्नं तथैव च।
शूद्रान्नं च तथाभिक्षु वर्जयेत्परदारवत्।। (वृहस्पतिः)
पत्किंचिद्दीयमानंतु गृहिणी कर संस्थितम्।
भिक्षुर्भिक्षां न गृह्यात् काक योनिषु जायते।। (जाबस्वा.)

भगवान मैत्रेय कहते हैं—ये जो उच्छवास द्वारा ऊपर की ओर जाता है व्यथमान और अव्यथमान तम को नष्ट करता है वही आत्मा है।

ये जो सं प्रसाद हमारे शरीर से उठकर परं ज्योति रूप होकर अपने स्वरूप से निष्पन्न हो जाता है वही यह आत्मा है यही अमृत है अभय है। ब्रह्म है।

लिङ्गात्मा—संकल्प-मन, अध्यवसाय-बुद्धि, अभिमान-अहं यही मिलकर लिङ्गात्मा होता है। भूतात्मा—पञ्चमहाभूतों का सूक्ष्म रूप पञ्च तन्मात्रा इनको भूत कहा जाता है। पञ्चमहाभूतों को भी भूत कहा जाता है इनसे बने शरीर को भूतात्मा कहते हैं।

सन्यासी का ब्रह्मचारी का अन्य, अवीर (अदीक्षितान्न) शूद्र का अन्न भिक्षुक का अन्न बुद्धिमान ऐसे त्याग दे जैसे परायी स्त्री को त्यागा जाता है। (जैसे पर दार में आदर भाव तो ठीक पर भोग भाव ठीक नहीं ऐसे ही इन अन्नों में आदरभाव तो ठीक, किन्तु भोगभाव नहीं)।

यदि कोई दाता गृह प्रमुख दीयमान वस्तु को स्त्री के हाथ में रखकर दे (या स्त्री हाथ में रखी वस्तु को लेकर दे) तो भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। इस भिक्षा को लेकर काक योनि में जाता है।

अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत्। (ऋतुः)

न तीर्थ सेवी चात्यर्थं नोपवास परोयतिः। (अंगिराः)

तम आसी त्तमसा[1] गूढमग्रे[2] प्रकेतम्[3] सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छेनाॅम्वपिहितम्[4] यदासीत्तम स्तन्महिना जायतैकम्।।

(ऋ.सं. ८।७।१७)

१. अज्ञानेन। २. अज्ञातम्। ३. कियाशीलम्। ४. अनि वचनीयेन। ५. स्थूलम्।

अर्थकामेष्व सक्तानां धर्म ज्ञानं विधीयते। (मनु. २।१३)

अत्यन्तदुर्वि ज्ञेयो ह्यसां। निगमनिरुक्तव्याकरण तर्क पुराणामीमांसा शास्त्र श्रवणमपेक्षते स्वार्थ वोधे। (मेधातिथिः)

प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते। (मनु. २।९५)

नैत्यक्ते नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रंहितत्स्मृतम्। (मनु. १०६)

ॐ यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शंनः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः।। (य. ३६।२२)

धर्म प्रजा संपन्ने दारे नान्यां कुर्वीत।। (आपस्त. धर्म सू. २।११।२३)

बिना माँगे जो प्राप्त हो जाये वही भोजन वस्त्र श्रेष्ठ है।

यति तीर्थ रूप है उपवासात्मक इसका जीवन ही है। अतः किसी प्रयोजन के लिए सेवा न करे।

सब ओर अन्धेरा था (अज्ञान था) उस तमसे (अज्ञान से) आगे अज्ञात गूढ सलिल (क्रियाशीलता) व्याप्त था, तुच्छ (अनिर्वचनीय) में स्थूल को ढक रखा था। क्षुद्र ने वृहत् को।

अर्थ और काम में आसक्तों धर्म ज्ञान की आवश्यकता है। धर्म की जिज्ञासा वालों के परं को प्रमाण वेद ही हैं।

अत्यन्त दुर्विज्ञेय यह वेद स्वार्थ बोध के लिए निरुक्त-व्याकरण तर्क-पुराण-मीमांसादि शास्त्रों के ज्ञान को श्रवण की अपेक्षा रखता है।

परिग्रह से विशिष्ट परित्याग है।

नित्य कर्म में अनध्याय नहीं होता वह तो ब्रह्मसत्र है।

धर्मयुक्त सन्तति सम्पन्न पत्नी के रहते द्विर्विवाह न करे। सर्वत्र हमारी कामनाओं के अनुरूप हमें निर्भय करो हे प्रभो! प्रजा के लिए कल्याण कर्ता हो, पशुओं के लिए अभय प्रदाता हो।

स्त्रियोरत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः।। (मनु. २।२४०)

नाब्राह्मणो गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत्।
ब्राह्मणे चाननूचाने कांक्षन्गाति मनुत्तमाम्।। (मनु. २४२)

वेदाभ्यासोहि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।। (मनु. २६६)

वाहशोव सना मूला वर्ततिजीव संगिनी।
तादृशं वहते जन्तुः कृत्या कृत्य विधौ भ्रमम्।। (शिवगी. २।५४)

[१]तासां मध्ये मता नाडी चित्रा सामम वल्लभा।
ब्रह्मरन्ध्रश्च तत्रैव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं गतम्।।

१. पिङ्गलेडासुषुम्नानाम्। (शिवगी. १८)

पञ्चवर्णोज्ज्वला शुद्धा सुषुम्नामध्य चारिणी।

दिव्यमार्गमिदं प्रोक्तं अमृतानन्द कारकम्।
ध्यानमात्रेणायोगीन्द्रो दुरितौघं विनाशयेत्।। (शिवगी. २०)

स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, सुभाषित, विविध शिल्पज्ञान जहाँ मिले वही से प्राप्त कर लें।

अब्राह्मण गुरु के पास शिष्य अधिक न रहे, अल्पज्ञ अवेदज्ञ अशास्त्रीय ब्राह्मण के यहाँ भी नहीं यदि उत्तम गति चाहता हो तो।

विप्र का तप तो वेदाभ्यास ही है।

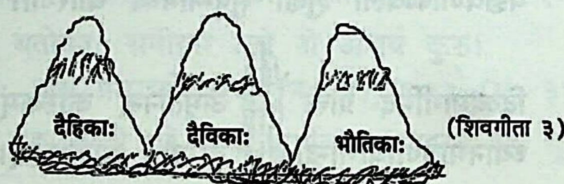
जैसी जीव के साथ में वासना लगी है, कृत्य और अकृत्य में जीव भ्रमवश वैसे ही बहता रहता है।

पिंगला, इड़ा, सुषुम्ना इन नाड़ियों के बीच चित्रा नाम की प्रिय नाड़ी है यहीं ब्रह्मरन्ध्र अत्यन्त सूक्ष्मतर है।

ये पाँच वर्ण की उज्ज्वल शुद्ध सुषुम्ना के मध्य रहती है।

ये अमृतानन्द कारक दिव्य मार्ग है ध्यान मात्र से योगीन्द्र दुरितों पापों के समूह को नष्ट कर लेता है।

कुर्यादिवंचतुवारं योगी विंशति कुम्भकान्।
इत्थं मास त्रयं कुर्यात् अनालस्यं दिने दिने।
ततो नाडी विशुद्धिः स्यस्त् भवेदारम्भ संभवः।।
प्रणावं प्रजयेद्दीर्घं निघ्नानां नाश हेतवे।
यदाभवेद्घटावस्था तन्नास्तियन्नसाधयेत्।
प्राणापान नादविन्दू जीवात्म परमात्मनाम्।
मिलित्वा पटते पस्या त्तस्मछै घट उच्यते।। (शिवगी. ३)
याम मात्रं यदापूर्णं भवेदभ्यास योगतः।
ततः परिचयावस्था योगिनोऽभ्यास योगतः।।
तदापरिचितोवायुः सुषुम्ना व्योम्नि संचरेत्।
त्रिकुटं कर्मणां पश्येत् प्रणविन विनाशयेत्।।



(शिवगीता ३)

यदा निष्पत्ति सम्पन्नः समाधिः स्वेच्छयाभवेत्।
जीवन्मुक्तस्य शान्तस्य भवेद्धीरस्य योगिनः।।

योगी इस प्रकार बीस कुम्भक चार बार करें। तीन मास तक प्राणायाम करने पर आलस्य मिट जाता है प्रतिदिन और नाड़ी शुद्ध होने लगती है।

विघ्ननाश के लिए प्रणव का जप करता रहे (गुरुमन्त्र का)।

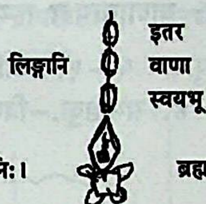
जब घटावस्था होती है तब ऐसा त्रैलोक्य में कुछ नहीं जो सिद्ध न किया जा सके।

जब प्राण, अपान, नाद-विन्दु, जीवात्मा, परमात्मा। ये मिल जाते है तब वह अवस्था घटावस्था कहलाती है।

मुहूर्त मात्र काल तक जब अभ्यास हो जाये प्राणायाम का तब योगी को परिचय होता है, परिचित वायु सुषुम्ना काश में विचरण करने लगती है कर्म द्वारा जो त्रिकूट दिखते है। (दैहिक-दैविक-भौतिक-तापादि) वे प्रणव द्वारा नष्ट हो जाते है।

जब धीर शान्त जीवनमुक्त योगी की निष्पत्ति सम्पन्न हो जाती है समाधि स्वेच्छा से सम्पन्न होती है।

अनादि कर्म वीजानि येन तीर्त्वामृतं भवेत्।।



गुढमेढ्रान्तरे योनिः। ब्रह्मयोनिगतंकामं ध्याये द्वन्यूकसं निमम्।

तस्यार्धेतु शिखा सूक्ष्मा, चिद्रूपा परमाकला।
तया सहित मात्मान मेकीकृत्य विचिन्तयेत्।। (शि.गी. ४)

मुद्रा दशकम्

१. महामुद्रा। २. महाबन्धः ३. महावेधः। ४. खेचरी। ५. जालंधरः। ६. मूलबन्धः। ७. विपरीतकृतिः। ८. उड्डीनवन्धः। ९. वज्रौली। १०. शक्तिचालनम्।
(शि.गी. ४)

स्त्रवतन्ममृतं पश्यन्,
नेत्राभ्यां समाहितः।



नाक्षाग्रेशशभृद्बिम्ब,
ज्योत्स्नाजालविराजितम्।
सप्तमस्य तुवर्गस्य,
चतुर्थं विन्दु संयुत्तम्।।
(योगियाग्यवल्कः ५)

अनादि कर्म बीजों को पार करके अमृत रूप हो जाये।

मलद्वार (गुदा)-मोढ़ (लिङ्ग) के मध्य ब्रह्मयोनि में (मूलाधार गत) काम है गुड़हल के पुष्प के समान रक्त वर्ण की योनि है (ब्रह्मयोनि) उसमें स्थित है। उससे अर्ध परिमाण में सूक्ष्म शिखा है जो चित्‌रूपा परमकला है। उसके सहित आत्मतत्व सूक्ष्म शिखा है एक करके चिन्तन करें।

दश मुद्रायें

१. महामुद्रा, २. महाबन्ध, ३. महावेध, ४. खेचरी, ५. जालंधर, ६. मूलवन्ध, ७. विपरीतकृति, ८. उड्याण वन्ध, ९. वज्रौली, १० शक्तिचालन—ये योग प्रगति के सोपान है।

समाहित होकर नेत्रों से झरते हुए अमृत को देखें। नासिका के अग्रभाग में प्रभा जाल विराजित शशि बिम्ब है जहाँ सप्तम वर्ग-का चौथा वर्ण ह विन्दु युक्त विराजित है

वर्ण त्रयात्मका ह्येते, रेचपूरक कुम्भकाः।

य एष प्रणावः प्रोत्त्मः प्राणायामश्च तन्मयः।। (योगियाग्यवल्कः ६)

कुण्डलिनीं चतुर्विद्यातनु। (त्रिपु.म. ५)-**१. अग्निकुण्डलिनी-मूलाधारे, २. सूर्यकु.—हृदये, ३. सोमकु.—भ्रूमध्ये, ४. समष्टिकु.—त्रिकोणो।** (टीका)

११ ब्रह्मलोकः
१० प्रजापतिलोकः
९ इन्द्रलोकः
८ देवलोकः

७ नक्षत्रलोकः
६ चन्द्रलोकः
५ आदित्यलोकः
४ गन्धर्वलोकः
३ अन्तरिक्षलोकः
२ वायुः
१ आपः

(बृहदारण्यकोपनिषद् ३।६)

सप्तम वर्ग है श वर्ग उसका चौथा वर्ण है शषस ह उसके ऊपर विन्दु संयुक्त किया तो हुआ हूँ।

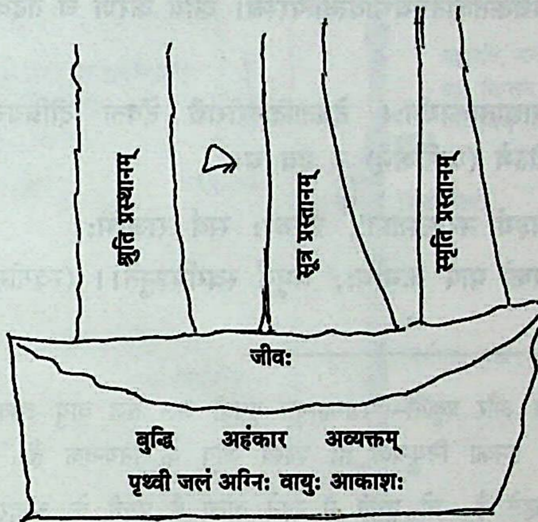
ये रेचक-पूरक-कुम्भक—ॐ के तीन वर्णात्मक हैं—(अ) (उ) (म) और जो प्रणव हे (ॐ) प्राणायाम प्रणवमय है पूर्णप्राणायस्य प्रणव है। ये तीनों एक-एक अक्षर के प्रतीक हैं। जबकि प्राणायाम पूर्ण प्रणव है।

कुण्डलिनी चार रूपों में स्थित है—१. अग्निकुण्डलिनी मूलाधार में, २. सूर्यकुण्डालिनी हृदयमें, ३. सोमकुण्डलिनी भ्रूमध्य में, ४. समष्टि कुण्डलिनी त्रिकोण में।

गार्गी के द्वारा प्रश्न किये गये है उनका उत्तर ही दृष्ट विवरण है। उत्तर दिये याज्ञवल्क्य ने—प्रथम प्रश्न—हे याज्ञवल्क्य! (यदिदं सर्वं अप्सु ओतं प्रोतं) जब सब कुछ जल में

पूः प्राणिनः सर्व एव गुहाशयस्य।। (आयस्तम्ब:, अध्या. ४)

इन्द्रः—युद्धष्ठिराय—श्रीरेषा द्रौपदीरूपा, त्वदर्थे मानुषंगता। अयोनिजा लोककान्ता, पुण्यगन्धा युधिष्ठिर? (महाभा. स्वर्गारो. ४)



ओतप्रोत है तो जल किसमें है? याज्ञवल्क्य उत्तर देते जाते हैं। आप गार्गी बनकर करो ये चित्त याज्ञवल्क्य बनकर उत्तर देगा—जल है वायु में ओतप्रोत अग्रिम प्रश्न—ये वायु किसमें ओतप्रोत है? अन्तरिक्ष में। अन्तरिक्ष गन्धर्व लोक में, गन्धर्व सूर्यलोक में, सूर्यलोक चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक नक्षत्रलोक में, नक्षत्रलोक देवलोक में, देवलोक इन्द्रलोक में, इन्द्रलोक प्रजापतिलोक में, प्रजापति लोक ब्रह्म लोक में, गार्गी ने फिर पूछा ये ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है? तब याज्ञवल्क्य ने कहा—गार्गी अति प्रश्न मत करो ज्यादा प्रश्न करने से तेरा मस्तक न गिर जाये (गार्गी अति मा प्राक्षी मा ते मूर्धा व्यपतत्)।

गुहा गुफा में स्थित हो शयनरत प्राणी के लिए सब पुर ही हैं।

इन्द्र युधिष्ठिर से—हे धर्मराज! स्वर्ग श्री (लक्ष्मी) ही तुम्हारे लिए द्रोपदी बनकर आयी है, ये अयोनिजा है (यज्ञकुण्ड से उत्पन्न है) लोक की शोभा है, पुण्यमयी गन्धयुक्त है।

जीव की अभ्युन्नति यात्रा में वैदिक प्रस्थान मार्ग है (उपनिषद् आदि), सूत्र प्रस्थान मार्ग (ब्रह्मसूत्रादि), स्मृति प्रस्थान मार्ग (मनुस्मृति गीतादि)।

यः पृथिव्यांतिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं य पृथिवी मन्तरो यमयति एष त आत्माऽन्तयम्यिमृतः। (वृ.उ. ३।७।३)

स्वकर्म प्रयुक्तं हिथार्यं करणं च पृथिवीदेवतायाः। तदस्य स्वकर्माभावादन्तयीमिणो नितामुक्तस्वात्। परार्थकर्तव्यतास्वभावत्त्वात्परस्च। कार्यं करणं च तदेवास्यः न स्वतः। (शाकरभा.)

आत्मा देवताद्यात्मकार्यगः। देवतादिशरीराद्यै दैंवता दीन्नियच्छति। स्वतस्त्व करणोऽदेहो निर्गुणोऽमे (वार्तिकम्) द एव च।

अवश्यं नरकस्तात!, द्रष्टव्यः सर्व राजभिः।
भूयष्ठं पाप कर्मायः, सपूर्वं स्वर्गमश्नुते।। (स्वगीरा. ३ महाभार.)

बुद्धि, अहंकार और प्रकृति—पञ्चमहाभूत पृथवी जल तेज वायु आकाश ये सब जीव के आधार है जीव इनका नियन्त्रक है। शास्त्र जीव के नियन्त्रक हैं।

याज्ञवल्क्य कहते हैं—जो पृथ्वी में रहने वाला है पृथ्वी के अन्दर है, किन्तु जिस पृथ्वी भी नहीं जानती, जो स्वयं पृथ्वी रूपी शरीर बना है तथा पृथ्वी के अन्दर रहकर ही पृथ्वी का शासन करता है वह आत्मा ही अन्तर्यामी है अमृत है।

पृथ्वी को जो कार्य और करण प्राप्त है वे उसके कर्मानुसार ही मिले है (कार्य-शरीर करण=इन्द्रिया) पृथ्वी के देह इन्द्रियाँ ही इस अन्तर्यामी के भी हैं, क्योंकि अन्तर्यामी का स्वयं के तो कर्म है नहीं ये तो नित्यमुक्त है। पर=दूसरों के लिए ही करना इस अन्तर्यामी का स्वभाव है इसीलिए अन्यों के कार्य (शरीर) और करण (इन्द्रियाँ) ही इसके होते हैं इसके अपने नहीं होते।

देवता आदि के शरीर से ही देवता आदियों का नियमन करता है अन्तर्यामी; क्योंकि स्वयं अदेह है इसीलिए अकरण (इन्द्रिय रहित) भी है। निर्गुण है अभेद है आत्मा देवतादि देह से ही कार्य कर्ता है।

हे तात! सभी राजाओं को नरक अवश्य देखना पड़ता है, अन्तर इतना है जो अधिक पापकर्मा है वह पहले स्वर्ग सुख भोगता है पश्चात् नरक, अतिशय पुण्यवान पहले नरक पश्चात स्वर्ग।

यति दण्डैश्वर्यविधानम्

क्रम	संस्कृत	आम्नाय	क्रम	हिन्दी	आम्नाय
१४	पाशुपतंमनुप्राचार्यीचिन्तयेत् परमैश्वर्य सदन जयप्राप्तिकरः	सर्वाम्नायः	१४	पशुपति मन्त्र का उच्चारण कर चिन्तन करे, ये परमेश्वर्य सदन है जय प्राप्ति कराता है।	सर्वाम्नाय
१३	निर्वाण विद्या	गुर्वाम्नायः	१३	निर्वाणविद्या	गुर्वाम्नाय
१२	●		१२	●	
	●			●	
११	ऐश्वर्य युक्त ब्रह्मत्व प्रदाता		११	ऐश्वर्ययुक्त ब्रह्म प्रदायक	
१०	विद्याः	उपाम्नायसमष्टिः	१०	विद्या	उपाम्नाय समष्टि
९	●		९	●	
८	●		८	●	
७	●		७	●	
६	भासात्मकोविन्दुः	उर्ध्वाम्नायः	६	भासात्मक विन्दु	उर्ध्वाम्नाय
५	अनाख्यो विन्दुः	उपाम्नायसमष्टिः	५	अनाख्य विन्दु	उपाम्नाय
४	प्रथमोविन्दुः पंदश्यात्मकः	उत्तराम्नायः	४	प्रथमविन्दु पंचदश्यात्मक	उत्तराम्नाय
३	अष्टकोणं त्रिकोणम्	पश्चिमाम्ना	३	अष्टकोण त्रिकोण	पश्चिमाम्नाय
२	मनुस्नं दशारयुगुलम्	दक्षिणाम्नायः	२	मानुस्र दशचक्र युगल	दक्षिणाम्नात
१	भूपुरं शोडशारं नागदलम्	पूर्वाम्नायः	१	भूपुर में सोलह चक्र वाल नागदल है	यहाँ पूर्वाम्नाय है

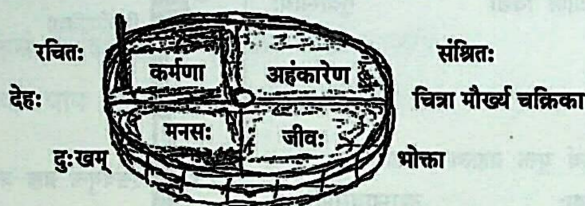
श्रीविद्यारत्नाधरे षोढान्यासे

ऐंह्रीं श्रीं वं मायापुर्यै नमः ◎ नाभौ (मायापुरी)

श्री गणेशग्रहनक्षत्र योमिनी राशि पीठरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः।

(षोढान्यासः)

प्रज्ञा सौजन्य युक्तेन शास्त्रसंवलितेन च।
पौरुषेण न यत्प्राप्तं न तत्क्वचन लभ्यते।। (योग व.नि. २४)



देव भावः-दिव्यपरिकरवीन्, वीर भावः-पुरुषार्थ साधकः, पशु भावः-वासनावद्धः।

पृथिव्यां नील संज्ञानं अद्धायोमुक्ताफलानि च।
तेजसः कौरस्तुभो जातः वायोर्वैडूर्य संज्ञकः।
पुष्करात्पुण्यराजस्तु वैजयन्त्या हरेरिमे।। (श्रीविष्णु रहस्ये)

नाभि में (मायापुरी में) ऐं ह्रीं श्रीं वं मायापुर्ये नमः मन्त्र से श्री गणेश, ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि-पीठ रूपिणी श्री महात्रिपुर सुन्दरी को नमस्कार है।

सौजन्ययुक्त बुद्धि-शास्त्र संवालित पौरुष से जो न पाया जा सके वह कहीं प्राप्त नहीं हो सकता।

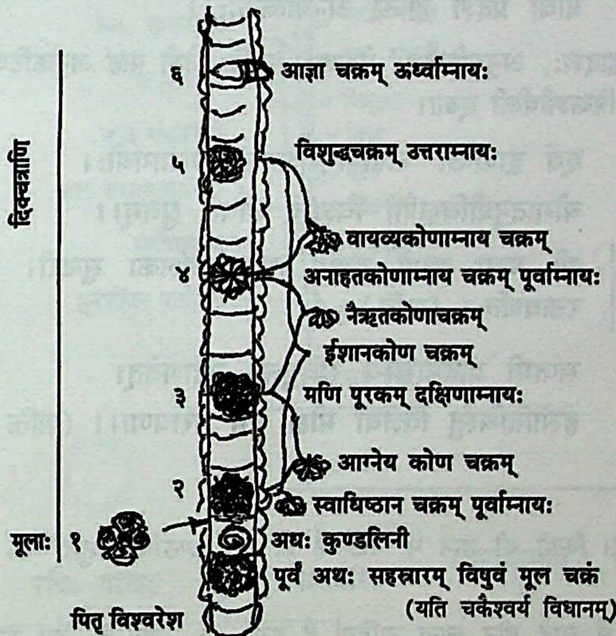
कर्मद्वारा रचित है देह, मन के कारण दुखादि भोग। अहंकार के आश्रय में ये विचित्र मूर्खतारूपी चक्र है इसके फल भोगता है जीव।

देवभाव—दिव्य परिकर सम्पन्न, **वीरभाव**—पुरुषार्थ साधक, **पशुभाव**—वासना में जकड़ा हुआ।

पृथिवी से कीलमणि, जल से मुक्ता फल, अग्नि से कौस्तुभमणि वायु से वैदुर्य, पुष्कर से पुष्पराज (पुखराज) हरि की वैजन्ती से ये उत्पन्न है।

ब्रह्मनाड़ी चित्रा वाज्रा–एतातिस्रो मिलित्ववै, सुषुम्ना रूपतां गताः। (यतिदाडैश्वर्यविधाने)

दशम्नायानां दिशाविदिशा दश चक्राणि–१. पूर्वाम्नायः–मन्त्र योगः, २. दक्षिणाम्नायः भक्तियो., ३. उत्तरा. ज्ञानयो., ४. पश्चिमा. मिश्रितभक्तियो., ५. अधः. शब्दयोः, ६. ऊर्ध्वा. विज्ञानयो., ७. ईशाना., ८. आग्नेयः, ९. वायव्या.–कर्मयोगः, १०. नैऋता. षट्कर्मयो.।



ब्रह्मनाड़ी-चित्रा-व्रजा ये तीनों मिलकर ही सुषुम्नारूप में परिणत हुई हैं।

दश आग्नायों में दिशा ज्ञान चक्र—किस आग्नाय व चक्र से कौन सिद्धि होती है—१. पूर्वाम्नाय—मन्त्रयोग, २. दक्षिणाम्नाय—भक्तियोग, ३. उत्तराम्नाय—ज्ञानयोग, ४. पश्चिमाम्नाय—मिश्रित भक्तियोग, ५. अधनीचे—शब्दयोग, ६. उर्ध्वाम्नाय—विज्ञानयोग, ७-८. ईशाम्नाय, आग्नेयाम्नाय—अनाहतचक्र, ९. वायव्याम्नाय—कर्मयोग, १०. नैऋत्याम्नाय—मारण मोहन वशीकरण स्तम्भन उच्चाटनादि सिद्धि प्राप्ति होती है।

षटचक्रों में क्रमशः आम्नाय व सिद्धि का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण है ही जैसे किसी को भक्ति रुचिकर लगी है तो उसे चाहिए कि दक्षिणाम्नाय अर्थात् मणिपूरक कोणगत चक्र

यति दण्डैश्वर्य विधाने

वार्ध लक्षत्रयं नाड्यः एतासु मुख्याः षोडश।
यासामुत्पत्ति भूरेका सुषुम्ना, लघुमस्तिष्कतो नीचैः नाडिका मता।।
तत एव विनिर्यान्ति वाम दक्षिण भागयोः।
एकत्रिंश दह्येकत्रिंश नाडिका सूक्ष्मरूपतः।
ग्रीवा प्रदेशे ह्यष्ठौ अनुग्रीविकाः।।

पृष्ठे द्वादशः, अनुयष्ठिकाः मेरुजाः। कटि प्रदेशे पञ्च अनुकटिकाः। त्रिके पञ्च अनुत्रिकाः। त्रिकशीर्षकी एका।

एवं द्वाषष्ठिः नाडीनाम् वामदक्षिणभागयोः।
योगादनुग्रीविञ्जणां विशुद्धं जायते ध्रुवम्।।



श्री यन्त्रा वरणे मुख्ये देवते कोलिका सुन्दरी। कृष्णवर्णात्वात्। रक्तवर्णतः। (य.वि.)

सप्तमी प्रतिमासस्य रवियुक्ता यदाभवेत्।
हंसीतिथिस्तु विज्ञेया मोक्ष धर्म परायणा।। (शक्ति संग.त. १३)

का ध्यान करें। किसी की ज्ञान में निष्ठा है तो उसे कण्ठस्थ विशुद्ध चक्र का ध्यान उचित है आदि।

शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ है इनमें १६ मुख्य हैं—इन सबकी उत्पत्ति भूमि है—सुषुम्ना नाड़ी (ये लघु है मस्तिष्क से नीचे है)। इसी नाड़ी से वाम भाग और दक्षिण भाग में नाड़ियाँ जाती हैं (इकतीस वाम भाग में, इकतीस दक्षिण भाग में सूक्ष्मरूपा)। गर्दन प्रदेश में आठ नाड़ियाँ (गर्दन के आसपास), पीठ में बारह (मेरूदण्ड से जुड़ी है सब), कटिप्रदेश में पाँच (कटि कमर के आसपास), त्रिक में भी पाँच, त्रिक के शीर्ष में एक। इस प्रकार वामभाग में इकतीस और दक्षिणभाग में इकतीस। कुल मिलाकर ६२ नाड़ियाँ है योग द्वारा ये सब विशुद्ध हो जाती है।

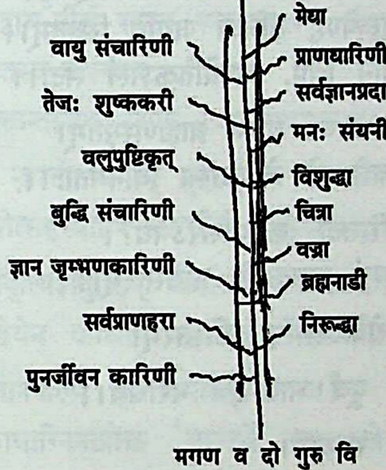
श्रीयन्त्र के मुख्य आवरण में—कोकिला व सुन्दरी नाम से दो देवी हैं। कृष्ण वर्ण ही होने से कोकिला है, रक्तवर्ण के होने से सुन्दरी है।

हर महीने में सूर्ययुक्त (रविवार) सप्तमी हो तो मोक्षधर्म परायण हंसी तिथि होती है।

मौगौ

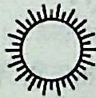
विद्युन्माला, लोलान्भोगा, न्मुत्त्वा मुक्तौ, यत्नं कुर्यात्।
ध्यान प्राप्तं निः सामान्यं, सौख्यं मोक्तुं, यद्याकङ्क्षेत्।।

एताः सप्त दक्षिणभागे स्थिताः　　　　एतानवस्थितानाड्यः सुषुम्नायावामौ



मगण व दो गुरु वि

ऽऽऽ





विन्दुः पुमान　　　　सर्गः शक्ति
रविः पक्तिः　　　　निशाकरः　　　　(दण्डैश्वर्यवि.)

विद्युन्माला छन्द में ये श्लोक है इस छन्द में २ मगण व दो गुरु हैं। ८ वर्ण होते हैं—ऽऽऽ ऽऽऽ (मगण), ऽऽ (गुरु)। ये भोग सब विद्युत्माला (नभस्थ विजली) जैसे चंचल हैं, इनसे (भोगों से) मुक्त होकर मुक्ति के लिये प्रयास करना चाहिए। यदि सुख भोगना चाहते हो तो विशिष्ट ध्यानावस्था को प्राप्त करों।

चित्र से स्पष्ट तथा बोध के लिए मूल देंखे।

विन्दु सूर्य रूप पुरुष है। नवग्रहों में भी सूर्य राजा। इसकी कठोरता तेजस्विता पुरुषत्व का प्रतीक है।

विसर्ग शक्ति रूप चन्द्र है। चन्द्र रानी मानी गयी है। इसकी मृदुता सौम्यता स्त्रीत्व का प्रतीक है।

सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात् (कात्यायन वा. ३/१/७ पा.मा.) अथवा सर्वं चेतनावत्। एवं हि आह कंसक सर्पति, शिरोषोऽयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनु पर्येति। अयस्कान्तमयः संक्रामति। ऋषिश्च पठतिशृणोत ग्रावाणः। कृ.य.तै.सं. १/३/३/२। (१ मन्त्रः)

यत्तद्विश्वत्मत्वोधाम. परं ब्रह्म सनातनम्।
सूर्याग्नि चन्द्ररूपेण, तत्रिधा जगति स्थितम्।।
तदाराध्य पुमान् विप्र. प्राप्नोतिकुशलं सदा।। (मत्स्यपु.-९७/२)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणस्मृतम्।
अनन्तरं च वक्तेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।

पुराणमेकमेवसित्तदा कल्पान्तरेऽनघ?।
त्रिवर्गसाधर्नेपुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्।।

अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् प्रविस्तरम्।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं भावन्मात्रं मरीचये।।
[१]ब्राह्मं त्रिदश साहस्त्रं।
एतदेव यदा पद्म-मभू ददैरण्मयं जगत्।।

सभी चेतना युक्त हैं कोई अचेतन नहीं जड़ में भी चेतना है, किन्तु सुप्त है अथवा ये कहो सभी चैतन्यवत हैं—इसीलिए प्रयोग होता है। गिलास जा रहा है, यह सिरीष सो रहा है, सुवर्चला आदित्य की परिक्रमा करती है अयस्कान्तमणि (चुम्बक) लोहे को चला रही है (खींच रही है) ऋषि पढ़ रहा है, पत्थर सुन रहे है। (क्रिया तो चेतन में होती है जड़ में नहीं किन्तु व्यवहार में हम कलम चल रही है, बल्ला चल गया, लकड़ी फट रही है। ऐसे प्रयोग करते हैं। जिससे सिद्ध है कि चैतन तो सब हैं पर किसी की चेतना सोई है किसी की जगीं।

सनातन परब्रह्म परमात्मा का जो दिव्य तेज है वह सूर्य चन्द्र और अग्नि रूप से (त्रिधा) जगत में स्थित है। हे विप्र उसकी आराधना करने से सदा कुशल पाता है प्राणी।

ब्रह्मा जी ने सबसे पहले पुराणों का स्मरण किया उसके बाद उनके मुख से वेद निर्गत हुए। हे अनघ! पुराण भी एक ही था धर्मार्थकाम आदि का साधक सौ करोड़ श्लोकात्मक एक ही पुराण जो आज भी देवलोक में यथावत है।

१. ब्राह्मपुराण १३ हजार श्लोकात्मक ब्रह्मा जी ने मरीचि को सुनाया।

तद्वृत्तान्ताक्षयं तद्वत् पाद्य[2] मित्युच्यते वुधैः।
वाराहकल्प वृत्तान्त-मधिकृत्य पराशरः।।
यत्प्राहधर्मानखितान् तद्युक्तं [3]वैष्णवं विदुः।
श्वेतकल्यप्रसंगेन धर्मान्वायुरिहा ब्रवीत्।।
यत्र तद्वाय[4]दीयं स्यात् रूद्रमाहात्म्यं संयुतम्।
सारस्वतस्य कल्पस्य.......।।
तद् वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भा[5]गवमुच्यते।।
यचाह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पा क्षयाणि च।
पंचविशेत्सहस्त्राणि नारदीयं तदुच्यते।।
यथाधिकृत्यशकुमीन् धर्माधर्म विचारसा।
मार्कण्डेयेन कथितं [7]मार्कण्डेयमिहोच्यते।।
यत्तदीज्ञानकल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वशिष्ठायाग्निनाप्रोक्त [8]माग्नये तत्प्रचक्षते।।

---

२. पद्मपुराण (५५ हजार)—जब जलराशि में नारायण नाभि से निर्गत नलिन (पद्म) हुआ। तदनन्तर हिरण्यमय जगत् की रचना का विवरण होने से विद्वानों ने इसे पद्म कहा।

३. विष्णुपुराण (२३ हजार)—वराह के वृत्तान्त को अधिकृत कर पराशर जो अखिल धर्म कहे उसका नाम विष्णु पुराण।

४. वायुपुराण (२४ हजार)—श्वेत कल्प के प्रसंग में वायु ने धर्मोपदेश किया रूद्र महिमा से युक्त इसका नाम वायुपुराण।

५. भागवतपुराण (१८ हजार, देवी भागवत है)—सारस्वत कल्प में कही कथा भागवत कहलाती है।

६. नारदपुराण (२५ हजार)—वृहत्कल्प में नारद जी ने जो धर्मोपदेश किया २५ हजार श्लोकात्मक।

७. मार्कण्डेयपुराण (९ हजार)—जहाँ पक्षियों को निमित्त बनाकर मार्कण्डेय ने सुनाया धर्म अधर्म।

८. अग्निपुराण (१६ हजार)—ईशान कल्प में अग्नि ने वशिष्ठ को सुनाया।

पत्राधिकृत्य माहात्म्य मादित्यस्य चतुर्मुखः।
अधरे कल्प वृत्तान्त प्रसंगेन जगत्‌स्थितिम्।
मनवे कथयामास भविष्य चरित् प्रायम्।
भविष्यं[९] तदि होच्यते।।

रथन्तस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च।
सारवर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्य मुक्तम्।
यत्र ब्रह्मवणस्य चोदन्तं [१०]ब्रह्मवैवर्तमुच्यते।।

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्यः प्राहदेवो महेश्वरः।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं आग्नेयमधिकृत्य च।
कल्पत्ते तौङ्ग[११] मित्युक्तम्।।

महावराहस्य पुन र्माहात्म्य मधिकृत्य च।
विष्णुनामिहितं क्षाण्यै तद् वाराह[१२] मिहोच्यते।।

मानवस्य प्रसंगेन कल्पस्य मुनिसत्तम्!।
चतुर्विंशत्सहस्त्राणि तद् मिहोच्यते।।

पत्र माहेश्वरान्धर्मान् अधिकृत्य चषणमुखः।
कल्पे तत्पुरुषं कृत्तं चरितैरूप वृहितम्।।
[१३]स्कान्दं नाम पुण्णाम्।।

---

९. भविष्यपुराण (१४.५००) अघोरकल्प में ब्रह्मा जी ने सूर्य चरित्र मनु को सुनाया जगत् की स्थिति आदि।

१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण (१८ हजार)—रथन्तर कल्प में सावर्णी ने नारद को कृष्ण वृत्तान्त सुनाया।

११. लिंगपुराण (११ हजार)—अग्नि लिङ्ग को मध्यस्थकर अग्नि को शिवजी ने।

१२. वराहपुराण (२५ हजार)—वराहकल्प में महावराह की महिमा विष्णु ने पृथ्वी को सुनाई।

१३. स्कन्द पुराण (८१ सौ)—तत्पुरुष कहते स्वामी कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म का आख्यान किया।

त्रिविक्रमस्य माहाक्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।
त्रिवर्गमध्यागत् तच्च [१४]वामनं परिकीर्तितम्।।
पुराणं दश साहस्त्रं [१५]कूर्मकल्पानुगं शिवम्।।
यत्र धर्मार्थ कामनां मोक्षस्य रसातले।
माहात्म्यं यथवा मास कूर्मरूपी जनार्दनः।।
लक्ष्मी कल्पस्य।।
श्रुतीनां यत्र कल्पदौ प्रवृत्थं जनार्दनः।
मत्स्य रूपेणमनवे तरसिंहोय वर्णनम्।।
अधिकृत्याव्ररीत्सप्त-कल्प वृत्तं मुनीश्वराः।।
[१६]तन्मरिर्स्यामति जानीध्वम्।।
यदा च गारूडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्या ब्रवीत्कृष्णो [१७]गारूडं तदिहोच्यते।।
ब्रह्मा ब्रह्माण्ड माहात्म्य अधिकृत्या ब्रुवतिपुनः।
तच्च द्वादश साहस्त्रं [१८]ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।।
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्रविस्तरः।
चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा।। (मत्स्यपु.-५३)

---

१४. वामनपुराण (१० हजार)—(कूर्मकल्प) ब्रह्माजी ने वामन की महिमा गायी।

१५. कूर्मपुराण (१८ हजार)—लक्ष्मीकल्प कूर्मरूपी विष्णु ने रसातल में जो कथा कही।

१६. मत्स्यपुराण (१४ हजार)—आदिकल्प मत्स्यभगवान ने मनु को कहा।

१७. गुरुड़ पुराण (१८ हजार)—गरुड़ कल्प कृष्ण ने कहा गरुड़ को।

१८. ब्रह्माण्डपुराण (१२.२०० बारह हजार दो सौ)—ब्रह्मा ने कहा कहा ब्रह्माण्ड के विषय में भावी कल्पों की कथा।

इस प्रकार ये चार लाख श्लोकात्मक महापुराण संहिता अद्भुत, कर्म करने वाले व्यास जी ने सृजित की।

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्य स्त्रयोदेवा प्रजज्ञिरे।
एवत्र मूर्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।। (मत्स्यपु.-३११५)

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदिकृता समाश्रितः।
ततः संजयतस्तस्य भित्वादेहम कल्मषम्।।
स्त्रीरूपमर्धमकरो-दर्धं पुरुषरूपवत्।
शतरूपा च साख्याता सावित्री च निगधते।
सरस्वत्यय गायत्री ब्रह्माणी च परं तपः।। (मत्स्यपु.)

या सा देहार्ध सम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी।
जननी या मनोर्देवी शतरूपा[१] शतेन्द्रिया।। (१-माया)
दिव्येययादि सृष्टिस्तु, रजोगुणस्तुद्भवा।
कार्याकार्येन देवानां शुभाशुभं फलप्रदे।
सर्ववेदाना मधिष्ठाता चतुर्मुखः। गायत्री ब्रह्मण अंगभूता।
वेदराशिः ब्रह्म सावित्री तदधिष्ठिता।। (मत्स्य.पु.)

त्रिगुणों के परस्पर क्षोभ होने पर देवत्रय प्रकट हुए ब्रह्माविष्णुमहेश ये तीनों एक ही देव के तीन रूप हैं।

ब्रह्मा जी ने लोक संरचना के लिए सावित्री को हृदय में आसीन कर जप किया तप प्रभाव से उनके अकल्मष शरीर का भेदन कर स्त्री पुरुष युगल प्रकट हो गया। सावित्री ही शतरूपा बनी तथा सरस्वती-गायत्री ब्रह्माणी भी उत्पन्न हुई।

आधे देह से उत्पन्न ब्रह्मवादिनी गायत्री मनु की जननी सैकड़ों रूप वाली सैकड़ों इन्द्रियों वाली (शतरूपा=माया)।

रजोगुण से उत्पन्न आदि सृष्टि दिव्य थी।

कार्य और अकार्यवश देवों को शुभ व अशुभ फलप्रदा है।

सभी वेदों के अधिष्ठाता ब्रह्म है। गायत्री ब्रह्म का अंग है।

वेदराशि को ब्रह्म कहते हैं सावित्री वेद में अधिष्ठित है।

मरीचि रमवत्पूर्वं ततोऽत्रिः ततोङ्गिराः, पुलस्त्यः, पुलहः, ऋतुः, प्रचेताः, वशिष्ठः, भृगुः, नारदः। (१०) दशेमान्मानसान्ब्रध्वा, मुनीन्पुत्रानजीजनत्। (मत्स्यपु.-३)

शारीरानय वक्ष्यामि मातृहीनात् प्रजापतेः।
अंगुष्ठाद्दक्षिणा दक्षः प्रजापति रजायत्।।
धर्मस्तनाद्भवत् हृदयात्कुसुमायुधः।
भ्रूमध्यात्तक्रोधः लोभश्चाधर संभवः।।
बुद्धे र्मोहः अहंकारादभूद् मदः।
प्रमोदश्चाभवत्कण्ठात् मृत्युर्लोचतो नृपः।।
भरतः करमध्यात्तु। (१०) (मत्स्यपु.)

कुम्भराशि गते जीवे, मेषराशिगते रवौ।
हरद्वारे कृतं स्नानं, पुनरावृत्ति वर्जनम्।।

२०४३/चैत्र शु. ५ ति. ३ व. १५ मि. से १२ व. १८ तक पुण्यकाल। कुराली-मार्तण्ड पं.।

ब्रह्मा ने मानस पुत्र

मानस पुत्रों में सर्वप्रथम—१. मरीचि हुए, २. अत्रि, ३. अंगिरा, ४. पुलस्त्य, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. प्रचेता, ८. वशिष्ठ, ९. भृगु, १०. नारद। ब्रह्मा जी ने इन दश मानस पुत्रों (मुनियों) को जन्म दिया।

अब शरीरोत्पन्न किन्तु माता विहीन पुत्रों को कहते हैं—१. दक्षिण अंगूठे से दक्ष प्रजापति हुए, २. स्तन से धर्म हुए, ३. हृदय से कामदेव, ४. भ्रूमध्य से क्रोध, ४. लोभ अधर (नीचे के होठ) से, ६. बुद्धि से मोह, ७. अहंकार से मद, ८. कष्ट से प्रमोद, नेत्रों से मृत्यु उत्पन्न हुए। हे राजन, हाथों के मध्य भाग से भरत उत्पन्न हुए। अंगजा नाम की कन्या भी हुई।

हरिद्वार कुम्भ

कुम्भ राशि में वृहस्पति मेष राशि में सूर्य, इस महाकुम्भ योग में हरिद्वार में स्नान करने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

पद्मासनः पद्मकरः, पद्मगर्भसमद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च, द्विभुजः स्यात्सदार्णवः।।१।।

श्वेतः श्वेताम्बरधरः, श्वेताश्वः श्वेत वाहनः।
गदापाणिर्द्विवाहुश्च, कर्त्तव्योवरदः राशिः।।२।।

रक्तमाल्यां वरधरः शक्तिशूल गदाधरः।
चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद्धरासुतः।।३।।

पीतमाल्यांवरधरः, कर्णिकार समद्युतिः।
खड्गचर्म गदापाणिः, सिंहस्यो वरदो वुधः।।४।।

देवदैत्यगुरु तद्वत्, पीत श्वेतौ चतुर्भुजौ।
पण्डितौ वरदौ कार्यौ साक्षसूक्तकमण्डलू।।५।।

इन्द्रनीलद्युतिः शूली, वरदो गृद्धवाहनः।
वाण वाणासनधरः, अर्कसुतः।।६।।

नवग्रह स्वरूप

सूर्य—पद्मासन, पर विराजमान, हाथ में कमल लिए (पद्म गर्भ जैसी आभा वाले, सात घोड़ों वाले सप्तरजु वाले द्विभुज धारी श्रीसूर्य है।

चन्द्र—श्वेत वर्ण के, श्वेत वस्त्रधारी, श्वेत घोड़ों वाले श्वेत वाहन पर विराजित गदाधारी द्विभुज ये वरदाता चन्द्र हैं।

भौम—रक्तमाला व वस्त्रधारी शक्ति-शूल गदाधारी, लालरंग के रोम वाले चतुर्भुज भौम हैं।

बुध—पीलीमाला, पीलेवस्त्र, कनेर के समान कान्ति वाले खड़ चर्म गदा हाथों में है सिंह पर स्थित ये बुध है।

गुरु, शुक्र—देवगुरु वृहस्पति व दैत्यगुरु शुक्र गुरु पीत वर्ण के है, शुक्र श्वेत वर्ण के। दोनों चतुर्भुज हैं दोनों पण्डित है दोनों के हाथों में अक्षमाल सूत्र कमण्डलु है ये गुरु-शुक्र है।

शनि—इन्द्र नीलमणि सम आभा वाले, शूलधारी, गीध पर बैठे धनुषवाणधारी सूर्यपुत्र वर प्रदाता शनि महाराज हैं।

करालवदनः खड्ग-चर्मशूलोवरप्रदः।
नीलसिंहासनस्थः, राहुः।।७।।

धूम्रा द्विवाहवः सर्वे,
गदिनो विकृताननाः।
गृध्रासनगताः केतवः
युर्वरप्रदाः।।८।। (मत्स्यपु. ९४)

दाराग्निहोत्र, सम्बन्धं,
ऋग्यजुःसाम संहिताः।
द्रव्यादि बहुलं श्रौतं,
धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन्।।
परम्परा गतं धर्मं,
स्मार्तं त्वाचार लक्षणम्।
वर्णाश्रमाचारयुक्तं,
मनुः स्वायं भुवोऽब्रवीत्।।
(मत्स्यपु. १४२)



सर्वकाम फलप्रदा देव्यः। (यतिदण्डैश्वर्याविधाने)

राहु—भयंकर वदन खड्ग-चर्म-शूल धारी, नीलसिंहासनस्थ वरप्रदाता राहु हैं।

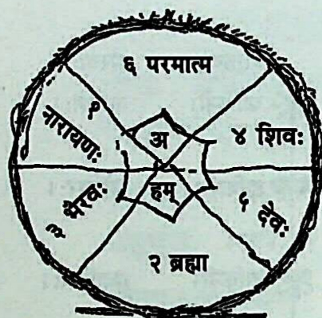
केतु—धूम्रवर्ण के दो भुजा वाले विकृत मुख वाले गीध के आसन पर विराजे गदाधारी केतु वर प्रदाता है।

श्रौत धर्म का उपदेश सप्तर्षियों ने किया जिसमें विवाह अग्निहोत्र से सम्बन्धित ऋग्यजु साम संहितायें विशेषरूप से कही।

परम्परागत वर्णाश्रमाचारयुक्त धर्म जो स्मार्त परक लक्षणों से सम्पन्न था उसका उपदेश मनु जी ने किया।

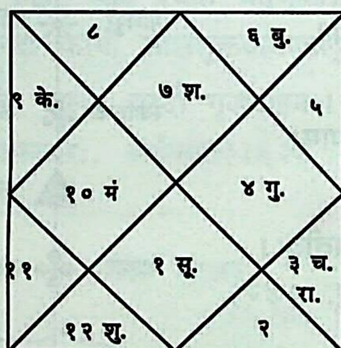
इस चित्र में दर्शाये गये चक्र संस्थानों पर सर्वकाम पूर्ण करने वाली देवियां है तथा सकल भय निवारक विघ्न हन्ता भैरव हैं।

बज्र पञ्ज कवचम्। (यदिदण्डैश्वर्यवि.)



वज्रपञ्जरन्यासं यः, करोति साधकोत्तमः।
उद्दण्डाभूत प्रेताद्या, वेक्षन्तं साधकोत्तमम्।।

परशुरामः। मार्त.पं.-२.४३



वैशाखस्य सिते पक्षे, तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे. रामाख्यः समये हरिः।।
स्वोच्च वर्गैः षड्ग्रहै–युक्ते मिथनेराहुसंस्थितौ।
रेणुकायास्तुयो गर्वादवतीर्णे हरिः स्वयम्।। (स्क.पु., भविष्य.)

उपर्युक्त वज्रपंजर न्यास को जो उत्तम साधक करता है तो उद्दण्ड प्रेतादि भी उस साधक को देख नहीं पाते।

वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया पुनर्वसु नक्षत्र (अक्षय तृतीया) रात्रि के प्रथम प्रहर परशुराम नामक हरि का अवतरण हुआ। अपने उच्चवर्गों में ग्रह मिथुन राशि में नवमधर में राहु चन्द्र का योग जब तथा तब रेणुका गर्भ से हरि अवतीर्ण हुई।

हैली धूम्रकेतु। (मार्त.पं. २.४२ वि.) १९८६ जनवरी से अप्रैल तक।

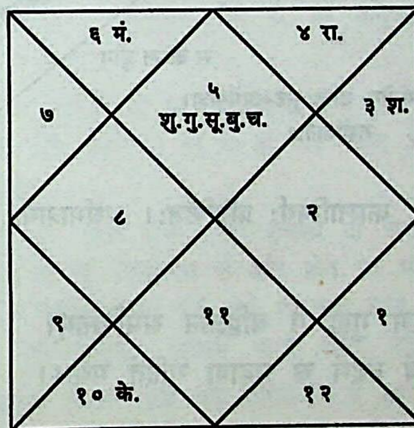
राजराष्ट्रविनाशाय केतूनामुदयः सदा। (वशिष्ठ संहिता)

यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्तः फलपाकः।
मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात्पक्षत्रयात्परतः।। (वृहत्संहिता)

३ जनवरी को सर्वप्रथम पश्चिम में दिखेगा। सूर्य अस्त के एक घण्टा बाद।

श्रावणशुक्लपक्षे च, क्षीणा क्वापि तिथिर्भवेत्।
तदैव कार्तिके मासि, क्षत्रभंगः प्रजायते।। (वृहत्संहिता)

संजयगान्धी (मार्तण्डपं., २.४३)

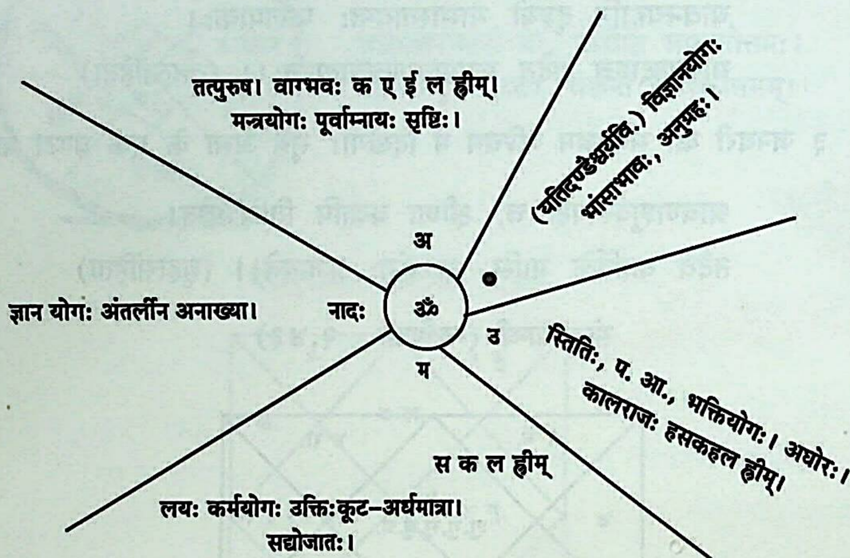


सदा केतु का उदय राजा या राष्ट्र दोनों का विनाश ही करता है।

जितने दिन तक केतु दिखे उतने मास में अनिष्ट फल कारक होता है। मास शब्द का अर्थ है (वर्ष)। (प्रथम के तीन पक्षों के उपरान्त)

श्रावणशुक्ल पक्ष में यदि कोई तिथि क्षीण हो तो—और कार्तिक मास में भी तिथि क्षीण हो तो राजा नष्ट होता है। (इसी समय संजय गान्धी का जीवन पूर्ण हुआ)

स्त्रवसोः कुवलय मक्षणो रञ्जनं, हृदय इन्द्रमणिदास।
गोपबधूनां मण्डन मखिलं हरिर्जयति।। (आ.वृ.च.)



पातालानामधोभागे, कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः। अर्धमात्रा[illegible] स शिवः स्मृतः।

श्रीभगवानुवाच–

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम्।
सर हस्यं तदगं च गृहाण गदितं मया।।

कानों में कुण्डल, आँखों में काजल, हृदय में इन्द्रमणि, गोपाङ्गनाओं के अखिल शृङ्गार मूर्ति श्रीहरि की जय हो।

यथावत् दृष्टव्य चित्रम्।

पाताल के नीचे जो कालाग्नि है अर्धमात्रात्मक शिव है।

चतुश्लोकी भागवत

श्रीभगवान् कहते हैं हे ब्रह्मन्! विज्ञान से युक्त मेरा परम गोपनीय जो ज्ञान है उसे तुम सरहस्य (अनुभव जन्य) सुनकर स्वीकार करो मैं सुनाता हूँ। मेरा जितना विस्तार है,

यानानहं यथाभावो यद्रूप गुण कर्मकः।
तथैव तत्त्व विज्ञानं अस्तुते मदनुग्रहात्।।

अहमेवास एवाग्रे नान्यद्यत्सद सत्यपरम्।
पश्चादहं तदेत्तयोऽवशिष्येत सोस्म्यहम्।।

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयते न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विधादात्मणे माया यथाभासो यथा तमः।।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चाव चेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथातेषु न तेष्वहम्।।

एतावदेवजिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुताऽत्मनः।
अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यतस्या सर्वत्र सर्वदा।।

जैसा मेरा लक्षण है, मेरे रूप गुण कर्म जैसे है, मेरे अनुग्रह से तुम उनको उसी रूप में जानो।

ब्रह्मबोध—सृष्टि के पूर्व में ही था मेरे अतिरिक्त न सत था न असत् अन्यक्त व्यक्त कुछ नहीं था) सृष्टि के लीन होने पर भी मैं ही शेष रहुँगा और जो दिख रहा है कण-कण वह भी मैं ही हूँ।

माया—विना हुए ही प्रतीत होना (जैसे नभस्थ दो चन्द्र जबकि है एक ही) जैसे जगत् भ्रम वश न होने पर भी दिख रहा है और होने पर भी प्रतीत न होना (जैसे राहु नक्षत्र मण्डल गत है पर दिखता नहीं) जैसे मेरी ही सत्ता सत्य है तदपि अज्ञानावृत चक्षुओं द्वारा नहीं। दिख रहा यही चमत्कार दिखाने वाली शक्ति मेरी माया है।

जगत्—जैसे पञ्चभूत सृजित छोटे बड़े शरीरों में ये महाभूत प्रविष्ट भी है और नहीं भी। प्रविष्ट इसलिए कि इन महाभूतों से ही बने हैं ये शरीर—अप्रविष्ट इसलिए कि प्रवेश तो तब हो जब उनका वहाँ अभाव हो ये महाभूत तो वह पहले से ही है। वैसे ही देह दृष्टया में उनमें प्रवेश करता हूँ आत्मा दृष्टया मैं ही हूँ तब कहा प्रवेश।

जीव—आत्मजिज्ञासु को वश इतना ही जानना चाहिए। अन्वय और व्यतिरेक द्वारा कि सर्वदा और सर्वत्र परमात्मा ही विद्यमान है। (अन्वय सकारात्मक स्वीकारात्मक विधि अस्ति पद्धति से ब्रह्म है। व्यतिरेक, नकारात्मक, निषेधात्मक, मस्ति पद्धति से ये ब्रह्म नहीं) अनात्म है वह ब्रह्म नहीं है जो नाशवान है वह ब्रह्म नहीं जगत् में सबकुछ लगातार मिट रहा है अत: ये ब्रह्म नहीं। सदा जो जो रहे वह ब्रह्म है।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्प विकल्पेषु न विह्यति कर्हिचित्।। (श्रीमद्भाग. २/९)

रूद्राक्षधारण मन्त्रः–ॐ अघोर ॐ हैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्तेरूद्राय हैं स्वाहा।
(निर्णय सिन्धौ)

उद्धवः

स मुहूर्तम भूत्तूष्णीं, कृष्णांध्रि सुधया भृगम्।
तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः।।

पुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गो, मुञ्च नीलदृशः शुचः।
पूर्णथो लक्षितस्तेन, स्नेहप्रसर संप्लुतः।।

शनकैर्भगवल्लोका, न्रृलोकं पुनरागतः। (श्रीमद्भा. ३/२)

प्रदर्यातिप्ततपसां, अवितृप्त दृशां मृणाम्।
आदायान्तरधाद्यस्तु, स्वविम्बं लोक लोचनम्।।

हे ब्रह्मा जी! मेरी इस मत को पर समाधि में धारण कर लो तो कल्प कल्पान्तर तक भी तुम्हें मोह नहीं होगा।

रूद्राक्ष धारण मन्त्र—ॐ अघोर ॐ हैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रूद्राय हैं स्वाहा। इस मन्त्र से रूद्राक्ष को पवित्र स्थान पर रखकर पूजन करें तथा शिव ध्यान करते हुए धारण कर लें।

विदुर जी द्वारा कृष्ण विषयक जिज्ञासा रखने पर उद्धव का हृदय भर आया और मुहूर्तभर मौन हो गये (कृष्ण चरणारन्दि अमन्द पराग्रानुरागवश बोल ही नहीं पाये)। तीव्रभक्ति योग के दिव्य सरोवर में डूबकर आनन्द निमग्न हो गये।

सारे शरीर में रोमांच हो गया बन्द आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली। विदुर ने उद्धव को स्नेह प्रवाह डूबा देखकर पूर्णार्थ माना कृतार्थ माना (ज्ञानी की दशा) सच्चा ज्ञान यही है जब ज्ञान आँसु के सागर में गोता लगा ले तब वह ज्ञान विज्ञान महान और भगवान होता है)।

धीरे से उद्धव जी भगवल्लोक प्रेम राज्य से तृलोक में आये और बोलने लगे।

हे विदुर! तवना तप के ही कृपा वश सांसारिक जनों को दर्शन देकर पहले उन्हें अपनी ओर खींचा फिर प्यासा छोड़कर ही लोक लोचन दिव्य विग्रह को अन्तर्ध्यान भी कर लिया।

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै, रभ्यर्द्यमानेष्वनुकल्पितात्मा।
परावरेणे महदंश युक्तो, ह्यजोपिजातो भगवान्यथाग्निः।।
अयाजयद्गोसवेन, गोपराजं द्विजोत्तमैः।
वित्तस्य चोरुभारस्य, चिकीर्ष-सद्यार्य विभुः।। (श्रीमद्भा. २)
अखाजयद्धर्म सुतं, अश्वमेथैस्त्रिभिर्विभुः। (श्रीमद्भा. ३)
स्नाधस्मितावलोकेन, वाचा पीयूषकल्पया।
चारित्रेणवथेन, श्रीनिकेतेन चात्मना।।
इमं लोकममुचैव रमयन् सुतरां यदून्।। (श्रीमद्भा. ३/३)
तस्यैवं रममाणस्य, संवत्सरगणान्बहून्।
गृहमेधेषु योगेषु, विरागः समजायत।। (१-कृष्णस्य)
दैवाधीनेषु कामेषु, दैवाधीनः स्वयंपुमान्।
कोविस्त्रंमेत योगेन, योगेश्वर मनुव्रतः।। (श्रीमद्भा. ३/३)

उन प्रभु ने देखा कि शान्ति प्रिय साधुजनों (जो मेरा ही रूप हैं) को दुष्ट प्रकृति के असुरों द्वारा दुःखी किया जा रहा है तब सज्जनों पर अनुकम्पा करके वे परावरथ प्रभु अपने अंश (वलराम) सहित अजन्मा होने पर भी जन्म लेकर आये। जैसे काष्ठ की अव्यक्त अग्नि व्यक्त हो जाये।

उन कृष्ण ने नन्दबाबा के यहाँ धन के विपुल भण्डार का सदुपयोग कराने के लिए दिव्य ज्ञान सम्पन्न ब्राह्मणों द्वारा गोवर्धन पूजा के व्यास से गोपज्ञ कराया।

तीन अश्वमेधों द्वारा उन परमात्मा ने धर्मराज से सर्वेश्वर की पूजा कराई।

उद्धव कहते है हे विदुर! मीठी मीठी मुस्कान स्नेहभरी नजर अमृतमयी वाणी पवित्रतम चरित्र दिव्यतम सौन्दर्य सम्पन्न शरीर से इसलोक और परलोक दोनों को आनन्दित किया यादवों के भाग्य की तो बात ही क्या विशेषकर यादवों को।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक रमण करते-करते उन्हें गृहस्थाश्रम से वैराग्य हो गया। भाग्य या भगवान के आधीन है भोग और पुरुष भी भगवान के ही अधीन है। योगेश्वर श्रीकृष्ण को इन सब भोगों से विरक्त देखकर कौन उनका अनुसरण करने वाला भक्त होगा जो इन नाशवान भोगों पर विश्वास करेगा।

सत्रेपुराविश्वसृजां वसूनां,
मत्सिद्धिकामेन वसो! त्वयेष्टः।
स एष साधो! चरणो भवानां,
आसादित्तेस्ते मदनुग्रहो यत्।। (उद्धवः) (श्रीमद्भा.)

कर्माण्ठानीहस्य भवोऽभवस्य ते,
दुर्गाश्रयोऽथारि मयात्पलायनम्।
कालात्मनो, यत्प्रमदायुताश्रयः,
स्वात्मन्रतेः, खिद्यतिधीविदामिह।। (श्रीमद्भा. ३/४)

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशम्। (श्रीमद्भा. ३/४)
वदर्याश्रममासाद्य, हरिमीजे समाधिना।

(विदुर, मैत्रेयंप्रति)

तत्साधुवर्यादिशवर्त्मशंनः, संराधितो भगवान्येन पुंसाम्।
हृदिस्थितो यच्छतिभक्तिपूते, ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणाम्।।
(श्रीमद्भा. ३/५)

श्री भगवान कहते हैं—हे उद्धव! मैं तेरी अभिलाषा जानता है। पूर्व में विश्वसृष्टिरत वस्तुओं के महायज्ञ में तुमने मुझे पाने के लिए तुमने उत्सुक हो साधना की थी (तुम भी वस्तु थे) हे साधो! ये तुम्हारा अन्तिम जन्म है, क्योंकि तुमने मेरा परम अनुग्रह पा लिया है।

उद्धव कहते हैं—हे केशव! अनाकाङ्क्ष होकर भी कर्मरत अजन्मा होकर भी जन्मधारी कालात्मा होकर भी शत्रुभय (जरासन्धादि कालत्रयादि) से पलायन करते व सागर में दुर्ग निर्माण करते उसमें छिप जाते हो, आत्माराम होने पर भी हजारों प्रमदाओं में रमणरत रहते हो महाराज साधारण प्राणी तो क्या आपकी इस विचित्रता को देख विद्वान भी चकरा जाते है।

उद्धव जी ने भगवान कृष्ण से महाप्रयाण वेला में भावुक होकर कहा हे नाथ! आंपने जो दिव्य ज्ञान ब्रह्मा जी को दिया था वह 'अपने स्वरूप का गुह्यतम रहस्य प्रकट करने वाला ज्ञान' यदि मैं पात्र हूँ तो मुझे भी दीजिए।

उद्धव जी वदरिकाश्रम में गये और समाधि द्वारा हरि की आराधना करने लगे।

विदुर जी मैत्रेय जी से—हे सन्तप्रवर! आप हमें कल्याण कारक मार्ग का (साधन) का उपदेश करें, जिस उपासना से सन्तुष्ट भगवान भक्तों के भक्ति द्वारा पवित्र हृदयों में आ विराजते हैं और अपना दिव्यानुभव वाला शास्वत ज्ञान देते हैं।

च कर्ण नाडची पुरुषस्य यान्तः, भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति।।
भगवल्लीला-योगमायोपवृहिताः विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थाः।
(श्रीमद्भा.)

देशतः कालतोयोऽसाऽवस्यातः स्वतोऽन्यतः।
अविलुप्तावबोधात्मा, सयुज्येताजया कथम्।।

भगवानेकएवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः।
अमुष्य दुर्भगत्वं वा, क्लेशो वा कर्मभिः कुतः।।
एतस्मिन्मेमनो खिद्यते ज्ञानसंकटे। (श्रीमद्भा. ३/७)

श्रीक उवाच–

स्मयन्निव गत स्मयः।
सेयं भगवतो माया, यन्नयेनविरुध्यते।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य, कार्यण्यमुते वन्धनम्।।

यदर्थेनविनामुष्य, पुंस आत्मविपर्ययः।
प्रतीयत उपद्रन्टु, स्वशिरश्छेदनादिकः।।

भगवान की दिव्य रसभरी कथा जब श्रोता के कर्ण कुहरों से अन्दर जाती है तो संसार चक्रप्रदा गृहासक्ति जायात्मज्ञादि रति को काट डालती है।

भगवान की लीला योगमाया के द्वारा विस्तारित है। इस लीला में है क्या? विश्व की स्थिति उद्भव एवं लय है इस लीला में।

विदुर जी मैत्रेय जी से प्रश्न करते हैं—हे ब्रह्मन्! (मैत्रेय जी) जिस ज्ञान स्वरूप (अववोधात्मा) परमात्मा के ज्ञान का (देश-काल-अवस्था स्वतः या अन्यतः) किसी भी प्रकार से लोप नहीं होता वे परमात्मा इस मात्रा के साथ कैसे संयोग होता है? सर्वक्षेत्र समवस्थित (साक्षीमात्र) एक भगवान को दुर्भाग्यवश या कर्म जन्य वश क्लेशादि कैसे हो सकते हैं।

हे प्रभो! इस अज्ञान संकट से मेरा मन खिन्न हो रहा है आप मेरे मानसिक तापप्रद करमल को नष्ट करो।

शुकदेव जी कहते हैं—हे परिक्षित! ज्ञानी विदुर की बातों पर गतस्मय (निरभिमानी) मैत्रेय जी हँसते हुए बोले अरे विदुर! सर्वथाविमुक्त सर्वेश्वर का दैन्य या बन्धन यद्यपि कदापि सम्भव नहीं तथापि यही तो भगवान की माया की विशेषता है कि ये अघटन घटना पटीयसी है जो न हो सके उसे भी कर दिखावे। जैसे स्वप्नगत शिरश्छेदनादि (सपने

यथाजले चन्द्रमसः, कम्पादि स्तत्कृतो गुणः।
दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टु, रात्मनोनात्मनोगुणः।।
सवैनिवृत्तिधर्मेण, वासुदेवानुकम्पयो।
भगपङ्क्तियोगेन, तिरोधत्तेशनैरिह।।
एदेन्द्रियोपरामोऽथ, द्रष्ट्राऽत्मनिपरे हरौ।
विलीयन्तेतदाक्लेशः, संसुप्तस्ये व कृत्स्नशः।।
आत्मानमम्भः स्वसनं वियच्च, ददर्श देवो जगतोविधाता।
नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः।। (श्रीमद्भा. ३/८)

कालः

गुणव्यतिकराकारो, निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः।
पुरुषस्तदुपादान, मात्मानं लीलयाऽसृजत्।।

में कोई देख रहा है मेरा शिर काट दिया रो रहा है अपनी मृत्यु भी देख रहा है इससे अच्छी फिल्म कहा मिलेगी) सर्वथा मिथ्या होने पर भी सत्य जैसे लगते हैं, वैसे ही इस नित्य शुद्ध बुद्ध चैतन्य नित्यु मुक्त आत्मा तत्व को विना हुए भी वन्धनत्व कृशत्व अल्पज्ञत्व की प्रतीति माया जन्य अज्ञान वश ही हो रही है। कैसे प्रतीति हो रही है जैसे चन्द्र का प्रतिबिम्ब जल में है यद्यपि प्रतिविम्ब में कम्पन है नहीं तब भी जल के कम्पनादि को देखने वाले ने प्रतिविम्ब का कम्पन मान लिया। आकाशस्य चन्द्रविम्ब में कम्पन नहीं दिखता जलस्थ में दिखता है भ्रमवश, वैसे ही देहाध्यासी जीव में ही अल्पज्ञत्वादि की प्रतीति होती है परमात्मा में नहीं। परमात्मा विम्ब जीवात्मा प्रतिविम्ब है माया प्रभाव से प्रतिविम्ब में दोषादि की भ्रान्ति हो गयी है। ये मिथ्या प्रतीति निवृत्ति परायण निष्काम भाव से धर्माचरण के द्वारा वासुदेव की अनुकम्पा एवं भगवद्भक्तियोग से धीरे-धीरे मिट जायेगी।

जब ये विषयासक्त इन्द्रियाँ विषयों से उपरत हो निश्चल भाव से परमात्मा श्रीहरि में लीन हो जाती है तब जीव के सारे क्लेश वैसे ही शान्त हो जाते है जैसे गाढ निद्रा में प्राणी के दुखादि नष्ट हो जाते हैं। तब लोक रचना दत्त दृष्टि वाले ब्रह्मा जी ने नारायण के नाभि सरोवर से समुद्भूत कमल को, स्वयं को, जलराशिको, वायु को, आकाश को ही देखा इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं दिखा।

काल क्या है

विषयों का रूप परिवर्तन करना काल का कार्य है यद्यपि वह स्वयं निर्विशेष व

विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रं, संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं, कालेनाव्यक्तमूर्तिना।। (श्रीमद्भा. ३/१०)

आद्यस्तु महतः सर्गः गुण वै.... सात्मनः।



१. वन, २. सत्योषधि, ३. लता, ४. त्वक्सारा, ५. वीरूधो, ६. द्रुमाः। (श्रीमद्भा.) ४. वेणुः। ५. कूष्माण्डादर्यः। ६. आम्रादयः। (श्रीमद्भा.)

धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य, विपाकः परेष्ठ्यसौ।।
(श्रीमद्भाग. ३/१०)

आद्यन्तरहित है, फिर भी वे परमात्मा इस काल को ही निमित्त बनाकर (उपादान कल्पनया) लीला पूर्वक स्वयं सृष्टिरूप में व्यक्त होते है।

विष्णु माया से अवस्थित ब्रह्मस्वरूप जगत् ही अव्यक्त मूर्ति काल के द्वारा भगवान ने ही प्रकट किया है पृथक् रूप से (था तो जगत् पहले भी पर ब्रह्मरूप में था पर अलग करने पर जगत् अलग हो गया। पहले बरफ हिम रूप में पानी था वही पानी अब द्रवीभूत हो गया।

पहली सृष्टि महत् तत्व की है भगवद् प्रेरणा से सत्वादि गुणों में विषमता होना ही महत्सृष्टि है।

सातवीं सृष्टि छः प्रकार के स्थावरों की है, (वृक्षों की)—१. वनस्पति—विना बौर के फले गूलर वट पीपल, २. औषधि— फलपकने पर नष्ट (गेहूँ जाँचना), ३. लता—किसी के आश्रय से बढ़े—गिलोय-ब्राह्मी, ४. त्वक्सार—कठोर छाल वाले-वांसादि, ५. वीरूद्ध—पृथ्वी पर ही फैलने वाली लता खरबुजा-तरबुजा, ६. द्रुम—पहले पुष्प आयें फिर फल (आम, जामुनादि)।

अनिमित्तक धर्म (निष्काम भावनया) का सम्पादन करने पर फलस्वरूप में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मा विष्णु रूद्र ये तीनों एक परमपुरुष के ही तीन भेद है।

रूद्राक्षधारण प्रमाणम्–(२३५)

रूद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशतीद्वे, षट्षट्कर्णप्रदेशे, करयुगलकृते, द्वादशद्वादशैव। वाह्वोरिन्दोः कलाभिः, नयनयुग कृते एक एकं शिखायां, वक्षस्यष्टाधिकं यः फलयति सस्वयं नीलकण्ठः।। (पदार्था दर्शे. वोपदेव.)

विद्या दानं तपः सत्यं, धर्मस्येति पदानि च। (श्रीमद्भा. ३/१२)

इतिहास पुराणानि, पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्तेभ्यः, ससृजे सर्व दर्शन।।

आश्रमाश्च यथासंख्यं ससृजे सह वृत्तिभिः।
[1]सावित्रं [2]प्राजापत्यं च [3]ब्राह्मं चाथ [4]वृहत्तथा।। (ब्रह्मचर्यम्)

१. गायत्रीधारणार्थं त्रिदिनम्। २. एक वार्षिकम्। ३. वेदाध्ययनान्तम्।

[1]वार्ता [2]संचय [3]शालीन- [4]शिलोञ्छ इतिवैगृहे।

१. कृष्यादिवृत्तिः। २. यागादिना। ३. अयाचिता वृत्तिः।

वैशानसा[1] [2]वालखिल्यौ [3]दुभ्वरा [4]फेनयाः वने।

कितने रूद्राक्ष किस अंग में धारण करें—कण्ठ में ३२ रूद्राक्ष, मस्तक में ४० रूद्राक्ष, कानों में ६-६ रूद्राक्ष, दोनों हाथों में १२-१२ रूद्राक्ष, भुजाओं में १६-१६ रूद्राक्ष, नयनयुग में १ रूद्राक्ष, शिखा में १ रूद्राक्ष, वक्ष में १०८। इस प्रकार जो रूद्राक्ष धारण करता है वह नीलकण्ठ ही है।

तदनन्तर ब्रह्मा जी ने अपने सभी मुखों से पंचमवेद के रूप में इतिहास पुराणों का सृजन किया (सर्वेषां) श्रुति गोचर विहीनानी) दर्शनम् ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं जो वेद में अधिकारी नहीं वे इनसे कल्याण पाये। तदुपरान्त विद्या-दान-तप-सत्य ये धर्म के चार पाद एवं चार आश्रम (ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास) वृत्तियों सहित प्रकट किये।

ब्रह्मचर्याश्रम की वृत्ति—१. सावित्र—गायत्री अध्ययन के लिए त्रिदिवसीय व्रत। २. प्राजापत्य—एक वर्ष का व्रत। ३. ब्राह्म—वेदाध्ययन तक रहने वाला। ४. वृहत्—यावज्जीवन रहने वाला व्रत।

गृहस्थों की वृत्ति—१. वार्ता—कृषि आदि शास्त्र सम्मत। २. संचय—यागादि द्वारा। ३. शालीन—अयाचित (विना माँगे जो मिले)। ४. शिलोञ्छ—कटे खेत से वाली बीनकर सिला बीनकर मण्डी से पड़े अन्न द्वारा)।

वानप्रस्थों की वृत्ति—१. वैखानस—बिना जोती-बोई भूमि से उत्पन्न अन्न द्वारा। २.

१. अवपितान्नभोजिनः। २. असचयिनः। ३. फलादि भक्षिणाः। ४. स्वयं पतितफलादि भक्षिणः।

[1]आन्वीक्षिकी [2]त्रयी [3]वार्ता [4]दण्डनीति स्तथैव च। (श्रीमद्भा. ३/१२)

१. मोक्षदात्मविद्या। २. स्वर्गदाकर्मविद्या। ३. जीविका। ४. राजनीति।

स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः, स्वरो देह उदाहृतः।
ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुः, अन्तस्थं वलमात्मनः।।
स्वराः सप्तविहारेण, भवन्तिस्म प्रजापतेः।
शब्द ब्रह्मात्मनस्तस्य, व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः।
ब्रह्मावभातिविततो, नानाशक्तमुद वृंहितः।। (श्रीमद्भा.)
ततोऽपरामुपादाय, स सर्गाय मनोदधे।
व्यस्य रूपमभूद्द्वेधा, यत्कायममिचक्षते।।

बालखिल्य—नया मिलने पर पुराना अन्न दान करने वाले। ३. औदुम्बर—प्रातः उठने वाली दिशा के फलादि लाकर। ४. फेनप—स्वतः झड़े हुए फल खाकर रहने वाले (विना तोड़े)।

संन्यासियों की वृत्ति—१. कुटीचक—कुटी बनाकर रहने वाले। २. बहूदक—कर्म की अपेक्षा ज्ञान को महत्व देने वाले। ३. हंस—ज्ञानाभ्यासी। ४. परमहंस—ज्ञानी जीवन मुक्त। (संस्कृत नहीं लिखी गयी है)।

१. आन्वीक्षिकी, २. त्रयी, ३. वार्ता और ४. दण्डनीति—ये भी ब्रह्म से प्रकट हुए। १. आन्वीक्षिकी—मोक्ष दात्री आत्मविद्या, २. त्रयी—स्वर्ग प्रदात्री कर्म, ३. वार्ता—कृषि आदि से जीविका विद्या, ४. दण्डनीति—राजनीति।

कादिमकारान्त स्पर्शसंज्ञक २५ वर्णों उनका जीव व अकारादि स्वर १ वर्ण उनके देह से, उनकी इन्द्रियाँ उष्मवर्ण (शषसह) इनका बल अन्तस्थवर्ण (यत्लन) कहे गये।

ब्रह्मा के विहार से सात संगीत स्वर (निषाद-ऋषभ-गान्धार-षडज-मध्यम-वैवत-पंचम) हुए। ब्रह्मा शब्द ब्रह्म है वे ही व्यक्त (वैखरी) अव्यक्त (प्रणव) वाणी रूप है। परब्रह्म ही नानाशक्तिरूप (इन्द्रवरुणादि में विस्तृत होकर भास रहा है।

तदनन्तर पूर्वदेह त्यागकर ऊपर शरीर लिया और सृष्टि सृजन का मन बनाया। तभी ब्रह्मा के शरीर से दो शरीर उत्पन्न हो गये। (कस्य (ब्रह्मा के) क से पैदा होने के कारण

ताभ्यां रूपविभागाभ्यां, मिथुनं समपद्यत।
यस्तु तत्र प्रमान्सोभूत् मनुः स्वायंभुवः स्वराट्।।
स्त्रीया सच्छितरूपाख्या, महिष्य स्यमहात्मनः।
सचापिशतरूपायां पंचापत्यानिजीजनत्।।
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्चभारत?।
आकूतिर्देवहूतिः प्रसूतिरिति सत्तम?।।
(रूचये कर्दमाय दशाय) यत आपूरितं जगत्।

वाराहः

यज्ञभाव! चयी तनुः। अध्वरात्मकः, छन्दांसि-त्वचि। वर्हितोमस्त्र, आज्यं दृशि। अंघ्रिषु-चातुहोत्रम्-(उद्गाता होती अध्वर्युः ब्रह्मा) स्रुक्-तुण्डः, सुवा-नासयोः, इडा-(वडीयभक्षणपात्रम्) उदरे, चमसः-कर्णरन्ध्रे, प्राशित्रं (ब्रह्मभागप्तत्रम्) आस्ये, ग्रसने ग्रहाः (सोमपात्राणि) चर्बणं-अग्निहोत्रम्। दीक्षा-अनुजन्म, उपसदः-शिरोधरं (इष्टित्रयम्) प्रायणीमेष्टिः (दीक्षान्तेष्टि) उदयनीवेष्टिः (यज्ञान्तेष्टिः) दष्ट्रे, जिह्वा-प्रवर्ग्यः (उपसदपूर्व महावीर कर्म) शिरः-सभ्यः (होमरहित्योग्निः) आवसथ्यं-(औपासनाग्निः) चितयो-असवः सोमः रेतः, सवनानि अवस्थितिः, संस्थाः-(अग्निष्टोमः अत्यग्निष्टोम-उक्थषोडशी,

---

ही काय काया कहते हैं)। वेदों ने रूप विभाग मिथुन रूप स्त्रीपुरुष रूप में हुए। पुरुष स्वायंभु स्वराह मनु हुए। इन महात्मा मनु की पत्नी रूप में वह स्त्री शतरूपा नाम से विख्यात हुई। महाराज मनु ने शतरूपा से पाँच सन्तानें प्राप्त की प्रियव्रत उत्तानपाद दो पुत्र तथा आकूति, देहहूति व प्रसूति तीन कन्यायें। आकूति का विवाह प्रजापति रूचि से, देवहूति का महात्मा कर्दम से प्रसूति का दक्ष से इनकी सन्तानों से पूरा जगत भर गया।

वराह भगवान के शरीरांगों में यज्ञभावना—शरीर वेदत्रयी है! देह अश्वरात्मक है, रोम कूप में यज्ञ है, त्वचा में सभी छन्द हैं, रोमों में कुशा है, नेत्रों में घी है, चारों पैरों में चातुर्होत्र है। (होता-अध्वर्यु, उद्गाता-ब्रह्मा) मुखाग्रथुथनी में सुक्र है, नासाछिद्रों में स्रुवा है, उदर में इडा है, (यज्ञीय भक्षणपात्र) कानों में चमस है, मुख में प्राशित्र है (ब्रह्मपात्र) कण्ठ में ग्रह (सोमपात्र) है, चर्वण ही अग्निहोत्र है, पुनरवतरण दीक्षा है, शिरोधर गर्दन में उपसद है (तीन इष्टियाँ) दोनों दाढ़ें प्रायणीय दृष्टि है (ये दीक्षा के उपरान्त होती है) और उदयनीय इष्टि है (यज्ञोपरान्तेष्टि) जिह्वा प्रवर्ग्य है (प्रति उपसद पूर्व कृत महावीर कर्म) शिर-सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य है (औपासनाग्नि) प्राण चिति है (इष्ट का चयन)

बाजषेय अतिरात्र आप्तो यामाः) धातवः, सत्राणि-शरीर सन्धिः, त्वं सर्वज्ञः (सोमरहियागः)।

ऋतुः-(सोम सहितोयागः)। इष्ठिः-(यज्ञानुष्ठानम्) बन्धनः (मांसपेश्यः)। (श्रीमद्भा. ३/१३)

नविस्मयोऽसौत्वयि विश्वविस्मये,
यो माययेदं सृजतेऽतिविस्मयम्।
(श्रीमद्भा.)

(यति दण्डेश्वर्यवि.)

	स्थूलक्रमः	सूक्ष्मक्रमः
स.	कुब्जिका	सत्ता
आज्ञा	१०,३ नव रत्ना	
विशु.	१०,४ महात्रिपुरसु.	सर्वसाक्षिचैतन्यसत्ता
अन.	१०,६ वगला	स्वयंभूलिङ्गसत्ता
मणि.	१०,१ कालरात्रिः	वाणलि.स.
स्वा.	१०,५ जयदुर्गा	इतरलि.स.
मू.	१०,२ छिन्नमस्ता	कुलकुण्डलिनीस.

वीर्य-सोम है। बैठना ही प्रातसवनादि तीन सवन है, सात धातुयें ही सात संस्था हैं, (अग्निष्होम, अत्यग्निष्होम, उक्थ, षोडसी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम) शरीर संधिया ही सत्र है। आप स्वयं सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहितयाग) और क्रतु हैं (सोमसहित याग) देह वन्धन हेतु मांसपेशियाँ ही इष्टियाँ हैं। (यज्ञानुष्ठान रूप)

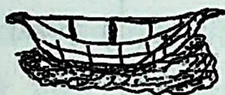
क्रतु—सोम सहित याग को क्रतु कहते हैं। इष्टि—यज्ञानुष्ठान रूप देहवन्धनभूत मांस पेशियाँ।

हे प्रभो! आप इस विचित्र शूकर वेष में आये तो क्या आश्चर्य आप तो समस्त आश्चर्यों के जनक हे विश्व से बड़ा आश्चर्य और कहाँ—जो कि माया द्वारा सृजित ये स्वयं अत्यन्त विस्मय कारण है।

सहस्रार—कुविजका देवी, आज्ञाचक्र में—नवरत्ना, विशुद्ध चक्र में—महात्रिपुरसुन्दरी सर्वसाक्षी चैतन्य सत्ता, अनाहत में—वगला स्वयंभू लिङ्ग सत्ता, मणिपुर—कालरात्रि वाणलिङ्ग सत्ता, स्वाधिष्ठान में—जयदुर्गा इतरलिङ्ग सत्ता, मूलाधार में—छिन्नमस्ता कुलकुण्डलिनी सत्ता।

गृहाश्रम

सर्वाश्रमानुपादाय, स्वाश्रमेण कलत्रवान्।
व्यसमार्तव मत्येति, जलयानैर्यथार्णवम्।। (श्रीमद्भा. ३/१४)



नारी

यस्यां स्वधुरमध्यस्य, कुर्माश्चरातेविज्वरः।
आमाहुरात्मनो ह्यर्धं, श्रेयस्कामस्य मानिनि।।

यामाश्रित्येन्द्रियारात्री, दुर्जयानितराश्रमैः।।
वयं जयेम हेलामि, र्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा।। (श्रीमद्भा.)

शिवः

हसन्तिपरस्या शिवः चरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्स्तेस्याविदुषसमीहितम्। वैर्वस्त्रमराल्याभरणोपलयजैः, स्वभोजदं स्वात्मत योललितम्।।

ब्रह्मादयो यत्कृत सेतुपाला, मत्कारणं विश्व मिदं च माया। आज्ञाकरी तस्य पिशाच चर्या, अहोविभूम्नरचस्तिं विडम्बनम्।।

गृहस्थाश्रम श्रेष्ठाश्रम

कश्यप जी दिति से कहते हैं—गृहस्थाश्रमी व्यक्ति सपत्नीक अपने आश्रम के द्वारा सभी आश्रमों सहित व्यसन रूपी दुस्तर सागर से वैसे ही पार हो जाता है जैसे जलयान द्वारा सागर पार किया जाता है। जिसमें अपने धुर को (भार को) स्थापित करके पुरुष निश्चिन्त हो जाता है जिसे अपना ही आधा अंग कहते हैं, कल्याण कर्मों की सहभागिनी वह नारी है। जिसके सहारे से अन्याश्रमिकों द्वारा दुर्जय इन्द्रियों को भी हेला पूर्वक (उपेक्षा पूर्वक) कह देता है पुरुष कि हम जीतेंगे, ठीक वैसे ही जैसे दुर्गपति डकैतों को जीत लेता है।

शिव

जो अविवेकी ही इस नाशवान कुत्तों गीधों के भोजन रूप नर शरीर को आत्मा मानकर वस्त्रों से मालाओं से आभरणों चन्दन इत्रादि से सजाते रहते हैं, वे अभात्रे प्राणी ही आत्माराम सदाशिव के चरित्र की विचित्र, किन्तु पवित्र दशा को देखकर शिव की हँसी बनते हैं।

ब्रह्मादि देवता भी उनके द्वारा संस्थापित मर्यादा का पालन करते हैं, वे ही इस विश्व

नमोरूद्राय महते देवायोग्राम मीढुषे।
शिवायन्यस्तदाडाय, धृत दण्डाय मन्यवे।। (श्रीमद्भा.)

शरीरम्

अस्थि-चर्म-स्नायु-मज्जा-भांस-शुक्र-शोणित-श्लेष्माऽभु-विणू-मूत्र-वात-पित्त-संघातम् सारम्। काम-क्रोध-लोभ-मय-विषादे-षेष्ठी-ष्टवियोगा-निष्टसंयोग-क्षुत्-पिपासा-जरा-मृत्यु-रोग-शोक-मिहतम्। (मैत्रायण्युपनिषत्)

आत्मा

प्राण प्रेरयिता, तमः प्रणुदति। परज्योतिरूपसयन्नः, स्वेनरूपेणाभिनिष्पन्नः। पुरुषः, क्षेत्रज्ञः। चेतयिता। पंचधाऽत्मनं विभज्य गुह्यायां निहितः। मनोमयः, प्राणशरीरः, भररूपः, सत्यसंकल्पः, आकात्मा।

महिमा

स्वानिभित्वोदितः, पंचरश्मिभिर्विषयानत्ति। बुद्धीन्द्रियाणि। श्यमः। कर्मेन्द्रियाणि हयाः। रथः शरीरम्। मनोनियन्ता। प्रकृतिमयः प्रसोदः प्रचोदयितास्य।

के अधिष्ठान हैं तथा माया भी उनकी ही आज्ञा का पालन करती है, फिर भी प्रेतों जैसे जीवन जीते हैं अहो! इन सर्वव्यापक ईश्वर की लीला विचित्र है।

दिति ने शिव वन्दन किया—मैं महादेव महारूद्र को नमन करती हूँ जो सज्जनों के लिए उन सौम्य है दण्डरहित है तथा दुर्जनों के लिए क्रोधमूर्ति दण्डधारी है।

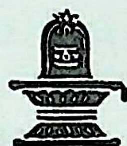
शरीर क्या है

इसमें अस्थिर्या त्वचा नाडीतन्त्र, मज्जा-मांस (क्षेत्र) वीर्य, रक्त, कफ-अशु-मल-मूत्र-वात-पित्त-कफादि का ये संघात है असार है इसमें तत्व नहीं है। ऊपर से काम-क्रोध-लोभ-मोह-भय-विसाद ईर्ष्या-इष्ट वियोग (प्रिय विरह) मिलन (अप्रियसयोग) भूख-प्यास-बुढ़ापा-मृत्यु-रोग-शोकादि द्वारा नष्ट किया जा रहा है।

आत्मा क्या है क्षेत्रज्ञ

प्राण का प्रेरक, तमनाशक, परं ज्योतिरूप, स्वरूप से ही निष्पन्न, पुरुष-क्षेत्रज्ञ-चेतयिता ये आत्मा स्वयं को पाँच प्रकार से विभक्त कर गुहा में स्थित है (मनोमय कोश, प्राणमय, अन्नमय विज्ञानमय, आनन्दमय।

ये इन्द्रियों का भेदनकर उदित हुआ है पाँच रश्मियाँ द्वारा विषय सेवन करता है,



सितासितैः कर्मफलैरनभिभूतः, अन्व्यक्त सौक्ष्म्यादृश्याग्राह्य-निर्ममत्वादिभिः। शुद्धः स्थिरौऽलेपः। प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः। ऋतभुग् गुणामयेन। रनात्मानमन्तर्धायावस्थितः। (मैत्रायण्युप.२)

नातपस्कस्यात्मज्ञानेऽधिगमः कर्मसिद्धिर्वा।
तपसा प्राप्यते सत्त्वं, सत्त्वात्सं प्राप्यते मनः।
मनसः प्राप्यते ह्यात्मा, पमाप्त्वा न निवर्तते।। (मैत्रायण्युप. ३)

१. अस्ति ब्रह्मेति ब्रह्मविद्या, २. तपसाऽपहत पाप्मा, ३. यः सुयुक्तोऽजस्त्रं चिन्तयति। (मैत्रायण्युप.)

विद्यया तपसा चिन्तया चोपलभतेब्रह्म।।

सब्रह्मणः पर एता भवत्यधिदैवत्त्वं देवेभ्यश्चेत्यक्षयमपरिमितमनामयम् सुखमश्नुते च य एवं विद्वान् नेन त्रिकेण ब्रह्मोपास्ते।

अग्निरादित्यः कालोयः प्राणेऽन्नं ब्रह्म रूद्रोविष्णुः। ब्रह्मणे वैता अग्र्या स्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य। या वास्याभिध्यायेत् अर्यचेत् निह्नुयात्ताभिः सहैवोपर्य्युपरिलोकेषु चरति अथकृतन्नक्षय एकत्वमेति पुरूषस्य। ब्रह्मखल्विदं सर्वम्। (मैत्राय.)

ज्ञानेन्द्रियाँ ही रश्मियाँ हैं। कर्मेन्द्रियाँ ही घोड़े हैं, शरीर रथ है, मन नियन्ता है, प्रकृतिमय ही प्रतोद-चावुक कोड़ा है इसका प्रेरक है।

अच्छे-बुरे कर्मों के फल से अप्रभावित अव्यक्त-सूक्ष्म-अदृश्य-अग्राह्य निर्ममत्वादि से शुद्ध है स्थिर है अलेप है, प्रेक्षक के समान अवस्थित है स्वस्थ है ऋत्भुक है गुणमय पट् के द्वारा स्वयं को छिपाकर स्थित है।

जिसने तप नहीं किया उसे न तो आत्मज्ञान होगा न कर्मसिद्धि ही होगी तप से ही सत्व प्राप्त होता है सत्व से मन की प्राप्ति होती है। मन द्वारा आत्म प्राप्ति होती है जिसे पाकर फिर लौटना नहीं पड़ता।

ब्रह्म है यही विश्वास ब्रह्मविद्या है, तप द्वारा जिसके पाप नष्ट हो गये हैं। जो जीवात्म परमात्मैक्य का निरन्तर चिन्तन करता है उसे ब्रह्म मिलता है।

विद्या द्वारा, तप द्वारा, चिन्तन द्वारा ब्रह्मोपलब्धि होती है, विद्वान् इसी त्रिक द्वारा ब्रह्म को पाता है।

प्रश्न किया हे भगवन् कोई अग्नि वायु विष्णु काल सूर्य की भिन्न भिन्न पूजा करते हैं इनमें सर्वश्रेष्ठ किसकी उपासना है ऋषि ने कहा राजन्! ये जो अग्नि-सूर्य-काल-प्राण-अन्न-

यथेयं कौत्सायनी स्तुतिः।

त्वं ब्रह्मत्वं च वै विष्णुः, त्वं रूद्रस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निर्वरुणो वायुः, त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः।।

त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं, पृथिवी त्वंविश्वं त्वमथा च्युतः।
स्वार्थे स्वाभाविकोऽर्थे च, बहुधा संस्थितिस्त्वयि।।

विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं, विश्वात्माविश्वकर्म कृत।
विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं, विश्वक्रीडारतिः प्रभुः।।

नमः शान्तात्मन तुभ्यं, नमो गुह्यतमाय च।
अचिन्त्यायाप्रमेयाय, अनादि निधनाय च।। (मैत्राय.-५)

तमो वा इदमग्र आसीदेकं तत्परे स्यात्।
तत्परेणीरितं विषत्वं प्रयात्येतद्रूपं वै रजसः।
रजः खल्बीरितं तं विषत्त्वं प्रयात्येतद्वैरूपं सत्त्वस्य।।

तत्सत्त्वमेवीरितं रसः संप्रास्रवत्, सोऽशोयं यश्चेता मात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः, संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिः।

ब्रह्म-रूद्र-विष्णु ये सब ब्रह्म के ही स्वरूप हैं। उस परमामृत अशरीरी द्वारा जो जिसमें अनुषक्त है उसको उसी रूप से मोद प्रदान किया जाता है। जो जिस तनु की पूजा करता ध्यान करता है वह उसी के साथ उर्ध्व-उर्ध्व लोकों में रमण करता है (सूर्योपासक सूर्यलोक अग्निउपासक अग्निलोक) किन्तु सबका क्षय होता एक में ही हैं। ब्रह्म में ही ये सब ब्रह्म ही है।

जैसा कि दृष्टव्य है कौत्सायनी स्तुति—मैत्रायणि उपनिषत पंचम प्रपाठके तुम ब्रह्मा, तुम विष्णु, तुमरूद्र, तुम प्रजापति, तुम अग्नि वरुण, वायु, इन्द्र, निशाकर (चन्द्र), तुम अन्न हो, यह हो, पृथिवी, विश्व, अच्युत भी तुम हो स्वार्थ (स्वाभाविक अर्थ) में आपकी बहुत्प्रकार से स्थिति है—हे विश्वात्मा विश्व कर्म कर्ता, हे विश्वभोक्ता, विश्वजीवन, हे विश्वक्रीडारति प्रभु, हे शान्तात्मन्, हे गुह्यतम, हे अचिन्त्य-अप्रमेय-अनादि निधन विश्वेश्वर आपको नमन है।

सृष्टि से पूर्व सर्वदिक् वर्ती अन्धकार (तमस) ही था तदनन्तर तत्परवर्ती शक्ति से विषयत्व युक्त रज के विषम होने से सत्व का उदय किया परि.... जो सत्व है वही रस है वह अंश चैतन्यमात्र प्रतिपुरुष क्षेत्रज्ञ है। सङ्कल्प (मन), अध्यवसाय (बुद्धि), अभिमान (अहं) ज्ञापक प्रजापति ही है।

वेदः (श्रीसनातनधर्मातो. ८)

१ मन्त्रभागः–ऋग्, यजुः, साम, अथर्वणः। २. ब्राह्मणभागः–उपनिषद्, आरण्यकम्।

शाखाः ११३१ संहिताः–ब्राह्मणः, उपनिषदः, आरण्यकानि।

प्रयोगार्थं–श्रौत सूत्रम्, गृह्य सूत्रम्, धर्म सूत्रम्–कल्पम्।

अक्षर समाम्नायः-अक्षरवेदः। ऋषिस्तुवेदे-वैजयन्तीकोषः। अधीयते-इत्यध्यायो वेदः।

वर्तमानात्ऋग्वेद सं. शाकल्य संहिता।

वेदाधिकारः

यथेमां वाचं कल्याणी मवदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।
(यजु. २६/२)

धर्मश्चार्यश्चकामश्च, त्रितयं जीविते फलम्।
एतत्त्रय मवाप्तव्यं अधर्म परिवर्जितम्।। (महाभार. अनु. ११)

वेद

१. मन्त्र भाग—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। २. ब्राह्मण भाग—उपनिषद्, आरण्यक।

महाभाष्यानुसार वेद शाखायें ११३१ है, संहितायें हैं।

कर्मकाण्डादि प्रयोगार्थ भी—श्रौत्रसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्रादि है।

अक्षर सयाम्नाय: अक्षर = वेद ऋषि = वेद—जिसका अध्ययन् किया जाये वह है अध्याय = वेद।

ऋग्वेद की वर्तमान में उपलब्ध संहिता शाकल्य है।

जिस प्रकार मैं इस कल्याणमयी वाणी का उच्चारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि स्वभक्तों का कल्याणेच्छु हूँ मैं दक्षिणादान करते हुए देवों का प्रिय होऊ। मेरा मनोरथ अभिवृद्ध हो वैसे ही सब मेरे प्रति नम्रता का भाव आत्मसमर्पण का भाव करें।

जीवन का फल—जीवन का फल है, अधर्म परिवर्जित धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का संग्रह किया जाये।

निर्विकारः सदैवात्मा स्त्रीत्वं पुस्त्वं नचात्मनि।
कर्मप्रकारेण तथा जात्यां जात्यां प्रजायते।। (महाभार. अनु. १५५)

नृदुत्वं च तनुत्वं च विक्लवत्वं तथैव च स्त्रीगुण ऋषिभि प्रोक्ताः।
व्यायामे व्यर्थशत्वं च वीर्यत्वं च पुरुषे गुणः। (महाभार. अनु. १२)

नास्ति मोक्षात्परं देवि? (शिवः-उमायै) सुखमात्यंतिकं श्रेष्ठ-मनिवृत्तं च तद्विदुः।
(महाभार. अनु. ४५)

ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं मोक्ष ज्ञानं विदुर्बुधाः।
दुःखादिश्च दुरन्तश्च संसारोऽयं प्रकीर्तितः।।
(महाभा. अनुश. १४५)

लोभाद्धिजायते तृष्णा, ततश्चिन्ता प्रवर्तते।
स लिप्स मानो लभते, भूयष्ठ राजसरन्गुणन्।।
तदवाप्तौ तुलभते, भूपष्ठं तामसान्गुणान्।।

आत्मा सदा निर्विकार है इस आत्मा में स्त्रीत्व पुंस्त्वभाव नहीं है। कर्म परम्परावश ये भिन्न जातियों शरीरों में जन्म ले लेता है।

स्त्री में स्वाभाविकगुण—मृदुता, तनुता, विकलता—ये स्त्रियों में स्वभावतः रहते हैं ये भावना प्रधान हृदयप्रधान सृष्टि है परमात्मा की .... ऋषि कहते हैं—

पुरुष में स्वभाविक गुण—व्यायाम् में दक्षता-कर्कशता (कठोरता), वीरता ये पुरुष के गुण है।

भगवान शिव माँ पार्वती से कहते हैं—हे देवि! मोक्ष से वढ़कर कुछ नहीं है मुक्तिजन्या नन्द आत्यन्तिक सुख है श्रेष्ठ है कभी समाप्त नहीं होने वाला है ऐसा विद्वान् कहते हैं।

ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान है मोक्ष ज्ञान विद्वानों की दृष्टि में। ये संसार तो दुःखमूलक है दुरन्त है।

लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है तदनन्तर चिन्ता खाने लगती है, वह लोभाभिभूत लिप्सु विविध राजसी गुणों से घिर जाता है (शान्ति नष्ट होने तक) कामनाओं की पूर्ति में बाधा पहुँचने पर तमोगुणी वृत्ति के वर्धक तामसी भोगों में भटक जाता है। (लोभः यदि चेत् तो अन्य दुर्गुण की जरूरत नहीं)।

तस्मादेतं सम्यगवेक्ष्य लोभं,
निगृह्यधृत्यात्मनि राज्यमिच्छेत्।
एतद्राज्यं नान्यदस्तीहराज्यम्
आत्मैव राजाविदितोयथावत्।। (महाभा. आश्वमे.-३२)

एकः पन्था ब्राह्मणानां येन गच्छन्ति तद्विदः।
वत्हेषुवनवासेषु, गुरुवासेषु भिक्षुषु।।
लिङ्गैर्वहुभिरव्यग्रै, रेका बुद्धिरूपास्यते।। (आश्वमे. ३३)
नानालिङ्गाश्रमस्थानां एशां बुद्धि शमात्मिका।
ते भावमेक मायान्ति, सरितः सागरं यथा।।
अयाचितं यथालाभं, भोजनाच्छादनं भवेत्।
परेच्छयाचदिग्वासाः, स्नानं कुर्यात्परेच्छया।। (नारदपदिब्रा. ३)

इसीलिए इस लोभ को ठीक प्रकार से देख लो समझ लो धैर्य द्वारा इस लोभ का शमन कर आत्मराज्य को चाहे, क्योंकि इस राज्य जैसा अन्य राज्य है नहीं संसारभर में। यहाँ स्वयं ही राजा है स्वयं ही प्रजा है अथवा इस आत्म राज्य का राजा आत्मा है मन आदि नहीं। ये प्रवृत्तिपरक मनोराज्य नहीं निवृत्ति परक आत्मराज्य है—मनोराज्य दुःखमूलक, आत्मराज्य आनन्द मूलक हैं।

ब्राह्मणों के लिए एक ही मार्ग है उस मार्ग के द्वारा ही तद्वेत्ता गमन करते हैं, ब्राह्मण चाहे गृहस्थ हो या वानप्रस्थ हो या विद्याध्ययनरत् ब्रह्मचारी हो अथवा भिक्षुक तुरीयाश्रमी संन्यासी हो, बहुत से लिङ्गों (चिन्हों) परिज्ञापकों के द्वारा अण्यग्र भाव एक बुद्धि का (एके परमेश्वरे एव बुद्धि इति एक बुद्धि) ब्रह्ममयी बुद्धि का आश्रय ले।

विविध लिङ्गाश्रमस्या की बुद्धि शमात्मिका हो जाती है, वे शनैः शनैः एक भाव में लीन हो जाते है जैसे सभी नदियाँ सागर में लीन हो जाती है।

विना याचना किये जो भी प्राप्त हो जाये उसी भोजन वस्त्र आवास से निर्वाह की वृत्ति होनी चाहिए। परेच्छा से ही वस्त्रादि स्वीकारे स्नानादि करे अन्यथा दिगम्बर ही रहे अथवा यथास्थिति आनन्द निमग्न रहे।

ज्ञानभूमिकाः

शास्त्रसज्ञन सम्पर्कः वैराग्याभ्या रूपिणी।
प्रथमाभूमिकैषोक्ता, मुमुक्षुत्वप्रदायिनी।। (जाग्रत्)

विचारणा द्वितीयास्यात् तृतीया सांगभावना।
विलापिनी चतुर्थीस्या; द्वासना विलपात्मिका। (स्वप्नः)

शुद्धसंविन्मयानन्द-रूपा भवति पञ्चमी।
अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो, जीवन्मुक्तोऽत्रतिष्ठति।। (सुषुप्ता)

असंवेदनरूपा च, षष्ठीभवति भूमिका।
आनन्दै कथनाकारा, सुषुप्त सदृशो स्थितिः।।

तुर्यावस्योपशान्तासा, मुक्तिरेवहि केवला।
समता स्वच्छता सौम्या, सप्तमी भूमिका भवेत्।।

तुर्यातीतातुयावस्था, परानिर्वाणरूपिणी।
सप्तमीसापराप्रौढा, विषयोनैव जीवताम्।। (अन्नपूर्णोय.)

ज्ञान भूमिका

सत्शास्त्रों व सज्जनों के सम्पर्क से वैदाग्य एवं अभ्यास रूपिणी मुमुक्षुत्व प्रदान करने वाली ये प्रथमा भूमिका है इसी को यथार्थ में (जाग्रत) कहते हैं।

द्वितीया भूमिका विचारणा है, तीसरी सांगभावना है, विलापिकी चौथी है, वासना का विलय कराने वाली स्वप्नावस्था।

पाँचवी शुद्ध संविन् ज्ञानानन्द रूपा होती है। इसमें अर्धसुख प्रवुद्ध वत् जीवनमुक्त इस अवस्था में रहते हैं (सुषुप्ति है)।

असंवेदनरूपा षष्ठी भूमिका है आनन्दमात्रैकरूपा सुषुप्ति की सी स्थिति) ये (तुरीयावस्था है)।

तुरीयावस्था की जो उपशान्तावस्था है मुक्तिरूपा ही है। इसमें समता स्वच्छता-सौम्यता-सातवीं भूमिका में प्राप्त होती हैं।

तुरीयातीत जो अवस्था है वो परनिर्वाणरूपा होती है सप्तमी अवस्था ही वहाँ श्रेष्ठ होकर प्रौढ़ होकर विलसित होती है वह साधारण प्राणियों का विषय नहीं है।

अन्तः प्रत्यहृतिवशाच्चैत्यं चेन्नविभावितम्।
मुक्त एव न सन्देहो, महासमतया तथा।।
अहं मत्याविरहितः शुद्धोवुद्धोजरोऽमरः।।
स्फटिकः प्रतिबिम्बेन, यथा नायाति रञ्जनम्।
तज्ज्ञः कर्मफलेनान्तः, तथा नायादि रञ्जनम्।।
विहरञ्जनतावृन्दे, देवकीर्तनपूजनैः।
खेदह्लदौ न जानाति, प्रतिबिम्बगतैरिव।। (अन्नयू. ३)
एतावदेवाविधात्वं, नेदं ब्रह्मेति निश्चयः।
एष एव क्षयस्तस्याः, ब्रह्मेदमिति निश्चयः।।
प्राणः स्पन्द शक्तिः अपान स्तथा।
प्राणः सूर्योऽग्निरथवा पचत्यतरितं वपुः।।

उस महासमता के कारण निस्सन्देह वह मुक्त ही होता है अन्तवर्ती वृत्ति व शान्त चित्त सृजित प्रपञ्च तो भासित होता नहीं।

मैं पन की मति से रहित शुद्ध बुद्ध अजर अमर मुक्त ब्रह्म ही शेष रहता है।

ज्ञानी की अवस्था

जैसे स्फटिक प्रतिविम्ब द्वारा रंगीन नहीं होता (रंग नहीं बदलता), उसी प्रकार तत्वज्ञ का अन्तःकरण कर्मफल से अनुरक्त (आसक्त) नहीं होता।

जनसमूह में विचरण विहरण करता हुआ भी योगी देवकीर्तन पूजन आदि विविध उपचारों से खेद या आल्हाद को प्राप्त नहीं होता। पूजा हुई तो आल्हाद नहीं हुई तो खेद नहीं, जैसे प्रतिविम्बगत चित्रादि से दृष्टा सम्बद्ध नहीं होता ठीक वैसे ही ये भी तो प्रतिविम्ब ही है।

अविद्या क्या है?

ये निश्चय होना ही अविद्या है कि ये ब्रह्म नहीं है और ये निश्चय होना ही इस अविद्या का नाश है कि ये सब कुछ ब्रह्म ही है।

प्राण स्पन्द शक्ति तथा अपान प्राण सूर्य अथवा अग्नि ये अन्तरित वपु को पचाते हैं।

अपानश्चन्द्रमा देहमाप्याययति।

प्राणक्षय समीपस्थ, मपानोदय कोटिगम्।

अपान प्राण्योरैक्यं, चिदात्मानं समाश्रय।। (अन्न-३०)

एतस्यबाहुवीर्येण, लंका सीता च लक्ष्मणः।

प्राप्तामया जयश्चैव, राज्यं मित्राणि बान्धवाः।।

(रामः) (वाल्मी.रा. ३/३५)

तत्सूत्रं–येन सर्वाणि भूतानि संहब्धानि।

वायुर्वै, तत्सूत्रं, वायुना वै सर्वाणि भूतानि संहब्धानि।

अन्तर्यामी यौ वै सर्वाणि भूतानि यमयति अन्तरः।।

१. पृथिवीम्, २. अप्सु, ३. अग्नौ, ४. वायौ, ५. अन्तरिक्षे, ६. दिवि, ७. आदित्ये, ८. दिक्षु, ९. चन्द्रतीरके, १०. काकाशे, ११. तमसि, १२. सर्वभूतेषु, १३. प्रासे, १४. वाचि, १५. चक्षुषि, १६. श्रोत्रे, १७. मनसि, १८. त्वचि, १९. विज्ञाने, २०. रेतसि।

चन्द्रमा अपान है देह को आप्लवित करता है। अपान एवं प्राण की एकता ही चिदात्मा का समाश्रय है। अपान के अस्त होते ही प्राण क्षण भर भी नहीं रह सकता।

श्रीराम कहते हैं—इन हनुमान जी के बाहुबल के बल पर ही लंका को जीता लक्ष्मण व सीता को सुरक्षित पाया विजय पायी, राज्य मित्र व बान्धव भी पा लिये।

प्रश्न—वह सूत्र कौन सा है जिससे सभी भूत सम्बद्ध है, संग्रहित है?

उत्तर—वायु ही वह सूत्र है वायु द्वारा ही सभी भूत सम्बद्ध है, संदृन्ध (संग्रहित)—ये प्रश्न उद्दालक आरुणि ने पूछा है याज्ञवल्क्य जी से—अन्तर्यामी कौन है?

जो सभी भूतों परशासन करें **अन्तरं याती हति अन्तर्यामि** पृथ्वी में अन्दर धारणाशक्तिरूप से रहकर पृथिवी का नियमन करने वाला अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा है जिसे पृथ्वी भी नहीं जानती (पृथिवीं न वेद यं) जो जल में रहकर जल का नियमन कर्ता है अग्नि में प्रविष्ट होकर, वायु में रहकर, अन्तरिक्ष में रहकर, द्युलोक में रहने वाला, सूर्यवर्ती, दिग्वर्ती, चन्द्र नक्षत्रवर्ती, आकाशवर्ती, अन्धकारवर्ती, सर्वभूतवर्ती, प्राणवर्ती, वाणी में वाक्शक्तिरूप से बसने वाला, नेत्रवर्ती, श्रोत्रवर्ती, मन में रहने वाले, त्वचा में रहने वाला, विज्ञानवर्ती, वीर्य (रेत) में रहने वाला वह अन्तर्यामी है, इन सब के साथ ये संयोग कर लें कि इन सभी तत्वों पदार्थों में वह अन्तर्यामी आत्मतत्व इसके रूपों में ही बसता है, ये अंग ही उसके शरीर

एषत आत्मान्तर्याम्यमृतः अदृष्टो दृष्टा. अश्रुतः श्रोता, अमतो मन्ता, अविज्ञातोविज्ञाता, नान्योऽतोस्ति द्रष्टा, श्रोता विज्ञाता, मन्ता अतोऽन्यदार्तम्।।

(बृहदार. ३,३/२८ अध्या/ब्राह्मण)

क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं सकल ह्रीं

श्वविड्वराहोष्ट्र खरैः, संस्तुतः पुरुषः पशुः।

न यत्कर्णपथापेतो, जातुनाम गदाग्रजः।। (श्रीमद्भा. २/३/१९)

अवज्ञास्पदत्वात् श्वभिः। कश्मलविषयासक्तत्वाद्-विड्वराहैः, कंरकवद् दुःखद विषयासक्तत्वा दुष्ट्रैः, भारवाहित्वा-तवंरैः संस्तुतः तुल्यः। (श्रीध.टी.)

महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवाये।

महत्सेवां द्वारमाहु र्विमुक्तेः।

है। ये विज्ञानादि मनादि इसको नहीं जानते वह अमृत स्वरूप ही तुम्हारा आत्मा है, जो सर्वगत सर्वरूप होकर सर्वशासक सर्व नियामक है।

यह तुम्हारा अन्तर्यामी अमृत तत्व आत्मा है, जो दिखता नहीं, किन्तु सबको देखता है, सुनायी नहीं देता, किन्तु सुनता है (अश्रुतः श्रोता) मन द्वारा मननीय (मनन का विषय नहीं) शक्य नहीं किन्तु मनन करने वाला। साधारणतया ज्ञान का विषय नहीं, किन्तु सब कुछ जानने वाला, इससे अतिरिक्त कोई दृष्टा श्रोता विज्ञाता मन्ता नहीं है।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं

क ए ई ल ह्री, ह स कहल ह्रीं, सकल ह्रीं—ये राजराजेश्वरी पराम्बा श्रीविद्या का पञ्चदशी मन्त्र है।

जिसके कानों में भगवान् कृष्णचन्द्र का नाम नहीं आया वह अधम प्राणी तो कुत्ता, विडवराह, ऊँट और गदहे के तुल्य पशु ही है।

अवज्ञास्पद होने से कुत्ता सदृश, कष्मलविषय में आसक्त होने से विडवराह (जैसेम सूकर विष्ठा में कीचड़ में मस्त रहता है वैसे ही जो पुरुष....) सदृश। काँटें के समान दुःख प्रदायक विषयों में डूबा होने से जैसे ऊँट विचारा काँटें वाले बबूल शमी आदि को ही खाकर प्रीति समझता है वैसे ही.....) भार ढोना ही भर जिनका धर्म स्वभाव है पता ही नहीं, क्या होना क्या करना है बस बोझा ढोने में लगे लोग खर तुल्य है।

समचित्त, प्रशान्त, अक्रोधी, सहृदय वे साधुजन महान हैं।

मुक्ति का द्वार है महापुरुषों की सेवा।

चत्वारीमानि कर्माणि, संध्यायां परिवर्जयेतम्।
आहारं मैथुनं निद्रां, स्वाध्यायं च चतुर्थकम्।। (मार्कण्डेये)

रामयुद्धकालः = अग्निवेश्यरामायणे

मार्गशुक्ल दर्शभ्यां तु, वशन्तो रावणालये।
सम्पत्ति दशमे मासि, आचख्यौ वानरेषुताम।।

एकादश्यां महेन्द्राग्रात्, पुप्लवे शतयोजनम्।
तद्रात्रि शेषे सीताया, दर्शनं हि हनूमतः।।

द्वादश्यां शिंशयाक्षे, हनुमान्यर्यवस्थितः।
तस्थां निशायां सीताया, विश्वासालाप सत्कथा।।

अक्षादिमिस्त्रयोदश्यां, ततो युद्धमवर्तत।
वधोह्यक्ष कुमारस्य, वन विध्वंसनं तथा।।

पौष शुक्ल प्रतिपद् स्त्रितीयां यावदम्बुधेः।
उपस्थानं ससैन्यस्य, राघवस्यबभूवह।।

विभीषणश्चतुर्थ्यां वै, रामेण सह संगतः।
समुद्र तरणार्याय, पञ्चम्यां मन्त्र उद्‌गमः।।

प्रायोपवेशनं चक्रे, रामोदिनधतुष्टयम्।
समुद्रवरलाभश्च, सेतूपाय प्रकीर्तनम्।।

सन्ध्या समय चार कर्म नहीं करना चाहिए—भोजन, मैथुन, शयन, अध्ययन।

अग्निवेश्य रामायण के अनुसार रामरावण युद्ध काल

मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी में दसवें मास में सम्पाति ने वानरों को रावणालय में है ऐसा कहा। एकादशी में महेन्द्र पर्वत के अग्रभाग से हनुमान जी सौयोजन सागर को पार कर गये, उसी रात्रि में हनुमान जी ने सीता के दर्शन किये, द्वादशी में शिंशपा वृक्ष पर बैठे, रात्रि में सीता के विश्वासार्थ सत्कथा कहीं। त्रयोदशी को अक्षयकुमारादि राक्षसों के संग युद्ध हुआ, अक्षयकुमार का बँध व वन्दरों पौष शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तक सागर तक सेनासहित राम जी आये। चतुर्थी में राम के पास शरणागत भाव से विभीषण आये। पञ्चमी में सागर तरणार्थ विचार किया चार दिन तक अनशन किया राम ने तदनन्तर समुद्र को वर प्राप्त हुआ सागर ने सेतु निर्माण का उपाय बताया, सेतुनिर्माण दशमी को प्रारम्भ

सेतोर्दशम्यासारभ्यः, त्रयोदश्यां समापनम्।
चतुर्दश्यां सुवेलाग्रे, रामः सैन्यं न्यवेक्षयत्।
पौर्खमास्यां द्वितीयान्तं, सम्पन्नं सैन्यतारणाम्।।

दशम्यन्तं मन्त्रण, मेकादश्यां शुक सारण्योः।
सैन्यप्राप्तिः मध्ये सितायां द्वादश्यां सैन्य संख्याकृता।।
सरणेनपीनां तु, सारासरणेपवर्णनम्।
यथावथाङ्गदो दौत्यं माघशुक्लादि वासरे।।
माघशुक्लद्वितीयादि-दिनैः सप्तभिरेव च।
रक्षसां वानराणां तु, युद्दमासीत्सुदारुणम्।।
माघशुक्लनवम्यां तु, रात्राविन्द्रजितारणे।
रामलक्ष्मणयोर्नाग, पाशैर्बन्धो वभूवह।।
नागपाशविमोक्षार्थं द्वादश्यां गरुडोडम्यगात्।
अन्नावहारः कथितः, दशम्यदि दिन द्वयम्।।
द्वादश्यामाञ्जनेयेन, धूम्राक्षस्य वधः कृतः।
त्रयोदश्यां तु तेनैव, निहतोऽकम्पनो रणे।।
माघशुक्ल चतुर्दश्यां, यावत्कृष्णादि वासरम्।
त्रिदिनेन प्रहस्तस्य, नीलेन निहितोवधः।।

त्रयोदशी को पूर्ण हुआ। **चतुर्दशी** में राम ने सुवेल पर्वत पर सेना को स्थापित किया। **पूर्णमासी से द्वितीया** तक सारी सेना पार हो गयी।

दशमी तक मन्त्रणा हुई, **एकादशी** में शुक सारण रावण दूत रामादल में आये। **माघ कृष्ण द्वादशी में** सुकशारण में वानरी सेना की गणना की, बलाबल विवेचन किया। **माघशुक्ल प्रतिपदा** में अंगद दूत बनकर गये। **माघशुक्ल द्वितीया** से सात दिन तक वानरों एवं राक्षसों में दारूण संग्राम हुआ। **माघशुक्ल नवमी** की रात्रि में इन्द्रजीत (मेघनाद) ने राम लक्ष्मण को नागपाश में बाधा—**द्वादशी** में गरूड़ जी नागपाश खोलने आये। यहाँ **दशमी एकादशी** दो दिन का युद्ध विराम कहा गया है। **द्वादशी** को हनुमान जी ने धूम्राक्ष को मारा, त्रयोदशी में हनुमान जी ने ही अकम्पन को मारा, **माघशुक्ल चतुर्दशी से कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा**

माघासितद्वितीयाया, श्चतुरयन्तं त्रिभिर्दिनैः।
रामेणतुमुले युद्धे, रावणे द्रावितो रणात्।।

पञ्चम्यास्त्वष्टमीयावत्, रावणेन प्रबोधितः।
कुम्भकर्णः समुत्तस्या, पत्रायुद्धतच्चतुर्दिनम्।।

कुम्भकर्णोदिनैः षार्ड्भ नवम्यास्तुचतुर्दशीम्।
रामेण निहतो युद्धे, बहु वानर भक्षकः।
अमावस्यादिने शोकाः दवहस्त्रो वभूव ह।।

फाल्गुनादिप्रतिपदः चतुर्थ्यन्तदिने
नरान्तक प्रभृतयः वञ्च राक्षसा हताः।
अष्टम्या द्वादशीं यावत् निकुम्भ-
कुम्भावूर्ध्वं मकराक्षश्चतुर्दिनैः।।

फाल्गुन कृष्ण द्वितीयायां शक्रजिताजितम्।
ततः पञ्चदिनान्वेव हारः।
त्रयोदशीमाराभ्यषड्भिडमर्दिनै र्लक्ष्मणेनेन्द्रजिद् हतः।।

अमावस्यां ययौ वीरः युद्धायदशकन्धरः।
चैत्रशुक्लप्रतिपदः, पञ्चमी दिनपञ्चकैः।।

रावणस्य प्रधानानां, युद्धताममवत्क्षयः।
चैत्र षष्ट्यषृमीं यावत्, महापार्श्वादिमारणाम्।।

तक नील ने तीन दिन में प्रहन्त को मारा, माघ कृष्ण द्वितीया से चतुर्थी तक तीन दिन में राम के द्वारा रावण को भीषण युद्ध में पलायन करने पर विवश किया, पञ्चमी से अष्टमी तक रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया, चार दिन तक युद्ध विराम रहा।

कुम्भकर्ण छः दिन तक नवमी से चतुर्दशी तक राम के साथ युद्ध करता हुआ राम जी द्वारा मारा गया (बहुत वानर खाये उसने)। अमावस्या को शोक रहा युद्धविराम। फाल्गुन प्रतिपदा से चतुर्थी तक नरान्तकादि पाँच राक्षष मारे गये। अष्टमी से द्वाद्वसी तक निकुम्भ कुम्भ, मकराक्षादि चार दिन में मरे। फाल्गुन कृष्ण द्वितीया में इन्द्रजीत ने लक्ष्मण पर विजय पायी। पाँच दिन तक युद्ध विराम रहा। त्रयोदशी से लेकर छः दिनों तक लक्ष्मण ने मेघनाद को मार गिराया। अमावस्या को रावण स्वयं युद्धार्थ आया, चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से पञ्चमी तक पाँच दिन में रावण के प्रधान वीर पूर्ण हो गये, चैत्र षष्ठी से अष्टमी तक महापार्श्व

चैत्रशुक्ल नवम्यां तु, सौमित्रे शक्ति मेदनम्।
द्राणेन्द्रिराञ्जनेयेन, लक्ष्मणार्थमुपाहृतः।।

दशस्यामवहारोऽभूत्, रात्रौ युद्धं नृरक्षणेः।
एकादश्यां तु रामत्य, रथोमातलि सारथिः।
अष्टादशदिनै रामो द्वैरथे रावणां वधीत्।।

द्वादश्याशुक्लपक्षस्य, यावत्कृष्णचतुर्दशीम्।
माघशुक्लद्वितीयायाः, चैत्र कृष्ण चतुर्दशीम्।
अष्टाशीतिदिनं युद्धं, मध्ये पञ्चदशाहकम्।।

युद्धावहारं संग्राम, स्त्रि सप्ततिनिनान्यभूत्।
संस्कारोरावणदीनां, अमावस्यादिनेऽभवत्।।

वैशादितिथौतमः, सुवेलं पुनरागमत्।
अभिषिक्तोद्वितीयायां लंकाराज्ये विभीषणः।।

सीता शुद्धिस्त्रितीयायां, देवेभ्यो वरलम्भनम्।
वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्कर मस्थितः।।

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे, पञ्चम्यां माघवस्य तु।
भरद्वाजाश्रमं रामः, ससीतः पुनरागसत्।।

नन्दिग्रामे तुषष्ठ्यां वै, भरतेन समागतः।
सप्तम्याममिषिक्तोऽसा वयोध्यायां घूत्तमः।।

माया **चैत्रशुक्ल** नवमी में लक्ष्मण को शक्ति लगी, हनुमान जी द्रोणागिरि को लक्ष्मण के लिए उखाड़ लाये। **दशमी** को युद्धविराम् रात्रि में युद्ध हुआ। एकादशी में मातलि राम के लिए रथ लाया। अट्ठारह दिनों में राम ने द्वैरथ में रावण को मार गिराया।

शुक्लपक्ष की द्वादशी से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक माघशुक्ल द्वितीया से चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक अट्ठासी दिन तक युद्ध हुआ, बीच में पन्द्रह दिन की छुट्टी (अवकाश) युद्धविराम रहा। इस प्रकार तिहत्तर दिन युद्ध हुआ। रावण का संस्कार अमावस्या को हुआ। **वैशाख** की प्रतिपदा को राम पुनः सुबेल पर्वत पर आ गये। **द्वितीया** में विभीषण का अभिषेक लंकाराज्य में हुआ। **तृतीया** में सीता शुद्धि हुई देवताओं में विविध वर प्राप्त हुए। **चतुर्थी** में राम पुष्कर में (पुष्पक विमान में) बैठकर। **वैशाख पंचमी** को पूरे चौदह वर्ष होने पर

ॐ

आप्लस्व प्रप्लवस्व आण्डीभवमामुहुः।
सुखादि दुःखनिधनां प्रतिमुञ्चस्व रचां पुरम्।। (श्रुतिः)

चतुर्युगम्-४३२००००, ब्राह्म दिनम्-४३२००००००००, ब्राह्मवर्षः-३१ खर्बु. १० अरर्बु. ४० कोटिः।

ये स्वधर्मादवेतेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्प बुद्धयः।
शतं वर्षाणि ते प्रेत्य, पुरीषं भुञ्जते जनाः।
अर्हानर्हाऽपरिज्ञाना, दान धर्मोपि दुष्करः।। (यतिधर्मनि.)

यस्यकृतं न विघ्नन्ति, शीतमुष्णं मयं रतिः।
ससृद्धिरसमृद्धिर्वा, सवै पण्डित उच्यते।। (विदुरः) (महाभा. उद्यो.)

भरद्वाजाश्रम में राम-सीता सहित आ गये। षष्ठी में नन्दीग्राम में भरत से भेंट हो गयी। सप्तमी में अयोध्या में रामराज्याभिषेक हुआ।

आप्लावित मत होओ बारम्बार डूबो मत तैरकर पार जाओ। जन्ममरण के जंजाल से मुक्त हो जाओ। दुःखों के नाशक सुखादि को छोड़ दो स्वां पुरं नगर को या देहभाव को भी त्याग दो। सुखासक्ति को त्याग दो देहाध्यास को त्याग दो आत्मरूप में रहो।

चतुर्युगी मान—४३२,००००, ब्रह्मा का दिन—४३२००.००.०००, ब्रह्मा का वर्ष—३१ खरब, १० अरब, ४० करोड़।

दान धर्म भी कठिन है—जो अल्प बुद्धि वाले (ऐसे लोगों को दान करते हैं, जिन लोगों ने अपने कर्तव्यों का त्याग कर दिया है जो) स्वधर्म (वर्णधर्म आश्रमधर्म जाति कुलधर्म) से रहित लोगों को दान देते हैं, वे मरने के उपरान्त सौ वर्ष तक पुरीष (मल) भोजी नरक में जाते है मल खाना पड़ता है। (धन के तुम मालिक नहीं माली हो, परमात्मा की धरोहर को तुम मनमाने वर्बाद करने वाले हो कौन, अतः उचित पात्र तक पहुँचने का भी कर्तव्य तुम्हारा है अन्यथा अपात्र तुम्हारे अन्न को खाकर जितने पाप करेगा, उसका फल तुमको भी मिलेगा, तुम्हारे धन का जितना दुरुपयोग होगा प्रेरक कारण सहयोगी होने से तुम भी दोषी बनोगे) अतः पात्र अपात्र के विचार से रहित दानधर्म भी दुष्कर ही है।

जिसके संकल्पित कार्य को सर्दी गर्मी भय रति विघ्नयुक्त नहीं कर पाती, अर्थात् जो कथमपि विचलित नहीं होता समृद्धि हो अथवा दरिद्रता जो बढ़ता जाता है वह पण्डित कहलाता है।

अश्रुतश्च समुन्नद्धो. दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेरसु, मूढ इत्युच्यते बुधैः।।

१२ ब्राह्मणय महाव्रताः–धर्मः सत्यं तपो दमः अमात्सर्यं ह्रीः तितिक्षाऽनसूया दानं श्रुतं धृतिः क्षमा। योनैतेभ्यः प्रच्यवेत् स सर्वान् शिष्यात्। (महाभा. उद्योग.)

१२ महादोषाः–शोकः क्रोधः लोभः कामः मोहः परासुता ईर्ष्या, मानः विधित्सा कृपा असूया जुगुप्सिता। यै राविष्टः पायं व्यवस्यति। (महाभा. उद्योग.)

आत्मा

आत्माक्षेत्रज्ञइत्युक्तः, संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तदैव तु विनिर्मुक्तः, परमात्मेत्युदाहृतः।। (महाभा.-२१।१०।१८७)


ऋचीको गाधिकन्यां सत्यवतीं परिणीय
प्रसन्नः सन् चरुद्वयं निर्माय दत्तवान्।।


अज्ञानी 'अपठित' (उत्साह तो पर ज्ञान नहीं है) होकर बहुत उत्साही महाउदार मन वाला होकर दरिद्र विना पुरुषार्थ (उद्योग) के धन चाहने वाला विद्वानों द्वारा मूढ़ कहलाता है। उत्साह है पर ज्ञान नहीं-उदारता है पर धन नहीं। धन की इच्छा है पर अकर्मण्य ऐसा व्यक्ति मूढ़ कहलाता है।

ब्राह्मण के महाव्रत

धर्म-सत्य-तप दम (इन्द्रियों का निग्रह) अमात्सर्य (परोत्कर्ष से पीड़ित न होना) ह्रीं (लज्जा) तितिक्षा अनसूया (ईर्ष्या का अभाव) दान-श्रुत (वेदस्वाध्याय) धृति क्षमा—जो इन सभी गुणों से च्युत नहीं होता वह सभी का शासन करने वाला गुरु है।

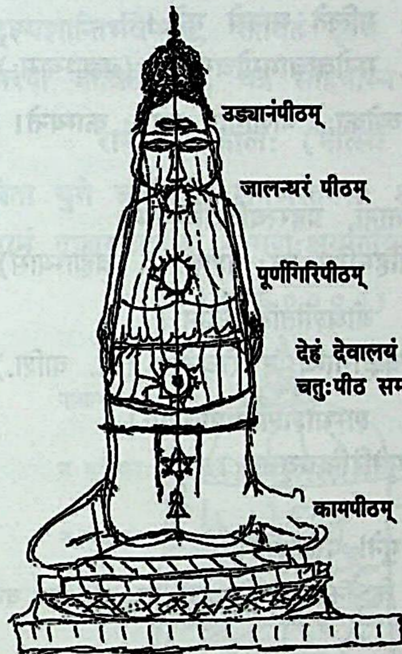
महादोष

शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, परासुता (परनिन्दा), परुक्षता (कठोरता), ईर्ष्या, मान (अभिमान) विधित्सा, कृपणता, असूया (वरदोष दर्शन), जुगुप्सिता (घृणाभाव) इनसे आविष्ट हो पापरत होता है प्राणी।

आत्मा

प्राकृत गुणों से संयुक्त क्षेत्रज्ञ आत्मा है, इन्हीं प्राकृत गुणों से मुक्त होने पर परमात्मा कहा जाता है।

ऋचीक ऋषि ने गाधतनया सत्यवती के साथ विवाह किया। उस पर प्रसन्न होकर



देहं देवालयं प्रोक्तम् दशनाडी महापथम्।
चतुःपीठ समाकीर्णं शिव शक्ति निकेतनम्।।
(योगशिखोपनि. २)

विवेकः

मूलं संसार दोषस्य, मनोनाहं नमे मनः।
सर्वं त्यजाम्यहं वेद्यं, चेत्यं यन्मूढ कल्पितम्।
शेषो विकल्प शून्योहं, सच्चिदानन्द शुद्धकः।। (ब्रह्मभ्यासः)

अपनी पत्नी एवं अपनी सास (सत्यवती की माँ गाधि की पत्नी) के लिए दो पात्रों में चरु पकाया। एक में ब्राह्म तेज सम्पन्न मन्त्रों का अभिमन्त्रण, दूसरे में क्षात्र तेज सम्पन्न मन्त्रों का अभिमन्त्रण किया। मोहवश माँ-बेटी ने अपने पात्र बदल दिये अतः क्षत्रियवंश में भी विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हुए। ब्राह्मण कुल में परशुराम घोरकर्मा हुए।

शरीर ही मन्दिर है इस दशनाड़ी वाला महापथ है इसमें चार पीठे हैं, ये शिवशक्ति का निकेतक आवास स्थान है—उड्यान पीठ, जालन्धरपीठ, पूर्णगिरिपीठ, कामपीठ।

विवेक

संसार रूपी दोष का जो मूल है असली जड़ वह मन में नहीं हूँ मन मेरा न हीं है, जितना भी ये ज्ञेय है मैं सबका त्याग करता हूँ, ये मूढ़ चित्त द्वारा ही प्रकल्पित है। सब त्यागने के उपरान्त जो शेष विकल्प रहित सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्म मैं ही हूँ।

नष्टायां मोहमायायां, गलिते मानसे मुनेः।
यच्छिष्टं तत्परं ब्रह्म, मनोवाचामगोचरम्।। (ब्रह्माभ्यास:)

तमयं सोम आह तवास्मि सख्येव्योकाः। योजागार, तमृचः काम्यन्ते। तसु सामानि यन्ति। (श्रुति:)

यो जागर्ति हि सुप्तानां, प्रहरत्यविवेकिनाम्।
हरत्यापदमार्तानां, सोहमस्मि परः शिवः।। (ब्रह्माभ्यासे)

अज्ञानज्वर मुक्तस्य, बोधशीतलितात्मनः।
एतदेव भवेच्चिह्नं, यद्भोगाम्बु न रोचते।। (यो. वाशि.)
जारणात्कालकूटस्य, शम्भोशशीविषावशाः।
मारणन्मनसस्तद्ध, न्मुनेरिन्द्रियवृत्तयः।।

हे मुने! परमशिव।

मोहमाया के नष्ट होते ही मन के निगर्लित हो जाने पर जो शेष वचता है वही मन वाणी से अगोचर परं ब्रह्म है।

जो जाग्रत है उसको सोम कहते हैं, मैं तुम्हारा हूँ सखे, जागृत को ही वेद चाहते हैं उसी को सम्मादि प्राप्त हो जाते हैं।

जो सुप्तों के मध्य में भी जगता है अविवेकियों पर प्रहार करता है, आर्तजनों की आपत्तियों को जो हरता है (नष्ट करता है) वही परम शिव मैं हूँ।

अज्ञान ज्वर रोग मुक्त, ज्ञान की शीतलता से शान्त महापुरुष का एक ही चिन्ह है—उन्हें भोगवासना रूपी जल नहीं भाता (आकर्षित नहीं करता), हम कितने ज्ञानी हैं मिल गया पैमाना नाप लो परख लो बहुत बातें करनी आना अलग बात जानकर जीवन में उतारना मौन हो जाना अलग बात। तुम जब तक बड़बड़ा रहे हो निश्चित है खोखले हो, ज्ञान पचा नहीं तो समझो ये ज्ञान नहीं जानकारी है जानकारी को उलटा (वमन) जा सकता है ज्ञान तो आत्मसात होकर व्यवहार से, रोम-रोम से, दृष्टि से क्रियाओं से सच्छिद्र घटस्थ दीप प्रकाशवत झलकने लगता है औषधि खायी पची नहीं अन्दर नहीं गयी उल्टी कर दी तो क्या फल? इसीलिये कण्ठस्थ मात्र नहीं हृदयस्थ भी करो। ज्ञान प्रकाश है और प्रकाश दिखाना नहीं पड़ता और यदि दिखाना पड़ रहा है तो भ्रम है अज्ञान है अन्धेरों में ही दिखाने की चेष्टा नहीं करो दिखा दो।

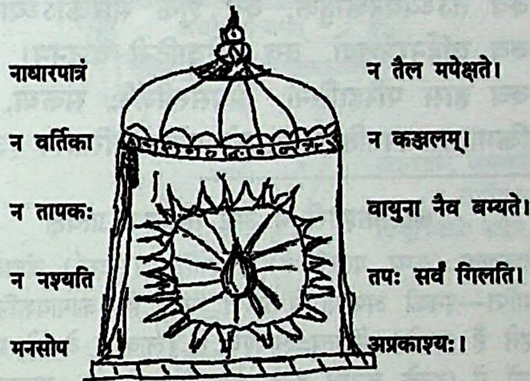
जैसे कालकूट विष को पचाने के कारण ही सर्प भगवान शिव के वश में हुए वैसे ही मन को मारने से ही हे मुने! इन्द्रिय वृत्तियाँ स्वत: वश में हो जाती हैं।

दृश्यशान्तिर्भवेन्मृति, जीवितं दृश्य बोधनम्।
मरणं जीवितं नखे, यत्र सोहमस्मि परःशिवः।।

रामावतारकालः (मात्स्ये १२)

त्रेता युगे चतुर्विंशे, रामणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाक्षरथिप्राप्य, सगणःक्षयमीयिवान्।।

(१८५६००००)



जातो बोध द्वीपोबुद्धिमन्दिरे।।

(ब्रह्माभ्यासः)

दृश्य प्रपंच का शान्त होना मृत्यु, दृश्य दिखना जीवन है और जन्ममरण आकाश के नहीं होते, वही परम शिव में हूँ जहाँ से आकाश रहता है।

रामावतारकाल—चौबीसवें त्रेता में दाशरथिराम को पाकर सगण रावण तप क्षीण होने के कारण मरण को प्राप्त हुआ। १,८५,६०,००० (एक करोड़ पच्चासी लाख साठ हजार) पूर्व राम हुए।

ज्ञानरूपी दीपक

न आधारपात्र की आवश्यकता न तेल की आवश्यकता न बत्ती चाहिए न इसके जलने के कालिख (कज्जली) द्वारा धूआं होने का खतरा, न ये उत्तापक है, ये वायु द्वारा साधारण दीप की तरह काँपता नहीं, नष्ट नहीं होता कभी और अन्धकार को सर्वत्र निगल जाता है मन से भी ये अप्रकाशित है, अरे भई ये कौन सा दीपक है अब तो बताओ, पहेली बुझाते बहुत देर हो गयी—ये ज्ञान रूपी दीपक है जो बुद्धि मन्दिर में जलता है।

श्रीकिशोर कृष्णः

अणिमा मध्यमे, महिमाश्रोणिभारे, लघिमा वचसि प्राप्तिरपत्रपायाम्, कामावसायिता मनसि, ईशिता लावण्ये, वशिता नयनकोणयोः, प्राकाम्यं माधुर्ये, इति सिद्धयः प्रादुरासुः।

(आनन्द वृन्दः वन च. ८/६)

गोपीनां पद विहरणम्। आत्माराम प्रस्थानमिवोद्देश्यशून्यम्।

विशाखा राधातः

क्व तेऽध्ययनकौतुकं, क्व शुक सरिकाऽध्यापना,
क्व वर्हिनरनेक्षणं, क्व परिवादिनी वादनम्।
क्व हास परिहासिनो, प्रियसखीजनैः सकया,
किमात? पनमतिना तवमनो मणिश्चोरिता।। (आनन्दवृ.च.-८/१४)

श्री किशोरी में अष्ट सिद्धियाँ प्रत्यक्ष

अणिमा मध्यभाग (कमर पतली है) में महिमा (सुदर्घ्य) जंघाओं में, लघिमा वाणी में (अल्पभाषी) प्राप्ति—इनकी अपत्रपा में प्राप्ति सिद्धि है—कामावशपिता मन में (मन सदा इनके वश में रहते हैं सबके) ईशित्व=लावण्य में (लावण्य के ये प्रशासक है स्वामी है) वशित्व-नयन कोणों में (इनके कटाक्ष इनके वश में रहते हैं), प्राकाम्य-माधुर्य में (परीप्सित मधुरता इनमें है) इस प्रकार सारी सिद्धियाँ इनमें प्रकट हैं।

गोपियों के चरणों का विहरण कैसा है उनका पद विहार (चलना) कैसा है—आत्माराम आप्तवाम महामुनियों के प्रस्थान के जैसा उद्देश्य शून्य है जैसे आत्माराम कोटि के महापुरुष कृतकृत्य है कुछ नहीं चाहिए उन्हें वैसे ही ये भी पूर्णतम श्रीकृष्ण को पाकर कृतकृत्य है इन्हें भी कुछ नहीं चाहिए।

विशाखा सखी

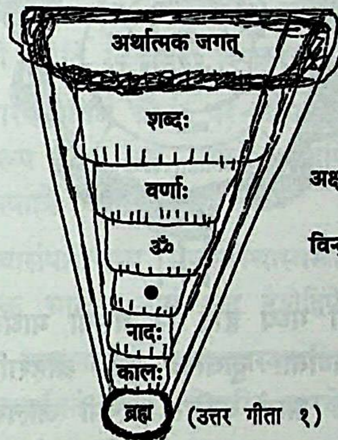
नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानी को उलाहना दे रही हैं—अरि राधे! आजकल तेरा पढ़ने का शौक कहाँ गया—पहले तो जब देखो तब.....। कहाँ गया तेरा तोता मैना को पढ़ाने का स्वभाव पहले तो जब देखो तब....। कहाँ तेरी नाचते मोरों को देखने की उत्कट लालसा चल गयी पहली बहाने बनाती थी मोर नाच देखना है.....। अब तेरी आँखों के आगे ये मोर नाच रहे है देखती क्यों नहीं। तेरा बातचीत का स्वभाव भी कहीं लुप्त हो गया। तेरा हास परिहास कहाँ गया। प्रिय सखियों के साथ बैठ कथादि कहने का स्वभाव तेरा कहाँ खो गया। अरी सखि! कहीं ऐसा तो नहीं कि वनमाली श्रीकृष्ण ने तेरी मन रूपी मणि को चुरा लिया हो।

राधोक्ति–अतिपरम महर्घ्यमस्यचेतो, मणिमति लोक मणीन्द्रवन्दनीयम्।
तृणमणिवदयं, परिपाणितुं पणतां कथं प्रयातु। (आनन्दवृ.च.)

श्यामोक्तिः–त्वदनुराग रत्नेनैव तन्मनोमणिक्यं परिचीयते।

राधा–जीवित सखिपणीकृतं मया। माधव स्वयमुरीकृतं मया।

शौर्यंदाक्ष्यं वलं धैर्यं, प्राज्ञता नय साधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च, हनूमतिकृतालयाः।। (वाल्मी.रा. ३.१३५)



(उत्तर गीता १)

अक्षराणि, समात्राणि,
सर्वेविन्दु समाश्रिताः।
विन्दुर्भिद्यति नादेन,
सनादः केनभिद्यते।।
(इति प्रश्नः)

श्रीराधा—अरी सखी उस वनमाली का चित्त तो बहुमूल्य है मणियों में उत्कृष्टतम मणि लोकमणियों के द्वारा भी शतशत वन्दनीय है। कहाँ मैं तृणवत् कहाँ वह मणिवत् तृण व मणि का साम्य कहाँ ऐसा कैसे सम्भव है।

श्यामा—अरी सखी तू नहीं जानती तेरे दिव्यतम अनुराग रत्न द्वारा ही उस श्याम का मन माणिक्य पाया जा सकता है।

श्रीराधा—हे सखी मैंने तो जीवन ही दाव पर लगा दिया। मैंने तो माधव को स्वयं आत्मीयत्वेन स्वीकार कर लिया (अपने हृदय में बैठा लिया)।

हनुमान में आठ गुण—१. शूरता, २. दक्षता, ३. शक्तिमत्ता, ४. धीरता, ५. प्राज्ञता (बुधिमत्ता), ६. नीतिमत्ता-साधन सम्पन्नता (नयसाधनता), ८. विक्रम व प्रभाव। इन आठ गुणों ने हनुमान में ही अपना घर बना लिया है।

प्रश्न—मात्राओं सहित सभी अक्षर वर्ण बिन्दु के आश्रय में रहते हैं, विन्दु नादोत्पन्न है। पर वह नाद किससे उत्पन्न होता है? ये प्रश्न है चित्त में स्पष्ट ब्रह्म से दिख रहा है?

अनाहतस्य शब्दस्य, तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेन्तर्गतो ज्योतिः, ज्योतिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विल्यं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।। (उत्तरम्)





अह्नो मध्ये हृदि नि वसतो माधवस्यावलोके,
निप्राणयाः कुवलय ततेः श्रीहराणिक्षणानि।
प्रातः सायं कलित बलमी जालरंध्राणि तासाम्,
मुष्णन्त्यत्मा महह वसतां पञ्जरे खञ्जनानाम्।।

(आनन्द कृ.चं. ८/४०)

उत्तर—अनाहत शब्द उस शब्द की जो ध्वनि, उस ध्वनि के अन्दर जो ज्योति, उस ज्योति के अन्दर है मन वह मन विलय होता है जहाँ वह विष्णु का परं पद है ये भी चित्र द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है।

सारे दिन हृदय गगन विहारी मुरारि के अवलोकन से निद्रावस्था जैसी (उंनीदी अलसायी सी भारी-भारी सी आँखे) आँखों के द्वारा कमल नयन श्रीकृष्ण का ही ध्यान करती थी। उनके नेत्र कमल रूपी खिड़की (पिञ्जरे में कैद—खञ्जन पक्षी के समान) प्रात-साय ही खुला करती थी।

लाल की लाली वै निहाल हो गयी आँखें।
खोजने चली थी खुद ही खो गयी आँखें।
आ वसा है साँवरा अन्धेरा सा बनकर।
अन्धेरे में अन्धेरे सी हो गयी आँखें।।

[1]दन्ता शुक्ला नखा[2]श्वेताश्वेताच ब्रह्म[3] मुद्रिका।
दण्ड[4] वस्त्रं कटि[5] पुष्पं, पञ्चश्वेताः प्रकीर्तिताः।।

अन्तर्वहिश्च यच्छुद्धं, ब्रह्मरूपेणवर्तते।
ब्रह्ममुद्रेति विख्याता, ज्ञानिनां दृष्टिगोचरा।।

मायाऽमायिकयोर्मध्ये, तुर्य्या तु करिरूच्यते।
कटिपुष्पं परशु सुमनम्।।

सर्वावरक सर्वत्र, ब्रह्मरूपेण संस्थितिः।
लक्ष्मी पटेति विख्यातं, दण्डवस्यं प्रकीर्तितम्।। द्विधा लोडनम्।

ओकारं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च।
परं रूपं स्वयं ब्रह्म, अपरं जगद्रूपि यत्।।
मूलेसप्ताग्रे नवाङ्कम्।

देहाध्यासंपरित्यज्य सप्तावस्थास्वरूपिणम्।
सप्तांक भावितं तोयं पाद देशेद्विपेद्बुधः।।

नवमं सकलातीतं प्रत्यग्ब्रह्मस्वरूपिणम्।
नवांकभावितं तरेयं, शिरसि धारयेत् सदा।।

---

१. दन्त, २. नख, ३. ब्रह्ममुद्रा, ४. दण्ड (वस्त्र) व ५. कटि (पुष्प)—ये पाँचों श्वेत रूप में प्रसिद्ध हैं। दान्तों व नखों की श्वेतता तो प्रसिद्ध है।

ब्रह्ममुद्रा—आन्तर्वाह्य शुद्ध ब्रह्म है ज्ञानियों की दृष्टि में शुद्ध ब्राह्मी भाव ही ब्रह्मी भाव ही ब्रह्ममुद्रा है।

कटि पुष्प—माया एवं मायी के मध्य चतुर्थावस्था कटि है कटिपुष्प परशु सुमन है।

दण्डवस्त्र—सर्वत्र आवरण ब्रह्मरूप से स्थित है इसी को लक्ष्मीपट भी कहते हैं। यही दण्डवस्त्र है।

ॐ दो प्रकार का है—१. पर, २. अपर पर प्रणव तो स्वयं ब्रह्म है अपर ॐ जगत् रूप से प्रतीति का विषय वन रहा है। मूल में सदाङ्क है तथा अग्रभाग से नवाङ्क है।

देहाध्यास को त्याग कर सात अवस्थायें स्वरूप की हैं। सप्ताङ्कभावित है जल वह पाददेश में है ज्ञानि के—नवमाङ्क है सकल से अतीत प्रत्यक् ब्रह्म रूपी नवाङ्कभाविततायं शिर पर धारण करना चाहिए।

पंचमुद्राः

[१]पाशं [२]नागं [३]तथा धेनुः [४]शंखः [५]परशुरे व च–१. अव्यक्तं, २. प्रसावः, ३. अमृतं, ४. तुर्या, ५. शासनम्। विजयोवा।

वैशेषिकनये

वायौ न वैकादश तेजसोगुणः,
जलक्षिति प्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्कालयोः पंच षडेव चाम्बरे,
महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च।।

प्रभाकर मते आत्मगुणाः

इच्छाद्वेष प्रयत्नाश्च, धर्माधर्मौ सुखासुखे।
तत्संस्काराश्च तस्यैते, गुरमाश्चेति उदीरिताः।।
आकाशवद् द्रव्यमात्मा, शब्दवत्तद्गुणश्चितिः।।
जडाजडविभागोऽयं, चेतने मयिकल्पितः। (अद्वैतमकरन्दे)

अमनस्य साधनम्

अन्तश्चेतो वहिश्चक्षु, रधः स्याप्यं सुखासनम्।
समत्वं च शरीरस्य, ध्यानमुद्रेति कथ्यते।।१।।

पञ्चमुद्रायै

१. पाश = अव्यक्त नाम्नी, २. नाग—प्रणवरूपा, ३. धेनु—अमृतरूपा, ४. शंख—तुर्यावस्था, ५. परशु—शासनात्मिका।

वायु में ९ गुण हैं, तेज में १ गुण हैं, तल-पृथिवी में १४ गुण है, दिशाकाल में ५ गुण हैं, आकाश में ६ गुण है, मन महेश्वर में ८ गुण है।

आत्मा में इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म सुख-दुख संस्कार आदि आठ गुण रहते हैं, प्रभाकर मते आत्मा आकाश के समान द्रव्य है शब्द के समान ही गुण चिति है जैसे शब्द आकाश में रहता है वैसे ही आत्मा में ये गुण रहते हैं।

यह जड़-अजड़ का विभाग (जड़ चेतन विभाग) चेतन तत्व मुझमें ही कल्पित है।

अमनस्क साधनाविधि

मन का न होना ही अमनस्क विधि है मनन (उनमनीदशा)—चित्त अन्तर्मुखी हो वाह्य दृष्टि, नासाग्रह स्थिर हो सुखासन में बैठकर शरीर को सीधा रखे ये ध्यान मुद्रा है।।१।।

निष्कलं निष्प्रपंच, परं तत्त्वं तवुच्यते।।
सर्वं भूतमयं चेति, त्यक्त्वा, नास्तीति भावयेत्।।२।।
सर्वचिन्ताविनिर्मुक्तो, जायते तत्व सम्मुखः।।
अमनस्कं तदा भवेत् चिन्तादिविलयेजाते।।३।।
पवनस्य लयो भवेत्, मनः पवनयोनीशा।
इन्द्रियार्थान् विमुञ्चति, बाह्यज्ञानेविनष्टे च।।४।।
तदा सर्वसमो भवेत्, भवेद्व्यापारवर्जितः।
पर ब्रह्मणि संवध्यो, योगी प्राप्तलयस्तदा।।५।।
सुखं दुःखं न जानाति, शीतोष्णं च न विन्दति।
विचारं चेन्द्रियार्थानां, न वेद्विलयं गतः।।६।।
निर्जीवः काष्ठवातष्ठे, ल्लयावस्थाभिधीयते।
निर्वातस्यापितो दीपो, भासते निश्चलोयथा।।७।।
न च जीवन्मृतोवापि, न पश्यति न मीलन्ति।
निश्चले निर्मलः परः, लवणं तोय सम्पर्का, द्यथा।।८।।

निष्कल व निष्प्रपंच को परं तत्व कहते हैं और सकल प्रपञ्च को त्याग दे (क्यों त्यागे) ये परं तत्व नहीं है ऐसी भावना करें।।२।।

सब चिन्ताओं से रहित होने पर परं तत्व सम्मुख होता है, चिन्ता आदि के विलीन होने पर ही अमनस्क अवस्था आती है।।३।।

इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राणवायु भी लीन हो जाता है प्राण व मन के लीन होते ही योगी इन्द्रियों के विषयों को त्याग देता है तब वाह्यज्ञान के विनष्ट होते ही मन साम्यावस्था आती है।।४।।

सर्वविध व्यापार कलाप के नष्ट होने पर परब्रह्म के साथ सम्बद्ध होकर योगी लय (मुक्ति) प्राप्त करता है।।५।।

सुखदुख शीत उष्ण तक का बोध नहीं रहता, लय प्राप्त योगी को इन्द्रियों के विषयों का विचार ही नहीं आती।।६।।

निर्जीव काष्ठ के समान रहना ही लयावस्था है जैसे वायु रहित देश का दीपक निश्चल होकर प्रकाश देता है वैसे ही।।७।।

जब मन ही नहीं तब कैसा जन्म कैसा मरण कैसा देखना कैसा न देखना तब परं तत्व बचता है केवल वह भी निश्चल व निर्मल। (जैसे नमक का डला पानी सम्पर्क

तोयमयं भवेत् मन्येपि ब्रह्म सम्पर्कात्तथाब्रह्ममयं भवेत्।।
तत्त्वेलीनस्तदायोगी, पृथग्भावं न विन्दति।।९।।

निमेषश्वासपलकै, र्नाडीभिः प्रहरैर्दिनैः।
मासैः संवत्सरैः कालैः, र्लयस्थोयत्पदं व्रजेत्।।१०।।

योगी निमेष मात्रेण, लयेन लभते ध्रुवम्।
स्पर्शनं पर तत्त्वस्य, उत्थानं च पुनः पुनः।।११।।

निमेष षट्क मानेन, लयानन्तस्य योगिनः।
धर्मशान्तिः प्रजायेत, मुहुर्निद्राच मूर्च्छना।।१२।।

श्वासमात्रलयेनापि, तेन प्राणादिकयवः।
श्वासप्रवाहसंवद्धाः, स्व स्व स्थाने व हन्तिता।।१३।।

श्वासोच्छ्वासात्मकः प्राप्तः षड्भिःप्राणैः पलं भवेत्।
पलैः षड्भिरेव स्या, द्धटिका, कला।।१४।।

लयेन पलमात्रेण, आसनस्थोनविद्यते।
स्वल्पश्वासोभवे द्योगी, स्वल्पोन्मेषयुतस्थता।।१५।।

से पानी मय (जलमय) हो जाता है वैसे ही मन भी ब्रह्म के सम्पर्क से ब्रह्ममय हो जाता है। तत्वलीन योगी पृथक्त्व को नहीं पाता॥८-९॥

निमेष-श्वास, पल, नाड़ी, प्रहर, दिवस, मास, वर्ष क्रमशः काल बीतता जाता है योगी लयावस्था में परं तत्व को पा लेता है॥१०॥

निमिष मात्र में योगी लय के द्वारा परं तत्व का साक्षात्कार कर लेता है॥११॥

छः निमेष में लयावस्थालीन योगी को उष्णता की शान्ति का अनुभव होता है मूर्च्छना व निद्रा जैसी अवस्था आने लगती है॥१२॥

श्वासमात्र के लीन होने पर भी प्राणायानादि वायु श्वास प्रवाह से सम्बद्ध होने के कारण स्वस्वस्थान पर प्रवाहित होने लगते हैं॥१३॥

श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया में छः प्राणो का एक पल होता है, छ पलों की एक घटिका (कला) होती है॥१४॥

इस प्रकार एक पल भी यदि लयावस्था आ जाये तो योगी आसन पर नहीं रहता,

पलद्वयलयेनापि, हृन्नाड्याश्चलनं भवेत्।
अनाहतः सविज्ञेयः, न च तत्रैवञ्झसेन्यनः।।१६।।

चतुः पल प्रमाणेन, लयेनानुभवो भवेत्।
अकस्मान्निपतत्येव, शब्दः कर्णे शुभाशुभम्।।१७।।

पलाष्टकलयेनापि, कामस्तस्य विर्तते।
तदापि नैव जायेत, कामिन्या लिङ्गितस्य च।।१८।।

कलापादलयेनापि, सुषुम्ना मार्गवाहिनी।
कला पश्चिम मार्गेण, तस्यभागे न गच्छति।।१९।।

घटिकार्धलये नापि, शक्तिः संचलते ध्रुवम्।
ऊर्ध्व पश्चिममार्गेण, वातरोधेन गच्छति।।२०।।

कलाद्वय लयेनापि, शक्ति संचलनेन च।
क्षणादुत्पद्यते तस्य, मनसः कल्पनं सकृत्।।२१।।

श्वास की स्वल्पता एवं उन्मेष की स्वल्पता के कारण व्यावहारिक जगत् का व्यवहार क्षीण प्राय हो जाता है वह अद्वैत वीथी में विचरण कर उठता है॥१५॥

दोपल की लयावस्था से हृदय की नाड़ी में स्फुरण होने लगता है वही अनाहत चक्र है॥१६॥

चारपल तक की लयावस्था का अनुभव है अकस्मात् कानों में शुभ व अशुभ शब्द गूँजने लगते हैं॥१७॥

आठ पल की लयावस्था में योगी काम रहित हो जाता है भले ही कामिनी का आलिङ्गन भी कर देगा तब भी उसके चित्त में काम का स्फुरण नहीं होगा॥१८॥

कला के एक पाद मात्र काल भी यदि लयावस्था हो जाये तो सुषुम्नामार्ग वाहिनी कुण्डलिनी शक्ति (चित्कला) पश्चिम मार्ग से उसका अनुसरण करती है॥१९॥

आधी घटी तक लयावस्था सिद्ध हो तो शक्ति में (कुण्डलिनी) संचलन होता है और वह पश्चिम मार्ग से ऊर्ध्व की ओर वायु के अवरोध से जाती है॥२०॥

दोकला तक इस अवस्था में लीन होने पर शक्ति के संचलन होने पर क्षणमात्र में उसके मन में एकबार कल्पनायें उठने लगती हैं॥२१॥

चतुष्कला लयेनापि, निद्राभावो निवर्तते।
हृदिस्फुलिङ्गवद्योगी, तेजो विन्दुं प्रपश्यति।।२२।।
दिन पादलयेनापि स्वल्पाहारो भवेन्नरः।।
अल्प मूत्रपुरीषं च, लघुता स्निग्धता तनोः।।२३।।
वासरार्धं लये नापि, स्वात्मज्योतिः प्रकाशते।
सूर्यरश्मिरिवोद्दीप्ता, योगीविश्वं प्रकाशते।।२४।।
दिनमात्र लयेनापि, अक्ष वृत्तिर्निरूध्यते।।
अहोरात्रलयेनापि, गन्धं जानाति दूरतः।।२५।।
महोरात्रयेनापि, रस ज्ञानं च दूरतः।
अहोरात्रत्रयेनापि, दूरादर्शन वेत्तिसः।
चतुष्केन, स्पर्शं वेत्ति च पूरतः।।२६।।
पंचरात्रलयेनास्य, श्रवणं दूरतोभवेत्।
रात्रि षट्कलयेनापि, महाबुद्धि प्ररोहति।।२७।।

चार कला तक इस प्रकार लीन होने पर निद्रा की भावना चली जाती है हृदय में चिन्गारी के समान योगी तेज विन्दु को देखता है।।२२।।

दिन के एक पाद मात्र काल तक लयावस्था होने पर योगी स्वल्पाहारी हो जाता है मूत्र एवं मल अल्प हो जाता है शरीर में लघुता (हल्कापन) एवं स्निग्धता एक दिव्य चमक आने लगती है।।२३।।

आधे दिन तक लयावस्था की सिद्धि होने पर आत्मज्योंति प्रकाशित हो जाती है।।२४।।

दिन भर लयावस्था सिद्ध होने पर इन्द्रियों की स्वाभाविक साधारण वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती है। (चाहे तो देखे सुने चखे सूँघे न चाहे तो नहीं आदि) शब्द सुनना चाहेगा तभी सुनेगा, देखना चाहेगा तभी दिखेगा अन्यथा नहीं अहोरात्र लयावस्था सिद्ध होने पर दूरतर देश की गन्ध का बोध होने लगता है।।२५।।

दो दिन रात तक लयावस्था कि सिद्धि के उपरान्त दूरस्थ रस का ज्ञान हो जाता है तीन अहोरात्र लयावस्था के उपरान्त दूरस्थ दृष्यों को देखने की अदृश्य के दर्शन की शक्ति आने लगती है। चार अहोरात्र की लय शक्ति पाने पर हजारों योजन दूरस्थ प्राणी को छू सकने की शक्ति आ जाती है।।२६।।

पाँच रात्रि तक लयावस्था के सिद्ध होने पर दूरवर्ती शब्द को सुन सकता है योगी छः रात्रि की लयावस्था के उपरान्त महाबुद्धि प्रकट होती है।।२७।।

यावत्तर्कमयं तस्य, विज्ञानं सम्प्रवर्तते।
सप्तरात्रलयेनास्य, परेलीनस्य योगिनः।।२८।।

आब्रह्मविश्ववेतृत्वं, श्रुतिज्ञानं प्रवर्तते।
अष्टरात्रिलयेनापि, योगी भवेन्निरामयः।।२९।।

क्षुत्पिपासादि भावैः स, सहजस्थो न पीड्यते।
नव रात्रि लयेनापि, निर्भेदः स्वात्म वर्तनम्।।३०।।

वाचासिद्धिर्भवेत्तस्य, शापानुग्रह कारिणी।
दशरात्रि लयेनापि, चित्र रूपाणि पश्यति।।३१।।

एकादशेन मनसा सह गतिः।
द्वादशाहलयेन भूचरत्य सिद्धिः।।३२।।

त्रयोदसाहल. खेचरी सिद्धिः।
१४ दि. ल. आणिमासि।।३३।।

१६ दि. ल. महिमामासि.।
१८ दि.ल. गरिमा.।।३४।।

जितने भी तर्क हैं तद्युक्त विज्ञान है वह सब प्राप्त हो जाते हैं। सप्तरात्रि के लयोपरान्त परं तत्व में लीन योगी। तृण से लेकर ब्रह्म तक सब कुछ उसके ज्ञान का विषय हो जाता है। जो सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गों का ज्ञान प्रकट हो जाता है। अष्टरात्रि लयोपरान्त योगी निरामय निरूपद्रव हो जाता है॥२८-२९॥

भूख-प्यास आदि पीड़ाओं से रहित सहज हो जाता है। नवरात्रि लयोपरान्त अभेद भाव से सकल व्यवहार होने लगता है॥३०॥

शाप अनुग्रह करने वाली वाणी सिद्ध हो जाती है। दशरात्रियोपरान्त दिव्य रूपों को देखने लगता है॥३१॥

एकादश रात्रि उपरान्त मन के साथ गति वाला हो जाता है। द्वादश रात्रि उपरान्त यथा संकल्प पृथ्वी पर कही भी कभी भी जा सकता है॥३२॥

त्रयोदश रात्रि उपरान्त—यथा संकल्प आकाश में जाने की क्षमता आती है। चतुर्दश लयोपरान्त—अणिमासिद्धि हो जाती है। (लघुरूप पाने की)॥३३॥

सोलह रात्रि के बाद—महिमा सिद्धि (बड़े-बड़े होने की) अट्ठारह दिन बाद—गरिमा सिद्धि। (भारी से भारी होना)॥३४॥

अभिन्नार्थेलयेनापि, यदाविरति वासनम्।
लघिमास्याभवेत्सिद्धिः।।३५।।

२२ दिसान्यस्य, स्वलक्ष्ये योलयं गतः।
प्राप्ति सिद्धिर्भवेत्तस्य, २४ " प्राकाम्य सिद्धिः।।३६।।

२६ " ईवित्वम्।
२८ " वशित्वम्।।३७।।

मासमेकं लयोपस्य, यावन्मोक्षं सगच्छति।
६ मास ल. पृक्षिवी तत्त्वश्चयः।।३८।।

९ मा.ल. जलतत्त्व जयः।
सत्सरल. तेजस्तत्त्वसि.।।३९।।

६ सं.ल. वायु सि.।
१२ सं.ल. व्योम सि.।।४०।।

२४ सं.ल. शक्ति तत्त्वस्यासिद्धिः।
कायस्योदृश्यते लोकः, स्वयं शक्ति मयोभवेत्।
तत्र चर्यां करोत्येण शक्ति सत्त्व क्षयाय च।।४१।।

बीस रात्रि लयोपरान्त—अभिन्न भाव से लघिमा सिद्ध हो जाती है।।३५।।

बाइस दिनोपरान्त उसे—प्राप्ति सिद्धि हो जाती है। (जो चाहे जब चाहे तब पाले)। चौबीस रात्रि की लयावस्था की सिद्धि होने पर प्राकाम्य सिद्धि हो जाती।।३६।।

२६ रात्रि की लयावस्था के उपरान्त ईशित्व सिद्धि प्राप्त होती है। (सब शासन करने की शक्ति) २८ दिन के उपरान्त—वशिष्ठ सिद्धि होती है। (सबको वश में करने की)।।३७।।

एक मास तक लय होने पर मोक्ष तक पा सकता है योगी। ६ मास के लयोपरान्त—पृथिवी तत्व पर जय पा लेता है।।३८।।

९ मास के उपरान्त—जल तत्व पर विजय पा लेता है। वर्ष भर के उपरान्त—अग्नि तत्व पर विजय पा लेता है।।३९।।

६ वर्ष के उपरान्त—वायु पर विजय पा लेता है। १२ वर्ष के लयोपरान्त—आकाश तत्व पर विजय पा लेता है।।४०।।

२४ वर्ष तक लयोपरान्त—शक्ति तत्व पर विजय पाता है। शरीर में रहकर स्वयं शक्तिमान होकर लोक को देखता है और वहाँ शक्ति तत्वक्षय के लिए ही प्रयास करता है।।४१।।

इत्थं क्रमाद्धिवृद्धेन, लयाभ्यासेन योगिना मुञ्जते परमानन्दं।।४२।।
नास्ति पातो लयष्णानां, महातत्त्वे विवर्तिनाम्।।४३।।

।।श्री ईश्वरोक्तामनस्य ख. लययोग परि. प्रथमोऽध्यायः।।

अन्तर्यागः

चित्तं बुद्धि रहंकारो, ऋत्विज सोमयं मनः।
इन्द्रियाणिदशप्राणान्, जुहोति ज्योतिमण्डले।।

तन्मूलाद्धिन्दुपर्यन्तं, विभाति ज्योति मण्डलम्।
योगिभिः सततं ध्येयं, अणिमाद्यष्ट सिद्धिदम्।।

वेदशास्त्र पुराणादि, सामान्यगणिकाऽव।
एकैव शाम्भवीमुद्रा, गुप्ता कुलवधूरिव।।

अन्तर्लक्ष्यं वहिर्दृष्टि, र्निमेषोन्मेष वर्जिता।
ऊर्ध्व दृष्टिरधोदृष्टि, रुर्ध्व वधिस्त्वधो शिराः।
राधा यन्त्र विधानेन, जीवन्मुक्तो भविष्यति।।

कुलाचार रताः सन्ति, गुरवो वहवो मुनेः।
कुलाचार विहीनस्तु, गुरुरेकोहि दुर्लभः।।

इस प्रकार क्रम से परिवर्द्धित लयाभ्यास द्वारा योगी परमानन्द का आस्वाद करता है। महातत्व में लीन रहने वाले लयस्थ योगियों का कभी पतन नहीं होता।।४२-४३।।

अन्तर्यागविधि : उनमनी दशा पाने की प्रक्रियायें

मन (सोमपायी) बुद्धिचित्त अहंकार ये ही ऋत्विक बनकर दशों इन्द्रियों एवं पञ्च प्राणों का ज्योति मण्डल में होम करते हैं, मूलाधार से लेकर विन्दु पर्यन्त ये ज्योतिमण्डल अणिमादि अष्ट सिद्धियों का प्रदायक है और योगियों द्वारा निरन्तर ध्यान करने योग्य है।

वेद शास्त्र पुराण आदि चतुर्दश विद्यायें सामान्य नगरवधु गणिका के समान है तथा सर्वसुलभ हैं, किन्तु अत्यन्त गोपनीय कुलवधु के समान आदरणीय शाम्भवी मुद्रा तो एक ही हैं।

उन्मनी मुद्रा अन्तर्लक्ष्य—उन्मेष निमेष रहित गह्य दृष्टि, ऊर्ध्व दृष्टि—अर्ध दृष्टि ज्ञान ऊर्ध्व शिर अध इस प्रकार से राधा यन्त्र विधानें द्वारा जीवनमुक्त होगा प्राणी।

कुलाचार में निरत तो बहुत गुरु हैं, किन्तु कुलाचार रहित तो कोई एक ही दुर्लभ गुरु होता।

अमृतोद्दीपिनीविद्या, निरपायानिरञ्जना।
अमनस्कैव सा काचित्, जयत्यानन्द दायिनी।।

प्रणाष्टश्वास निःश्वासः, प्रध्वस्त विषदग्रहः।
निश्चेष्टोः निर्गतारम्भो, ह्यानन्दं याति योगवित्।।

उच्छिन्नसर्व संकल्पो, निःशेषाशेष चेष्टितः।
स्वरवगम्यलयः ध्यापि, जायतेवागगोचरः।।

सुखस्यापित सर्वाङ्गः, सुस्थिरात्मा सुनिश्चलः।
शिथिलीकृतसर्वाङ्ग, आनखाग्रशिखाग्रतः।।

सवाह्याभ्यन्तरे सर्व-चेष्टा चिन्ता विवर्जितः।
यथाभवेदुदासीनः तथा तत्त्वं प्रकाशते।।

अमृत तत्व का उद्दीपन करने वाली विद्या अमनस्कावस्था है जो आनन्द दात्री व श्रेष्ठ है निरूपाया है निरञ्जना है।

जिस योगी ने श्वासोच्छ्वास की साधारण प्रक्रिया को प्रनष्ट करके विषय वासना की भावना को भी ध्वस्त कर दिया है जो सांसारिक हारविहार की चेष्टाओं से गिरत हैं लौकिकोद्योग से रहित है वही योगवेत्ता योगी आनन्दावस्था में जा सकता है। (जीवात्मापरमात्मा की एकता का अनुभव निःसंदिग्ध निर्णय ही योग का परंफल परमानन्द प्राप्ति है)।

सर्वविध संकल्पों को त्यागकर सम्पूर्ण चेष्टाओं को शान्त करके ऐसी दिव्य लीनता मस्ती को पा लेता है योगी जो आत्मबोध्य है और वाणी का विषय नहीं है। (गूंगे के गुड़ स्वाद की तरह) स्वयं जिसे अनुभव तो किया जा सकता है, किन्तु बताया नहीं जा सकता जो जान लेता है वह बताने लायक ही नहीं रह पाता (नमक का डलो सागर की गहराई पा ले तो क्या बताने आ पायेगी) वो तो स्वयं सागर ही हो जायेगी वैसे ही उस तत्व को पाकर वहीं हो जाता है)।

सुखासन में सहज भाव से बैठकर सुस्थिर व सुनिश्चल हो जाये नख से लेकर शिखा तक सब शरीर को शिथिल (ढीला) छोड़ दे—बिल्कुल सहज भार हीन हो जाये।

अन्दर बाहर सर्वविध चिन्ताओं को त्याग दे, चेष्टाओं को भी त्याग दें, दृष्टि की चपलता को भी रोक दे, स्थिर दृष्टि हो चित्त को जैसे ही (उदासीन होगा) उत् ब्रह्म में आसीन् स्थिर कर लेगा योगी बैठते ही तत्व स्वतः प्रकाशित होने लगेगा।

स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे, स्वानन्दस्तत्क्षणद्भवेत्।
आनन्देन च सन्तुष्टः, सदाभास रतो भवेत्।।

सदाभ्यासेस्थिरीभूते, न विधिर्नैव च कमः।
न किंचिच्चिन्तनादेव, स्वयं तत्वं प्रकाशते।।

वाङ्मनः काय संक्षोभा, न्प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
दशा चान्तिमिवात्मानुं सुस्थिरं धारयेत्सदा।।

यावत्सं कल्पलेशोस्ति, श्रेयस्त्वं मनसाऽप्राप्यम्।
प्रयत्न संल्प कल्पना।।

सदा जाग्रदवस्थायां, सुप्तव द्योवतिष्ठते।
श्वासोच्छ्वासविहीनस्तु, निश्चितं मुक्त एव सः।।

योमिनस्तत्त्व संपन्ना, न जाग्रति न शेरते।
स्वप्नो चिदंश शून्यत्वं, जागरो विषयग्रहः।।

यथा यथा समभ्यासान्मनसः स्थिरता भवेत्।
वायुवाक्काय दृष्टीनां, स्थिरता च तथा तथा।।

स्वयं प्रकाशित तत्व में आत्मानन्द तत्क्षण ही प्राप्त होने लगेगा, उससे सन्तुष्टि आयेगी इसी अभ्यास में निरन्तर योगी को लगे रहना चाहिए। ये तत्व तो स्वतः प्रकाशित ही है।

इस प्रकार का अभ्यास दृढ़ हो जाने पर विधि व क्रम की वाध्यता भी नहीं रहती (विधि विधान में पूर्वापर-क्रम में कोई उलट-पलट पूजा में फूल पहले कि फल पहले आरती पहले कि भोग पहले आदि का वन्धन नहीं रहता जो हो रहा है वह पराव श्रेष्ठ पूजा है)।

वाणी मन व देह कृत क्षोभो को प्रयत्न पूर्वक निरूद्ध कर स्वयं को अन्तिम दशा में मानकर स्वयं को स्थिर रखें।

जब तक संकल्प का लेश भी है (प्रयासादि है) मन से भी श्रेष्ठ अप्राप्य ही है।

जो जाग्रत् अवस्था में भी सदा निद्रालु के समान रहता है (सुप्तवत्) निस्वास उच्छ्वास रहित महापुरुष को निश्चित ही मुक्त हैं।

तत्व सम्पन्न योगी न जगते हैं न सोते हैं, क्योंकि सोते ही चित् तत्व की शून्यता रहती है, जगते ही विषय विष की आग जलाती है। इसीलिए सांसारिक व्यवहार के प्रति वे विड़ा निमग्न से निश्चिन्त तथा आत्मचिन्तन के लिए जगे हुए जैसे निरन्तर निरत)।

जैसे-जैसे उत्तम अभ्यास द्वारा मन स्थिर होता जाता है वैसे-वैसे प्राण देह व दृष्टि भी अचंचल स्थिर होती जाती है।

दुर्निवारं मन स्ताव, तत्त्वं यावन्न न विन्दति।
विदिते परे तत्त्वे, मनो, नौस्तम्भकाकवत्।।

निष्पन्नाखिलभावशून्यनिभृतं स्वात्मस्थितिस्तत्क्षणात्। निश्चेष्टः शव पादपाणि करणो, लीना विकार स्थितिः। निर्मूला प्रविनष्ट मारुततया, निर्जीव काष्ठोपमा, निर्वातस्थितदीप वत्सहजवान् पार्श्वस्थितैर्हश्यते।।

निःक्षिप्तेक तके विहायकलुषं, यद्वद्भवेन्निर्मलं,
निर्वातस्थितनिस्तरंगमुदकं स्वस्थ स्वभावं परम्।
तद्वत्सर्वमिदं विहाय सकलं, देदीप्यतं निष्कलम्,
तत्त्वं तत्सहज स्वभावममलं, ज्ञातेऽमनस्के ध्रुवम्।।

वन्धाय विषयासक्तं मोक्षे निर्विषयं मनः।
मनसोप्युन्मनीभावे, द्वैत भावं न विद्यते।।

जायमानेऽमनस्कस्य, ह्युदासीनस्यतिष्ठतः।
मृदुत्वं च परत्वं च, शरीरमनसो भवेत्।।

ये मन तभी तक वश में आने में कठिनता देता है जब तक तत्व बोध नहीं हो जाता। परमतत्व ज्ञान होते ही मन ठीक वैसे ही स्थिर हो जाता है जैसे अथाह अपार अनन्त सागर में नाव के खम्भे पर बैठा कौआ थक्कर उड़ना भूल जाता है कहाँ जाये।

सम्पूर्ण भाव शून्य दशा में आत्म स्थिति पाते ही योगी निश्चेष्ट हो जाता है उसके सारे विकार नष्ट हो जाते है जैसे मृतक के हाथ पैर आदि इन्द्रियाँ विक्रिया हीन हो जाती है। योगी अपने प्राणों पर नियन्त्रण करने के कारण मृतकवत् निर्जीव काष्ठ जैसा हो जाता है और जैसे वायु रहित देश में जलता हुआ दीपक सहज होता है वैसे ही सहजावस्था में (उन्मनी दशा में) समीपवर्ती दृश्यों को साक्षी भाव में देखता है।

कूड़ाकरकटादि को त्यागकर समस्त कौलुष्य रहित वायु हीन देश का लहर आदि शून्य जल जैसे निर्मल होकर स्वस्थ व स्वाभाविकता युक्त हो जाता है वैसे ही इस सम्पूर्ण जागतिक प्रपंच को त्यागते ही उस दिव्य अमनस्क दशा के जानते ही सहज अमलस्वभाव वाला निष्कल तत्व देदीप्यमान हो जाता है।

मन यदि विषयों के प्रति आसक्त हो रहा है तो बन्धन की ओर जा रहा है मन यदि निर्विषयता की ओर अग्रसर है तो मुक्ति की ओर ले जा रहा है मन भी उन्मनी भाव को प्राप्त कर ले तो द्वैत मिट जाता है।

अमनस्कावस्था सिद्ध हो जाये और उदासीनता में योगी जीने लगे तो शरीर व मन दोनों ही मृदु (कोमल) एवं दिव्य अलौकिक होने लगते है।

नष्टान्तः करणस्तस्मे, देहगेहं मूलथं भवेत्।
सहजेनामनस्केन, मनः शल्यं वियोजयेत्।।

अमनस्क खनित्रेण, समूलोन्मूलने कृते।
अन्तःकरणशल्येतु, सुखी संजायते मुनिः।।

या लम्बिकायालनदोहनाभ्यां,
दीर्घाकृता कृता सा विपरीत मार्गति।
यस्त्रालु मूलान्तरगर्भदेशे,
प्रवेशयेत्सोन्मनतां प्रयाति।। (शिवयोगे)

हठयोगः



प्रविश्यवदनं राहोः, यः सोमं पिवतेनिशि।
ग्रह्यत्यकं च स्वर्मानु, मूत्वा सां सरक्षतु।।

(महाभा. २/१०/८४/७३)

अन्तःकरणरूपी स्तम्भ के नष्ट होते ही देह और गेह दोनों ही धराशाही हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान योगी का कर्तव्य है कि वह इस दिव्य सहज अमनस्क योग द्वारा मन को शल्य से विमुक्त कर दें।

मुनि कब सुखी होगा

अमनस्क रूपी कुदाल (खनिज) गेंती के द्वारा अन्तःकरण के शल्य का समूल उन्मूलन करने से ही मुनि सुखी हो सकता है।

योग प्रक्रिया में दोहन एवं चालन के द्वारा जिह्वा लम्बी की जाती है प्रयास ये रहता है कि जिह्वा आज्ञा चक्र का अतिक्रमण कर तालुमूलरूप गर्भदेश में पहुँच सके जिससे उन्मनी अवस्था को साधक प्राप्त होता है।

किन्तु इसकी प्रक्रिया को लोग उलटा समझते हैं कि आज्ञा चक्र है दोनों भौंहो के मध्य उससे ऊपर है तालुमूल, अतः जिह्वा को लम्बा करते हैं, किन्तु विपरीत विधि से जबकि उसकी सही विधि है जिह्वा को पलट कर कण्ठ विवर से अन्दर की ओर ले जायें, जैसे ही जिह्वा भ्रूमध्य से पार होती हुई आगे बढ़ती है और झरित दिव्य रस का स्वाद पाती है जिससे क्षुधा-पिपासा-जरा-रोग-मृत्यु तक पर विजय पायी जा सकती है वही दशा है उन्मनी—जो परमात्मा राहु के शरीर में प्रविष्ट होकर रात्रि में चन्द्रमा को पी जाती है ग्रस लेता है और दिन में सूर्य को ग्रस लेता है। राहु बनकर ही वह परमात्मा मेरी रक्षा करें।

राजयोगः

सम्भक्ष्य सर्वभूतानि, युगान्तेपर्युपस्थिते।
यःशेते जल मध्यस्तः, तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम्।।

(गरूण. शा. २८४)

कर्मजालमिदं सर्व ममनस्केविलीयते।
इन्द्रियग्राह निर्मुक्ते, निवृत निर्मलासृते।
अमनस्क हृदे स्नातः, परामृतमुपाश्नुते।।

इत्युक्तमेततनहजामनस्कं, शिष्यप्रधाय शिवेन साक्षात्।
नित्यं ततोनिष्कलनिष्प्रपञ्चं वाचामवाच्यं स्वयमेव वेधम्।।

चित्तेम च निश्चली भावे, यस्मान्मोक्षः प्रजायते।
तस्मान्मोक्षंस्थिरी कुर्या, रौदासीनय परायणः।।

चतुर्विधरमनोऽवस्या–विक्षिप्तं-तामसं, गतागतं-राजसं-चंचलम्, सुश्लिष्टं-सात्विकं-आनन्दी, सुलीनं-निर्गुणं-आत्मनिष्ठम्।

प्रलयकाल के समय जो सर्वप्रपञ्च को अपने में लीन करके जलमें शयन करते हैं, उन जलाधिवासी नारायण की शरण स्वीकार करता है।

अमनस्कता—ये सम्पूर्ण कर्म अमनस्कावस्था में विलीन हो जाता है। अमनस्क हृद में निवृत्ति रूपी निर्मल अमृत में इन्द्रिय रूपों ग्राहों से विमुक्त होकर जिससे स्नान कर लिया उसने परमामृत पा लिया।

इस सहज अमनस्कावस्था का उपदेश साक्षात् शिव ने किया ये अमनस्क भाव नित्य-निष्कल-निष्प्रपंच है वाणी द्वारा अकथनीय है अतः स्वतः ही जाना जा सकता है स्वयं ही जानने योग्य है।

चित्त निश्चल हो जाये जिससे मोक्षावाप्ति होती है। इसीलिए औदासीन्य परायण होकर मोक्ष को स्थिर करना चाहिए।

मन की चार अवस्थायें—१. विक्षिप्त—तमोगुणी विमूढावस्था उचितानुचितविचार असमर्थ। २. गतागतं—राजस अत्यन्त क्रियाशीलतावश चंचल होना। ३. सुश्लिष्ट—सात्विक आनन्दमय होना। ४. सुलीन—निर्गुण स्वयं लीन हो गया ये आत्मनिष्ठ।

यथायथासमभ्यासा, त्संकल्प विलयोभवेत्।
योगिनोभवतिश्रेयो, कर्मत्यागस्तदातदा।
शस्त्रमेतत्सदाभ्यास्यं, प्रयत्नेन मुमुक्षुभिः।।

सर्वमेतच्चिदाकाशं, ब्रह्मेतिघननिश्चये।
स्थितिं याते शमंयाति, जीवोनिःस्नेह दीपवत्।।

एतत्परावरविदोवदन्ति, तपस्विनोज्ञान समाधियुक्ताः।
अनादिविज्ञानमजं पुराणं, सोहं परं ब्रह्म जगत्समस्तम्।।

।।अमनस्क ख. ईश्ववामदे वा सवा. अमनस्क विवरणं नाम द्वितीयोध्या.।।

जैसे-जैसे अभ्यास से संकल्प विलय होता जाता है, वैसे-वैसे योगी के लिए शुभ कल्याण की स्थिति के कारक कर्म त्याग की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। मोक्ष की आकांक्षा रखने वाले को इस शास्त्र का सदा अभ्यास करना चाहिए (जो शक्रिय-निष्क्रिय है शान्त है वह मोक्ष की ओर बढ़ रहा है तब क्या शास्त्र अकर्मण्यता प्रमादालस्य कामचोरी की प्रवृत्ति को पुरस्कृत नहीं कर रहे? नहीं दैहिक निष्क्रियता की जड़ में जाओ यदि मन की उड़ान में कोई कमी नहीं है तब ही वह अकर्मण्य है, किन्तु बात मोक्षमार्गी की चल रही है जिसने मोक्ष को लक्ष्य बनाया और शान्त हो रहा है—रागद्वेष विरत हो रहा है इष्टानिष्ट के प्रति भेद मिट रहा है जो सन्त शान्त नहीं है वह मोक्ष मार्गी है ही नहीं जिसके व्यवहार में हलचल उदिग्नता हाय-हाय है उसके मन की चंचलता को नापने का पैमाना नहीं मिलेगा, अस्तु जो शान्त है, शीतल है, वही सन्त है वही मोक्ष मार्गी है।

जीवयात्रापूर्ण कब होगी?

ये सब कुछ चिदाकाश है ब्रह्मानन्दघन है ऐसा निश्चय होने पर जीव ठीक वैसे ही उपरत निस्पन्द शान्त स्थिर हो जाता है जैसे तेल खत्म हो जाने पर दीपक शान्त हो जाता है (संस्कृत में तेल का स्नेह कहते हैं, जैसे स्नेह के बिना दीपक का जलना बन्द हो जाता है ठीक वैसे ही अनुराग मोह ममत्व स्नेह के कारण ही व्यक्ति को जलना पड़ता है बड़ा सम्पर्क से हेतु शब्द है स्नेह इस रहस्य को जो समझेगा वही शान्त होगा। और विचार करें तो झंझट की जड़ है मैं और मेरा जब भी बेमौत मरा प्राणी नीचा देखना पड़ा घुटन में सिसकना रोना पड़ा तब मैं और मेरा ही कारण है। खेती करता किसान, सीमा पर प्रहरी बना जवान, बोझा ढोता इंसान चोरी करता वेईमान सब के मूल में मैं और मेरा।

तपस्वी ज्ञानी परावर वेत्ता समाधिनिरत योगी सब यही कहते हैं, ये जो अनादिअनन्त विज्ञानघन अजन्मा पुराण ब्रह्म है वह मैं ही हूँ मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं (अहं ब्रह्मास्मि) ये बोध होने पर जीव यात्रा पूर्ण हो जाये।

तव च काकिल न स्तुति रम्बिके,
सकलशब्दमयी किलते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो,
मनसिजासु वहि प्रसरासु च।।
इति विचिन्त्यशिवे, शमिताऽशिवे,
जगति जातमयत्न वशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तन वर्जिता,
नखलु काचन काल कलास्तिमे।। (अभिनव गुप्ताचार्याः)
चेतोपरागरूपाये, साक्षितापिन तात्विकी।
स्वरूपमेव मेसत्त्वं न तु धर्मेनभसववत्।।
मदन्यस्य सतोऽभावा, नहिसा जातिरिष्यते।
स्वरूपामेव मे ज्ञानं, न गुणः सगुणो यदि।।
अनात्मत्वमसत्वं च, ज्ञेयाऽज्ञेयत्वयोः पतेत्।
तथाप्याभाति कोप्येवं, विचाराभाव भावतः।।

महामाया जगदम्बिका के प्रति दिव्य बालभाव

हे करूणामयि माँ! आपका दिव्य वपु सकल शब्द रूपात्मक है, तब हर शब्द आपकी स्तुति ही तो है (भला कौन शब्द ऐसा अभागा होगा जो आपकी स्तुति में लीन न हो जाता होगा) हे कृपा मयी माँ अर्न्तजगत की सकल मर्तियों में एवं बाहर दृष्टि गोचर होती समस्त स्थूल सूक्ष्म धरा, धराधर, सागर, अम्बर, अनिल अनल रूपात्मक मूर्तियों में मैं आपका ही दर्शन करता हूँ, हे अकल्याणों का नाश करने वाली भक्तवत्सला माँ जगदम्बे! आपकी अकारण करुणा में सरावोर होने का अनुभव करने वाला मैं अब संसार में बिना किसी प्रयास के ही एक भी पल तक व्यर्थ नहीं गवाता (ऐसा कोई पल नहीं जब मैं आपकी स्तुति जप अर्चन ध्यान करता हूँ) हर पल की मेरी सारी क्रियायें आपका ही स्तवन है।

चेतोपराग रूपिणी मेरी साक्षिता भी तत्वत: नहीं है, क्योंकि मेरा स्वस्वरूप तो सत्वस्थ है जैसे आकाश मेधादि से संवलित सा प्रतीत भर होता है, किन्तु मेघादि से वह सदा भिन्न नर्लिप्त व शुद्ध ही रहता है वैसे ही आत्मस्वरूप भी नित्य शुद्ध बुद्ध चैतन्या नन्दात्मक ही है।

सत् का अभाव हो नहीं सकता कदापि नहीं हो सकता जिसका अभाव हुआ वह सत् नहीं है मेरे ज्ञान में स्वस्वरूप ही कारण है सगुण होने पर भी गुण आदि नहीं, क्योंकि गुण अनित्य है मेरा स्वस्वरूप नित्य है।

अनात्मत्व व असत्व तो ज्ञेय व अज्ञेय दोनों से ही दूर हैं, फिर भी ये कुछ जागतिक प्रतीति हो रही है उसका कारण है विचार का अभाव।

अपश्याम चिदाकाशे, विचारार्कोद यावधि।
विज्ञानविरतिः सुप्तिः, तज्जन्म स्वप्न जागरौ।
स्वसर्गक्षणः कथं मेस्युः, नित्यज्ञानस्यते त्रयः।।
अहमस्मि सदाभामि, कदाचिन्नाहमाप्रियः।
ब्रह्मैवाहमतः सिद्धं, सच्चिदानन्द मद्वयम्।। (अद्वैतमकरन्दे)
दृश्यमज्ञानजत्वेन, न वस्तु स्वप्नदृश्यवत्। (वृ.मा.का.)
नासतो जन्मना योगः, सतसत्त्वान्न चेण्यते।
कूटस्थे विक्रियानास्ति, तस्मादनतो जनिः।। (अद्वैतमकरन्दे)
नान्यदज्ञानतोऽस्तित्वं, द्वितीयस्यात्मनोयया।
निवृत्तिस्तद्वदेवास्य, नावगत्यात्मनोऽपरा।। (वृ.भा.वा.)
ब्रह्माण्डमेतत्सकलं, ब्रह्मणः क्षेत्रमुच्यते।
सहस्रकोटयः सन्ति, ब्रह्माण्डस्तिर्यगूर्ध्वगाः।।

और ये तभी तक दिखता प्रतीत होता है जब तक चिदाकाश में विचार रूपी सूर्य उदित नहीं होता, क्योंकि वैराग्य विज्ञान रूपी सुषुप्ति में ये नहीं रहता ये तो स्वप्न व जाग्रत में ही प्रतीत होता है और नित्य ज्ञानवान् स्वसाक्षी मुझमें ये तीनों ही अवस्थायें (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) हो नहीं सकती।

मैं हूँ सदा (भाति) आभासित होता हूँ, कदाचित् अपि मैं (प्रिय) अप्रिय नहीं होता (अस्तिभाति व प्रिय)। रूप से सिद्ध है कि अद्वय सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं ही हूँ।

ये संसार दृश्य है अज्ञानजन्य होने के कारण वस्तुतः नहीं है जैसे स्वप्न की दुनिया यथार्थ नहीं मनोराज्य मात्र होती है।

असत् का जन्म सम्भव नहीं सत् तत्व सत्व से च्यवित नहीं हो सकता सत् का कभी त्रिकाल में भी अभाव नहीं हो सकता। कूटस्थ में कोई विकार सम्भव नहीं इसीलिए नित्य ब्रह्मतत्व जन्ममरणादि रहित है।

जैसे आत्म तत्व की सत्ता का भान याथार्थ्येन होता है वैसे अन्य किसी दूसरे जगत् आदि का नहीं, यदि कोई कहे जगत् भी तो दिखता ही है तब उत्तर है कि ये अज्ञान के कारण ही प्रतीति का विषय है जैसे रज्जु में व्यर्थ ही सर्प भासता है, आत्मातिरिक्त किसी भी सत्ता है ही नहीं।

ब्रह्माण्ड स्थिति

सहस्र कोटि समवस्थित ब्रह्माण्ड सब ब्रह्म का ही क्षेत्र हैं, सभी ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा,

ब्रह्मणोहरणोरूद्रा, स्तत्र तत्र व्यवस्थिताः।
आज्ञया देव देवस्य, महादेवस्य शूलिनः।। (सौरे)
अयमेवहिनोऽनर्थो, यत्संसार्यात्मदर्शनम्। (अद्वैत ब्रह्माणि.)
आत्माज्ञानमहानिद्रा, जिम्भ्रितेऽस्मिञ्जगत्रये।
दीर्घस्वप्नोस्फुरन्त्येते, स्वर्गमोक्षादि विभ्रमाः।। (अद्वैत मकरन्दे)
सकल वाङ्मनसातिमाचितिः, सकलवाङ्मनसोऽव्यवहार भाक्।
(संक्षेणा.)

विष्णु, रूद्रादि देवता देवाधिदेव महादेव की आज्ञा से व्यवस्थित हैं। (प्रत्येक ब्रह्माण्ड में इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, सागर ब्रह्मादि देव हैं)। देखें रामचरित मानस में—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहे।।

अनर्थ क्या है

हमारे अनर्थ का मूल ही यही है कि हम संसार को ही सत्‌चित् आनन्द लक्षणात्मक आत्मभाव से देखते हैं, जबकि जगत् है असत् जड़ दुःखरूपात्मक कितना रचो पचो घुटघुट कर मर जाओ, किन्तु जगत् तो साथ नहीं देता सुख नहीं देता नहीं देता दे सकता, क्योंकि इसमें सुख है ही नहीं चाहे जब विचार कर लो चाहे जैसे विचार कर लो चाहे जो विचार कर लो जब खुद का पाला पोसा ये हमारा शरीर ही हमारा नहीं साथ देता चहरा झुर्रियों से नीरस हो जाता अंग अंग शिथिल हो जाता है तब अन्य कौन साथ देगा। अतः अनात्म वस्तुओं से मन को विरत कर आत्म विषयक चिन्तन करो ये दुनिया चलचित्र है तुम चलचित्र मत बनो दृष्टा साक्षी बनो। खबरदार-तमाशा खुद न बन जाना तमाशा देखने वाले।

मुक्ति भी काल्पनिक

आत्म ज्ञान न होना ही महानिद्रा है (या निशा सर्व भूतानां—मोह निशा जग सोवनिहारा देखहि स्वप्न अनेक प्रकार) इस महामोहमयी घोर निद्रा में तीनों लोक लीन हैं। ये स्वर्ग अपवर्गादि का चिन्तन भी दीर्घ स्वप्न के समान ही काल्पनिक हैं, मुक्ति की चर्चा तो तब हो जब कहीं बन्धन हो जीव तो नित्य शुद्ध वृद्ध चैतन्य स्वरूप नित्यमुक्त है स्वयं ब्रह्म है।

चित् तत्व

वाणी मन से परे है चित् तत्व, मन और वाणी के व्यवहार का विषय नहीं मन जिसका मनन वाणी जिसका वर्णन नहीं कर सकती वही अद्वय तत्व चित् है।

ॐ उद्धर्तुकामासनकादिसिद्धा

अइउण। ऋ ऌ क्। ए ओङ्। ऐ औ च्। ह य व र् र। लण्। ञ् म ङ ण न म्। झ म ञ् घढ धण्। ज ब ग ड द श्। ख फ तव्। कपय्। श ष स र्। हल्।

१. अ–निर्गुणं ब्रह्म **इ–चित्कलामाया** **उ–सगुण ईश्वरः**	**ण्–अभूत्**	
२. ऋ–सगुणेश्वरः **ऌ–मायावृत्ति**	**क्–अदर्शयतं**	
३. ए–साक्षी **ओ–मायी**	**ङ्–ऐक्यम्**	
४. ऐ–चित्कलायुक्तआत्मा **औ–मायाविशिष्टः**	**च्–उद्युक्तः**	

शिव सूत्र नवीन दर्शन

भगवान शंकर ने ताण्डव नृत्य के उपरान्त चौदह बार डमरू बजाया। (सुर तालादि शास्त्रीय विधान से नृत्य सम्पन्न होता है) जिससे १४ सूत्र ध्वनि रूप में प्राप्त हुए। की स्वतन्त्र विधि नृत्त कहाती है। बजाया सनकादि सिद्धों के उद्धार के लिए उसी को सुनकर पाणिनि मुनि ने व्याकरण का सृजन कर दिया। व्याकरण की दृष्टि से शब्दानुशासन की प्रक्रिया है, किन्तु अध्यात्म दृष्टि से निम्न प्रकार दृष्टव्य है।

	सूत्र	वर्ण	अर्थ	भावार्थ
१.	अइउण्	अ	निर्गुण ब्रह्म (अकारो वासुदेवः स्यात्)	निर्गुण ब्रह्म ही चित्कला माया के समाश्रय से सगुण ईश्वर हुआ।
		इ	चिल्कला माया (ये काम बीज भी है)	
		उ	सगुण ईश्वर	
		ण्	अभूत	
२.	ऋलक	ऋ	सगुण ईश्वर	उस सगुण ईश्वर ने ही इस माया वृत्ति को प्रकाशित किया।
		ऌ	मायावृत्ति	
		क्	अदर्शयत्	
३.	एओङ्	ए	साक्षी	सर्वसाक्षी निर्गुण ब्रह्म एवं माया संवलित ईश्वर परस्पर एक ही है।
		ओ	मायी	
		ङ्	ऐक्य	
४.	ऐऔच्	ऐ	चित्कला संयुक्त आत्मा	चित्कला संयुक्त आत्मा ही माया विशिष्ट हो गया।
		औ	माया विशिष्ट	
		च्	उद्युक्तः	

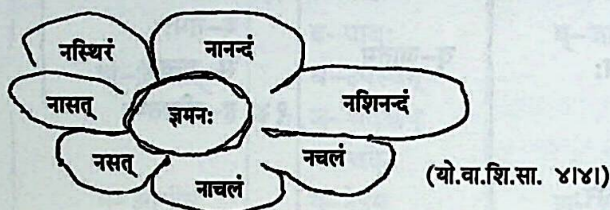
५. ह–व्योम य–वायुः व–जलम् र–तेजः	ट्–सृष्टम्	८. झ–वाग् भ–पाणिः	ञ्–आविर्भूतम्
६. ल–भूमिः	ण–आसीत्	९. घ–पादौ ढ–पायुः ध–उपस्थम्	ष्–जातम्
७. ञ–शब्दः म–स्पर्शः ङ–रूपम् ण–रसः न–गन्धः	म्–आसीत्	१०. ज–भवेक्रम् ब–त्वक् ग–नेत्रम् द–घ्राणम् ड–रसनम्	श्–उत्पादितम्

५.	हयवरट्	ह	आकाश	उसी से क्रमशः इस पञ्च-महाभूतों का सृजन किया।
		य	वायु	
		व	जल	
		र	तेज	
		ट्	सृष्टं	
६.	लण्	ल	भूमि	पञ्चमहाभूतभूमि थी हुई
		ण्	आसीत	
७.	ञमङणनम्	ञ	शब्द	उसी से पञ्च तन्मात्रायें हुई
		म	स्पर्श	
		ङ	रूप	
		ण्	रस	
		न	गन्ध	
		म्	आसीत्	
८.	झभञ्	झ	वाक	उन्हीं से पाँच कर्मेन्द्रियाँ आविर्भूत हुई।
		भ	पाणि	
		ञ्	आविर्भूत	
९.	घढधष्	घ	पाद	
		ढ	मलेन्द्रि	
		ध	मूत्रेन्द्रिय	
		ष्	जात	
१०.	जृम्बगडदश	ज	श्रोत्र	तदनन्तर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी उत्पन्न की।
		ब	त्वचा	

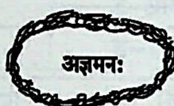
११. ख–उदानः क–व्यानः छ–समानः ठ–प्राणः थ–अपानः च–मनः ट–बुद्धिः त–अहंकारः	व्–जातम्	१२. क–प्रकृतिः प–पुरुषः	य्–अस्ति
		१३. रा–रजः ष–तमः स–सत्वम्	र्–अभूत्
		१४. ह–जीवतमा	ल्–आस्ते

		ग	नेत्र	
		द	जिह्वा	
		ड	नासिका	
		श्	उत्पादितम्	
११.	खफछठथ चटतव्	ख	उदान	उसी से पंचप्राण व
		फ	व्यान्	अन्तःकरण भी उत्पन्न हुए
		छ	समान	
		ठ	प्राण	
		ध	अपान	
		च	मन	
		ट	बुद्धि	
		त	अहंकार	
		व्	जात	
१२.	कपय्	क	प्रकृति	प्रकृति पुरुष एक ही है
		प	पुरुष	
		य	अस्ति	
१३.	शषसर	रा	रज	फिर प्रकृति के तीन गुण हुए।
		ष	तम	
		स	सत्व	
		र्	अभूत	
१४.	हल्	ह	जीवात्मा	जीवात्मा मध्यवर्ती प्रपंच को
		ल्	आस्ते	पार करके ही स्वमूल को पा सकता है

स्वरूपज्योतिरेवान्तः, परा वागनपायिनी।
यस्यां दृष्ट स्वरूपाया, मधिकारो निवर्तते।। (हरिका.)

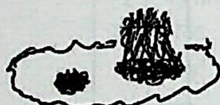


(यो.वा.शि.सा. ४।४।)



शृङ्खला

विषयाविषमाभोगाः, प्रविचार्यपुनः पुनः।
मनसासंपरित्यज्य, सेव्यमानाः सुखावहाः।।
यद्यत्स्यादिह तत्सर्वं, दृश्यतां विष वह्निवत्।



विश्वातीते चिदात्मनि

इदं विश्वम्। स्थितम्।

स्वरुपान्त ज्योति ही अनपायनी परावाक् है जिसको स्वरूपतः जानने पर अधिकार निवृत्त होता है।

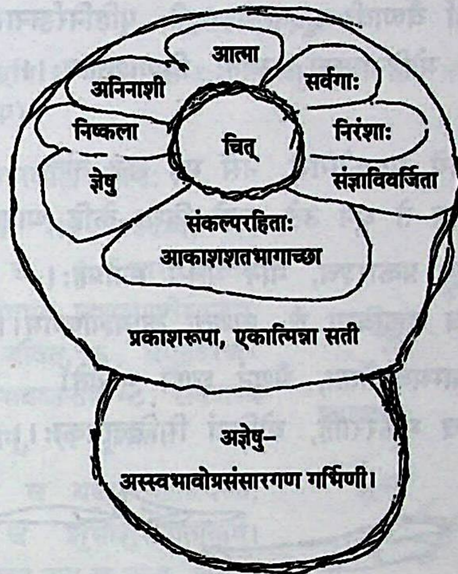
ज्ञानी व अज्ञानी का मन

मन ज्ञानी के लिए कुछ है ही नहीं, अज्ञानी के लिए बन्धन कारक शृङ्खला है।

विषय-विषय भोग है, ये बारबार विचार करे मन द्वारा सबका त्यागकर (भले ही संवन करले) सुखपूर्वक रहे (किन्तु मन से त्याग कर दें)।

जो यहाँ है उस सब को विष ज्वाला के समान देखो।

विश्वातीत चिदात्मा में ये विश्व स्थित है।



गर्वं नोद्वहेत न निन्दतिपरान् नो भाषते निष्ठुरम्,
उक्तं केनचिदप्रियं च सहस्रे, क्रोधं च नालम्बते।
श्रुत्वा काव्यमलक्षणं च संहस्र मानं च नाक्रम्यते,
दोषान्छादयते स्वयं न कुरुते, एतत्सतां लक्षणम्।।

ज्ञानी की दृष्टि

ज्ञानियों की दृष्टि में चित् है—आत्मा-सवंगामी-निरंश-नाम रूपादि रहित संकल्प रहित-प्रकाशरूप-सत-एकात्मिका-निष्कला-अविनाशी गगनवत सर्वव्यापक। अज्ञानियों की दृष्टि में चित् है असत् स्वभावोग्र—संसार समूह की समुत्पादिका आदि।

सज्जन की पहचान क्या है?

सज्जनों के लक्षण

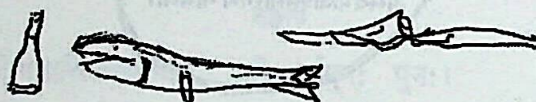
गर्व का लेश भी वाणी या व्यवहार में नहीं होता जिनके, दूसरों की निन्दा नहीं करते जो, जो निष्ठुर भाषण नहीं करते, (वशीकरण एक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर) किसी के द्वारा अप्रिय वचन सुनकर भी उद्विग्न नहीं होते जो, जो क्रोध के वश में नहीं आते, जो अलाक्षणिक काव्यादि को सुनकर भी सहसा किसी का मान भंग नहीं करते अन्यकृत दोषों की उपेक्षा करके पर्दा डाल देते हैं, जो स्वयं दोष युक्त व्यवहार नहीं करते,

आचार्या वैष्णवी सूक्ष्मा, लक्ष्मीः पुष्टिर्निरञ्जना।
जीवनी मोहिनामाया, नवैतः विष्णुशक्तयः।।

(पारमात्मिकोपनि. ज्ञे.)

हाड भये सवकीगिरी, नसें मईं सव तांत।
रोम रोम ते धुन उठे, बहो विथा केहि भान्त।।

मद्यं प्रेम प्रकारश्च, मीनं मत्स्य मनोग्रहः।
मांसं च ब्रह्मविद्या वै, अथवा कायशोषणम्।।
मुद्रातुशाम्भवीप्रोक्ता, मैथुनं ध्यान मुच्यते।
एते पंच मकरराहि, योगिनां सिद्धिदायकाः।।



वे सज्जन होते हैं, यही पहचान है जो परोक्ष में भी मनसा वाचा कर्मणा दूसरों का मन व मान रखते हैं वे सज्जन होते हैं।

विष्णु की नौ शक्तियाँ—१. आचार्या, २. वैष्णवी, ३. सूक्ष्मा, ४. लक्ष्मी, ५. पुष्टि, ६. निरंजना, ७. जीवनी, ८. मोहनी, ९. माया।

पंचमकार का रहस्य

मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा, मैथुन।

मद्य = प्रेम का प्रकाश प्रेम परिस्फुरण ही मद्य भाव है।

मीन = मन का निग्रह करना।

मांस = ब्रह्मविद्या प्राप्ति अथवा देह शोधन (शोषण)।

मुद्रा = शाम्भवी मुद्रा सिद्धासन में ज्ञानमयी आज्ञाचक्र में दृष्टि का स्त्रावक।
मैथुन = ध्यान की दिव्यावस्था

योगियों को सिद्धि देने वाले ये पाँच मकार है अज्ञानियों ने स्वेच्छाचार कहा। इन शब्दों के लौकिक अर्थ लगागर समाज में विकृति फैलादी और शास्त्र परम्परा की ओट लेकर वामाचार कौलाचार नाम दिया।

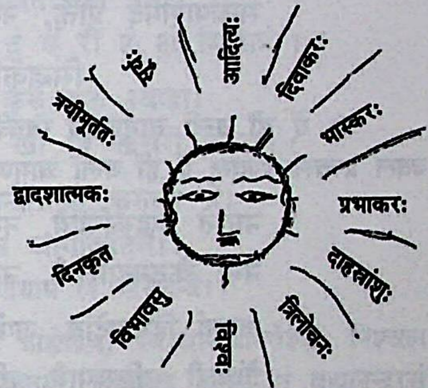
द्वादशक्षर मन्त्यः

प्रजापति ऋषिः। गायत्री छन्दः। विष्णुर्देवता। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
(प्रपञ्चसारे)

रामायणनवाह्न क्रमः

१. उद्योगो राम राज्यस्य, २. भरतोद्योग एव च, ३. मारीचस्यवधं यावत्, ४. सुग्रीवपुर लक्ष्मणप्रवेशान्तम्, ५. त्रिजटादर्शनं यावत्, ६. समुद्रतरण-विधिः, ७. निकुम्भवधान्तम्, ८. रावणस्य विजय यात्रापर्यन्तम्, ९. पूर्णता।

यस्माच्चयेन च यथा यद्राचयच्च,
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा तदा च तच्च, तावच्च
तत्र च विधातृवशादुपैति।।



द्वादक्षर मन्त्र

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इसके प्रजापति ऋषि है, गायत्री छन्द है, विष्णु देवता है, भगवतप्राप्ति में विनियोग हैं। इस मन्त्र के जप से सात रात्रि में गगनचारी सिद्धों के दर्शन होते हैं।

बाल्मीकि रामायण का नवाह्न पाठक्रम

१. राज्याभिषेक की तैयारी तक, २. भरत का राम दर्शनार्थ चित्रकूट प्रयाग तक, ३. स्वर्णमृगरूपी मारीच कथा तक, ४. लक्ष्मण जी का सुग्रीव के नगर में जाना तक, ५. त्रिजटा दर्शन तक, ६. सागर पार जाने की विधि तक, ७. निकुम्भ वध तक, ८. रावण की विजय यात्रायें तक, ९. परिपूर्णता तक।

कर्मफल की नित्यता

जिससे भी जिसके द्वारा भी जब भी जो भी जितना भी जहाँ भी शुभ या अशुभ कर्म हैं, वे सभी हमारे कर्म उससे ही उसके द्वारा ही, वैसे ही, तभी वही, उतना ही हुआ वहाँ ही फल देने के लिए विधाता भी व्यवस्थानुरूप पहुँच जाते हैं।

बारह सूर्य द्वादशादित्य नाम—सूर्य ये तो स्पष्ट ही है।

सार्धश्लोकी दुर्गा

मधुकैटभनाशं च, महिषासुरघातनम्।
शक्रादिस्तुतिकेचैव, दूत संवाद एव च।।
शुम्भराजवधश्चैव, नारायण कृत स्तुतिः।
सार्धपार्णमदं प्रोक्तं, नवपाठफलप्रदम्।।

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। ॐ ग्लौं हुं जुं सः विलय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं हीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा।।

नमस्ते रूद्ररूपिण्यै, नमस्तेमधुमर्दिनि।
नमः कैटमहारिण्यै, नमस्ते महिषार्दिनि।।
जाग्रतं हिमहादेवि, जपं सिद्धं कुरुष्व मे।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै, ह्रींकारी प्रतिपालिका।।
क्लींकारी कामरूपिण्यै, बीजरूपे नमोस्तुते।
चामुण्डा चण्डघाती च, यैकारी वरदायिनी।।

डेढ़ श्लोक में दुर्गासप्तशती

मधुकैटभ नाश महिषासुर का वध, इन्द्रादि देवताओं द्वारा कृत मातृ स्तुति-शुम्भादि द्वारा दूत प्रेक्षण-शुम्भ निशुम्भ का सपरिकर वध तदनन्तर नारायण कृत स्तुति इस प्रकार इस सार्ध (एक+आधा = डेढ़) श्लोक के पाठ से नव दुर्गापाठ का फल प्राप्त होता है।

सिद्ध कुञ्जिका स्तोत्रम्

इसकी हिन्दी का तो कोई प्रयोजन नहीं पर फल श्रुति जान लें पाठ तो मूल का ही करें—

ये मन्त्र जाग्रति का श्रेष्ठ उपाय है, कुन्जिका स्तोत्र स्वतः सिद्ध है, इसके ही पाठ मात्र से दुर्गापाठ का फल प्राप्त होता है। 'कुञ्जिका पाठ मात्रेण दुर्गापाठ फलं लभेत' इसके पाठ से दुर्गा पाठ शुभ होता है। येन मन्त्र प्रभावेण चण्डीपाठ शुभो भवेत्।

ये अत्यन्त गोपनीय है देवों तक को दुर्लभ। इसके पाठ मात्र से मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटनादि, षट्कर्म सिद्ध होते हैं।

विच्चेचाभयदानित्यं, नमस्ते मन्त्ररूपिणि।
धां धीं धूं धूर्जटे : पत्नीं, वां वीं वूं कामधीश्वरी।।

क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि, शां शीं शूंभेशुभं कुरु।
हुं हुं हुंकार रूपिण्यै, जं जं तुं जम नादिनी।।

भ्रां भ्रीं भ्रूं .... भद्रे, भवान्यैते नमो नमः।
अं कं चं टं तं यं शं, वें दुं ऐं रीं हं क्षं घिजाग्रं।।

घिजाग्रं त्राटेय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा।
पां पीं पूं पार्वतीपूर्णा, खां खीं खूं खेचरी तथा।।

सां सीं सूं सप्तसतीदेव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुण्व मे।
इदं तु कुञ्जिका स्तोत्रं, मन्त्र जार्गतिहेतवे।।
।।दुर्गापाठ फल प्रदम्। रूद्रयाम ले गौरीतन्त्रे।।

लक्ष्ये ब्रह्माणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य वाह्येद्रियं, स्वस्थानेविनिवेश्य, निश्चल तनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम्। ब्रह्मात्यैक्यमुपेत्य तन्मवतया, चाखण्ड वृत्यानिशं ब्रह्मानन्दरसं पिकात्मनिमुद्रा, शून्यैः किमन्यै भृशम्।। (वेवेकचूडाम.)

एव स्वयं ज्योति रक्षेष साक्षी विज्ञान कोशोविल सत्य जस्रम्। लक्ष्यं विधायेनेम सद्विलक्षणं, अखण्डवृत्यात्मतपानुभावय।। (विवेक चू.)

जो कुञ्जिका स्तोत्र पाठ के बिना दुर्गापाठ करता है उसे सफलता प्राप्त नहीं होती। 'न तस्य जायते सिद्धिः अरण्ये रोदनं यथा।'

ये कुञ्जिका सभी सिद्धियों की चावी है, ये संक्षेप में जानने योग्य विषय है। इसके पाठ के लिए न विनियोग न न्यास न ध्यान कुछ भी आवश्यक नहीं।

ब्रह्मानन्द पाने की प्रक्रिया

स्वलक्ष्य ब्रह्म में मन को दृढ़ता से स्थापित करके बाह्येन्द्रियों को स्वकेन्द्रों में निविष्ट करते हुआ देहावस्था की उपेक्षा करके निश्चल हो जाये इसी अखण्ड वृत्ति से निरन्तर ब्रह्मानन्दरस का आनन्द पूर्वक पान करें, फिर शून्यवत अन्यों से क्या प्रयोजन।

आत्मतत्व

विज्ञानघन, निरन्तर भासित यह आत्मतत्व सकल प्रपंच का साक्षी है तथा स्वयं प्रकाश है। असत् से विलक्षण इस सत् तत्व को ही लक्ष्य बनाकर अखण्ड वृत्ति पूर्वक आत्मभाव से विचारना चाहिए।

निर्विकल्प समाधिनास्फुटं ब्रह्म तत्त्वभवगम्यते ध्रुवम्।
असत्कल्को विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि।
निर्विकारेनिराकारे निर्विशेषे, भिदाकुतः।।
चित्तमूलोविकल्पोऽयं, चित्ताभावे न कश्चन।
अतश्चित्तं समाधेहि, प्रत्यग पे परात्मनि।। (विवेक चू.)
वहिस्तुविषयैः संगं तथान्तरहमादिभिः।
विरक्त एव शक्रोति, त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः।। (विवेक चू.)
योगस्य प्रथमं द्वारं, वाग्निरोधोऽपरिग्रहः।
निराशा च निरीहश्च, नित्यमेकान्तशीलता।।
ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्ता, मृषामात्रा उपाधयः।
ततः पूर्णं स्वमात्मानं, पश्येदेकात्मास्थितम्।।

निर्विकल्पक समाधि द्वारा निश्चित ही ब्रह्मतत्व स्पष्टतया प्राप्त होता है यह विश्व विकल्प रूपात्मक है असत् है काल्पनिक है। निर्विकल्प-निर्विकार-निराकार-निर्विशेष—एक वस्तु में भेद कहाँ से होगा।

प्र.—पर ये विकल्प तो प्रतीत हो रहा है ये आया कहाँ से?

उ.—ये विकल्पचित्त की खुरापात है (करामात) चित्त के अभाव में ये वैकल्पिक भाव होता ही नहीं अतः इस चित्त को प्रत्यक् रूप परमात्मतत्व में ही समाहित कर दो।

प्र.—कौन इस चित्त को चिदाश्रयी बना सकता है?

उ.—बाह्य रूप में विषयों में आसक्त आन्तररूप में अहंममादि रोगग्रस्त इस चित्त को ब्रह्मनिष्ठ विरक्त सन्त ही त्याग सकता है।

प्र.—योग का प्रथम द्वार क्या है?

उ.—योग का प्रथम द्वार है वाणी का नियन्त्रण—एवं अपरिग्रह (संग्रह न करने की प्रवृत्ति) जगत् से नैराश्य भाव कुछ न चाहने की भावना (अनिच्छा) तथा नित्य एकान्तशील होना।

विविक्त देश से वित्व अरतिर्जनसंसदि

ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सब कुछ असत्य है अतः आत्मस्थ होकर स्वयं को ही परिपूर्ण रूप में देखे।

वेराग्यवोधौ पुरुषस्य पक्षिवत्
पक्षौविजानीहि विचक्षणत्वम्।
विमुक्तिसौधाग्रलताधिरोहणम्,
ताभ्यां विना नान्यतरेणसिध्यति।।
(विवेक चू.)



ज्ञानवैराग्य

जैसे पक्षी गगन में विना पंखों के उड़ नहीं सकता ठीक वैसे ही पुरुष के जीवन में वैराग्य एवं ज्ञान दो पंखों के समान हैं, विमुक्ति रूपी दिव्य भवनस्थलताधिरोहण विना इन ज्ञान वैराग्य रूपी पंखों के सम्भव नहीं है। (अन्य कोई साधन नहीं इनके बीच)

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः, स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं, स्वस्मादन्यन्नकिञ्चन।। (विवेक चू.)

तरंग फेनभ्रमबुद्बुदादि, सर्वं स्वरूपेण जलं यथा तथा।
चिदेव देहाद्यह मन्तमेत, त्सर्वं चिदेवैक रसं विशुद्धम्।।

उपाधि वाध प्रति पक्षशून्यं, दृश्यत्वम्
विपक्षवाधागम सव्यपेक्षं परिच्छिन्नत्वम्
दृश्यत्वम व्याहतमम्बरादि, जडत्वम्
मिथात्व सिद्धौ सुदृढं हिमानम्।। (अद्वैतसि. १)

यस्यापिविप्रषिकृतार्थ तयान्निषण्णाः,
शक्रादयो जलचरा इव सागरस्य।
प्रत्यक्स्वभावमपास्त समस्तदुःखम्,
तद्वैष्णवं पदमवाप्तवतः किमन्यत्।।

आत्मा

मैं स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र-शिव—यहाँ तक कि ये सारा चराचर मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त कहीं भी कुछ भी नहीं है।

जैसे सागरगत जल ही तरंग, फेन, बुदबुदादि के रूप में प्रतीत होता है वह सब जल ही कुछ अन्य नहीं है, ठीक वैसे ही देह इन्द्रिय-तन्मात्रायें पञ्चमहाभूतादि सब कुछ चित् चैतन्य ब्रह्म सत्ता ही है, वही एक विशुद्ध रस है अन्य कुछ भी नहीं। मेरे अलावा क्या कुछ भी कही है। जिधर भी है, जो कुछ भी मैं ही तो हूँ। मैं ही गगन हूँ, मैं ही धरा हूँ। चराचर की चित् शक्ति मैं ही तो हूँ।

उपाधि बाध प्रतिपक्ष इत्यादि हेतु के दोष से रहित (हेत्वाभास रहित) होने से दृश्यत्वगया। विपक्ष का बाधक आगमादि द्वारा अनुमोदित। (होने से परिच्छिन्नत्वगया) इस प्रकार आकाशादि का दृश्यत्व अव्याहत है। (जड़त्व चला गया) अतः ये मिथ्या है ये सिद्ध हुआ इस प्रकार मान और दृढ़ हो गया कि ब्रह्म दृश्यत्व परिच्छन्नत्व जड़त्व रहित है।

जैसे सागर के एक देश में रहते जलचर तृप्ति का अनुभव करते हैं वैसे ही इन्द्रादि देवता जिनके दिव्य कृपा सिन्धु के विन्दु भर से कृतार्थ हो शान्त हो गये। प्रत्यक् स्वभाव वाले समस्त दुःखों के निवर्तक उस वैष्णव पद को पाकर कृतकृत्य होने वाले योगी के लिए अब क्या शेष है क्या पाना बाकी है, अर्थात् कुछ नहीं।

भरिता खनिता भूमिः, लाभालाभौ न शोचति।
परिपूर्णस्तथा भूमाः, लाभालाभौ न रोच्यति।।

सत्य वचन कृतानां शील जटाशौच वल्कलधराणाम्।
संतोषभिरतानां किमाश्रमैः कार्य मार्याणम्।।

(सुन्दरपाड्य वि. नीति द्विषष्टिकातः)

सारूप्यं तत्र पूजते शिवमहादेवेति संकीर्तने,
सामीप्यं, शिवभक्तिधुर्यजनता साङ्गत्य संभाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मक तनुध्यानेभवानीपते,
सायुज्यं ममसिध्यमत्र भवति स्वामिन्कृतार्थोरक्यहम्।।

(शिवानन्दन. २८)

अकाराद्याः स्वराधूम्राः, सिन्दूरामास्तुकादयः।
लकाराद्याः कञ्चनामाः, हकाराद्यौ तडिन्निभौ।। (सनत्कुमार संहिता)

ज्ञानी की दवा

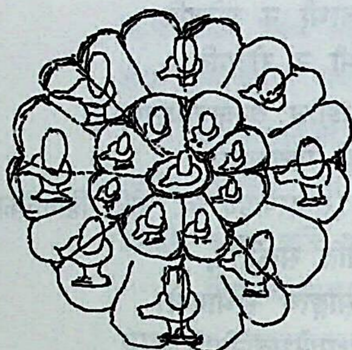
भूमि को मिट्टी डालकर पाट दो या फिर कुदाल से खोद दो भूमि को क्या? उसे क्या लाभ क्या हानि? अर्थात् भूमि लाभालाभ नहीं सोचती। उसी प्रकार परिपूर्ण भूमा लाभालाभ के विषय में नहीं सोचता। जगत्व्यवहार के लाभ हानि कल्पित है मिथ्या है अतः क्या....।

सत्य बोलने का व्रत जिनका है, जो शीलवान् हैं, जटाधारी है, जो अन्तर्बाह्य पवित्र हैं, जो वस्त्रानपेक्षी वल्कलमात्र से तनाच्छादन करने वाले हैं जो यथा लाभ सन्तोष में जीने वाले हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषों को आश्रमों से क्या प्रयोजन? अर्थात् आश्रमों में सत्यरक्षा, शीलरक्षा, शुचिता, सन्तोषादि की रक्षा संदिग्ध है।

हे देवाधिदेव महादेव! आपका पूजन करने में सारूप्य मुक्ति 'देवो भूत्वा देव यजेत्' (नरूद्रोरूद्रमर्चयेत्) भस्मरूद्राक्षादि धारण से स्वतः हो गयी, शिव महादेव इत्यादि नाम संकीर्तन से सामीप्य सिद्ध, शिवभक्ति निष्ठजनों के साथ संभाषण से सांगता सिद्ध हे भवानीपते चराचरात्मक तब दिव्य वपु का ध्यान करने से सालोक्य सिद्ध और अब मेरा सायुज्य सिद्ध हो रहा है हे स्वामी महादेव में कृतार्थ हो गया हूँ, सायुज्य = संयुक्त हो जाना बूंद सागर बन जाना जानत तुमहि तुमहि होई जाय। ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति।

वर्णों के वर्ण (रंग)

अकार आदि स्वर वर्ण धूम्रवर्ण के हैं, ककारादि वर्ण सिन्दूर जैसे है, लकारादि स्वर्ण जैसे हैं, हकारादि आकाशीय विजली जैसे है।



केदारः, कलशेश्वरः, पशुपति, धर्मेश्वरो मध्यमो, ज्येष्ठेय पशुपश्च कन्दुकशिवो, विघ्नेश्वरो जम्बुकः। चन्द्रेशोत्यमृतेश्वरो भृगुशिवः, श्रीवृद्धकालेश्वरो, मध्येशो मणिकर्णिकेश्वरशिवो देयात्सदामङ्गलम्। (काशी विश्वनाथस्तो.-६)

मानम्

पलं प्रकुंचितं मुष्टिः, कुडवस्तच्चतुष्टयम्।
चत्वारः कुडवः प्रस्थः, चतुः प्रस्थमथाढकम्।।
अष्टाढकोभवेद्भोगो, द्विगोणः सूर्य उच्चते।
सार्धसूर्पो भवेत्खारी, द्विद्रोणागोण्युदर हृता।।
तामेवभारं जानीयात्, वाहोभार चतुष्टयम्।
सेटक पादः पलं, चत्वारि पलानि कुडवः।।

सुन्दर पाण्याचार्याः च

किस शान से रहता है अल्लाह तेरा दीवाना।
अन्दाज़ है शाहाना, और ठाट फकीराना।।
ढूंढता फिरता था जिसको मैं वो खुद ही आ गया।
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल था मैं।।

केदार-कलशेंश्वर पशुपति, धर्मेश्वर, मध्यय, ज्येष्ठेश, पशुपति, कन्दुकशिव, विघ्नेश्वर, जम्बुक, चन्द्रेश, अमृतेश्वर, भृगु, शिव, श्रीवृद्धकालेश्वर, मध्येश, मणिकर्णिकेश्वर, शिव ये सब सदा मंगल करें।

तोल का विवरण

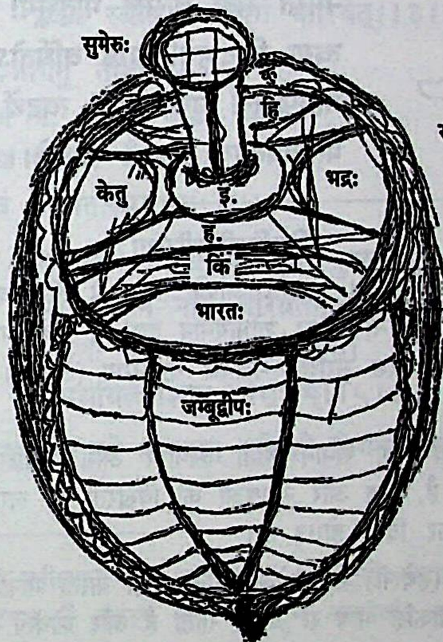
मुट्ठी बन्द करने पर जो धान्य आये वह एक पल ४ पल = १ कुडव, ४ कुडव = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ = १ आढक, ८ आढक = १ गोणी, २ गोणी = १ सूप, डेढ १—१/२ सूप = खारी—दो द्रोण = गोणी होता है इसी को भार जानो, ४ भार = वाह होता है। सेटक पाद को पल कहा जाता है ४ पल = कुडव होता है।

मधु घृत सुण्ठी गुडम् सम्पुटे संनिरुध्य ध्यान्य राशौत्रिमण्डलं स्थाप्यम्–रसायनम्।
(आयुर्वेदनवनीते)

व्ययगः...शनि कवी निज राज्य नाशम् करोति।। (लग्नवाराही)

लग्नस्थिताः...जीवेन्दु भार्गव बुधाः, सुख कान्तिदाःस्युः भार्गव बुधाः।
(लग्नवाराही)

मैं समझता था कि वह दूर है मुझसे लेकिन।
मुझसे भी मेरे करीब था मुझे मालूम न था।।



मैं समझता था कि अर्शे मुअल्ला पैग...।
मेरी आँखों में छिपा था मुझे मालूम न था।।

शहद, घृत, सुष्ठी, गुड़ इनको सममात्रा में मिलाकर सम्पुटित कर मृत्तिका पात्रों ठीक से बाँधकर धान्यराशि में स्थापित कर दे तो ये रसायन बन जाता है।

बारहवें भाव का शनि व शुक्र निजराज्य नाश करते हैं।

लग्नस्थ वृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, बुध, सुख व कान्ति देते हैं।

सप्तद्वीपा वसुन्धरा के मध्य सुमेरु।

देशाख्यरा. एक ताले। स्तन विनिहितमपि हारमुदारं, सा मनुते कृशतनु रति मारम्। राधिका विरहे तव केशव? माधव! वामन! विष्णो!।। ध्रु.।।१।। सरस मसृणामपि मलयज पङ्कं पश्यति विषमिव वपुषि सशंकम्।।रा.।।२।।

श्वसित पवन मनुपम परिणाहं, मदन दहनमिव वहति सदाहम्।।३।। दिशि दिशि किरति सजल कलाजालं, नयन नलिनामिव विगलित नालम्।।४।।

त्यजतिन पाणि तलेन कपोलं वाल शशिनमिव सायमलोलम्।।५।। हरिणिति हरिति जयति सकामं, विरह विहित मरणेव निकामम्।।६।।



नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे!
त्वया हिन्दुभूमे! सुखं वर्धितोऽहम्।
महामङ्गले! पुण्य भूमे! त्वदर्थे,
पतत्वेषकायो नमस्ते नमस्ते।।१।।

विरहिणी श्रीराधा

हे केशव! माधव! वामन! विष्णो! आपके विरह में श्रीराधिकारानी जी की दशा ये है कि स्तन प्रान्त पर अत्यन्त हल्का शोभायमान हार भी उन्हें भारी लग रहा है अर्थात् इतनी कृश हो गयी है, सरस सुरक्षित मलयज चन्दनराग (उबटन) को वे शरीर पर विष समान देखती है।।१-२।।

निजश्वास ही पवन के समान मानो कामग्नि और प्रज्वलित करने के लिए ही दाहकतायुक्त हो चलता है, सब ओर नेत्राश्रुओं को विखेरती सी लगती है मानों नेत्र कमल को नाल से अलग कर दिया हो।।३-४।।

निज पाणि तल (हथेली) से कपोल को दूर नहीं करती मानो बाल शशी को पकड़ा है। हर पल हरि हरि साकांक्ष भाव से जपति रहती है और सोचती हैं विरहावस्था तो मरण के समान ही है।

नव कोपलों किसलयों की शय्या देखनेमात्र से धधकती अग्नी शय्या भी लगती है जयदेवभणित गीत में केशव समीप जाकर सुख प्रदान करें। श्रीराधा जी को श्रीकृष्ण विषयक विरहावस्था का अत्यन्त रोचक वर्णन है।।५-६।।

मातृभूमि वन्दना

सदा वत्सला मातृभूमि माँ वन्दन तुमको सौ सौ बार हे भारतीय माँ सुख से तुमने पाला मुझको हे महामङ्गले! हे पुण्य भूमि तुम्हारा रक्षा में (सेवा में) ये काम लग जाये—

प्रभो! शक्तिमन्? हिन्दुराष्ट्रांग भूता।
इमे सादरं त्वां नमामो वयम्।
त्वदीयाय कार्याय वद्धा कटीयं।
शुभामाशिषं देहि तत्पूर्तये।।२।।

अजय्यां च विश्वस्य देहीश शक्तिम्।
सुशीलं जगद्ध्येन नभं भवेत्।
श्रुतं चैव यत्कंटकाकीर्णं मार्गम्।
स्वयं स्वीकृतं तत्सुगं कारयेत्।।३।।

हृदन्तः प्रजागर्तु तीव्राऽनिशम्,
विजेत्री च नः संहता कार्य प्राक्तिः।
विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्
परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्।।४।।

समुत्कर्ष निःश्रेयसक्यैक मुग्रम्।
परं साधनं नाम बीरव्रतम्।
तदन्तः स्फुरत्व क्षयाश्रेयन्ति।
समर्थायत्वाशिषा तेभृशम्।।५।।

त्यागी ज्ञः प्रचुरगुणः सुखी क्षमावान् युक्तिज्ञो विगतभयश्च षष्टराणौ।।
(बुधः) (दैवज्ञक.)

हे माँ बार-बार नमन। हे शक्तिमान् प्रभो (राष्ट्राङ्गभूत) हम तुम्हें सादर नमन करते हैं तुम्हारे कार्य के लिए हम कटिवद्ध हैं संकल्प पूर्ति का शुभ आशीर्वाद हमें दो। हे ईश! विश्व विजयी ऐसी शक्ति हमें दो जिससे जगत सुशील व नम्र हो जाये। जो कंटकाकीर्ण मार्ग सुना है वह हमने स्वयं चुना है उसे वह शक्ति सुगम बना दें, हमारा उत्कर्ष निःश्रेयस के लिए हो हम लक्ष्य पाने में वीरव्रती दृढ़ प्रतिज्ञ हों। अन्तःकरण में अक्षय श्रेय निष्ठा निरन्तर तीव्रतर भाव से जाग्रत रहे, हमारी संगठित कार्य शक्ति विजयी हो जिससे धर्म संरक्षण किया जा सके और इस राष्ट्र में पुनः परं वैभवं सम्पन्न किया जा सके—इसमें आपका आशीर्वाद पुनः पुनः समर्थ हो।

कन्या का बुध उच्च का होता है अतः जातक त्यागी-विद्वान्-विबिध गुण युक्त-सुखी, क्षमाशील, युक्तिमान, निर्भय होता है।

नरपति सत्कृतोऽनो भौमे स्वगृहे। भातृस्थाने ऽङ्गनाथे सहजभवनपेऽल्पशक्तिः, सद्बन्धूराज पूज्य कुलजन सुख दो मातृपक्षेण युक्तः। (जातकालं.)

गोपि पत्र

तर झुलसी, ऊपर तरी, काजल जल छिड़ छाय।
प्रिय पाती विन लिखी, वाँची विरह वलाय।।

स्मरनिपुणः सुखितश्च विलग्ने-शुक्रे। (दैवज्ञक.)

कर्किण्यस्वो विकल दशनो मातृहीनोऽसुतोऽज्ञः। (शनौ)

हरौ योष्टातार्थ प्रवर युवतिर्मन्द तनयः। (सिंहे शुक्रे)

सेनानी बहुवित्तदारतनयो दातासुमृत्यः क्षयी। तेजोदार गुणन्वितः सुरगुरौ ख्यातःपुमान्। कौजभे/मेषे वृश्चिके गुरौ।

श. ◡ १ वु. दुरुधरा। वु. ☼ २ भौ. उभयचरी

मंगल स्वग्रही हो तो राजबन्ध भ्रमणशील होता है जातक भ्रातृस्थान तृतीय में अंगनाथ (लग्नेश) हो तो अल्पशक्ति, सद्बान्धवयुक्त, राजपूज्य कुलजनों को सुख देने वाला मातृपक्ष से युक्त होता है।

गोपीपत्र

गोपाङ्गनायें अन्दर से विरहाग्नि में झुलस गयी हैं, किन्तु ऊपर से अभी तरी गीली आर्द्र हैं, वो कैसे—आँखों का जल काजल के साथ छिड़काव करके उस आग को बुझाने की कोशिश करता है पर क्या सम्भव है, लिखने बैठे तो आँखें आँसुओं की बाढ़ में डूबी काजल के कुछ धब्बे विखर गये लो लिख गयी पाती विना लिखी में इतना लिखा है वाचने वाला खुद वांचते वांचते विरह की आँच में गाल उठे।

लग्नस्थ शुक्र जातक को कामकला प्रवीण व सुखी बनाता है।

कर्क का शनि दन्तावली को विकल बनाता—मातृ हीन, अपुत्र, अज्ञ बनाता है।

सिंह राशि का शुक्र हरिभक्ति, युवति संग देता है सन्तति की मन्दता भी देता है।

मेष या वृश्चिक का वृहस्पति (कौजभे, कुज, मंगल के घर में) सेनानी वहुवित्त, बहुदार, बहुतनय, बहुदाता, बहु सुभृत्यवान व क्षमाशील बनाता है तेजस्वी उदार गुणान्वित व प्रख्यात बनाता है।

चन्द्र के एक ओर शनि दूसरी ओर बुध रहे तो दुरुधरा योग होता है।

सूर्य के एक ओर बुध एक ओर मंगल रहे तो उभयचरी योग होता है।

१. उत्पन्नभोगसुख मुग्धनवाहनाढ्यस्त्यागान्वितो दुरुधरा प्रभूवः सभृत्यः।

२. समवायवासद्यशः स्थिर मानसा सरलहक् सर्वं सहः सन्मतिः।

चरे चरे स्थिते द्वौ च, लग्न रन्ध्राधिपौयदि।
पूर्णायुर्योगो विज्ञेयो, निःशंकं द्विज सत्तम।। (दैवज्ञ कल्पद्रुमः)

रूद्रग्रहः

लग्नझूनाष्टमेशी च, तयोमध्ये च योवली।
प्राणी रूद्रः स विज्ञेयः, राद्रशूलान्तमायुः स्यात्।।

वल्लकी योगः

सप्त स्थाने ग्रहासर्वे, वल्लकी योगमादिशेत्।
वीणोद्धवश्चनिपुणः, प्रिय गीतनृत्यः।।

मतिविक्रमवान्तृतीयेर्के। मूक्तोन्मत्र जडान्धहीनवधिर प्रेष्याः शशांकोदये। विसुखः पीडितमानसश्चतुर्थे (भौमे)। द्वितीये वुधे-धनी। नवमे गुरौ-तपस्वी।

दुर्धरायोग—का फल है भोग सुख धन वाहनादि सम्पन्न होता है जातक फिर भी सेवकादि होने पर भी त्यागमयी वृत्ति वाला होता है।

अभयचरी—पवित्रकीर्ति वाला, स्थिरचित्त वाला, सरल दृष्टि वाला, सहनशील सन्मति सम्पन्न जातक होता है।

पूर्णायु योग—लग्नेश एवं रन्ध्रेश (अष्टमेश) दोनों ही चर-चर राशियों में हो तो निस्सन्देह पूर्णायु योग है।

लग्न से सप्तमेश अष्टमेश इनमें जो बली होगा वह प्राणी रूद्र होगा रूद्र शूल के समान उसकी आयु होगी।

वल्लकीयोग—सप्तस्थान (पत्नीभाव में) सभी सातों ग्रह हो तो ये वल्लकी (वीणा) योग होता है जातक वीणावादन पटु नित्य गीत प्रिय होता है।

तीसरे स्थान का सूर्य मतिमान् शक्तिमान् बनाता है, चन्द्रलग्न में होतो मूक, उन्मत्त, जड़, अन्ध, हीन, वधिर, प्रेष्य होता है जातक कदाचित् चन्द्र क्षीण हो तो अवयव हो। चतुर्थ में मंगल हो तो सुखहीन पीड़ितमना बनाता है। द्वितीय का बुद्ध धनी वनाता है, नवम का गुरु तपस्वी बनाता है।

रे चल चिन्तय चिन्तय मारम्।
अभिसर मा संसारम सारम्।।
मानव तनुरिय मति दुखाया तरसिन किं भवपारम्।
विषयाशाविष विष परिमोहित यासिनिरयमसिधारम्।।
हरि पद युगवर शरणमुपाविश पञ्जरमिदमति सारम्।
मृगतृष्णामिव शाल्मलिफलामिव मायारचितम सारम्।।
मोहमात्रं इतिः परिजनगहने मा कुरु कामविकारम्।
गुरु पितृमातृ सखायोरामः त्यज चरणे निज मारम्।।
है गुम राह जिस दिल में वाकी खुदी है।
मिला तुझसे जिसने खुदी को गमाया।।

अरे चिन्तन करो चिन्तन करो इस असार संसार की ओर मत बढ़ो जाओ। ये मानव तन अत्यन्त दुष्प्राप्य है (दुर्लभो मानुषों देहः) इस मानव तन रूपी नौका द्वारा इस अपार भव सागर को पार क्यों नहीं करते।

विषय रूपी महासर्प के विष से परिमोहित हुए तो घोराघोर खड्गधारवत् तीक्ष्ण दुःखों (नरकों) को प्राप्त करोगें।

अतः भगवान के युगल चरण कमलों की शरण में छिप जाओ, क्योंकि ये पिजड़े के समान सुरक्षा वाले सार युक्त हैं, यही सुरक्षा का विश्वास है। अन्यत्र नहीं, मृग तृष्णा एवं शाल्मलि फल के समान सारा प्रपञ्च मिथ्या आकर्षक है, माया रचित काल्पनिक है स्वप्न जगत् के समान। (मृग तृष्णा सब जानते ही हैं, शाल्मति वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगता है जिसे देखकर शुकादि पक्षियों के मुख में सुस्वादु कल्पना वश पानी आ जाता है, किन्तु वहाँ जाने पर उसको पाने पर लगती है निराशा हाथ अरे ये तो देखने भर का फल है, वास्तविक नहीं वैसे ही ये जगत् देखने में बहुत सुन्दर लगता है पर है नहीं परिणाम में दुःखद है आपात रमणीय है।)

पुरजन परिजन स्वजनों में जो रति है ये मोह ममता मात्र है अतः इनमें आसक्तमत हो ये वास्तविक नहीं वास्तविक मातापिता गुरु सखा तो राम ही है उनके ही इनके ही चरणों में अपना भार छोड़ दो। (नाता है एक राम जी से दूजा नाता छोड़ दो।)

सोऽहं शिव इति भाव परे।
श्रुति वचनानि विचारय रे।।
शुक्ताविव रजतं सिन्ध्याविव लहरी मृदिव घटादि।
कनके कटकादीव ब्रह्माणि विलासित मेतदनादि।।
सान्त सब धारय रे।। सोहं शिव इति भा.।।१।।
मानं बोधं मानं बोधय मानेन वुभुत्सन्ति।
एधोभिस्ते मेधा रहिता दहनं प्रदिधक्षन्ति मौढ्यमपवारपरे।।
सोहं शिव.।।२।।
प्रज्ञानं ब्रह्महं ब्रह्मस्मीति च तत्त्वमसीति।
अयमात्मा ब्रह्मेति चतस्त्रः श्रुतये निगदन्तीति।
कृष्ण भरितं श्रय रे। सोहं शिव इ.।।३।।
गुरु चरणे गुरु निर्भरभक्तिः तीव्रमुमुक्षा
पूर्णविरचित् जहि संसारं दुर्भरवारं लक्ष्यमेहि
शिव ब्रह्म तत्त्वभवसाद्य रे।
सोहं शिव इति भावपरे। श्रुतिवचनानि विचारपरे।।४।।

वह शिव मैं ही हूँ ऐसा चिन्तन करो और श्रुति वचनों का विचार करो—(शिवोऽहं शिवोऽहं आदि), जैसे सीपी में दृक्भ्रमवश रजत की प्रतीति सागर में लहरों की प्रतीति होती है ठीक वैसे ही अनादि ब्रह्म में इस जगत् की भ्रमवश प्रतीति भर है यथार्थ नहीं। ये तो नष्ट होगा ही।

मान ही ज्ञान है मान को जानो मान द्वारा (प्रमान) ही वह तत्व ज्ञेय होता है। विवेक रहित परिवर्धमान ये सब जले को ही जलायेंगे—इस मूढ़ता का वारण करो।

प्रज्ञानं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि—तत्तत्त्वमसि, अयमात्मा, ब्रह्म—ये चारों श्रुति महावाक्य कहते हैं, कृष्णमणि क़ा आश्रय ले स्वयं को शिव भाव से देखें।

गुरु चरणों में निर्भर भक्ति—तीव्र मोक्ष की आकांक्षा सम्पूर्ण विरक्ति पूर्वक इस दुर्भर अपार असार संसार को नष्ट कर दो शिवाद्वितीय ब्रह्म रूपी लक्ष्य को पा लें।

तत्व को प्राप्त कर लो—यहाँ जगत् में उसके कारण ही सबका अनुभव हो रहा है, किन्तु इस अनुभव से उस तत्व की अनुभूति नहीं हो पाती।

अनुभवतीह सर्वं नहि अनुभूयेत सतेन।
व्यञ्जन्भानुरशेषं नहि व्यज्येतस तेन।
युक्ति युक्तं श्रयरे, स्तेहं शिव.।।

तीव्रेण कुष्टेन गृहीत मूर्तिः, युः सोमरा जी नियमेन खाद्यत्।
संवत्सरं कृष्णति लछितीयां, ससोपराजें वपुषतिशेते।।
(अष्टांग ह्रदये)

पुनर्नस्यार्धपलं नवस्य, निष्टं निवेध पयसार्धमासम्।
जीर्णोपि भयः स पुनर्नवः स्यात्।।

पुनर्नवा क्या है

नारी जीवन गहरा सागर दोनों एक समान।
इसमें भी तूफान हमेशा उसमें भी तूफान।।
चैन नहीं मौजों को जैसे यह भी चैन न पाये।
दुनिया से छूप छूप कर रोये दिल का दर्द छुपाये।।
लाख सितम हो फिर भी इसके होठों पर मुसकान।।नरी जी.।।

हँसे तो इसको बुरा कहें रोये तो बदनाम।
गम खाना और आँसू पीना यही है इसका काम।
इसी तरह यह अबला नारी होती है वह्निदास।।नरी जी.।।

चाहे इसको गले लगावो चाहे मारे ठोकर।
फिर भी अपना धर्मन छोड़े रहे पती की होकर।।
बुरा भला जैसा भी हो पर इसके लिये भगवान्।।नारी जी.।।

सूर्य सबको प्रकाशित करता है, किन्तु वह परम तत्व इस सूर्य द्वारा भी व्यक्त नहीं श्रुतियुक्त हो युक्तियुक्त का आश्रय लो।

औषधि

तीव्र कुष्ठ जिसको हुआ है वह कृष्णतिल के साथ सोमराजी न्तिमपूर्वक खावे तो वर्जभर में कुष्ठ नष्ट होगा वह चन्द्र की शोभा के समान शोभावाला होगा।

नवीन पुनर्नवा को आद्या पल नित्य पीस दूध के साथ पीवे कितना भी वृद्ध हो जीर्ण हो वह पुनः नवीन हो जाता है।

भगन्दरे

भुजङ्ग निर्मोक विभूतिकाया, वटस्यदुग्धेन विधाय कल्पम्।
तत्कल्क लिप्ताविवरस्यवर्ति भगन्दरं नाशयतेक्षणेन।।

(लक्ष्मीमोदतरंगिणे)

अयोरजः कृष्णतिलाञ्जनानां भृङ्ग राताधिमिश्रम्।
श्वित्रं निहन्तु प्रथते हिचित्रम्।।
कर्णा नादे हितं तैलं, सार्पपोत्यं च पूणे।। (अष्टांग हृदये)
कृष्णा सर्ववदने सहविष्कं दग्धमञ्जनमनिसित धूमम्।
चूर्णितं नलद पत्रविभिश्रम् भिन्नतारमपि रक्षति चक्षुः।।

६ बु. | श. ४ के.
७ सू. | ५ चं.शु. | ३
८ मं. | २
९ | ११ | १ गु.
१० रा. | १२

स्वयमधिकृतवित्तः पार्थिव स्तत्सयोका।
भवतिहि सुनकायां धीधनाख्याति मांश्च।।

औषधि

सर्प की के चुली की भस्म को वट के दूध के साथ पीसकर उसे जहाँ विवर में वह व्रण हो वहाँ लेपन कर दे तो ठीक हो जाता है।

लोह भस्म व कालेतिल के अञ्जन को भृंगराज के साथ पीसले और लेपन करे तो कोढ नष्ट हो जाता है।

कान में पीडा हो कान में नाड होता हो सरसों का तेल डालले गुनगुना करके ठीक हो जाता है।

नेत्ररोगौषाध

कृष्ण सर्प के मुख में (अष्टांग हृदय देखें) हविसहित जला हुआ भज्जन उसके निकलोधूम को जलऽपत्र के साथपीसकर भले ही नेत्रगोलक नष्ट प्राय हो तारा भी भिन्न हो गया हो तब भी नेत्र ठीक ही जायेगा।

महाराज श्री का जन्मलग्न चिन्तामणि में विस्तार से दिया हो, चन्द्र के दोनों ओर

प्रभुरगद शरीर शीलवान् व्यक्त कीर्तिः।
विषय सुख सुवेषो निर्वृतश्चानफायाम्।।
उत्पन्नभोग सुख युग्धन वाहनाढ्यः।
त्यागान्वितो दुरुधराप्रभवो सम्टत्यः।। (वृहज्जा.)
सौम्यः पटुः सुवचनो निपुणः कलासु।
परविभव परिच्छेदोपमोक्ता रवितनयो वहुकार्य कृद् गणेशः।।
नवमेशेतुर्येपिशुनः सन्तानवर्जितः पित्रो रसुखदो भवेत्।।

(त्रिका. ज्योति.)

जिस किसी धातु को द्रुत कर उसमें पारद डाले तो पिट्ठी वन जाती है।

(रसायनसार)

मृद कोटि गुणं स्वर्णां, स्वर्णात्कोटिगुणे यति।
मणि कोटि गुणो वाणो, वाणकोटि गुणे रसः। (निषण्टुः)

इतिरसायनसारे।

न स्त्रीणां वपनं कार्यं।
सर्वा-कोशान्समुद्धृदय, शेष ये दंगुल द्वयम्।
एवमेव तुनारीणां, शिरशो मुण्डनं भवेत्।। (स्क. पु. का.स.-४०)

शुभ ग्रह हों तो ये सुनफा योग होता है इस योग में उत्पन्न जातक राजा या राजा के समान है वुद्धिमान-धनवान-कीर्तिमान होता है।

अनफा—योगोत्पन्न जातक प्रतापी स्वस्थ शरीर-शीलवान कीर्तिमान-विषय सुखासक्त सुवेसधारी होने पर भी विरक्त सा ही रहता है।

दुर्धरा—योगोत्पन्न जातक धनवाहन भोगादि समुपलब्ध होने पर भी भृत्यादि के रहते भी त्यागमय जीवनजीने वाला होता है।

रवितनय (शनि) के द्वादश में होने पर जातक सौम्य चतुर-वाक्पटु कला कुशल परायेधन भवन कंा उपभोग करने वाला, नेतृत्वगुण सम्पन्न होता है।

नवमेशयदि चतुर्थ में हो तो पिशुनता दोषयुक्त साथ ही सन्तान हीन होता है मातापिता को सुख नहीं दे पाता।

मिट्टी से करोड़ गुना सोना, सोने से कटोड़ गुना मणि, मणि से करोड़ गुना वाण, वाण से करोड़ गुना रस अर्थात् पारद होता है।

स्त्रियों को मुण्डन नहीं कराना चाहिए अपितु दो अंगुल शेष रखले बाकी कटा दें।

वाही को देशः

पंचानां सिन्धुषष्ठानां, अन्तरं ये समाश्रिताः।
वाहीकानाम ते देशा, न तन्त्रदिवसं वसेत्।।
धर्मवहिभूतत्वा छाही कत्वम्। (महाभाष्योद्योतदीकायाम्)

भगन्दरादौ नारायण रसः (रसरा.सु.)

सुर तरुतैलघृत मधु धात्रीरस पयांसि निर्मथ्य।
पीत्वा विशुद्ध कोष्ठो भवति पुमावन्तरतः।। (रस हृदय तन्त्रम्)

मासने कान्ति मेधे द्वाभ्यां प्रशमयति दोष निकरं च।
मास त्रितयेन पुनः स्याद मरवपुर्महातेजाः।।

सुरदारुतैलमाज्यं त्रिफला रस संयुतं च समभागम्।
पीतं तत्सप्ताहान्नयनविकारं शमं नयति।।

सुरतरु तैलं संधृतं पीत्वाशाल्योदनं च समीक्षरम्।
जीर्णाहारेमुक्तवा हरति सकुष्ठान्पीनसादीन्।।

अन्यत्र ऐसा भी है कि दो अंगुल कटा दे शेष रहने दे अस्तु सम्पूर्णतया केश वपन नहीं कराना चाहिए।

महाभाष्य की उद्योत टीका में लिखा है—धर्म से वहिर्भूत होने के कारण ये वाहीक कहाते हैं, (आचार विचार शून्य)। **वाहीकदेश**—पांच सिन्धु आदि नदियों के मध्य का भाग वाहीक कहलाता है पर वहाँ एक दिन नहीं रहना चाहिए रात की तो बात ही क्या, ये पंआवादि प्राप्त भी।

भगन्दर रोग में नारायण रस उपयोगी है

देवदार को तेल, गोघृत, शहद, आंवला ये सब गोदुद्ध में मथकर पीने से एस कोष्ठ विशुद्ध हो जाता है।

मासभर पीने से कान्ति एवं मेधा विशिष्ट हो जाती है दो मास पीने से सम्पूर्ण नाडीगत दोस समूह नष्ट हो जाता है तीनमास पीने से देवोपम दिव्य तेज सम्पन्न देह हो जाता है।

इस सुरदास के तेल को घृत व त्रिफला रस के साथ समभाग करके पीने से सप्ताह भर में नेत्र विकार शान्त होता है।

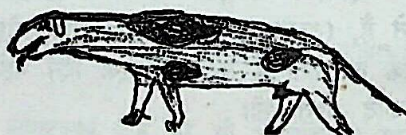
सुरतरु तेल घीसहित पीकर दूध में पके साठी के चावल (शाल्योदन) जीर्णाहार भोजन के पच जाने पर (अजीर्ण में नहीं) खाने तो सकृष्ठ पीनसादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

घृत सहितः पित्तकृतान्तैलयुतोवातसंभवान्रोगान्।
गुडसहितो मधुना वा कफजानृ हन्त्यम दारु रसः।।
सुर तरु, सुर दारु, अमर दारु, देवदारु वृक्ष तो नहीं।



पांवंधवदुभयोः सम्बन्धः।

सार्षपं तैलं सकरिचं पकं द्विकर्षं
श्वान विषौषधम् वेगात्पूर्वम्।।



इस रस को घी के साथ लेने से पित्त जन्य रोग, तेल के साथ लेने से वात जन्य रोग, गुड या शहद के साथ लेने से कफ जन्य रोग नष्ट होते है ये उपचार वैद्य के निर्देशन में करें स्वतन्त्र नहीं।

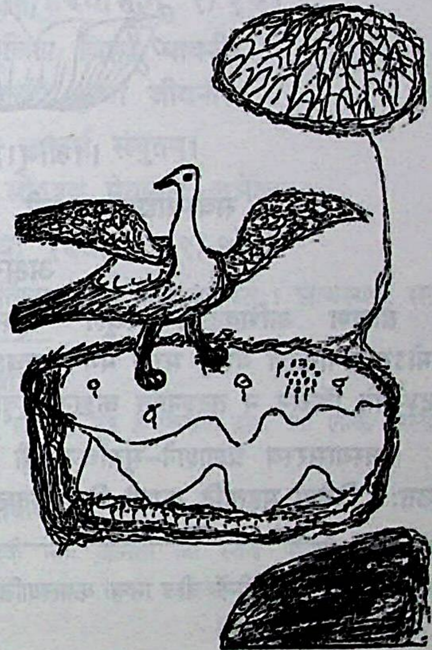
साङ्ख्यमतानुसार प्रकृति व पुरुष का सम्बन्ध लगंड़े व अन्धे की तरह है एक देख नहीं यथा एक चल नहीं सकता पर अंधे की पीठ पर वैठकर लंगड़ा रास्ता दिखाये तो दोनों का काम चल जाये।

सरसों का तेल लालमिर्च के साथ पकाकर लगाने से कुत्ता का काटा विष उतर जाता है।



कुरान-खुदा। हद्दोस-मुहम्मदसाहब।

मानसरोवर देह में,
मुताहल जो श्वास।
चुगिये हंस स्ववूप है,
खुलै कर्म की गांस।।
(चरणदास)



नीचन को ऊँजा करे,
ऊँचन करें कर देव।
देवन कूंहरि ही करै,
रहे न दूजा मेव।।

कुरान का उपदेश खुदा द्वारा तथा हदीस मुहम्मद साहब द्वारा हुआ ऐसा माना जाता है।

इस शरीर रूपी मानसरोवर में श्वांस रुपी मोती को सोह की स्वात्मानुभूति रूपी हंस भाव से भोग करने पर कर्म ग्रन्थि का बन्धन खुल जाता है—आवागमन मिट जाता है।

सोऽहं की ये दिव्यानुभूति (आध्यात्मिक पद्म की यात्रा) संसारासक्त निम्न प्राणी को उच्चतर भूमिका में पहुचा देती है जहां से मानवत्व पूर्ण होकर देवत्व रूप में परिवर्तित हो जाता है दिव्यभाव आते ही अलौकिकता आते ही उसतत्व को जानते ही जीव शिव नर नारायण हो जाता है द्वैत भाव विलुप्त हो जाता है



।।श्रीम्।ह्रीम्।।

सर्वस्याद्यामहालक्ष्मी कमलाकमलालया।

अक्षरम्

ब्राह्मण अभिवदन्ति–अस्थूल मह्रस्व मदीर्घ मलोहित मस्नेह मच्छाय मतमोऽवाखनाकाश मसङ्ग मरस मगन्ध मचक्षुष्क मप्राण ममुख ममात्र मनन्तर न वाह्यं नतदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन। (वृहदारण्यकोपनि. ३/८)

एतस्यासरस्य प्रशाशने–सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः। द्यावा पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। निमेषा मुहूर्तादि कालो विधृतस्तिष्ठति।

श्रीम् ह्रीम् ये दोनों बीज मन्त्र कमलवासिनी सर्वादिभूता महाशक्ति महालक्ष्मी माँ कमला की प्रसन्नता के हेतु हों।

अक्षर

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं हे गार्गी! उस अक्षरतत्व को ब्रह्मज्ञानी स्पष्ट करते हुए कहते हैं, वह न स्थूल है, न सूक्ष्य, न ह्रस्व न दीर्घ, न रक्त न द्रवीभूत, नछाया, न तम, न वतु, न आकाश, न संग युक्त, न रस, न गन्ध, न नेत्र, (लोहित) न प्राण मुखरहित, पञ्चतन्मात्रारहित (मात्र=परिमाप करे तो मापरहित) न अन्तर न वाह्य, वह कुछ भी नहीं खाता, नहीं उसे कोई खा सकता है।

इस अक्षर तत्व के शासन में सूर्य चन्द्र द्युलोक-पृथ्वी लोक, निमेज-मुहूर्त-दिनरात विशेष रूप से धारणा शक्ति युक्त रहते हैं व्यवस्थित रहते हैं।

सूनात्मा

वायुर्वै तत्सूत्रं वायुना सूत्रेणायं लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संवृब्धानि भवन्ति।

अन्तर्यामी

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष त आत्मा सर्वान्तर्याम्यमृतः। (वृ. ३.३१६

तुलसी नामाष्टक स्तोत्रम् (देवीभाग ९/१५)

वृन्दा वृन्दावनी-विश्व-पूजिता विश्व पावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च, तुलसी कृष्ण जीवनी।।
एतन्नामाष्टकं चैव, स्तोत्रं नामार्थ संयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य, सोऽश्व मेघफलं लभेत्।।

ज्ञानस्य तिस्रः पत्न्यः (देवीभा. ९/१)

बुद्धिः, मेधा, धृतिः। पुण्यस्य य.-प्रतिष्ठा। वाधु पत्नी-स्वस्तिः। सत्यस्यप. सती।

सूत्रात्मा

याज्ञवल्क्य उत्तर देते है हे गौतम! वायु ही वह सूत्र है जिसके द्वारा यह लोक परलोक-सभी भूतमात्र जीवमात्र संदृन्ध हैं (गुंथे हुए हैं)

अन्तर्यामी

जो पृथ्वी में रहते हुए भी जिसे पृथ्वी नहीं जानती जो स्वय पृथिवी रूपी शरीर के रूप में व्यक्त है (अन्दर) तथा पृथिवी के अन्दर रहकर उसका नियमन करता है वही तुम्हारा अन्तर्यामी अमृत आत्मतत्व ही है।

तुलसी के आठ नाम

वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी, कृष्ण जीवनी, अर्थानुसंधान पूर्वक सश्रद्द इस स्तोत्र का पाठ करने वाला अश्वमेध यज्ञ (कोई शंका करे कि भला इतने से पाठ से अश्वमेध्व यज्ञ का फल कैसे याकि अश्वमेध यज्ञ का फल इतना सा तो समझ लो शास्त्र शंका तर्क का विषय नहीं है फिर जिन शास्त्रों ने विधान मिला है पुण्य पाप का वही शास्त्र फल श्रुति बताते है। अतः विश्वासः फल दायकः)।

पतिपत्नी वोद्य

ज्ञान = बुद्धि, मेधा-धृति (धारणाशक्ति)। पुण्य = प्रतिष्ठा (पुण्यकरने से प्रतिष्ठा बढ़ती

गणेशपत्नी-पुष्टि। सुकर्मणः-कीर्तिः। अनन्तप.-तुष्टिः। उद्योगस्यप.-क्रिया। ईशानप.-सम्पत्तिः। अधर्मस्य प.-मिथ्या। कपिल मुनेः प.-धृतिः। अस्याः भ्रता-कपटः।

कालस्यतिस्रः भार्याः–सन्ध्या, रात्रिः, दिनम्। लोभस्य द्वे भार्ये–क्षुधा, पिपासा। (देवीभाग. ६/३०)

विष्णुः **ब्रह्मा** **रुद्रः**

(देवीभाग. ६।३०)

माया

सृष्टि-स्थिति-संहार कारिणी। दुर्विज्ञेया। कालः कर्म, स्वभावः, निमित्तं अस्याः सहायाः। अपरिमिता शक्तिः।

शान्तं, सत्वम्। रौद्रं, रजः। मूढम्, तमः।

है)। वायु = स्वति। सत्य = सती। गणेश = पुष्टि। सुकर्म = कीर्ति (सुकर्म करने से कीर्ति बढ़ती है)। अनन्तः = तुष्टि। योग = क्रिया। ईशान = सम्पत्ति। अधर्म = मिथ्या (अधर्म का भाई = कपट)। कपिल = धृति।

काल = सन्ध्या, रात्रि, दिन (ये तीन पत्निया काल की हैं)। लोक = क्षुधा, पिपासा, (भूखप्यास न मिटने वाली लोभभार्या है)।

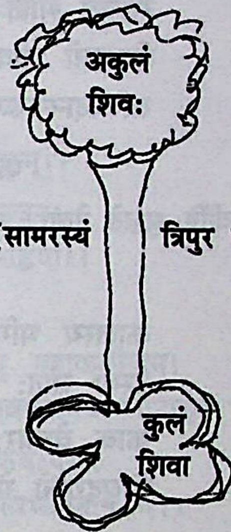
विष्णु में सत्वगुण अधिक रज व तम कम है इन दोनों को दबाकर सत्व स्थित है ब्रह्मा में रजोगुण अधिक सत्व तम कम हैं इन दोनों को दवाकर रजोगुण स्थिर रुद्र में. तमोगुण अधिक सत्वरज कम है इन दोनों को दबाकर तमोगुण स्थित।

माया

सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाली शक्ति ही माया है, इसका ज्ञान कठिन है इसके सहायक है काल-कर्म-स्वभाव-और निमित्त। ये अपरिमित शक्ति वाली है।

सतोगुण—शान्त, सौम्य (सूखश्ल)। रजोगुण—आक्रामक, क्रियाशील, रागद्वेषयुक्त। तमोगुण—प्रमादालस्यात्मक मूढावस्था में।

तुरीयस्त्व मेवास्मि, समः सर्वत्र सर्वगः।
विद्ययातु यदाविद्या,नश्यति ध्वान्तवद्भुया।।
तदास परमा नन्दः, प्रकाशात्मा प्रकाशते।।
(भुशुण्डिरामा. ४५)



सहजानन्दः

सहजोऽकृत्रिमोयस्मात्, सुखं चासङ्ग लक्षणम्।
ज्ञात्वानिःसङ्गतानाम्नीं, निर्वोधागत तत्सुखम्।।
विश्वंरसमयं कृत्वा, मग्नः सहजसागरे।
(अद्वयवज्र संग्रहः)

नवधा भक्ति सद्दिष्टा, श्रुति संकीर्तनादिभिः।
एकाशीति प्रकारेण, भक्तियोगः प्रकीर्तितः।।
निर्गुणत्वेक रूपैव, मन्निष्ठा मत्फलो दया।
मत्स्वरूपात्मिका नित्या, भूयोमत्प्रेमलक्षण।।
(भुशुण्डिरामायणम्-४५)

तुरीय

सर्वत्र गमन शील, सर्वत्र समावस्था में रहने वाला तुरीयतत्व तो में ही हूँ, विद्या द्वारा जब अविद्या नष्ट हो जाती है (जैसे प्रकाश से अंधेरा नष्ट हो जाता है वे से ही तब वह परमानन्द प्रकाशात्मा प्रकाशित होता है।

सहजानन्द

अकृत्रिम (भौतिकोपाय अप्राप्त वनावटी नहीं) असंगमूलक सहज (स्वाभाविक यथार्थ) आनन्द जिस में मिले उस निःसंगावस्था जन्य निवेधि से प्राप्त सुख हो जानकर सकल विश्व को रस मय भावित कर सहजावस्था के आनन्दभय सिन्धु में मग्न हो जाय।

श्रवण-कीर्तन-स्मरण=पाद सेवन-अर्चन-वन्दन-दास्य-सख्य आत्म निवेदनानि नौ प्रकार की भक्ति द्वारा ही इक्यासी प्रकार से भक्तियोग कहा गया है मुझमें ही समाहित करने वाली फलरूप में मेरी ही प्राप्ति कराने वाली, मेरे स्वरूप का बोध कराने वाली करने वाली,

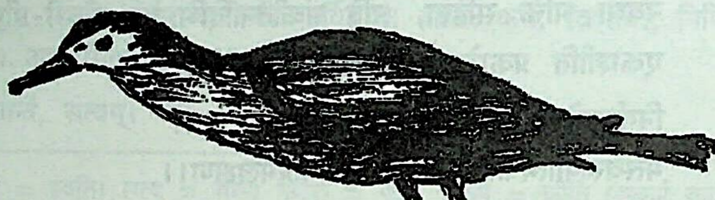
सन्मात्रं भाति सर्वत्र, न भाति च चिदन्तरा।
चिन्मात्रो जीव ईरितः।
सच्चिदानन्दरूपोवा-प्यन्तरात्मा महेश्वरः।। (भुशुण्डिरामायणम्-४४)

फलमतउपपत्तेः (ब्रह्मसूत्रम्)

हवींषि भुञ्जते देवाः, स एकः फलदायकः। (भु.रा. २११२)

भुशुण्डिः

कालस्य भगिनीघोंरा, नाम्नाया काल कण्ढका।
तस्यां जातः सूर्ययोगात्, भुशुण्डो नाम वैद्विजः।।
काक वेषधरः शूरो, लोहतुण्डोऽशनिच्छदः।
विधुद्गात्रो मेघरावो, प्रलयन्ता न लेक्षणः।। (भु.रा.-२/४)



प्रेम विवर्धिती सर्वत्र मेरी सत् सत्ता का भाव कराने वाली, चित् के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रतीत होता ये जीव भी चिन्मात्र ही है ऐसा वोध कराने वाली, (सच्चिदानन्द रूपा) ये अन्तरात्मा महेश्वर ही है ये वोध प्रदात्री निर्गुणा भक्ति एक रूपा ही है।

देवता स्वाहायुक्त हविठ्य को पाते हैं तथा फल दाता वह एक सवेश्वर ही है।।

काक भुशुण्डि

काल की वहिन (अत्यन्तघार) काल कण्ट का उसमें सूर्य संयोग से भुशुद्ध नायक द्विज हुआ, वह काक वेश धारी (पशी द्विज इस लिए हैं क्योंकि इनका जन्म दोबार होता है नू वार अण्डारूप में एकवार देह रूप में (द्वाभ्यां जायते इतिछिज:) (ब्राह्मण सत्रिय वैश्य भी द्विज हैं, एक बार जन्म से इसटीवार जनेऊ संस्कार से) अतन्त बलवान, लोहे जैसी चौंच वाला बज्र जैसी त्वचा वाला, विघुत जैसे शरीर वाल मेघ जैसी ध्वनि वाला, प्रलयंकारी अग्नि जैसी दृष्टि वाला।

ब्रह्मलब्धवरोवीरः, मध्ये मधुसमुद्रस्य, द्वीपवर्येमहागिरौ।। (भु.रा.)

रसः अग्निपुराणे

अक्षरं ब्रह्मपरमं, सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं, चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्।।
आनन्दः सहस्रस्तस्य, व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्य, चमत्काररसाह्वया।।

ध्वनिः (ध्वन्यालोके?)

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव, वृस्त्वस्तिवाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवानिरिक्तं, विभाति लावण्यमिवांगनानाम्।।४।।
काव्यस्यात्मा स एवार्थः, तथा चादिकवेःपुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्यः, शोकः श्लोकत्वभागतः।।५।।
विविधवाच्यवाचक रचनाप्रपञ्चचारुणः।
काव्यस्य सएवार्थ सारभूतः।।
यत्रार्थः शब्दो वा, तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थो।
व्यङ्क काव्यविशेषः, सध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।१३।।

ब्रह्मा से वर प्राप्त वीर मधुसागर के मध्य में द्वीपस्थ महा गिरि पर रहता था

रस निष्पत्ति

अज विभु सनातन परमाक्षर ब्रह्म जिसको वेदान्त में चैतन्य ज्योति स्वरूप एक ईश्वर कहा है उसी सर्वेश्वर का सहज आनन्द कभी व्यक्त हो जाता है उसी चमत्कार रूपा दिव्या भिव्यक्तानुभूति को रस कहा गया है।

ध्वनिः

महाकवियों की वाणी में ये ध्वनि वस्तुतः होती किसी अन्य रूप में है जबकी प्रतीत अन्य रूप में होती है चमत्कार में है कि जो प्रसिद्ध अवयव है उनसे अतिरिक्त है पृथक् भिन्न है कैसे भिन्न है बोले जैसे नायिका सौदंर्य के संवर्धक अलँकरणादि होते है नखसिख सौन्दर्य वर्ती जो लावव्य है। वह सब अंगों का सरस सार तत्व निराला ही किन्तु होता है (जैसे लावव्य अलंकारों गुणों सज्जा छारा आयातित आरोपित नहीं हो सकता वह तो स्वाभाविक ही है वैसे ही ध्वनि चमत्कार भी स्वाभाविक ही है अतः काव्य की आत्मा ध्वनि ही है पूर्वकाल में वाल्मीकि जी के तमसा नदी तट पर क्रौञ्च (सारस) पक्षी के जोड़ा में से एक के व्याध द्वारा मारे जाने

ब्रह्मणोऽग्र्यास्तनवः

परस्यामृतस्याशरीरस्य। तस्यौव लोके प्रतिमोदतीह योयस्यानुषक्तः। ब्रह्म खल्विदं सर्वम्। या वास्या अग्र्यस्तनवः, ता अभिध्यादेदर्चयेत्। ताभिः सहैवोपरि लोकेषु चरति, अथ कृत्स्नक्षये एकत्वमेति। यथेयं कौत्सायनी स्तुतिः–त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णु स्त्वं रूद्र स्त्वं प्रजापतिः। त्वमग्निर्वरुणो वायु सवमिन्द्रस्त्वं निशाकरः। त्वमन्नस्त्वं यम स्त्वं पृथ्वीत्वं विश्वंश्वमयाच्युतः। (मैत्रायण्युपनिषद्-५)

स्वार्थे स्वाभाविकेऽर्थेच, बहुधा संस्थितिस्त्वयि।
विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं, विश्वात्मा विश्व कर्मकृत्।।
विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं, विश्व क्रीडा रतिः प्रभुः।
नमः शान्तात्मने तुभ्यं, नमो गुह्यतमाय च।।
अचिन्त्माया प्रमेयाय, अनादि निधनाय च।

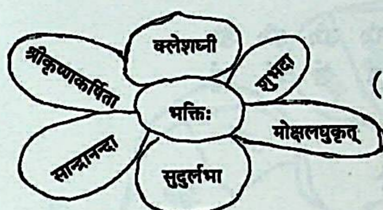
सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु, निःस्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोक सामान्यमभिव्यनक्ति, परिस्फुरन्तं प्रतिभा विशेषम्।।
(ध्वन्यालो.-१/६)

पर वियोग जन्य पीड़ा से छटपटाते रोते निरीह एक मूक पक्षी को देख कर जो शोकानुभव हुआ वही शोक श्लोक वन गया। विविध वाच्य वाचक रचना प्रपंच के द्वारा सरस काव्य का सार ध्वनि ही है, जहाँ अर्थ या शब्द शब्दार्थ को गौण करके विलक्षणार्थ के व्यंजक हो जाये उसी दिव्य भाव को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।

परमामृत स्वरूप अशरीरी ब्रह्म-जिसकी आनन्द कला से काल्पनिक सम्बन्ध होने पर भी लोक में आनन्दानुभूति की जाती है जो जिसमें अनुसक्त है उसी में आनन्द खोज रहा है पा भी रहा है क्यों? क्योंकि सब कुछ ब्रह्म ही है, जो भी इन ब्रह्म के देह हैं; उनका ध्यान करने अर्चन करने से उन उन श्री विग्रहों के साथ ऊर्ध्व-ऊर्ध्व लोकों को प्राप्त कि कौत्सायन कृत स्तुति-तुम ब्रह्मा विष्णु-रुद्र तुम ही प्रजापति हो तुम ही अग्नि वरुण वायु इन्द्र तुम ही चन्द्रह) तुम अन्न, तुम यम, तुम पृथ्वी, तुम विश्व हो, आकाश हो अचुत हो।

स्वार्थ में स्वाभाविक अर्थ में बहुत प्रकार से तुम्हारी संस्थिति है, हे विश्वेश्वर विश्वामात्मा हे विश्वकर्म कर्ता आपको नमस्कार है, हे विश्व भोक्ता, विश्व जीवन, हे विश्व क्रीडा प्रिय प्रभो हे शान्तात्मन्, हे गुह्यतम, हे अचिन्त्यमापी, हे अप्रमेय हे अनादि निधन आपको बारम्बार नमस्कार है।

महाकवियों की दिव्यार्थ सम्पन्न प्रवाहित सुस्वादु प्रतिभा सरस्वती लौकिकार्थ नहीं अलौकिक परिस्फुरित विशेष दिव्यभावों को व्यक्त करती है।

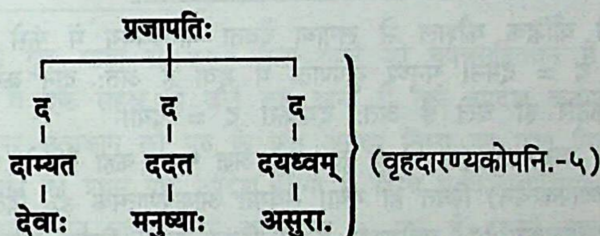


(भक्तिरसार्णवः)

प्रेमसंगताऽनन्य ममता।

यथायथात्मा परिमृज्यतेऽसौ,
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति तत्त्वसूक्ष्मं,
चक्षुर्यथैवाञ्जन संप्रयुक्तम्।।
(श्रीमद्भाग.)

अर्थो गुणीकृता, गुणीकृताभिधेयः
शब्दो वा यत्रार्थान्तरम् भिव्यनक्ति स ध्वनिः।
व्यङ्ग्यव्यञ्जक सम्बन्ध निवन्धनतया ध्वनिः
वाच्य वाचकचारुत्व हेतु भिन्नः।। (ध्वन्यालो. १)



एतत्रयं शिक्षेद्दानं दमंदयाम्।।

भक्ति-क्लेशनाशिनी है, शुभ प्रदा है, मोक्ष प्राप्ति की कामत्र को भी तिरस्वृत कर तुच्छ बनाती है अत्यन्त दुर्लभ है गहनतमा नन्दरूपा है, श्रीकृष्ण को खीचंकर भक्ततक लाती है। प्रेमैकरूपा होने से अनन्यता आत्मीयता की परिवर्धिका होती है।

जैसे जैसे ये अन्तः करणावच्छिन्न आत्मा मेरी पुण्यमयी पवित्र कथाओं के श्रवण से स्वं उत्तमोत्तम नामों के संकीर्तन से पवित्र होता जाता है वैसे ही वैसे सूक्ष्म तक तत्वों को साक्षात् देखने लगता है जैसे नेत्रों में अंजन (करलल) लगने से नेत्र विशुद्ध दृष्टि सम्पन्न होते है वैसे भगवत्कथानुराग पराग द्वारा चित्र निर्मल होता जाता है।

जहाँ अभिद्यार्थ या शब्द गौण होकर अर्थान्तर को अभिव्यका करे वही दिव्यभाव सम्पन्न विलक्षण अर्ध ध्वनि है (ध्वनि जन्य है वह अर्थ) व्यंग्य व्यंजन सम्बन्ध का निबन्धन करने से वह ध्वनि है। ये वाच्य (अर्थ) वाचक (शब्द) की चारुता के हेतुओं से भिन्न है।

प्रजापति ने देवों दानवों एवं मानवों को दकारोपदेश किया। तीनों ने दकार का अर्थ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं

(अक्षमालोपनिषत्) { मृत्युंजय आकर्षण पुष्टिदाक्षोभकर वाक्प्रसादकर

एकान्तवासो लघुभोजनानि, मौनं निराशा करणवरोधः।
मुनेरसोः संयमनं षडेते, चित्तप्रसादं जनयन्तिशीघ्रम्।।

अविवक्षितवाच्योध्वनिः

सुवर्णकुसुमां पृथिवीं, चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
सूरश्च कृतविधश्च, यश्च जानाति सेवितुम्।। (ध्वन्यालोकः)

अपने वौद्धिक कौशल से लगाया देवता भोगाधिक्य में फंसे हैं। अतः इन्द्रियों का दमन करो द = दमन। मनुष्य कृपणता में डूवा है अतः दान करो द = दान। असुर क्रूरता में कठोर हो चले है अतः दयाकरो द = दया।

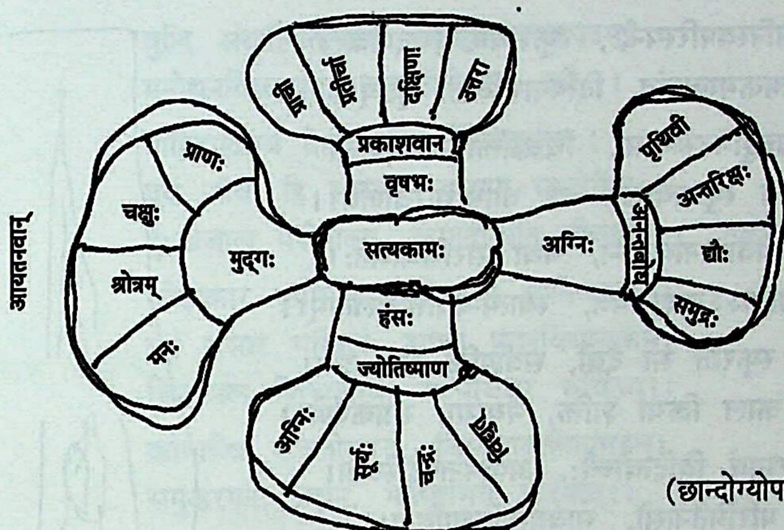
अक्षमाला (अ से क्ष तक को अक्ष माला कहा है) के प्रथमाक्षर अं में मृत्युंजय ॐ (सर्वव्यापकत्वेन) स्थित हो गया। सर्वगत आकर्षणात्मक ॐ द्वितीयाक्षर आं में प्रतिष्ठित हुए। पुष्टिदाओभकर ॐ तृतीयाक्षर इ में स्थित हुआ, निर्मल वाक् प्रसादकर ॐ चतुथक्षिर ईं में प्रतिष्ठित हुआ। पांचवे उ।

अं	आं	इ	ईं	उं	ऊं	ऋं
सर्व-व्यापक मृत्युंजय ऊं	सर्वगत आकर्षण रूप ऊं	पुष्टिक्ष अक्षोभ ऊं	निर्मल वाक्-प्रसादकर ऊं	सारतर सर्ववल-प्रद ऊं	दुःसह उच्चाहन-कर ऊं	चंचल संक्षोभ कर ऊं

१ एकान्त वास, २ स्वल्पाहार ३ मौन (शर्वविध हां हां हूं हूं लिखना आदि रहित ४ आशाराहित्य (निरपेक्ष। ५. इन्द्रियों का नियन्त्रण ६ रसों पर संयम हे मुने! ये छह उपाय चित्त की प्रसन्नता के वर्धक है।

अविवक्षित वाच्य ध्वनि का उदाहरण

स्वर्ण कुसुमों से सजी वसुधा को तीन पुरुष ही खोज पाते है—१. धीर वी २. लब्धविद्या (व्यावहारिक ज्ञान सम्पन्न विद्या) ३. जो सेवाधर्म में निष्णात है—(पुरुषार्थी)।



(छान्दोग्योपनि. ४।४)

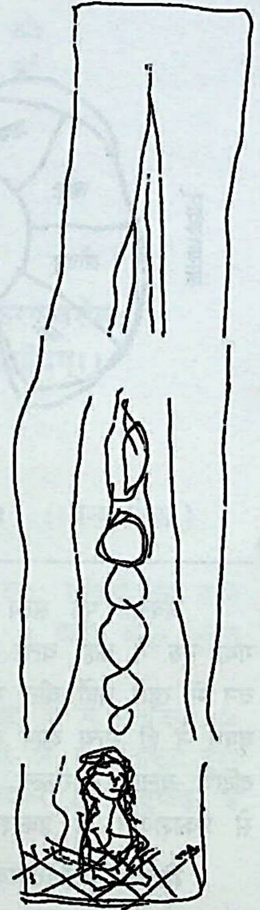
जबाला पुत्र सत्य काम गुरु आज्ञा से ४०० कृश गायों को वृषन्नसहितवन में ले गया गुरु ने कहा वत्स जब ये एक सहस्र हो जलें तब आना मैं तुझे उपदेश करुंगा— वन में रहते वर्षों वीत गये पर सत्यकाम को गुरु के प्रति अनव्य निष्ठा का फल मिला– वृषभ ने ही सत्य काम को ब्रह्म का प्रथम पाद उपदेश किया है सौम्य पूर्वकला-पश्चिमकला, दक्षिण बला, उत्तरकल्प ये प्रकाशवान नामक चार कलावाला १ पाद है इसकी उपासना से प्रकाशवान हो प्रकाशवान लोकों को जीता जाता है।

द्वितीय पादोपदेशक अग्नि—समिधा आधान (हवन) काल में प्रज्वलित अग्नि ने सत्य काम को द्वितीय पाद का उपदेश किया सौम्य! पृथ्वी अन्तरिक्ष-द्यौ-समुद्ध ये ब्रह्म का चतुष्टकला युक्त अनन्तवान नामक द्वितीय पाद है इसका उपासक लोक में अनन्तवान होकर समस्त अनन्तवान लोकों को जीत लेता है।

हंस द्वारा तृतीय पादोपदेश—होम काल में हंस ने आकर कहा सौम्य!

अग्नि सूर्य-चन्द्र-विद्युत यह ब्रह्म का चतुष्कल ज्योतिष्मान तृतीयपाद है इसका उपासक ज्योतिष्मान हो ज्योतिष्मात्र लोकों को जीत लेता है।

मद्गु द्वारा चतुर्थपादोपदेश—होमकाल में मद्गु ने कहा सौम्य! प्राण चक्षु-श्रोत्र मन ये चतुष्कल ब्रह्मं का चौथा आयतन वान पाद है इसका उपासक आयतनवान होकर आयतनवान लोकों को जीत लेता है।



स्वात्मनिस्वपरिस्पन्दैः, स्फुरत्यच्छैश्चिदर्णकः।
एकात्मकमखण्डंत, दित्यन्तर्भाव्यतां दृढम्।।
किञ्चिच्छुमितरूपासा, चिच्छक्तिश्चिमयार्णवे।
तन्मयैव स्फुरत्यच्छा, तत्रै वोर्मिभिरिवार्णवे।।
आत्मन्येवात्मनाव्योम्नि, यथा सरसिभासतः।
तथैवात्माऽऽत्मशक्त्यैव, स्वात्मन्येवैत्तिलोलताम्।।
क्षणं स्फुरति सा दैवी, सर्व्रशक्ति तया तया।
देश काल क्रिया शक्ति, र्नयस्याः संप्रकर्षणे।।
स्वस्वभावं विदित्वोच्चैः, अप्यनन्तपदेस्थिता।
रूपं परिमितेनासौ, भावयत्मविभाविता।।
तदैवभावितं रूपं, तयापरमकान्तया।
त्रदेवैनामनुगता, नाम संख्या दिकादृशः।।
विकलाकलिताकारं देशकालक्रियास्पदम्।
चितो रूपमिदं ब्रह्मन्, क्षेत्रज्ञ इति कथ्यते।।
वासनाः कल्पयन्सोपि, यात्यहंकारतां पुनः।
अहंकारोविसिर्नेता, कलङ्की बुद्धि रूच्यते।।

चित्समुद्र स्वयं में ही स्वच्छ आत्मपरिस्पन्द द्वारा स्फुरित होने लगे, और वह चित् सत्ता एकात्मक अखण्ड है यह दृढ़भावना करे, चिन्मय समुद्र में वह चिन्मयी शक्ति कुछ आन्दोलित रूप में है जैसे पवित्र लहरें सागर में उठती हैं वैसे ही चिन्मयी स्वच्छ लहरें इस चिदार्णव में उठ रही हैं। जैसे आकाश समुद्र में स्वयं ही ये हवा लहराती सी प्रतीत होती है वैसे ही स्वयं में ही आत्मशक्ति द्वारा आत्मा चाञ्चल भाव को प्राप्त होता सा लगता है। सर्वशक्ति स्वरूपा यह दैवी स्फुरण पल मात्र को ही होता है। क्योंकि देशतः कालतः क्रिया शक्ति द्वारा जो संचालित नहीं हो सकती वह परा सत्ता स्वस्वभाव की उच्चता को जानकर अनन्त अव्यय स्थिर पद में स्थित रहती है। यद्यपि यह अपरिमित है सर्वतया जानी नहीं जा सकती तब भी परिमित सी भावित होती है। जैसे ही ये चित्सत्ता मनोहर रूप की इयत्ता में प्रतीत होती है वैसे ही इयत्ता के समय नाम रूप संख्या जुड़ जाती है हे

बुद्धि संकल्पिताकाराः प्रयातिमननास्पदम्।
मनोधनविकल्पंतु, गच्छतीन्द्रियतां वनैः।।

पाणिपादमयं देहं, इन्द्रियाणिविदुर्वुधाः।
एवं जीवो हि संकल्प, वासना रज्जुवेष्टितः।।
दुःखजाल परीतात्मा, क्रमादायाति नीचताम्।। (महोनिषद्-५)

कोशकार कृमिरिव, स्वेच्छया यातिवन्धनम्।
इमं संसार मखिलं, आशा पाशविधायकम्।
चिन्तानल शिष्वादाधं, कोपाजगर चर्वितम्।।

कामाब्धि कल्लोलरतं, विस्मृतात्मपितामहम्।
समुद्धरमनो ब्रह्मन्, मातङ्गमिव कर्दमात्।।

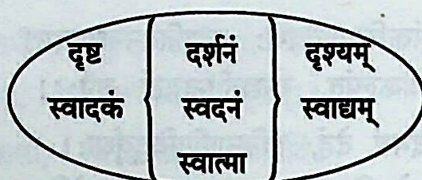
निराशतानिर्भयता, नित्यता समता ज्ञता।
निरीहता निष्क्रियता, सौम्यता निर्विकल्पता।।

धृतिर्मैत्री मनश्रुष्टिः, मृदुता मृदुभाषिता।
हेयोपादेय निर्मुक्ते, ज्ञेतिष्ठन्त्यपवासनम्।। (महोपनि.-६)

व्रह्मन्! वैकल्पिक रूपधर्ता, देश काल क्रिया का आश्रय ये चित्रूप क्षेत्रज्ञ कहलाता है यह भी वासनात्मक कल्पनाओं से युक्त हो अहंकार बन जाता है—यही अहंकार जब निर्णेता (निश्चय वात्वा) व दोष सम्बद्ध होता है तब बुद्धि कहलाता है, वुद्धि संकल्प युक्त होती है तब मन बन जाती है, मन विकल्प वश इन्द्रिय रूप में व्यक्त होता है।

पाणिपाद युक्त शरीर को बुधजन इन्द्रियाँ कहते हैं। इस प्रकार जीव संकल्प एवं वासना की रज्जू (रस्सी) से वंधा हुआ (लिपटा हुआ) दुख जाल में पड़ा नीचता (अधोगति) को प्राप्त होता जाता है। अहंकार विवश हो रेशम निर्माता कीड़े की भाँति स्वेच्छा से बन्धन में आता हो ये सारा संसार सैकड़ों आशा पाशों में वांधने वाला है चिन्तारूपी अग्नि से झुलस रहा है, क्रोध रूपी अजगर द्वारा चर्वित है काम सागर में क्रीडारत है स्वयं के मूल जनक पितामह को भूलचुका है। हे व्रह्मन् कीचड़ में फंसे हाथी के समान इस फंसे हुए मन का उद्धार करो।

हेय-उपादेय (त्याज्य-ग्राह्य अनुपयोगी उपयोगी) का विचार छोड़ संसार से निराश-निर्भयता नित्यता-समता अभिज्ञता, निरीहता—(इहा=इच्छा) निश्कामता-निष्क्रियता-सौम्यता-निर्विकल्पता-धृति-मैत्री मन की तुष्टि, मृदुता-मृदुभाषिता, आदि गुण हेयता एवं उपादेयता



ईश्वरः
विभूतयः

१. सृष्टि हेतवः–ब्रह्म दक्षादयः कालः अखिल जन्तवः। २. स्थितिनिमित्ताः–विष्णुः मन्वादयः कालः अखिलजन्तवः। ३. रूद्रः कालान्तकाद्याः–प्रलय हेतवः कालः अखिलजन्तवः। (विष्णुपु. १/२२)

समता

अन्तरास्थां परित्यज्य, भावश्री भावनामयीम्।
योसि सोसि जगत्यस्मिन्, लीलया विहरानघ!।।

से मुक्त वासना रहित चित्त वाले ज्ञानी के अन्दर ही रहते हैं। (तृष्णारूपी भीलनी (किराती) के वासनामयजाल में जीव फंस गया है।

आत्मा	दृष्टा (देखने वाला)	जो देख रहा है	कर्ता	ज्ञाता	ध्याता	आस्वादक
	दर्शन (देखने की क्रिया)	जिस क्रिया से देखा जा रहा है	क्रिया	ज्ञान	ध्यान	आस्वादन
जगत्	दृश्य (देखने का विषय	जिसे देखा जा रहा है	कर्म	ज्ञेय	ध्येय	आस्वाद्य

आस्वादक-(स्वाद लेने वाला), आस्वादन (जिसका स्वादलिया जा रहा है), इन दोनों से दूर हटकर केवल आस्वादन को देखे न तो स्वाद ले न स्वादन बने। संस्कृत निष्ठ स्वाद शब्द हिन्दी में प्रयुक्त है। सु = अच्छी प्रकार। अत्ति = खाना है। सुष्ठुतया अत्ति यया भावनया सा स्वाद। जिस भावना से प्रेरित हो रुचि पूर्वक खाता है वह स्वाद है।

ईश्वर की विभूतियों

१. सृष्टि की हेतु—ब्रह्मा-दक्ष-कालादिसहित अखिल प्राणी। २. स्थिति निमित्तक—विष्णु मनु आदि सहित काल व प्राणी। ३. प्रलयहेतु—रुद्र काल अन्तकादि सहित अखिल जन्तु।

अन्तःकरण की आस्था तथा भावनाभयी भाव सम्पत्ति को त्यागकर हे अनघ! तुम जो हो उसी आत्म रूप में स्थित हो जायो, तथा विहार करो इस जगत् में सभी जगह

सर्वत्राहमकर्तेति, दृढभावनयाऽनया।
परमामृतनाम्नीसा, समतैवावशिष्यते।। (महोपनिषद्-६)

खेदोल्लासविलासेषु, स्वात्मकर्तृतयैकया।
स्वसंकल्पे क्षयं याते, समतैवावशिष्यते।।

समतासर्वभावेषु, भासौ सत्यपरास्थितिः।
सर्वंत्यक्त्वा मनः पीत्वा, योति सोसि स्थिरोभव।
व्योमसाम्यः प्रशान्त धीः, येन त्यजसि तत्त्पज।।

विमोक्षाय–दैवी सम्पत्तिः (गी.-१६)

[१]अभय [२]सत्त्वसंशुद्धिः, [३]ज्ञानयोग व्यवस्थितिः।
दानं[४] [५]दमश्च [६]यज्ञश्च, [७]स्वाध्याय[८] स्तप [९]आर्जवम्।।
अहिंसा[१०] सत्य[११] मक्रोधः[१२], त्यागः[१३] शान्ति[१४] रपैशुनम्[१५]।
[१६]दयाभूतेषु[१७]ध्रुवलोलुप्वं, [१८]मार्दवं ह्री[१९] [२०]रचापलम्।।
तेजः[२१] क्षमा[२२] धृतिः[२३] शौचं[२४], [२५]अद्रोहो नाति [२६]मनिता।

१-३–यतीनाम्। ४-६–गृहिणाम्, वानप्रस्थानाम्। ७-ब्रह्मचारिणम्। इति आश्रमधर्माः। ८-२०–ब्राह्मणानाम्। २१-२३–क्षत्रियणाम्। २४,२५–वैश्यानाम्। २६–शूद्राणाम्। इति वर्णनाधर्माः। (मधुसूदनः)

ये सोचो में कर्ता नहीं हूँ अकर्ता हूँ (नदी पर्वत दिन रात सुखदुख पुत्र पत्नी धन) सबके प्रति में कर्ता नहीं हूँ इस दृढ़ भावना के द्वारा परमामृत स्वरूपा समता ही शेष वचती है—भप्रसन्नता हेतुक खेद-प्रसन्नता मूलक उल्लास ये विलास स्वविरचित ही हैं, (काल्पनिक है) इस प्रकार व्यर्थ के संकल्पों का नाश होते ही एक समता मात्र शेष रहती है। सभी पदार्थों में समता की सल्प निष्ठा है अतः सर्वविध वैषम्य मूलक भावों को त्यागकर मन को पीकर (मन की स्वयं में लीन करके क्योंकि विषमता का हेतु मन ही है मन ही उठापटक करता तुलना करता है) तुम जो हो उसी आत्मरूप में स्थित हो जाओ। आकाश के समान शान्त वुद्धि वाले होकर जिसके द्वारा तुम सब को त्यागते हो उसे भी त्याग दो।

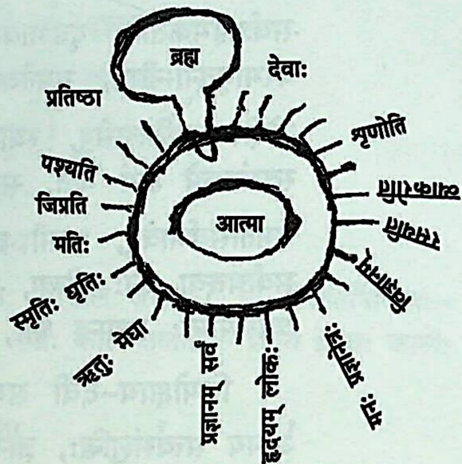
दैवी सम्पदा-सोलहवाँ अध्याय गीता

१. अभय, २. सत्व संशुद्धि (अन्तःकरन की निर्मलता), ३. ज्ञानयोग स्थिति—ये तीनो संन्यासियों के लिए हैं। ४. दान, ५ दम (इन्द्रियनिग्रह) ६. यज्ञ—ये गृहस्थी व वानप्रस्थी के लिए। ७. स्वाध्याय—ये ब्रह्मचारियों के लिए (आश्रमधर्म पूर्ण)। ८. तप,

आसुरी सम्पत् (गी.-१६)

बन्याय–

दम्भो दर्पेऽभिमानश्च, क्रोधः पारुष्यम ज्ञानम्। शौच माचारः सत्यं तेषु न। जगत् काम हेतुक मसत्यम प्रतिष्ठित मनीश्वरं ते आहुः। ते–उग्रकर्माणेऽल्प-वुद्धयः नष्टा अहिता जगतः क्षयाय प्रभवन्ति। दुष्पूरं काममाश्रित्य वर्तन्ते, अशुचिक्रताः।



(ऐतरेयोपनिषद् ५)

---

९. आर्जव (सरलता), १०. अहिंसां, ११. सत्य, १२. अक्रोध, १३ त्याग, १४. शान्ति, १५. अपिधुनता (चुगली), १६. दया प्राणिमात्र के प्रति, १७ निर्लोभीभाव, १८. मृदुता, १९ लज्जाशील, २० अचंचलता—ये ब्राह्मणों के लिए विशेष। २१. तेज, २२. क्षमा, २३ धृति (धैर्य)—ये क्षत्रियों के लिए विशेष। २४. शौच (अन्दरबाहर की पवित्रता), २५. अद्रोह—ये वैश्यों के लिए विशेष। २६. मान की अत्याकांक्षा का राहित्य—ये शूदों के लिए विशेष ये वर्ण धर्म सम्पन्न आश्रम व वर्ण धर्म ये चिन्तन का गाम्भीर्य है ऐसा नहीं कि दैवीसम्पत्ति के वोधक गुणों का वटवारा मात्र लिया जायें सब गुण सबमें हों ये अच्छा है किन्तु जो विशेष हैं जिनके लिए वे गुण उनमें होने ही चाहिए।

आसुरी सम्पदा

१. दम्भ-धर्मध्वजित्व, २. दर्व गर्व, ३. अभिमान, ४. क्रोध, ५. पारुष्य (कठोरता), ६. अज्ञान। आसुरी सम्पदा सम्पन्न प्राणियों से पवित्रता-आचार-सत्य नहीं होता जगत काम निमित्तक असत्य के रूप में अनीश्वरता वहा प्रतिष्ठित रहती है वे उग्रकर्म करने वाले, अल्ब बुद्धि वाले, स्वर्य नष्टप्राय, लोक अहित कर्ता, संसार के क्षय के लिए होते हैं। जिसकाम की पूर्ति सम्भव नहीं उस चिर वुभुक्षित काम का आश्रय ले अपावन संकल्पों वाले ये असुरप्राय होते हों।

आत्मा क्या है?

जिसकी सत्ता के आश्रय के सुनना, व्याख्या करना, रस लेना, विज्ञान, मन ज्ञाननेन, हृदय लोक, मेध, काम, यज्ञ, स्मृति मति सूंघना देखना प्रतिणा होती है वही तत्व आत्मा है आत्मा एवं ये सो ये सभी किसी काम के नहीं वही ब्रह्म है।

ज्ञानभूमिकाः (गीता-१४)

१. शुभेच्छा-मुमुक्षुता	शाश्वतस्य च धर्मस्य
२. विचारणा–श्रवणमननरूपा	साधनरूपाः
३. तनुमानसी-निदिध्यासना	ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहं, अमृतस्यान्ययस्य च।
४. सत्त्वापत्तिः–साक्षात्कारः	फलभूता-ब्रह्मविद्-मानापमानयोस्तुल्यः, तुल्योमित्रा-रिपक्षयोः।
५. असंसक्तिः–ब्रह्मविद्वरः	समदुःखसुखःस्वस्थः, समलेष्ठाश्म काञ्चनः।
६. पदार्थाभाविनी–ब्रह्मविद्वरीन्	उदासीन वदासीनः, गुणैर्योनविचाल्यतो।
७. तुर्यगा–ब्रह्मविद्वरिष्ठः	प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोहमेव च पाण्डव।

(धनपति सूरिः)

अष्टकारिका (ब्रह्माण्ड पु. उत्तर ख.-११)

ललितापरमेशनि, संविद्वहेः समुद्भव।
विश्वरूपिणि सर्वात्मे, विश्वभूतै कनायिके।।

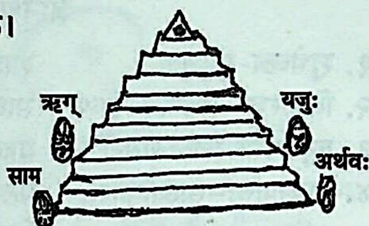
आनन्द रूपिणि परे, जगदानन्द दायिनि।
ज्ञातृ ज्ञानज्ञेय रूपे, महाज्ञान प्रकाशिनि।।ल.।।

---

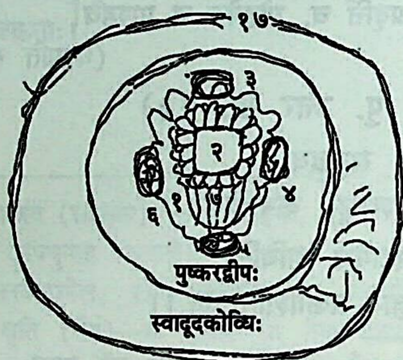
१. शुभेच्छा मोक्षाकांक्षा	साधनरूप है	सास्वतधर्माचरण की इच्छा
२. विचारण श्रवणमननरुपा	साधन रूप है	अव्यय अमृततत्व का चिन्तन
३. तनुमानसा निदिध्यासना	—	मैं ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है
४. सत्वापत्ति साक्षात्कार	फलभूत	मान अपमान में समान भाव मित्रशत्रु में समभाव
५. असंसक्ति ब्रह्मविद्वर	उच्चउच्चरतर	सुख दुख में सम, स्वस्व, मिट्टी वस्वर्ण में सम
६. पदार्थाभिभावनी ब्रह्मविद्वरीयान्	परिपक्वावस्थायें	त्रगुणों से अविचलित उदासीन के समान रहना
७. तुर्यगा-ब्रह्मविद् वरिष्ठ	—	सत (प्रकाश) रज (प्रवृत्ति) तम (मोह) हे पाण्डव इन तीनों से ऊपर की अवस्था ही तुरीयावस्था है इसमें ब्रह्मविद्वरिष्ठतत्ववेत्ता पहुँचते हैं।

ललिता-परमेश्वरी-ज्ञानाग्नि समुद्भूत-सर्वात्मा-विश्वरुपिणी-विश्वनायिका परानन्दनपिणी, जगदानन्द दात्री-ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूपा, महा ज्ञान प्रकाशिका लोक संहार रसिका (शिवरुपा)

लोकसंत्रारु रसिके, कालिके भद्र कालिके।
लोक संत्रात रसिके, मङ्गले सर्वमङ्गले।।
विश्वसृष्टिपराधीने, विश्वनाथे विशङ्कढे।
संविद्वह्नौ हुताशेष-सृष्टि संवादिता कृते।।
भण्डाद्यैस्तारकाद्यैश्च, पीडितैश्च सभां मुदे।
ललिता परमेशनि, संविद्वह्नेः समुद्भव।।



चक्रराज रथोत्तमघ्नम्।
विन्दुपीठेन सहितम्।
आरुढा ललितादेवी।



१. मानसोत्तरगिरिः
२. ब्रह्मपुरी
३. इन्द्रपुरी
४. यमपुरी
५. वरुणपुरी
६. कुबेरपुरी
७. पुष्करम्।

(अद्भुतरामणे)

पुरुयंस्वात्मनाऽसृजत्। श्रीकामेश्वरनायकम्।। (यज्वने-शिवस.ना.)
आवो राजानमध्वरस्य रूद्रं होतारम्।। श्रुतिः।
आविर्वभूव चिद्वह्नेः, ललिता परमेश्वरी। ब्रह्माण्डपु.।

काली-भद्रकाली, लोक रक्षण रसिका (विष्णुरुप) मंगलों की मंगल रुपा, विश्वसृष्टि की नियन्त्रिका-विश्वनाथरूपा-इभत्तग्नि हुताशेष-सृष्टि सम्पादित कर्त्री-भण्डासुर वतारकासुरादि से पीडितजनों की रक्षाकरने वाली है ललिता देवि हम आपको प्रणाम करते है। ये ललिता देख उत्तमोत्तम चक्रराजस्थ विन्दु पीठ पर आरुढ रहती है।

शुद्धोदक से घिरा पुष्कर द्वीप और इसके साथ विराजती पुरियां चित्र से स्पष्ट है।

हे जगदम्बे! आपने स्वयं स्वस्वरूप से श्रीकामेश्वर नायक को पुरुष रूप में त्वा (यजमान रूप शिव सहित नारायण)।

यज्ञ के अधिपति होता रुद्र को हम नमन करते हैं।

चिद् वह्नि से परमेश्वरी ललिता आविर्भूत हुई।

माया नारसिंही

ॐ सईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रः श्रियं लक्ष्मीमौपलामम्बिकां गां षष्ठीं च यां इन्द्रसेनेत्युत आहुस्तां विद्यां ब्रह्मयोनिं सरूपां तामिहायुषे शरणं प्रपद्ये।।

(नृसिंह पूर्वता. ३०/३)

एकं ब्रह्म चिदाकाशं, सर्वात्मकमखण्डितम्।।५६।। (महोपनिषद्-५)

रेखोपरेखा वलिता यथैकापीवरीशिला। तथात्रैलोक्य वलितं, ब्रह्मैकमिह दृश्यताम्।।५७।।

द्वितीयकारणभावा, दनुत्पन्नमिदंजगत्।।५८।।

परमं पौरुषं यत्नमादायास्थाय सूद्यमम्।
पथाशास्त्रमनुद्वेग, माचर-कोन सिद्धिभाग्।।

अहं सर्वमिदं विश्वं, परमात्माहमच्युतः।
नान्यदस्तीतिसवित्या, परमासाद्यहंकृतिः।।

नृसिंह पूजा

इस विषय में ऋषि कहते हैं: हे माया शक्ति रूप विन्दु युक्त स्वर ई. मैं सरलता का आकांक्षी (ऋजीषीं। तरुत्र-संसार सागर को तरने की इच्छा से साधनार्थ दीर्घायु प्राप्ति के लिए लक्ष्मी देवी श्री देवी, असिका-सरस्वती षष्ठी देवी (स्कन्धशक्ति) इन्द्रसेना तथा ब्रह्म प्राप्ति की हेतु ब्रह्मविद्या की शरण लेता हूँ, आप सब मुझ उपासक की रक्षा करें।

सवत्मिक अखण्डित एक चिदाकाश ही ब्रह्म है।

जिस प्रकार एक मोटी (पीवरी) शिला पर बड़ी रेखायें व छोटी रेखायें खिची होती है। वश वैसे ही ये तीनों लोक इस ब्रह्म सत्ता पर अंकित जैसे हैं रेखा की भाँति अत: रेखाओं से परे एक ब्रह्मसत्ता को ही देखो।

अच्छा दूसरा कोई कारण कदापि सम्भव नहीं जगदुत्पत्ति से अत: कारणाभाव में ये जगत् उत्पन्न ही नहीं है।

परम पुरुषार्थ द्वारा यत्न पूर्वक शास्त्रानुसार आचरण निष्ठ कौन व्यक्ति सिद्धि नहीं पा लेता अर्थात सिद्धि प्राप्त होती ही है। १. श्रेष्ठ पुरुषार्थ २. श्रेष्ठ उद्योग ३ शास्त्रनिष्ठ आचरण ये तीनों जहाँ है वहाँ सिद्धि तो होगी ही।

मैं ही सम्पूर्ण विश्वरूप हूँ में ही अच्युत परमात्मा हूँ, मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है ये जो संवित् है (ज्ञान है) इससे उत्पन्न ये अहंकार है वह श्रेष्ठ है मैं सबसे परे हूँ—

सर्वस्याद्व्यतिरिक्तोहं, बालाग्रादप्यहं तनुः।
इतिया संविदो ब्रह्मन् द्वितीया हंकृतिः शुभा।।
मोक्षायैषानवन्धाय, जीवन्मुक्तस्य विद्यते।। (महोपनिषद्-५)

पाणिपादादि मात्रोऽय, महमित्येषनिश्चयः।
अहंकारः लौकिकस्तुच्छबन्धकः।।

अदृष्टोद्रष्टाऽश्रुतश्राताऽमतोमन्ताऽविज्ञातोविज्ञाता। नान्योऽतोतिद्रष्टा, नान्योऽतोस्ति श्रोत्म.ना. मन्ता, ना. विज्ञाता, एष आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम्।।
(वृहदारण्यकोप.-३/८)

मनोब्रह्मेत्युपासीतेत्या ध्यात्मम्। आकाशो ब्रह्मेति-अधिदैवम्।

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म

प्राणः	चक्षुः	श्रोत्रम्	वाक्	—	अध्यात्मम्।
↓	↓	↓	↓		
वायुः	आदित्यः	दिशः	अग्निः	—	अधिदैतम्।

(छान्दोग्योपनिषद् ३/१८)

जन्तवस्त्रिविधाः

१. तामसाः–भवक्षये विमुखाः भवोपकरणेषु च।

बाल के अग्रभाग से भी सूक्ष्म हूँ इस प्रकार के ज्ञान से उत्पन्न अभिमान श्रेष्ठ है ये अहंकार मोक्षमूलक है बन्धन का कारक नहीं है, ये तो द्वितीय जीवनभुक्तों का आभूषण है, हाथ पैरवाला ये शरीर मात्र मैं हूँ ये लौकिक निश्चय तुच्छ है बन्धन कारक है।

अन्यों द्वारा अदृष्ट किन्तु सबकों देखने वाला, अन्यों से अश्रुत किन्तु स्वयं श्रोता मनन से परे किन्तु अनुमन्ता, बुद्ध्यादि द्वारा अविज्ञान किन्तु सबका ज्ञाता यहाँ तक कि इनसे बढ़कर दृष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता कोई नहीं है यही आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। (इसे ऐसे भी कह सकते हैं दृष्टि का विषय नहीं किन्तु दृष्टा है श्रवण का विषय)।

मन ब्रह्म है—अध्यात्म दृष्टि से। आकाश ब्रह्म है—अधिदैवत दृष्टि से। मन संज्ञक ब्रह्म के चार पाद हैं—वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र। वाक् अग्नि से प्रकाशित। अकाश संज्ञक ब्रह्म के चार पाद हैं—अग्नि, वायु, आदित, दिशायें। प्राण वायु से प्रकाशित, नेत्र सूर्य से प्रकाशित, श्रेत्र दिशा से प्रकाशित है।

तीन प्रकार के जीव

तामसी भवक्षय की चिन्ता ही नहीं यहीं रमे हैं भव के चाकचिक्य (चमक दमक)

२. राजसाः–भवक्ष समति भ्रष्टाः भवोपकरणं स्थिताः।

३. सात्विकाः–भवक्षये मतिर्येषां भवोपकरणे नहि। (विष्णुधर्मोत्तर पु.-१/४४)



बदरीशः



भारतः

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च,
ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं,
यत्किंचभूतं प्रणये द्दनन्यः।। (श्रीमद्भा. ११/२)

ब्रह्मेश केशवमुखैर्वहुभिः कुमारैः,
पर्यायतः परिगृहीत विमुक्त देशम्।
उत्संगमम्बतव दास्यसि कदात्वम्,
मातृप्रियं किल जडं सुतमामनन्ति।। (आनन्दसागर स्तवे-६७)

में डूबे रहने वाले राजस भवक्षय के निमित्त वुद्धि तो है किन्तु विषयों में रत होने से भ्रष्ट अतः जगत् कारणों में स्थित सात्विक संसार शमन के लिए जो चिन्तन मनन करते हैं जगत् प्राप्ति के लिए नहीं।

बदरी विशाल एवं भारत वर्ष।

आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी-ज्योति, दिशाये-वृक्ष, न दिया-समुद्र-ये सव कुछ विराट भगवान का स्थूल शरीर है अतः अनन्यभाव से (अन्य नहीं है हरि ही है ऐसी वुद्धि से) प्रणाम करे।

ब्रह्मा-शिव-केशव-सनत्कुमारादि के मुखों से वहुधा एकान्त देशों में (समाधि में) आप की माँ सेवा की गयी ध्यान स्तवन किया गया है और ऐसा माना जाता है कि माता को अपना अबोध जड़ पुत्र अतीव प्रिय होता है (लोकोदाहरण सिद्ध है जो बालक अवोध है माँ उसी की चिन्ता करती है कहेगी जो खातापीता वीतो ठीक पर विचार ये क्या करेगा) अतः माँ आप अपनी पवित्र गोद में बैठने का सौभाग्यावसर कब देंगी मुझे में जड़ हूँ।

रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य, धर्माः सौर्यावयोगुणः। माधुर्यभोजः प्रसादु स्ते चयः।

(साहित्य द.)

चित्तद्रवीभावमयोश्लादोमाधुर्यम्। सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्।

कर्मनाशानदीश्यर्शात्, करतोयाविलङ्घनात्।
गण्डकी बाहुतरणात्, धर्मस्खलति कीर्तनात्।।

(आनन्दरामा. या. ९)

शिवालय मठाराम, दानग्रामाधिकारिणः। गच्छन्तिवै शुनोयोनि।

(आनन्दरामा. राज्य.-१०)

काव्य की आत्मा रस है अत: वह अंग नहीं अंगी है। माधुर्य ओज प्रस्ताद ये तीन गुण तो काव्य पुरुष के वैसे ही धर्म है जैसे मनुष्यशरीर में शौर्य-क्रौर्य-गुण रहते हैं। ये बालक शूर है आदि—ये गुण आत्मा नहीं हो सकते काव्य की। माधुर्य—चित्त द्रवीभाव से उत्पन्न आह्लाद को माधुर्य कहते हैं। ये क्रमश: अधिक होता जाता है संयोग में करुण में वियोग में शान्तरस में।

कर्मनाशा नदी के स्पर्श से (पुण्यों का नाश करती है) करतोया के लंघन से गण्ड की नदी को तैरकर पार करने से तथा धर्म का वखान करने से पुण्य की चर्चा करने से (और दूसरे करें तो कोई बात नहीं ये कीर्ति है, इसमें रुचि न ले, आसक्त न हो, चाहे नहीं, किन्तु स्वयं आत्म चर्चा पुण्यचर्चा आत्मश्लाधा है इससे पुण्य नष्ट होते हैं कहते है इन्द्र भी अपनी प्रशंसा करने से पतित हो जाता है इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापनात् गुणैः)।

शिवमन्दिर का पुजारी, मठाधीश-दानाधिकारी-ग्रामधिकारी-ये सब वैचारिक अशुचिता के कारण भावायुद्धि के कारण श्वान योनि में जाते हैं, कुत्ता बनते हैं। मन्दिर या मठ धर्म प्राप्ति का साधन है धन प्राप्ति का नहीं। ये भगवान की पूजा के लिए ही निश्चित है स्थान अपनी पूजा कराने के लिए नहीं। मठ या मन्दिर में आयीवस्तु द्रव्य सब भगवान के लिए है अत: भगवान को समर्पित करने से पूर्व मनसा उस भोग में राग हो गया तो उच्छिष्ट हो गया न अत: भगवान को देने से पहले भोगने का पाप ही भाव अशुद्धि है सुन्दरफल देखकर मन से स्वाद लेलिया, पुष्प सुन्दर लगा माला सुन्दर लगे सूघं ली, सुन्दरवस्त्त अलंकारादि में मन चला गया ये दोष हो गया, हाँ भगवान का उच्छिष्ट हम पायें प्रसादं हम पायें तो बुराई नहीं किन्तुदान का पैसा अपने ऊपर खर्च करना किराते के बहाने, भोजन के बहाने, व्यवस्थाओं के बहाने महाविष खाने के समान है उसका परिणाम विनाश होगी ही—भोजन का पैसा भवन में, भवन का पैसा भवन में, गौ का पैसा दक्षिणा

देहरामायणम् (आनन्दरा. विला.-३)

१. सच्चिदानन्द रूपस्य, सागरस्य तदिच्छया। (विष्णु:)
तरंग रूपयात्मांश-विन्दुः शुद्धो विनिर्गतः।। (इच्छा)

२. आत्मनामामातृभूत-बुद्धेर्जठर संभवः।
शुद्ध सत्त्वान्तः करणं, पिता चात्मन ईंतितः।।

३. तस्यात्मनश्च चत्वारो, भेदास्ते बन्धवः स्मृताः।
तुयविस्थस्तत्रवरः, ततो जाग्रदवस्थकः।।

४. स्वप्नावस्यस्तृतीवश्चा-वररः सुषुप्त्यवस्यकः।
हृदयाकाशस्ततपनं, मनोवेगो/वहिर्गभः।

५. मनोदुवृत्तिवातश्च, मनोवेगस्त्र खण्डनम्।
मायावेगस्ततस्तस्य, पूर्वसंस्कार निग्रहः।।

में, साधु का पैसा अन्य कार्यों में ये दान के द्रव्यार्जन में बड़ी कठिनाई हैं जो जिस कार्य के लिए आया है उसे उसी कार्य में लगा दिया जायें सत्यता पूर्वक (सत्य की कसौटी वाबी तर्क चालाकी समाज नहीं है शास्त्राज्ञा व हमारा अन्तःकरण है ध्यान रखना अन्तःकरण का यही साक्षी है सत्यता में) तो कोई हानि नहीं पर जो समाज धनान्ध है जो साधु धनान्ध हैं उनसे धर्मरक्षा कदापि सम्भव नहीं आय कर मुक्त संस्थाओं का (८०. G) व्यापार कलाप १ लाख लेकर १० लाख की रसीद देना जो दान याधन झूठ पर आधारित है वह दाता-प्रविग्रहीता भोक्ता सबका अकल्याण करता है ये बात बहुत विचारणीय है धार्मिक संस्थाओं से ये पाखण्ड खत्म होना चाहिए।

अन्य क्षेत्र का किया पाप तीर्थ क्षेत्र में नष्ट होता है किन्तु तीर्थ में किया पाप वज्रलेप हो जाता है मिटनानी मन्दिर भी तो तीर्थ ही है अतः वहाँ किये गये मानसिक अपराध शारीरिक वाचिक अपराध अक्षय हो जाने से पतन का भय रहता है

देहरामायण

सच्चिदानन्दरूप सागर की उनकी इच्छा से ही तरंगरूप आत्मा के अंश से शुद्ध विन्दु निकला वह आत्मा नाम वाला विन्दु बुद्धिरूपी माता से प्रकट हुआ तथा शुद्ध सत्वान्तः करण ही इस आत्मा का पिता कहा गया है इस आत्मा के चार भेद ही चार बन्धु हुए इनमें तुरीयावस्था सबसे बड़ी व श्रेष्ठ है तदनन्तर जाग्रत्-स्वप्न व सुसुप्ति हृदयाकाश मनो वेग निकला मन की दुवृत्तियों का घात तथा मन के वेग का खण्डन माया वेग का तथा

६. ततः कुबुद्धि हेतोर्हि, भवरण्येऽघ्नं चिरक्ष।
दम्भस्य निग्रहस्तत्र, पञ्चभूतात्मिका स्थिरा।। (विराधः) कवन्ध

७. आत्मनःपर्ण कुटिका, विश्रान्ति स्थानमीरिता। (देहेः)
काम-क्रोधलोभजयः, तत्राकृन्तनं स्मृतम्।। (खेरदूर्षणनिशिराः)

८. मोहस्यानिग्रहस्तत्र, शुद्धमायाश्रयस्तथा। (सूद्धसाखा)
रजोरूपातुयामाया, जठराग्नौ तदास्मृता।। (मारीचः)

९. तामस्याश्चैवमायाया, वियोगश्च तदास्मृतः।
सुखालाभोमहान्क्लेशः, शोक मंगस्ततः परम्।। (विरूधस्य)

१०. विवेकस्याश्रयस्तत्र, हनुमान भक्त्युद्रेक समागमः। (सुग्रीवस्य)
अविवेक वधश्चापि, ह्युत्साहेन समागमः।। (वालिः)

११. अज्ञान तरणोपायः त्रिगुणाश्रयसद्मनि।
लिङ्गाख्य निग्रहस्तत्र, मदस्य संप्रकीर्तितः।। (कुम्भकर्णस्य)

१२. निग्रहो मत्सरस्यापि, ततोऽ हंकार निग्रहः। (मेघनादस्य, रावणस्य)
वियोगो लिङ्गदेहस्य, माया नामैक्यता ततः।। (लंकात्याग)

१३. हृदयाकाश गमनं, आनन्दैकसुखं ततः।
माया त्यागस्ततश्चैव, सात्विक्या ग्रहणं स्मृतम्।।

उसके पूर्व संस्कारों (जन्यजन्मान्तरीय शुभाशुभ कर्म जन्य सुप्त वासनाओं का) का निग्रह भवारण्य में चिरकाल तक भटकना कुबुद्धि का परिणाम है, दम्भ का निग्रह (विराधबध) (भवाटवी) पञ्चभूतो द्वारा सृजित पर्णकुटी ही इस आत्मा का विश्रामस्थल है (देह) काम क्रोध लोभ पर विजय पाना ही (खरदूषण त्रिशिरा वध है) मोह का निग्रह तथा शुद्ध माया का आश्रय (सूर्पणखा का निग्रह) जठराग्नि मैं रजोगुणी माया ही मारीच है तमोगुणी माया के कारण वियोग हुआ (सीता कृत) सुख हानि महान क्लेय प्राप्त हुआ तदनन्तर शोकभंग हुआ (विराध वध) तदनन्तर विवेक के आश्रय से (हनुमान मिलन से) भक्ति उद्रेक का समागम हुआ (सुग्रीव मिलन) अविवेक वन्ध (वालिवध) उत्साहपूर्वक हुआ। अज्ञान को पार जाने का उपाय (सागरतरण) त्रिगुणमय देहघर में (लंका में) मद का निग्रह (देहभाव में स्त्री में पुरुष आदि) कुम्भ कर्ण वध मात्सर्य निग्रह (मेघनाद वध) अहंकार निग्रह (रावण वध) लिंग देह से वियोग (लंकापुरी परित्याग) करके हृदयाकाश में गमन ही आनन्दोपलब्धि

१४. सात्विक्या मायया सार्धं, हृदयाकाश मुक्तमम्।
मठाकाशे प्रणायनं सच्चिदानन्द सज्ञके।।

१५. प्रवेशनं सागरे हि, मुक्तिर्ज्ञेयात्मनः शुभा।

बाल्मीकना कृतं शत कोटि प्रविस्तरं रामायणम्। जगदीश्वरः त्रिधाविभज्य तत्काव्यं–३३३३३३३३३ देवेभ्यः। तावत्-मुनिभ्यः। तावत्-नेगेभ्यः।

बाल्मीकिः (राज्य का. ३/१४)

गंगा तीरे द्विजः शंखः। अगान्नदीं गोदावरीम्। वैशाखे ताप कर्षितः। व्याधः। कुण्डले, उपानहो. द्वयं, वस्त्राणि, कमण्डलुं चाहरत्। पश्चादुपानहौ दत्तौ। स्वपूर्व चरितं पृष्ठम्। शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेद पारगः स्तम्भोनाम। ब्राह्मणो ते कान्तिमयी। त्वां

है तदनन्तर तामसी माया का चाम करके सात्विकी माया का ग्रहण सात्विकी माया के साथ हृदयाकाश सच्चिदानन्द घन महावाश में प्रवेश पुनः सागर में प्रवेश ही आत्मा की शुभ मुक्ति है।

राम

वाल्मीकि ने १०० करोड़ श्लोकात्मक रामायण का निर्माण किया जगदीश्वर ने उस काव्य को तीन भागों में निभक्त कर ३३-३३ कोटि देवों-मुनियों में बाँट दिया। १ करोड़ क्या फिर तीन भाग कर बाँटा तब १ लाख बचा, फिर ३३ हजार तीन भागों में बाँटा तब हजार क्या, ३३३,३३३,३३३ करके बाँटा ९९९ बँट गया। १ श्लोक बचा उसको भी माँगने पर प्रभु ने कहा कैसे बाँटू। इसे तब विचार कर देखा ये अनुष्टुप छन्द का श्लोक है। इसमें ३२ अक्षर हैं। इन बत्तीस अक्षरों में से १०-१०-१० अक्षर बाँट दिये २ बचे ये बाँटा भी नहीं जा सकता था देना भी नहीं चाहते थे महादेव ने नहीं दिया। यही दो अक्षर जय महेश मुनि मानस हंस है—श्रीमत्शम्भु के मुख में शोभित, **'रामचरित शत कोटि महं किय महेश जिय जानि'** रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे सहस्त्रनामत्ततुल्यं रामनाम वरानने, यद्यपि प्रभु के नाम अनेका श्रुतिकह अधिक एक ने एका, राम सकल नामन्ह ते अधिका।

बाल्मीकि

पंपा तटवर्ती शंख नामक द्विज गोदावरी के किनारे गया वैशाख मास की गर्मी से झुलसा भूखा प्यासा वहाँ एक व्याध ने उसका दाता, जूता, वस्त्र, कुण्डल-कमण्डल दीन लिए-किन्तु दया करके जलती वालू में पांव जलते हैं जूता लाँटा दिये और व्याद्य ने उस द्विज से अपना पूर्व जन्म जाना-द्विज वोला हे वधिक तुम शाकल नगर में स्तम्म नामक

पर्यचरत्। माहिष्यं मूलकान्वितं, निष्पान्तिलभित्रितान् अभक्षयत्। अपथ्याहासणे रोगो व्यजायत भगन्दरः। विष्णुं भर्तु देहे व्यचिन्तयत् समृतः, सासतीवभूव। मुरारिलोकं जगाम। त्वं व्याधः संञ्जातः। अग्रे कृणुर्नाम मुनि वीर्यं उरगी ग्रहीण्यति, तस्यास्त्वं जनिष्यति। किराताः पालयिण्यन्ति त्वं च किरातधर्मी भविष्यसि। सङ्गतिः सप्तमुनीश्वरैः तेषां प्रसादात् त्वं मुनिर्भविष्यति। एकाग्र मनसात्रैव, मरेति जपर्सदा।

लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमाः, धेनुः कामदुधासुरेश्वरगजो रम्भादि देवाङ्गनाः। अश्वःसप्तमुखो विषं हरिधनुःशङ्वोऽमृतं चाम्बुधेः रत्नानीतिचतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्।

त्रिंशल्लक्षणो धर्मः (श्रीमद्भा. ७/११)

[१]सत्यं [२]दयां [३]तपः शौचं[४], तिंतिक्षेक्षां[५,६] [७]शमो [८]दमः।
[९]अहिंसा [१०]ब्रह्मचर्यं च, [११]त्यागः [१२]स्वाध्याय [१३]आर्जवम्।।
[१४]सन्तोषः [१५]समदृक् [१६]सेवा, ग्राम्येहोपरमः[१७] शनैः।
नृणां विपर्यये हेक्षा[१८], मौन[१९] [२०]मात्मविमर्शनम्।।

वेदवेत्ता विप्र थे कान्तिमयी ब्राह्मणी तेरी सेवा करती थी, तुमने महिष दूध के साथ मूली तिल सहित खायी उस अपध्य से भक्षण से दारुण रोग हुआ भगन्दर मर गया, वह सती साध्वी सती हो गयी तेरे देह को विष्णु मानकर फलतः विष्णु लोक गयी, तुम व्याध हो गये—फिर कृणु नाम के मुनि के वीर्य को उरगी गृहण करेगी तुम पुनः उत्पन्न होवोगे किरात तुम्हारा पालन करेंगे तुम भी किरातों जैसे आचार विचार वाले हो जायोगे किन्तु सप्तर्षियों की संगति होने से उनके (सन्तों के) कृपाप्रसाद से तुम मरा शब्द का एकाग्र मन से जप करते करते तुम लोक विख्यात मुनि हो जाओगे। उलटा नाम जपा जग जाना वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना। मंशान्ति रातीति मरा—ये मरा भी मन्त्र है।

चौदहरत्न

१. लक्ष्मी, २. कौस्तुभ, ३. पारिजात, ४. सुरा, ५. धन्वन्तरि, ६. चन्द्रमा, ७. कामयेन्दु, ८. ऐरावत, ९. रम्भादि अप्सरायें, १० उच्चैश्रवा, ११. विष, १२. शार्ङ्ग, १३. शंख, १४. अमृत सागरोद् भूत इन चौदहों रत्नों का स्मरण प्रतिदिन तुम्हारा मंगल करे।

तीस लक्षण पुक्तधर्म १. सत्य, २. दया, ३. तप, ४. शौच (पवित्रता तनमन दोनों का), ५. तितिक्षा द्वन्द्व सहिष्णुता सुख-दुख मानापमानादि सहना, ६. ईक्षा, ७. शम (मन निग्रह), ८. दम (इन्द्रियों का वश में करना), ९. अहिंसा, १०. ब्रह्मचर्य, ११. उचितनुचित

अन्नादेः संविभागो[२१], भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता[२२]बुद्धिः, सुतरां नृषु पाण्डव।।
[२३]श्रवणं [२४]कीर्तनं चास्य, [२५]स्मरणं महतां गतेः।
[२६]सेवेज्या[२७]वनतिर्दास्यं[२८-२९], [३०]सख्यमात्मसमर्पणम्।।
।।सर्वात्मावेन तुष्यति।।



त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञंवहति पूरुषम्।
(श्रीमद्भाग. १२।११।१९)

नमोनिमं नभस्तत्त्वंमसिं विभ्रत्। चर्य तमोमयम्।
(श्रीमद्भाग. १५)

कालरूपंधनुः शार्ङ्गम्। अन्याकृतमनन्ताख्यसनम्।। (श्रीमद्भाग. १३)

देवानां त्रितपं त्रची हुत भुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा।
स्त्रैलोक्य त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्मवर्शासपः।।

विचार त्याग, १२ स्वाध्याय, १३. सरलता, १४ सन्तोष, १५. समदृष्टि, १६. सेवाभाव, १७. धीरेधीरे सांसरिक वासनामों से विरांत, १८. मनुष्यों द्वारा साहंकार कृत कर्म विपरीत फल वाला होता है ये विचार, १९. मौन, २०. आत्मचिन्तन, २१ प्राणियों में यथायोग भोजनादि विभाग, २२. सभी में ईष्ट भावना अपने प्रभुमादर्शन तथा उनकी लीलाकथाय, २३. श्रवण, २४. कीर्तन, २५ स्मरण, २६. पादसेवा, २७. अर्चन, २८. वन्दन, २९. दास्य, ३०. सख्य भाव सबका परं परिणाम है आत्म निवेदन जिससे पूर्वात्मा परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

गरुड ही वेदत्रयी है जो यज्ञ पुरुष को ले जाते है। जैसे वोदों द्वारा यज्ञ निवहि होता है वैसे ही गरुड जी श्रीमनारायण को ले जाते है यज्ञ नारायण है गरुड वेदत्रयी है।

भगवान में पार्थिव तत्व गदा (कौमोदकी) जल तत्व पाञ्चजन्य शंख, तेजस्तत्व-सुदर्वनचवु आकाश तत्व आकाश की जैसी आभा वाली तलवार (खड्ग) चर्म (दाल) तमोमयी है।

शार्ङ्ग धनु कालरूप है, अव्याकृत अनन्त ही भगवान का अधिष्ठानाश्रय आसन है।

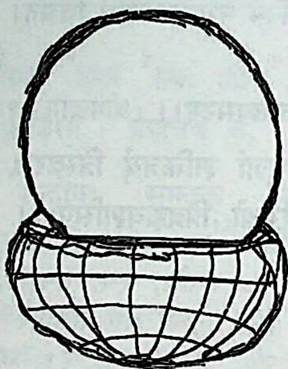
ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये त्रिदेव, अग्नि की तीन है, शक्ति भी तीन है, स्वर भी तीन है—उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, लोक भी तीन है—पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल। तीन ही पद है—पारमेष्य्य, कैलाश, वैकुष्ठ। पुष्कर तीन है। ब्रह्म भी तीन है—कारण ब्रह्म, हिरण्यगर्भब्रह्म, परब्रह्म। वर्ण भी तीन है—अ उ म।

पत्किञ्चिज्जगति विधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं।
तत्सर्वं त्रिपुरोति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।। (लघुस्तव)

ह्रीं श्रीं क्लीं चेति रूपेभ्य, स्त्रिभ्यो हि लोक पालिका। भासते सततं लोके, गायत्री त्रिगुर्णात्मका। (गायत्री संहिता)

सर्वमय भगवान् को प्रणाम करो

खं वायु मग्निं सलिलं यहीं च ज्योतीं सि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्स मुद्रांश्च हरेः शरीरं पत्किञ्च यूनं प्रणमेदनन्यः।।



आकाशं लिङ्ग मित्याहुः,

पृथिवी तस्य पीठिका।

आलयः सर्वदेवानां, लयनालिङ्गमुच्यते।। (स्कन्दपुराणे)

अ–ब्रह्म निर्गुणाः, इ–चित्कला, उ–सगुण ईश्वरः जगद्रूपः, णा–अभूत्।

जो कुछ भी जगत में है सब त्रिविध ही है वस्तुमात्र भी त्रिवगत्मिक ही है वह सबकुछ हे माँ त्रिपुरश्वेरी तत्वतः आपके नाम से अन्वित होने के कारण ही है।

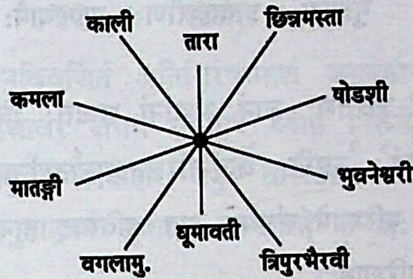
ह्रीं श्रीं क्लीं इन तीन रूपों द्वारा तीनों लोकों का पालन करने वाली त्रिगुणात्मिक माता गायत्री निरन्तर लोक में भासित हो रही है।

पृष्ठ नं. २१ पर ये श्लोक आ गया है

आकाश ही लिङ्ग है पृथिवी ही इसकी पीठ जलहरी है सब देवताओं का लयस्थान होने से ही ये लिङ्ग कहा जाता है।

अ = निर्गुण ब्रह्म ही, ई = चित्कला के साहचर्य से, उ = सगुण ईश्वर व जगत् रूप में, णा = प्रादुर्भूत हुआ।

दशमहाविद्या (देवीभागवते)



पूर्वा

उत्तरा | दक्षिण

४ बुधः विष्णुः हरितः	इन्द्राणी शु. इन्द्र: श्वेतः	२ चन्द्रः उमा अप् श्वेतः
५ गुरुः पीत	ईश्वर १ सू. अग्नि रक्तः	३ स्कन्द मं. रक्तः
९ ब्रह्मा केतुः	७ यमः शनिः	८ कालः राहुः

पश्चिमा

१. रक्तः
२. श्वेतः
३. रक्तः
४. हरिः
५. पीतः
६. श्वेतः
७. काला
८. काला
९. काला

अम्भोधिः स्थलतां स्थलोजलधितां धूलीलवः शैलतां,
मेरुर्मृत्कारमतां तृणां कुलिशतां वज्रं तृणाप्रायताम्।
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया,
लीला दुर्ललिताद्भुतव्यसनिने देवाय तस्मै नमः।। (सुभाषितावलि:)

दशमहाविद्याओं को स्पष्ठ कर ही दिया है।

अधिदेवता प्रत्यधिदेवताओं सहित चित्र में नवग्रह स्पष्ट ही हैं।

जिस सर्वेश्वर सर्वनियन्ता अघटित घटना पटीयसी माया के नियन्ता कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ सर्व समर्थ प्रभु की इच्छा से पलभाव में सागर स्थल बनजाये-भूतल जलधिर

शोधनं	दृढता	स्थैर्यं	धैर्यं	लाघवं	प्रत्यक्षं	निर्लिप्त्
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
षट्कर्मणा	आसनैः	मुद्राभिः	प्रत्याहारोण	प्राणायामैः	ध्यानेन	समाधिना

(परेण्ड सं.)

[1]आवेश श्[2]चेतसः ज्ञानं अर्थानां छन्दतः[3] त्रियया। (सिद्धयः)

दृ[4]ष्टि श्रोत्रं[5] [6]स्मृतिः [7]कान्तिरिष्टतश्चाप्य[8]दर्शनम्। (चरके शा. १।४५)

धर्म लक्षणावस्था परिणामे संयमात् भूत भविष्यद् ज्ञानम्।

कार्याकारः–धर्म परिशामः।

कार्यस्य वर्तमानस्थितिः–लक्षणा परिणामः।

परिवर्तनं–अवस्थां परिशामः।

हो जाये, धूलीकण पर्वताकार व सुमेरु भूतल रजकण सदृश हो जाये, तृण (तिनका) वज्र सदृध व वज्र तिनका जैसा हो जाये अग्नि शीतल व वर्फ दाहकतायुक्त हो जाये उस विचित्र लीला विलादी देव को नमस्कार है।

शोधन = षट् कर्मों द्वारा-नेति धोती वस्ति-वज्रोली, नौली, शंखप्रच्दालन। दृढ़ता = आसनों द्वारा। स्थिरता = मुद्राओं द्वारा। धीरता = प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों हटाकर शुद्धचिन्तन ब्रह्म चिन्तन मैल। लधुता = सत्ववृद्धि प्राणायाम छात। प्रत्यक्षानुभव = ध्यान द्वारा। निर्लिप्तता = समाधिद्वारा।

अष्टसिद्धियाँ

१. आवेश = परकायाप्रवेश क्षमता, २. चित्त ज्ञान, ३. विषयों में स्वच्छन्द किया क्षमता, ४. दूरदृष्टि, ५. दूर श्रवण, ६. दृढस्मृति, ७. कान्ति, ८. अदर्थन।

धर्म परिमाण—लक्षण परिणाम-अवस्था परिणाम में संयम करने से भूत भविष्यत् ज्ञान होता है।

धर्म परिणाम—कुम्भकार मिट्टी रूपीधर्मी से घट सकोरा आदि अनेक पात्र करता है यही धर्म है (मिट्टी) धर्मी नही बदलता धर्म पात्र बदलते रहते हैं।

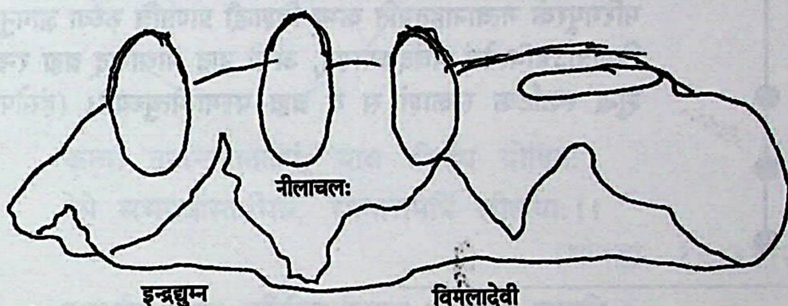
लक्षण परिणाम—मिट्टी में दिपा घड़ा भविष्य से वर्तमान हुआ है। नहीं बना भविष्य, बन गया वर्तमान, टूट गया भूतकाल यही लक्षण है।

अवस्था परिणाम्—बना घड़ा जैसे-जैसे पुराना हो रहा है जीर्ण हो रहा है यही परिणाम परिवर्तन अवस्था परिणाम है।

घटः
कपालम्
मृत् ※ ठीकरी

सत्यं मानविवर्जितं श्रुतिगिराममाद्यं जगत्कारणम्,
व्यारतं स्थावर जंगमं मुनिवरै ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षर वपुः तारात्मकं संततम्,
नित्यानन्दगुणालयं गुणापरं वन्दामहे तन्महः।।

(शारदाति. २३।३७)



 विन्दु पीठं विनिर्भिघ, नादलिङ्ग मुपस्थितम्। (योगशिखोनिषद्)

मिट्टी से घड़ा बना, घड़ा पूरा ठीकरा बना ठीकरा फिर मिट्टी हो गया ये अवस्था परिणाम काल परिमाण धर्म।

हम उस दिव्य तेज की बन्दना करते हैं, जो नित्यानन्द स्वरूप है त्रिगुणों का आश्रय होने पर भी गुणों से परे हैं, सत्य रूप है, मान वर्जित है (प्रमाणादि का प्रमेय नहीं उसकी सत्ता में प्रमाण प्रवेश नहीं कर सकते) जो वेद वाणी में प्रथम प्रणवरूप है जो जगत कारण है, जो स्थावर जंगम जगत् में व्याप्त है जो महामनीषियों मुनियों द्वारा इन्द्रियों को वश में करके ध्यात है जो सूर्य चन्द्र अग्निरूपात्मक है शताक्षर देह वाला है निरन्तर जो तार रूप प्रणवरूप है वह प्रणम्य है पूर्व से सम्बद्ध करे।

इन्द्रद्युम्न नामक राजा ने नारद जी की कृपा से नीलांचल पर जगन्नाथ भगवान की पूजा व्यवस्था को नियमित किया तथा शंख पर विराजमान पुरुषोत्तम तीर्थ (जगन्नाथ पुरी) में शंख की तीसरी आवर्त परिधि पर विमला देवी का अवस्थान है।

बिन्दु पीठ का भेदन करके ही नाद लिङ्ग उपस्थित होता है।

बीजाक्षरं परं विन्दुं, नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे, निशब्दं परमं पदम्।। (ध्यानविन्दुपनि.)

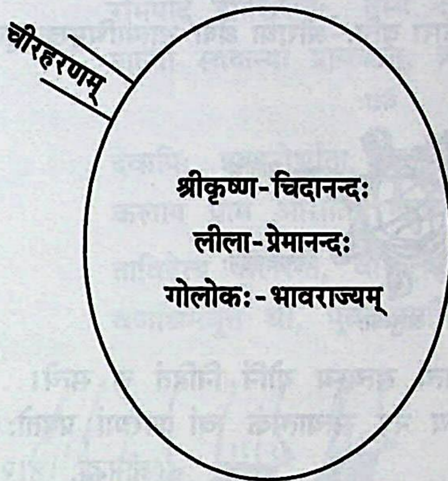
आदौ चन्दः सिते पक्षे, भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहु, स्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये।।
बहेत्तावद्घटीमध्ये, पञ्चतन्नानि निर्दिशेत्। (पवनविजय स्वरोदयः)

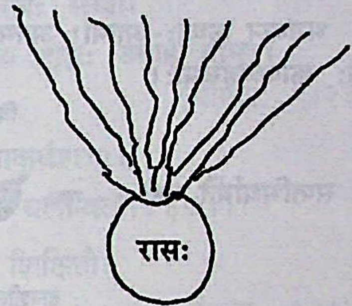
गुद मवष्टभ्याधाराद्वायुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिःपरिकम्य मरिगपूरकं गत्वानाहतमति कम्य विशद्धौ प्राणान्नि रुध्या ज्ञामनुध्यायन् त्रिमात्रोऽहमित्येवं सर्वदाध्यायन्, अथो नाद माधाराद् ब्रह्म रन्ध्रपर्यन्तं शुद्ध स्फटिक संकाशं स वै ब्रह्म परमात्मेत्युच्यते। (हंसोपनि.)

बीजाक्षर से परे विन्दु है और विन्दु से भी परे नाद हे नाद से ही शब्द का उद्भव होता है (कारण भूत मकाराक्षर से परे) (ये मकार ही कारण हे अ उ ये मकार में ही लीन हो जाते है) नाद से भी पर है अक्षर (अ से क्ष तक वर्ण जिसमें आ जायें या जिसका क्षरण हो वह अक्षर है) के क्षीण होने पर शब्द हीनावस्था ही परंपद है शान्तावस्था है (अनुभव करने के उपरान्त आनन्द का विषय है ये केवल लिखने पढ़ने सुनने का नहीं)

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लेकर क्रमशः तीन-तीन दिन तक पहले तीन दिन चन्द्रस्वर (वायी नासिका स्वर-इडा स्वर) फिर तीन दिन सूर्य स्वर-ऐसे क्रमशः पूरा शुक्ल पक्ष जाने कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर तीन तीन दिन के क्रम से पहले तीन दिन सूर्यस्वर (दक्षिणा नासिकास्वर-पिंगला नाडी) फिर चन्द्रस्वरफिर सूर्य क्रम जाने ये यथाकृत् चलेगा तो व्यक्ति स्वस्थ रहेगा देखना जब भी व्यक्ति रोगी हुआ तो निश्चित स्वर में विकृति आयी है **स्वर ही ईश्वर है** सदाशिव इस स्वर विज्ञान के आचार्य है। (विशेष ज्ञानार्थ शिव स्वरोदय पुस्तक देंखे) (घटीमध्य में ही पांचों तत्त्वों को निर्देश करे)।

गौतम के पूछने पर सनत्सुजात ने शिवोक्त पार्वती श्रुत इस उपनिषात् विधा का उपदेश किया गुदा (मलद्वार को) को वाम पाद की एडी से दबाकर मूलाधार चक्र से वायु का उत्थान करके ('हूँ हूँ' ये मन्त्र परमोपकारक है) स्वाधिष्ठान चक्र की तीन परिक्रमा करते





कृत्वा तावन्तमात्ततानं, याव तीर्गोप योषितः।
रेमे सभगवांस्ताभिन्न, रात्मारामेपि लीलयाः।।

(श्रीमद्भा. १०।३३।२०)

यथार्मकः स्व प्रतिबिम्बविभ्रमः। स्वधं स्वरतिः।

हुए उस वायु को मणि पूरक (नाभिस्थ) होते हुए अनाहत (हृदयस्थ) का अतिक्रमण करे तदनन्तर विशुद्धचक्र (कष्ठस्थ) में वायु को रोककर आज्ञा चक्र का एवं ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करते हुए मैं त्रिमात्र हूँ सर्वदा ऐसा ध्यान करते हुए, इसके अनन्तर शुद्ध स्फटिक संकाश नाद को आधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक अभिव्याप्त देखे यही नाद ब्रह्म है यही परमात्मा है कहा गया है।

श्रीकृष्ण चिदा नन्द रूप है, उनकी लीला में प्रेमानन्द रूप है, गोलोक-भावराज है। रास से उज्ज्वल रस प्रतिस्फुटित होकर सकल संसार को सराबोर करता है।

चिदानन्द कृष्ण द्वारा प्रेमानन्द मयी लीला करके गोलोक मय भाव रज्य का आवरण भंग ही चीरहरण है।

जितनी गोपाङ्गनाये थी उतने ही कृष्ण ने अपने रूप बना लिए कृत्वा किरके) तब भगवान ने उन गोपियों के साथ रमण किया यद्यपि वे आत्माराम है तदपि लीलार्थ ही लीला माया शक्ति द्वारा) कैसे-जैसे बालक अपने प्रतिबिम्ब से क्रीड़ा करता है। स्वयं की स्वयं के प्रति रतिभावना।

भगवान् कृष्णः-आत्मा। आत्माकारा वृत्तिः-श्रीराधा श्रेषा आत्माभिमुखा वृत्तयः-गोप्यः कापव्यहरूपाः।

सप्तभिर्धार्यते मही



सत्यब्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्य नेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणां प्रपतोः।।
(श्रीमद्धा. १।२।२६)

सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता, मागधावंशशंक्षकाः।
वन्दिन स्त्वमल प्रज्ञाः प्रस्ताव सदृशोक्तयः।।

श्रीकृष्ण = आत्मा हैं आत्माकारा वृत्ति श्री राधा जी हैं आत्माभिमुख अन्य वृत्तियां अन्य गोपियां है शरीर व्यूहरूप हैं।

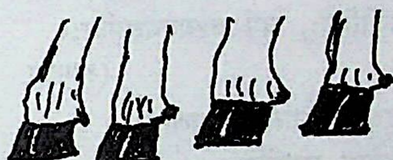
ये पृथ्वी सात स्तम्भों पर टिकी है—१. गायों, २. विप्रों, ३. वेदों, ४. सतियों, ५. सत्यवादियों, ६. अलुब्धों (जो लोभी नहीं है अकृपण है), ७. दानशीलों—ये मत सोचना की सत्री व सत्यवादी नहीं है जिस दिन ये नहीं रहेंगे ये पृथ्वी नहीं रहेगी। यदि हम इन सातों में से कोई हैं तो भी अभिमान मत करना अक्सर थोड़ा पूजापाठ करने वाले दुनियाँ की निन्दा करते नहीं धकते ये बुरा है दान करने वाली आत्म प्रशंसा की कीचड़ में धंस जाते है—कुछ ठीक से-पवित्रता से जीने वाले दूसरों के चरित्रों पर कटाक्ष करते हैं, ये ठीक नहीं पतन का भार्ग है ये **करो पर कहो मत** यदि हम इन सातों में से कोई नहीं है तो क्यों जी रहे हैं, गाप नहीं-विश्न हीं-वेद नहीं-सती नहीं-मान लो सत्यवादी अलोभी दानशील होने से कौन रोकता है। यदि हम इन सातों में से कोई नहीं तो हम भार है भूमि पर।

हे प्रभो! आप सत्यव्रत हैं—सत्य परायण है—त्रिकाल में सत्य हैं—सत्य के जनक है, सत्य में निहित है हे सत्य नेत्र—सत्य में जो प्रियता है वह आप है हे सत्यात्मक प्रभो हम आपकी शरण में आ गये हैं।

पुराणवाचकों को सूत कहा जाता है, मागद्य वंशावली के प्रशंसा करने वाले अमल बुद्धि वाले प्रस्ताव के अनुरूप व्यक्त करने वाले वन्दीजन होते हैं।

रोमपाद इतिख्यातः, तस्मै दशरथः सखा।
शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत्, ऋष्य शृङ्गः उवाह ताम्।।
(श्रीमद्भा. ९।२३।७)

देवापिः शन्तनोर्भ्राता, मनुश्चेक्ष्वाकुवंशजः।
कलाप ग्राम आसाते, महायोग बलन्वितौ।।३७।।
ताविहेत्य कलेरन्ते, वासुदेवानु शिक्षितौ।
वर्णाश्रमयुत्तं धी, पूर्ववत्प्रमयिष्यतः।।३८।। (श्रीमद्धा. १२।२)



सत्यं दया तपो दानं–इति पादा विभो नृंप। (श्रीमद्धा. ३।१८)
हिंसाऽसंतोषाऽनृतद्वेषाः–अधर्म पादाः।

महाराज दशरथ के मित्र महाराज अंगराज शेमपाद उनको दशरथ ने अपनी शान्ता नाम की कन्या पुत्रीत्वेन प्रदान की उसी शान्ता के साथ शृंगी ऋषि का विवाह हुआ।

महाराजा शन्तनु के भ्राता देवापि और मनु (इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न) ये दोनों कलाप ग्राम में महायोगबल से युक्त हो रहते हैं।

ये दोनों वासुदेय के द्वारा अनुशिक्षित हैं कलि के अन्त में वणश्रिमधर्म की पूर्ववत् स्थापना करेंगे (वणश्रिमधर्म ही सनातन धर्म है शांकर भाव्य में (गीता) लिखा है (धर्मस्तावत् वर्णाश्रमधर्मः एव) कलिकाल के कुप्रभाव से वणश्रिम मर्यादायें विखण्डित सी लगती हैं किन्तु इनका अन्त नहीं हो सकता ये सनातन परमात्मा की सनातन व्यवस्था है। यूं तो तुच्छ बादल या कोहरा सूर्य को भी ढक लेता है पर कब तक वस वैसे ही समय का खेल है, स्वच्छन्दता स्वेच्छाचारिता मर्यादा उल्लेखन को ही वड़प्पन माना जा रहा है, पर पशु से अधिक स्वेच्छाचारी मानव कभी नहीं हो सकता—मानव वह जो मर्यादा में जीये।

धर्म के चार पाद हैं—१. सत्य, २. दया, ३. तप, ४. दान हममें चारों न सही कम से कम कोई एक तो आजाये ये प्रयास करे ईसान।

अधर्म के चार पाद है—१. असत्य, २. हिंसा, ३. द्वेष, ४. असन्तोष।

यदा सत्वे मनो बुद्धीन्द्रियाणि तदा कृत युगं, ज्ञाने तपसि यद्रुचि।

यदा धर्मार्थ कामेषु भक्तिः तदा रजो वृत्ति स्त्रेता।

यदा लोभोऽसंतोषोमानो दम्भो मत्सरः काम्य कर्म तदा रजस्तमो द्वापरम्।

यदा मायाऽनृते तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादः शोको मोहो भयं दैन्यं-स-तामसः कलिः।। (श्रीमद्भा. १२।३)

कलौ

दस्यूत्कृष्टा जनपदाः, वेदाः पाखण्डदूषिताः। राजानः प्रजाभसाः, शिश्नोदरपरा द्विजाः, अव्रताऽशौचा वटवः, भिक्षवः कुटुम्बिनः, तपस्विनो ग्राम वासाः, न्यासिनोजत्यर्थ लोलुपाः, शूद्रा प्रति ग्रहिष्यन्ति तपोवेसो पजीविनः, धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञाः।

(श्रीमद्भा. १२।३)

पुंसां कलिकृतान्दोषान्, द्रव्य देशात्म संभवान्।
सर्वान्हरति चित्तस्थो, भगवान् पुरुषोत्तमः।।

जब सत्वगुण युक्त (सात्विक) मन बुद्धि-इन्द्रियों हों तब जानों सतयुग है। परिणामतः ज्ञानार्जन में तप में रुचि जाग्रत होती है—ज्ञानी तापस के लिए सदा सत्ययुग है।

जब धर्म-अर्थ-कामार्जन में भक्ति हो तब रजो गुणात्मक त्रेता युग है।

जब लोभ-असन्तोष-मान-दम्य-मत्सर-सहित काम्य कर्मों में रुचिवढे तब रजव तम का उद्रेक होगा यही द्वापर है।

जब माया झूठ-तन्द्रा आलस्य-प्रमाद-नींद हिंसा-विषाद-शोक-मोह-भय-दैन्य है तब समझो पूर्ण तामणिक वृत्ति है यही कलियुग है। प्राणी जब चाहे तब युग बदल ले मैं बदला तो जग बदला मैं नहीं बदला तो क्या अन्धे को प्रकाश के क्या।

कलियुग में—दस्युओं द्वारा पीडित जनपद हो जाते है वैद पाखण्ड से दूषित हो जाते हैं। राजा प्रजा का शोषण करते है, द्विज भूख व भोग रसना एवं वासना में डूबे रहते हैं, ब्रह्मचारी व्रत हीन व अपवित्र रहने लगते हैं, संन्यासी परिवार वाले कुलपोषक हो जाते हैं, तपस्वी तीर्थ वन छोड़कर ग्रामों नगरों में परिवार वाले कुलपोषक हो जाते हैं, तपस्वी तीर्थ बन छोड़कर ग्रामों नगरों में वहाँ भी धरों में रहने लगते हैं। त्यागी-धनलिप्सु हो जाते है। शूद्र प्रतिग्रह लेने लगेंगे (दान लेने लगेंगे) वेष धारस मात्र तप का प्रतीक होगा जाके नख अरु जटा विशाला सोई तापस कराल किसीकाला अधर्मज्ञ धर्म का उपदेश करेंगे उनके यहाँ लाखों की भीड़ इकट्टी होगी सत्यवादी सदाचारी साधु उपेक्षित हो जायेंगे।

प्राणियों के चित्त में विराजमान् पुरुषोत्तम भगवान् द्रव्य देश व आत्मा संभव प्राणियों के कलिकृत सब दोषों को हर लेते हैं।

आत्यन्तिकं लयः

बुद्धीन्द्रियार्थ रूपेण, ज्ञानं भाति तदाश्रयम्।
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यां, आद्यन्तवदवस्तु यत्।।
दीप श्चक्षुश्चरूपं च, ज्योतिषो न पृथग्भवेत्।
एवं धीः खानि मात्राश्च, न स्यु रन्यतमादृनात्।। (श्रीमद्भाग. १२।४)
बुद्धेर्जागरणां स्वप्नः, सुर्घप्तरिति चोच्यते।
मायार्चामदं राजन्, नानात्वं प्रत्यगात्मनि।।
पत्सामान्यविशे गाभ्या, मुपलभ्येत तभ्रमः।
अन्योऽन्यापाश्रयात् अर्व, याद्यन्तवदवस्तु तत्।।

गोपिका–१. नित्यसिद्धाः, २. साधनसिध्याः–सुनन्दा, सुभद्रा, रङ्गवेणी, चित्रगन्या, ३ श्रुतिरूपाः–उद्धीता, सुगीता, फलगीता, कलकण्ठिका, विपञ्ची।

अपूर्वमनपरानन्तरमबाह्यम्। (उपनिषत्)

आत्यन्तिकलय

बुद्धि-इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों के रूप में इनका अधिष्ठान आधार ज्ञान ही भासित हो रहा है ये सब दृश्यत्व के कारण एवं अव्यतिरेक के कारण ये आदि अन्त वाली विनाशी है अवस्तु है मिथ्या है। (व्यतिरेक का अर्थ है इनके इन्द्रियों अभाव से चैतन्याभाव हो किन्तु ये साती है नहीं अत: अव्यतिरेको जैसे दीपक चक्षुव रूप तीनों प्रकाश से भिन्न नहीं वैसे ही बुद्धि-इन्द्रियां व विषय भी इससे (व्रह्म) भिन्न नहीं हैं। जाग्रत स्वप्न-सुषुप्ति ये बुद्धि की अवस्थायें है हे राजन इनका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं ये तो माया मात्र है आत्मा में विश्व प्राज्ञ तैजस भेद भी कर।

जो सामान्य (कारण) विशेष (कार्य) भाव दिखता है वह भी भ्रम ही है ये कार्य कारण भाव अन्योन्याश्रित हैं तथा इनका आदि व अन्त दोनों प्राप्त है अत: अवस्तु है मिथ्या है।

त्रिविधगोपियाँ है—१. नित्यसिद्धा गोपिया, २. साधनसिद्धा—सुनन्दा, सुभद्रा, रंगवेणी, चित्रगन्धादि, ३. श्रुतिरूपा—उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकठिष्का, वियञ्ची।

अपूर्व, सर्वेभ्यपर, अनन्तर, अबाह्न ब्रह्म है।

नचान्तन्तर्नवहिर्यस्य, न पूर्वं चापि नापरम्।
पूर्वापरं वहिश्चान्त, र्जगतो यो जगच्च यः।। (श्रीमद्भा. १०।९)

सङ्गं न कुर्यादसतां, शिश्नोदर तृपां क्वचित्।
ऐलः समाडिमां गाथा, मगायत वृहच्छ्रवाः।। (भीमद्भा. ११।२६)

नदेष्व मीक्ष्णां मद्भावं, पुंसी भावयतोऽचिरात्।
ईयर्धा सूया लिरक्ष्कारा:, साहंकारा विर्यान्ताह।। (भीमद्भा. २९)

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुरारतः,
सत्यः स्वयं ज्योति रनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्न सुखो निरञ्जनः,
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽभृतः।।

एवंविधंत्वां सकलात्मनामपि, स्वात्मान्द्रमात्मा त्मतया विचक्षते।
गुर्वर्कलब्ध्योपनिषत्सुचक्षुषा, ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्।।
(श्रीमद्भा. १०।१४)

जिसमें न बाहर है न भीतर जिसका न पूर्व (आदि) न (पर) अन्त) ही है जो आदि भी अन्त भी पूर्व भी पर भी है जगत से जो स्वयं जगदीश्वर होकर भी जगत् ही है ऐसे ब्रह्म के अवतिरित होने पर यशोदा उसे पुत्र मानकर बांधना चाहती है।

श्रीकृष्ण उद्धव से ऐलगीत कहते हुए बोले-हे उद्धव! (कामी (भोगीव भूखे) जो शिश्न की तृप्ति तथा पेट भरने में लगे हैं, उन असाधुओं का कभी संग न करें क्यों पतन ध्रुव है। ये गाथा राजा ऐल ने गायी थी। जब साधक प्राणीमात्र में मेरी भावना कर लेता है तब शीघ्र ही उसके अन्त करण से ईर्ष्या-असूया-तिरस्कार-अहंकारादि दोष नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा जी कहते हैं हे नाथ! सबके आत्मस्वरूप होने से आप ही एकमात्र सत्य पुराण पुरुष हैं आप अनन्त व आद्य स्वयं ज्योति है आप नित्य है अक्षर है सतत सुखरूप है निरन्जन है पूर्ण अद्वय (अद्वीतीय है) सब उपाधि रहित अमृत स्वरूप है। सकलात्मारूप इस प्रकार के आपको जो साधक गुरुरूपी सूर्य से प्राप्त उपनिषत् विद्या रूपी प्रकाश द्वारा (नेत्रद्वारा) अपने स्वरूप में ही आपको साक्षात्कार कर लेते हैं। वे इस मिथ्या संसार सागर को पार कर लेते हैं।

तावद्रागदयस्तेनाः, तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोङ्घ्रिनिगडः, पावत्कृष्णा न ते जनः।। (श्रीमद्भा. १०।१४)
तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा, सर्वेषामपिदेहिनाम्।
कृष्णमेन मवेहित्व, मात्मानमखि लात्मनाम्।
जगद्धिताय सोप्यत्र, देहीवरभाति मायया।। (श्रीमद्भा.)

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्धवहेतुराद्यो, योगेश्वरैरपि दुरत्यय योगमायः। क्षेमंविधास्यति स नो भगवाँस्त्र्यधीशः तत्रास्मदीय विमृशेन कियानिहार्थः।

५. मधुरसः–रसस्य सर्वोच्च परिणातिः, अतीन्द्रियः।

४. वात्सल्यरसः–ममता, स्नेहातिशयः।

३. सख्य रसः–सख्यरतिः।

सम्भ्रम, गौरव।

२. दास्यरसः–प्रीतिः-अनुग्राह्य भावः, अनन्य भावभजनम्।

१. शान्तरसः–शान्ति, रतिः-निष्ठामयः।

हे केशव तभी तक ये राग द्वेषादि चोर पीडित करते है, तभी तक ये आगार कारागार सदृय है तभी तक मोह की वेडियों में जकड़ा जीव तड़फता है जब तक तुम्हारा नहीं हो जाता तुम्हारा होते ही सारेवन्धन पहरे वेडियां खत्म हो जाती है प्रमाण वसुदेव की जन्मकालिक स्थिति। ये सिद्ध है इसीलिए सभी प्राणी अपनी आत्मा को ही सर्वातिशय प्रेम करते है। इसी के लिए चराचर में नहीं प्रेम की झलक होगी तो केवल इसी के लिए होगी।

शुकदेव जी कहते हे राजन् इन कृष्ण को ही तुम अखिल आत्माओं का आत्मा समझो वही जगत् हितार्थ योगमायाश्रय से साधारण मानव जैसे प्रतीत होते हैं।

जो परमात्मा इस विश्व की जन्म स्थिति भंगादि अवस्थाओं का आद्य हेतु है योगेश्वरों द्वारा भी जिसकी दुरत्यय माया का पार पानाकठिन है वही परमात्मा त्रिलोकाधीश्वर हमारा कल्याण करेंगे हमारे विमर्श से यहाँ कितना प्रयोजन सिद्ध होगा।

माधुय = रस की सर्वोच्च परिणति है ये अतीन्द्रिय है इन्द्रियातीत है।

वात्सल्य = ममता स्नेह की अतिशयता

यत्रोत्तमश्लोक गुणानुवादः, प्रस्तूयते ग्राम्य कथाविघातः।
निवेव्यमानाऽनुदिनं मुमुक्षोः, मतिं सतीं यच्छति वासुदेव।।
(अवधूतः) (श्रीमद्भा. ५।१२।१३)

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगः, मायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्पापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः, परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।
(उद्धवः) (श्रीमद्भा. ३।२।१२)

यावत्पृथत्तर्वामिदमात्मन इन्द्रियार्थ,
मायावलं भगवतो जन ईश पश्येत्।
तावन्न संवृत्ति रसौ प्रति संत्रामेत,
व्यर्थापि दुःखनिवहं वडती कृयार्था।।
(श्रीमद्भा. ३।९।९) (श्रीमद्भा. १।५।२०)

सख्य = सखाभाव कीरति

दास्य = सम्भ्रम प्रीति गौरव-प्रीति, अनुग्रहीतानुभूति अनन्यभाव की सेवा

शान्त = शान्ति-रति निष्ठाभय है

जड भरत कहते हैं हे राजन्! महापुरुषों की चरण रज में स्वयं को अभिषिक्त किये विना परं तत्व की प्राप्ति नहीं होती उसका कारण है—यहाँ हर समय भगवच्चर्चा गुणानुबाद लीला कथा होती रहती है, परिणामतः सांसारिक ग्राम्य विषय वार्ता का स्वतः विघात हो जाता है, इस प्रकार नित्य भगवत्कथा का श्रवणाभक्ति से सेवन करने पर ये कथा मुमुक्षु की सात्विक बुद्धि को भगवान बासुदेव में लगा देती है।

उद्धव जी कहते है हे विदुर! भगवान कृष्ण ने अपनी माया शक्ति द्वारा योगभाया का प्रभाव दिखाने की भावना से जो मानवीय स्वरूप धारण किया था वह इतना दिव्य सौन्दर्य सम्पन्न था कि जगत् की तो छोड़ो उस देह के सौन्दर्य को देख वे स्वयं विस्मित हो उठते थे, सौन्दर्य उनके श्री अंगों का आश्रय पाकर कृतकृत हो गया, आभूषण देह की शोभा वढ़ाते है किन्तु यहाँ तो आभूषण ही स्वयं धन्य हो गये उनकी सन्निधि पाकर इनकी शोभा बढ़ गयी।

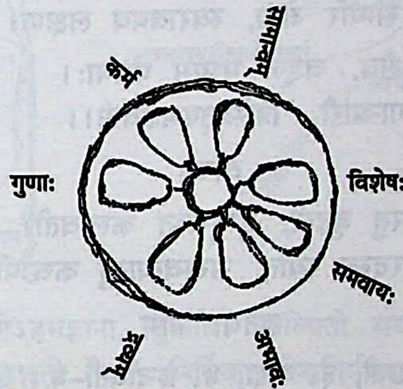
ब्रह्मा जी कहते हैं—हे प्रभो! जब तक ये जीव इन्द्रियों और विषयों की माया के कारण स्वयं को आपसे अलग देखता है तब तक वह इस संसार चवु में ही फंसा रहता है वैसे तो ये झूठी है तब भी दुःखों के गर्त में कर्म फल भोगार्थ जाना पड़ता है।

ददंहिशिव भगवनिवेतरः। (श्रीमद्भा. १।५।२०)

ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्। (मुण्डकोपनि. २।२।११)

मामेव ये प्रप घन्ते मायामे तां तरन्ति ते। (गीता ७।१४)

मनसः सङ्गादात्मा जीवः, आत्मसम्पर्कात् मनोविश्वं रचयति। वृत्तीनां सन्धिरात्मा यथा गोपीनामध्यः कृष्णाः। अनन्त विश्व विलासे सूत्ररूपेणात्मा विलसति।



राजा

बुद्धि शास्त्रः प्रकृत्यङ्गो, धन संवृत्ति कञ्चुकः।
चारणेक्षो दूतमुखः, पुरुषः कोपि पार्थिवः।। (माघः)

यद्यपि ये विश्व भगवद्रूप ही है तथापि प्रभु इससे भिन्न हैं विशिष्ट हैं।

ये विश्व ब्रह्म ही है।

जो इस माया को पार कर जाते हैं। वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

मन के संग से आत्मा जीव हो गया, आत्मा के सम्पर्क से मन ही विश्व की रचना करता है वृत्तियों की सन्धि आत्मा है जैसे गोपियों के मध्य में कृष्ण है अनन्त विश्व के विलास में आत्मा सूत्र रूप से विलसित है। ये सातपदार्थ स्पष्ट ही हैं।

राजा

शास्त्र ही जिसकी बुद्धि हो सप्त प्रकृति ही जिसके सप्त अंग हो—(मन्त्री-मित्र-कोष बल-दुर्ग, राष्ट्र-राजा) धन संग्रह ही आवरण हो गुप्तचर ही जिसकी दृष्टि हो दूत ही जिसका वचन (मुख) हो ऐसा कोई पुरुष राजा हो।

स्वरः

श्रुत्यनन्तर भावीयः, स्निग्धोऽनुरणानात्मकः।
स्वतोरञ्जयति श्रेतुः, चित्तं स स्वर उच्यते।। (संगीत रत्ना करे)

श्रुतिः

प्रथमंश्रवणाच्छब्दः, श्रूयते ह्रस्वमात्रकः।
साश्रुतिः सम्परि जेया, स्वरावयव लक्षण।।

चतुश्चुतश्चुश्चैव, जड्ज मध्यम पंचमाः।
द्वेद्वेनिषादगान्धारौ, त्रिस्त्रितृषभछैवतौ।।

वीणा

विश्वावसोस्तु बृहती, तुम्बुरोस्तु कलावती।
महती नारदस्य स्यात्, सरस्वत्यास्तु कच्छपी।। (वैजयन्ती)

श्रुतयः नाम

१. तीव्रा, २. कुमुछती, ३. मन्दा, ४. छन्दोवती–ष.। ५. दयावती, ६. रञ्जनी, ७. रतिका–ऋ.। ८. रौद्री, ९. क्रोधा–गा.। १०. वज्रिका, ११. प्रसारिणी, १२. प्रीतिः, १३. मार्जनी–म.। १४. क्षितिः, १५. रक्ता, १६. संदीपनी, १७. आलापिनी–प.। १८. मदन्ती, १९. रोहिणी, २०. रम्या–धे.। २१. उग्रा, २२. क्षोभिरणी–नि.।

स्वर

श्रवणोपरान्त समुत्पन्न-स्निग्ध-ध्वनिरुपात्मक (अनुरणनरूप) सुनने वालि के चित्त को स्वतः आह्लादित करने वाला जो है वह स्वर कहा जाना है।

श्रुति

पहले कानों से जो ह्रस्वमात्रा वाला शब्द सुनते है स्वरावयवलक्षण वाली उसे श्रुति जानो।

४ मात्रिक-षडज	२ मात्रिक निषाद	३ मात्रिक ऋषभ
४ मात्रिक-मध्यम	२ मात्रिक गान्धार	३ मात्रिक धैवत
४ मात्रिक-पंचम।		

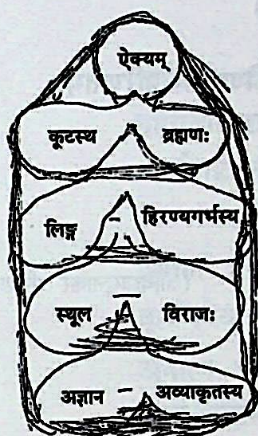
वीणा

विश्वावसु गन्धर्व की वीणा का नाम वृहती है। तुम्वरु की वीणा—कलावती। नारद की वीणा—महती। सरस्वती की वीणा—कच्छपी।

श्रुतियों के नाम स्पष्ट ही हैं मूल में देखें।

ज्ञात सारोपि खल्वे कः, संदिग्धे कार्य वस्तुनि। (शिशुपालवधः २।१२)

प्रहीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणाः। (शिशुपालवधः २।१३)





(कठोपनिषद् १।१२)

बोधमात्रोऽहमज्ञाना, दुपाधिः कल्पितो मया।
एवं विमृशतो नित्यं, निर्विकल्पेस्थितिर्मम।। (अष्टावक्रगी. २।१७)

नाहं देहो नमे देहो, जीवोनाहमहं हि चित्।
अय मेवहि मे बन्धः, आसीद्या जीविते स्पृहा।।२२।।

एकैक देहो नरको, भवेद् भूतात्मनो महान्।।
(अनुभूति प्रन्दाशः १०।१२१)

तत्वज्ञानी भी यदि अकेला है तो वाद ग्रस्त विषय में उचित निर्णय नहीं कर सका महापुरुष स्वभावतः मितभासी होते हैं।

चित्र से अन्त में कूटस्थ सत्ताक ब्रह्म की एकता का निदर्थन हो।

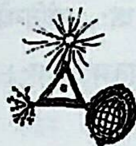
स्वर्ग में किञ्चिदपि भय नहीं, न स्वयं यम (मृत्यु) वहाँ है, बुढापा नहीं है, वहा कै प्राणी भूखप्यास को पार करके शोक मुक्त हो हर्सित होते हैं

मैं बोध मात्र हूँ मेरे द्वारा ही अज्ञान वश उपाधियां कल्पित की गयी है नित्य इस प्रकार चिन्तन करने से निर्विकल्प में मेरी स्थिति है।

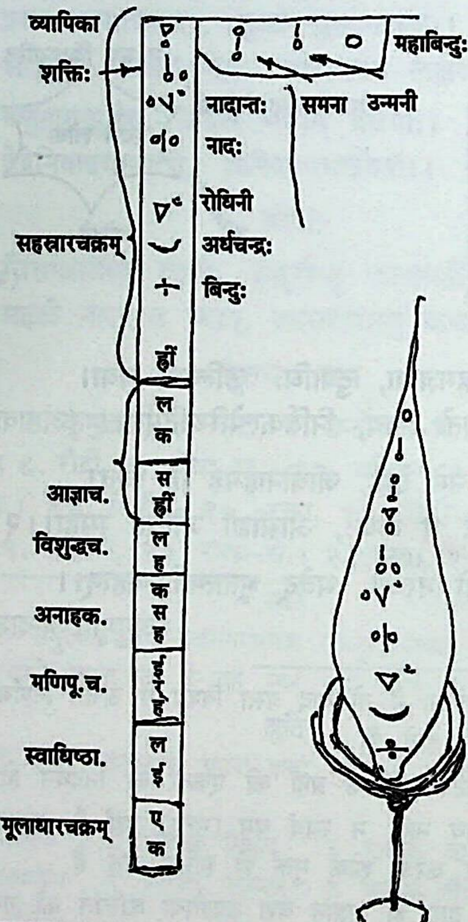
न तो मैं शरीर हूँ, नहि शरीर मेरा है, मैं जीव भी नहीं हूँ मैं तो चित् मात्र हूँ यही मेरा बन्धन है कि मेरी जीवन के प्रति स्पृहा है (जीवन के प्रति स्पृहा होना ही मेरा बन्धन है)

एक एक स्थूल देह भूतात्मा के लिए घोर नरक है।





मध्यं चक्रस्य परामयं बिन्दु तत्त्वं। उच्छूनं यदा त्रिकोणरूपेणपरिणतम्।



(श्रीविद्यारत्नाकर परिशिष्टः)

त्रिकोण में ज्ञान इच्छा क्रिया ही तीन कोण है ज्येष्ठा-वामा-रौडी ही तीन शक्तियां है।

त्रिकोण के मध्य (चक्रमध्य में) परा भगवती रूपा विन्दु तत्व है वहीं त्रिकोण रूप में परिणत हुआ है।

सहस्रार चक्र में स्थित तत्वों को स्पष्ट करते है आज्ञाचक्र से ऊपर शक्ति की चार

हसता म्रियते कर्म, रुदता परिमुज्यते। (शिवपु. को.रु.सं. ६।१३)

सर्वे कर्मणा बद्धाः। सर्वं कर्मणि संस्थितम्।
(शिवपु. को.रु.सं. १५)

अविद्या घातिनः शब्दाद्, याऽहं ब्रह्मेति धीर्भवेत्।
नश्यत्यविद्यया सार्धं, हत्वा रोगमिवौधम्।।
अवशिष्टं स्वतो बुद्धं, शुद्धं मुक्तमतो भवेत्।।
(वृ.उ.भाष्य वा. १।४।३३)

प्रमाण मप्रमाणं च, प्रमाभास स्तथैव च।
कुर्वन्त्येव प्रमां यत्र, तदसंभावना कुतः।। (वृ.उ.भाष्य वा. ७४)
अनात्म प्रत्ययोत्पत्ति, रहं प्रत्यय पूर्विका।।
आत्माददत्मानं सदोपास्ते।

स्थितियां है—व्यापिका (दशा), समना (दशा), उन्मनी (दशा), महाबिन्दु। नादान्त—नाद है। रोधिनी—अर्धचन्द्र है। बिन्दु ह्रीं—ये मायावीज मन्त्र है।

भ्रूमध्य	आज्ञाचक्र में	ह्रीं स क ल—ये बीजाक्षर है।
कण्ठ में	विशुद्ध चक्र में	ह ल
हृदय में	अनाहत	ह स क
नाभि	मणिपूर	ह् र् ईं
लिंगमूल	स्वाधिष्ठान	ई ल
—	मूलाधार	क ए

प्राणी कर्म करते समय मुदिता वस्था में रहता है फिर परिणाम भोगते समय (मनोनुश्ल) रोता है।

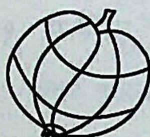
सभी कर्म से बंधे है सभी कर्म में ही स्थित हैं।

अविद्या का नाश करने वाले शब्दों से जो ये मैं ब्रह्म हूँ ये बुद्धि वनती है अन्ततः ये वुद्धि वृत्ती भी अविद्या के साथ ही नष्ट हो जाती है जैसे रोग को नष्ट करके औषधि भी नष्ट हो जाती है **तव शेष वचता है मात्र ब्रह्म** स्वतः शुद्ध बुद्ध मुक्तत्व विशिष्ट हो ही जाता है।

प्रमाण अप्रमाण तथा प्रमा का आभास ये सब मिलकर जहाँ प्रमा का निर्माण करते है तब उसकी असंभावना कहाँ।

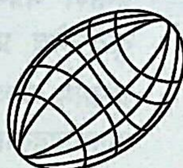
अनात्म प्रत्यय की उत्पत्ति (मैं आत्मा नहीं हूँ शरीर हूँ ऐसा भ्रम वहा वोध) अहं प्रत्यय से पूर्व रहती है आत्मा आत्मा की सदा उपासना करता है।

तत्तेज ऐक्षत इति, तेजो देहं सदेव तु।
उत्तरोत्तर कार्याणां, श्रुत्या सष्ट्र तयोच्यते।। (वृ.भा.वा. १।४।४९)



योगाभ्यास तेन ज्ञान फलं प्राप्तं।
तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्य, मेकाकी रमते तुयः।।
(अष्टा वक गी. १७।१)

स्वाराज्ये मैक्ष्यवृत्तौ वा, लामालामे जने बने।
न सुखँ न च वा दुःखं, उपशान्तस्य योगिनः।।
(अष्टा व.गी. १८।१०)



।।अथ।।

।।स्कन्दोपनिषद्।।

यत्रासंभिन्नतां याति, स्वातिरिक्त भिदाततिः।
संविन्मात्रं परं ब्रह्म, तत्स्वमात्रं विजृम्भते।।
ॐ सहनाववतु सहनैभुनक्तु सह वीर्यं करवाव है।
तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शा.।।

तदनन्तर तेज देखा तैजस्देह सत् ही है उत्तरोत्तर कार्यों के प्रति श्रुति द्वारा ये ठीक प्रकार के कहा गया हैं।

योगाभ्यास द्वारा ज्ञान फल की प्राप्त करके जी नित्य तृप्त पवित्र इन्द्रियों वाला एकाकी रमण करता है वहीं वास्तविक जीवनमुक्त है।

उपरत शान्त योगी को न तो स्वाराज्य से सुख न भिक्षाटन से दुख न लाभालाय कोई प्रयोजन वह राजा हो गया भिखारी वन में रहे या भवन में वह सुख दुख से परे हैं।

स्वातिरिक्त (आत्माति रिक्त) जो भेद विस्तार है वह जहाँ असंभिन्नत्म को प्राप्त हो जाये- वहाँ सवित् मात्र पर ब्रह्म (ज्ञानब्रह्म) भी स्वभाव ही (आत्म तया) व्यक्त हो जाता है (वहाँ भेदाभेद मिट जाता है) हे प्रभो! हम दोनों गुरु शिष्य की साथ ही रक्षा करो-पालन करो-साथ ही शक्तिशाली हो हमारी अधीत विद्या तेजस्वि श्री हो। हम परस्पर विद्वेष न करें।

ॐ अच्युतोऽस्मि महादेव, तब कारुण्यलेशतः।
विज्ञान घन एवास्मि, शिवोस्मि किमतः परम्।।१।।

न निजं निजवद्धात्यन्तः करणा जृम्भणात्।
अन्तःकरणनाशेन, संविन्मार्त्रास्थतोहरिः।।२।।

व्यतिरिक्तं जडं सर्वं, स्वप्नवञ्च विनश्यति।
चिज्जडान्यं यो द्रष्टा, सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः।।३।।

स एव हि महादेवः, स एव हि महाहरिः।
स एव हि ज्योतिषां ज्योतिः, स एव हि परमेश्वरः।।४।।
स एव हि परं ब्रह्म।

षोडशेन्दोः कलाभानोः-द्विर्द्वादश दशानले।
सापञ्चाक्षर कला डोया, मातृका चक्र रूपिणी।।

नवसर्गाः (नृब्धिंहपुराणाम् अ. ३)

१. महतः सर्गः। २. तन्मात्राणाम्। ३. वैकारिकः–ऐन्द्रियकः। ४. मुख्यः–स्थावराणाम्। ५. तिर्यकस्त्रोतः-पशूनाम्। ६. अर्ध्वस्त्रोतः देवानाम्। ७. अर्वाक्स्त्रोतसां स.-मानुषः। ८. अनुग्रहसर्गः-सात्विकः। ९. रुद्रसर्गः।

हे महादेव आप की करुणा के लेश से मैं अच्युत हूँ विज्ञान धन हूँ शिव हूँ इससे पर अब क्या है, निज भी निज वत् नहीं प्रतीत होता अन्तः करण शमन के कारण अन्तःकरण के नाम से सवित् मात्र (ज्ञान मात्र) हरि स्थित है)॥१-२॥

इसके अतिरिक्त (संविन्नतिरिक्त) सब कुछ जड़ है स्वप्न गत जगत स्थायी नहीं वैसे ही ये जाड जगत् भी स्थायी नहीं है चित् जड़ दोनों कादृष्टा ज्ञान विग्रह अच्युत ही है वही महादेव है वही महाहरि है वही ज्योतियों का ज्योति पर मेश्वर है पर ब्रह्म है वही पर ब्रह्म में हूँ इसमें संशय नहीं है॥३-४॥

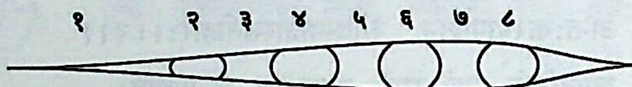
चन्द्र की कलायें—सौलह। सूर्य की बारह कलायें। अग्नि की दश कलायें। चक्ररुपिणी मातृ का पञ्चाक्षर कलायुक्त है।

नवधा सृष्टि

१. प्रकृति से महत् (बुद्धि) की उत्पत्ति। २. पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति (शब्द तन्माना-स्पर्थ-रूप रस गन्धतन्मात्रा)। ३. वैकारिक – इन्द्रियों की उत्पत्ति (५ ज्ञानेन्द्रियां ५

नादः–अष्टधा। स्वछन्द तन्त्रे।

१. घोषो, २. रावः, ३. स्वनः, ४. शब्दः, ५. स्फोटः, ६. ध्वनिः, ७. झङ्कारः, ८. ध्वङ्कृतः। नवमस्तु महाशब्दः, सर्वेषां व्यापकः स्मृतः।।



चित्तं मन्त्रः (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)

चेत्यते–विमृश्यते परं तत्त्वमनेनेति चित्तम्। पूर्ण स्फुरत्ता सतत्त्वप्रासाद प्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्। तदेव मन्त्र्यते गुप्तं विमृश्यते पर रूपमनेनेति मन्त्रः। परस्फुरत्तात्मका मनन धर्मात्मता, भेदमय जग प्रशमनरूप त्राणात्मकता च निरुच्यते, देवतापरामर्श प्राप्त सामरस्यं चित्तमेवमन्त्रः। (विमर्शिनी)

कामित्व-मालोचकत्व-सष्टृत्व-प्रमेष्टत्व-भोग्याकारत्वानि

५

ब्रह्मसद्भावहेतवः

१. सद्रूपः परमात्मा स्यात् कामित्वात् स्वर्ग कामिवत्।

कर्मोन्द्रियां)। ४. मुख्य-स्थावरों वृक्षों आदि की उत्पत्ति। ५. पशुओं पक्षियों की उत्पत्ति। ६. उर्ध्व स्रोत = देवताओं की उत्पत्ति। ७. अधस्रोत = मानवी सृष्टि। ८. अनुग्रहसर्ग सात्विका ९. रुद्रागणोत्पत्ति।

नाद के आठ प्रकार

१. घोष, २. राव, ३. स्वन, ४. शब्द, ५. स्फोट, ६. ध्वनि, ७. झंकार, ८. ध्वंकृत्। नवमा महाशब्द है जो सब में व्यापक है।

चित्त

जिसके द्वारा परं तत्व का चिन्तन किया जाये वह चित्त है पूर्ण उसी तत्व को गुप्त रूप से गहन चिन्तन का (विमर्ष का विषय बनाये वह मन्त्र है जिस में पर तत्व के परिस्फुरण के मनन का नैरन्तर्येण भाव रहे, भेद युक्त जग के प्रशमनार्थ ही देवता के परामर्थ से प्राप्त समरसता का कारण चित्त ही मन्त्र है।

साकार ब्रह्म की सत्ता के ५ प्रमाण

१. परमात्मा सद्रूप है—कामना वाला होने से जैसे स्वर्ग की कामन्न करने वाले है वैसे ही।

२. सद्रूपः परमात्मा स्यात् प्रवेष्टृत्वात् सर्पवत्।

३. सद्रूपः परमात्मा स्यात् भोग्यत्वात् ओदनादिवत्।

४. सद्रूपः परमात्मा स्यात् आलोचनात् मन्त्रिवत्।

५. सद्रूपः परमात्मा स्यात् स्रष्टृत्वात् कुलालवत्।

तद्ब्रह्मात्मानमेवेदं, सच्चिदानन्द लक्षणम्।
अकार्षीज्जगदाकारं, स्वयमेव स्वमायया।।

जाड्य दुःखे मायिकेस्तो, भानानन्दौ परात्मगौ।।
लक्ष्यानन्दो न भिन्नः स्या, दखण्डैकरसोह्यतः।।

(अनुभूतिप्रकाशः १/१०७)

सार्वभौमादिका नन्दाः, ब्रह्मानन्दस्यविन्दवः।।
न्यासोऽधिकं तपो, न्यासी युञ्जीतात्मानमोमिति।।

---

२. परमात्मा सद्रूप है—प्रवेश करने वाला होने से सर्प के समान (तत्सृहदृवा तदेवानु प्राविशत) परमात्मा इस जगत को बनाकर इसी में प्रविष्ट हो गये।

३. परमात्मा सद्रूप है—भोग्य होने से जैसे चावल भोग्य है।

४. परमात्मा सद्रूप है—आलोचन विषयत्वात्–जै ये मन्त्रि आलोचना करता है।

५. परमात्मा सद्रूप है सृष्टा होने से कुम्भकार की तरह जैसे कुम्भकार घड़ा बनाता है वैसे ही परमात्मा जगत् बनाता है।

सच्चिदानन्द लक्षण वाला वह ब्रह्म ये आत्मा ही है। स्वयं स्वकीय माया शक्ति द्वारा उसने स्वयं को जगदाकार बना लिया है।

जड़ता दुख माया जन्य हैं, ज्ञान व आनन्द परमात्म प्रापक है लक्ष्यानन्द ज्ञानानन्द से भिन्न नहीं है क्योंकि वह अखण्ड एक रस है।

सार्वभौमिक आनन्द ब्रह्मानन्द सिन्धु के ही विन्दु मात्र है न्यास (त्याग) व तप द्वारा सन्यासी आत्म तत्व को ॐ के सगं युक्त कर ले।

अर्थः

अध्यासः

कर्ता

सर्गादि

कर्म

अष्टम्

देहः

अज्ञानम्

सप्तकादद्वारासंसारहेतुः स्यात्।
(वृ.उ.वा.सा.)

'अच्छायम्'

उपलक्षयिता जीवो, बुद्धोचित्प्रतिबिम्बकः।
उपलक्ष्यं ब्रह्म तत्तु, स्यादच्छायादि रूपकम्।। (अनुभू.प्र. ७६८)

शान्तिजरामृत्युहीनमभयम् परस्य  प्रतीकम्।
(अनुभूतिप्र.-७) प्र.उ.

संसार के सात कारण अज्ञान, देह शरीर अदृष्ट (भाग्य) कर्म-रागादि-कर्तापनाभिमान-अध्यास उसका परिणाम जगत है।

बुद्धि में चित् का प्रतिबिम्ब जो जीव है वह उपलक्षथिता है ब्रह्म है उपलक्ष्य वह ब्रह्म ही अच्छाय रुप है (छायादि रहित है) छाया=अन्धकार अज्ञान) शरीरत्रय रहित

ब्रह्म द्विविध है—पर व अपर। पर ब्रह्म का प्रतीक है—शिवलिङ्ग (ॐ) ये शान्त जरामृत्यु हीन अभय पद प्रदाता है।

अपरस्य
अः–विराट्
उः–सूत्रात्मा
मः–अव्याकृतम्। } प्रणवेन विचन्तयेत्। ऋग्द्वेषता भूलोकं प्रापयति।

आत्मेत्यव्यभिचारेण, स्वरूपं यत्तदुच्यते।
प्रमात्राद्यागमापायः साक्षित्वात्तत्स्वरूपता।। (अनुभूतिप्र.-१७/९०)
'एष त आत्मा सर्वान्तर', 'अतोऽन्यदार्तम्'। (वृ.उ.)
आर्तं मायामयं तस्य, तत्त्वज्ञानेन पीडनात्।। (अनुभू.प्र.-१७/३१)

१३ विधं शीलम् (हरीतक स्मृतौ)

ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्तता, सौम्यता, ऽपरोपतापिता, ऽनसूयता, मृदुदा, अपारुष्यम्, मैत्रता, प्रियवादित्वं, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्यं, प्रशान्तिश्च।

अपर ब्रह्म—अ-विराट, उ-सूत्रात्मा, म-अव्याकृत। इसका प्रणव ॐ द्वारा चिन्तन करे ये भू लोक प्राप्ति के हेतु है।

अव्यभिचारत: जो स्वरूप है उसी को आत्मा कहते है प्रमाता प्रमाण प्रमेय इन तीनों को आगम व अपाय (विश्लेष गमन) का भासक होने से साक्षी होने से आत्मा है ये प्रमाण है अन्यथा कौन बताये।

यह आत्मा सर्वान्तर्यामी है। इसके अतिरिक्त सब आर्त हैं।

माया मय को आर्त कहते हैं क्यो? क्योंकि तत्व ज्ञान द्वारा उसका पीड़न होती है।

१३ प्रकार का शील

१. ब्राह्मसी के प्रति भक्ति भाव ब्राह्मणाः मामकी तनुः उनमें भगवद्भाव करण, २. देवपितर भक्ति स्वाहा स्वधा परायणता (देवपूजा व तर्पणादि), ३. सौम्यता, ४ दूसरों को संताप न देना, ५. ईर्ष्या का न होना, ६. मृदुता (कोमल होना), ७. कठोर नहीं होना ८. मित्रता का भाव, ९. मधुर भाषिता, १०. कृतज्ञता, ११. शरणागत रसकत्व, १२ करुणता, १३ शान्तभाव।

धर्मे प्रमाणानि (मनुः?)

वेदोऽविलो धर्ममूलं, स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनां, आत्मनस्तुष्टिरेव च।।६।।
'वैकल्पिके आत्मतुष्टिः प्रमाणम्'। (गर्गः)
अर्थकामेष्वसक्तानां, धर्म ज्ञानं विधीयते। (मनुः २/१३)

आत्ममन्त्रः (सूतसंहिता यज्ञवै. ख.-७)

ऋ.-ब्रह्मा, गायत्रं छ., आत्मा-देवता, सः-शक्तिः, हं-बीजम्।
हकारः पुरुषः प्रोक्तः, स इति प्रकृतिर्मता।
पुंस्प्रकृत्यात्मको हंसः, तदात्मकमिदं जगत्।। (प्रपञ्चसारः)

अभिहितान्वयवादः

गृहीत संगतिकैः पदैः अभिहितानो पदार्थानां पश्चादाकांक्षा संनिधियोग्यता वशाद्यः संसर्गः एकपदार्थः इतिः। संसर्गः।

धर्म में प्रमाण

सम्पूर्ण वेद स्मृति-शील-स्मृति वेत्ताओं द्वारा कृताचरण शास्त्रसम्मत व्यवहार) साधुओं के आचरण और आत्म तुष्ठि ये सब धर्म के मूल है सन्देहावस्था में वैकल्पिक रुप से अन्तः कृरण तुष्टि को धर्म में प्रमाण माना है गर्ग ने (प्रमाण मन्तः करण प्रवृत्त यः)।

अर्थ और काम में आसक्त प्राणी को धर्म ज्ञान विधेय है।

आत्ममन्त्र हंसः सोऽहम्

इस मन्त्र के ऋषि—ब्रह्मा, छन्द—गायत्री, देवता—आत्मा, सः—शक्ति, हं—बीज है।

हंसः मन्त्र में—हकार पुरुष है, स प्रकृति है, प्रकृति पुरुषात्मक—ये मन्त्र है हंसः—इस मन्त्रात्मक ये जगत् है।

अभिहितान्वयवाद—अभिहित = अभिधिशक्ति से उक्त अर्थ वाले पदों का ही अन्वय होने पर तात्पर्य वृत्ति से विशिष्टार्थ की प्रतीति होती है। पदार्थ की प्रतीति अभिधा से किन्तु वाक्यार्थ को प्रतीति तात्पर्य से होती है। अभिधोक्त पदार्थों में आकांक्षा-संन्निधि-योग्यता से जो अर्थ है वह तात्पर्य वृत्ति का है यही अभिहितान्वयवाद है।

अन्विताभिधानवादः

योग्येतर पदार्थान्वितस्वार्थाभिधाय कानि पदानि इति। विशिष्टः। (टीका)

सत्यसंम्पूर्ण विज्ञानु-सुख रूपो महेश्वरः। (सूतसं. यज्ञवै.-७)

मिथ्यात्वादि यदध्यस्तं, ब्रह्मण्येतस्य वाधनम्।
नानापदैर्विनानेति, ब्रह्मतैरूप लक्ष्यते।। (टीका)

ज्ञातमज्ञातमत्यर्थं, सदाऽहं वेद केवलः।
अहं संसारसाक्षित्वात्, सदा संसार वर्जितः।। (सू.सं.य.वै.ख.-७)

चिच्छायावेशतोबुद्धौः भानम्।

अहंकारस्य तादात्म्यम् } चिदाभासेन-सहजम्
देहेनसह-कर्मजम्
साक्षिणा-भ्रान्तिजन्यम्। (वाक्यसुधा-६)

स एष इह प्रविष्टः आनखाग्रेभ्यः। (वृ.ङ)

सः-अव्याकृताक्षर आत्मा। एषः-कार्यस्थः प्रत्यक्षः। इह-सूत्रादिस्थाणु-प्रर्यन्तविग्रहः। प्रविष्टः-चिदाभासतसेन्विता चित जीवत्वेनोपलब्धिः। जपाकुसुमरक्तत्वं स्फटिके कल्प्यते यथा।। (अनुभूतिप्र.-१३)

अविन्ताभिधानवाद—तात्पर्य वृत्ति अनावश्यक है क्योंकि स्वभावतः अविद्या वृत्ति द्वारा अन्वित पदार्थों का ही अभिधान होता है, क्योंकि अनन्वित में संकेत ग्रह होता नहीं अतः अनन्वित की उपस्थिति भी नहीं होती, ये अन्वयविशिष्ट पदार्थ को ही वाक्यार्थ मानते हैं।

महेश्वर सुखरुप है, सत्यरूप है सम्पूर्ण विज्ञान रूप है।

मिथ्यात्व का जो अध्यास हो गया है ब्रह्म में उसका बाध स्वतः हो जाता है। विभिन्न पदों के यथार्ध बोध विना ब्रह्म साक्षात्कार सम्भाव नहीं।

ज्ञात अज्ञात सभी विषयों को मैं अकेला ही जानता हूँ वे पदार्थ मुझे नहीं जानते अतः मैं अद्वितीय चेतन हूँ, मैं संसार का साक्षी होकर संसार से रहित हूँ।

चित् की छाया के कारण ही बुद्धि में अहं भान होता है।

अहंकार का तादात्म्य—चित् भास के साथ सहज (स्वाभाविक तादात्म्य है), देह के साथ—कर्मजन्य ताक्षात्म्य है, साक्षि के साथ—भ्रान्तिवश तादात्म्य है।

स = वह अव्याकृत अक्षर आत्मा, एष = कार्यस्थ प्रत्यक्ष, इह = सूत्र से लेकर स्थाणु तक विग्रहों में, प्रविष्ट = चिदाभास का समयुत होना चित की जीव भाव की प्राप्ति

समाधिः ॐ मन्त्रार्थे प्रणवं दीर्घ-मुत्त्वा चित्तं विलापयेत्।
अमूर्तमद्वयं ब्रह्मानुभवन्वर्तते तदा।।२६।। (अनुभू. प्र.-२०)
धीश्चिदानन्दमात्मानं, ध्यायन्ती तन्मयीभवेत्।। (२०/१२४)

सान्नः (नृसिंहता.उ.)

मृत्युमृत्युं नमाभ्यहम् ४-पादः	ब्रह्मस्वरूपं निरञ्जनं परमव्योम्निकम्
नृसिंहंभीषणं भद्रम् ३-पाद	वसुरुद्रादित्यैः सर्वदवैः सेवितं दिवम्
ज्वलन्तं सर्वतो मुखम् २-पादः	यक्ष गन्धर्वासरोगण समेतमन्तरिक्षम्
उग्रंवीरं महाविष्णुम् १-पादः	ससागर सपर्वता सप्तद्वीपा वसुन्धरा

है। जैसे स्फटिक शुद्ध श्वेत होने पर भी गुड़हल के फूल के सम्पर्क से लाल दिखने लगता है वैसे ही आत्मतत्व है तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त किन्तु मायामय प्रपचं के सम्पर्क से अनित्य अज्ञ वद्ध सा प्रतीत होता है

समाधि

दीर्घ प्रणव का उच्चारण करके चिल को उसमें विलीन कर दे तब उस अवस्था में अमूर्त अद्वय ब्रह्म का अनुभूव करता हुआ व्यवहार को राजसी तामसी वृत्ति को त्यागकर सात्वाश्रिता बुद्धि बुद्धि चिदानन्दात्मा का ध्यान करती हुई तन्मयी चिदानन्दमयी हो जाये ये ही समाधि है।

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखंवृसिंह भीषणं भ्रद्रं मृत्यु मृत्युं नमाम्यहाम् इस मन्त्र के चार पादों से चराचर समुद्भूत है—**पाद-१**—उग्रवीर महाविष्णुं=सागर पर्वत सहित सप्त द्वीपवती वसुन्धरा वाच्य है। **पाद-२**—ज्वलंतं सर्वतोमुख=यक्ष गन्धां अप्सरायें इनके सहित अन्तरिक्ष लोक। **पाद-३**—नृसिंहं भीषणं भद्रं=अष्ट वसु-एकादशरुद्र-द्वादशादित्यादि सभी देव सेवित स्वर्ग। **पाद-४**—मृत्युमृत्युंनमाम्यहं निरंजन ब्रह्मस्वरूप परमाकाश रूप।

१. श्मशान २. मूषरं ३. क्षेत्रं ४. पीठम् ५. वनम्	५	(स्वन्दपु. आव.-१) महाकालवनं नाम पुण्यतमम् क्षेत्रं योजन पर्यन्तम्	क्षीयते पातकं यत्र क्षेत्र मृताः पुनर्न जायन्ते मातृणां स्थानम्

पञ्चकत्र न लभ्यन्ते, महाकालपुराहृते।

त्रिविधाः शब्दाः

१. प्रत्यक्ष वृत्तयः–उक्त क्रियाः–निगर्मयतारः।
२. अपरोक्षवृत्तयः–अन्तर्लीन क्रियाः–निगन्तवः।
३. अतिपरोक्षवृत्तयः–अविज्ञातक्रियाः–निघण्टवः। (निरूक्ते-१)

भाव प्रधानमाख्यातम् (चतुर्विधम्)

१. कर्तारि–पचति देवदत्तः।
२. कर्मणि–पच्यते ओदनो देवदत्तेन।
३. भावे–भूयते देवदत्तेन।
४. कर्मकर्तरि–पच्यते ओदनः स्वयमेव। (निरुक्ते १)

उज्जैन

महाकाल वन १ योजन विस्तार वाला पुण्यतम क्षेत्र है। स्कन्दपुराण के अवन्तिमा खण्ड में इसके ५ नाम हैं—१. श्मशान—शिव प्रिय होने से ये श्मशान कहलाता है। २. ऊषर—यहाँ मरने पर जीव पुनः जन्म नहीं लेते अतः ऊषर है जैसे ऊषर भूमि में वोया बीज नहीं होता। ३. शेत्र—यहाँ पातक क्षीण होने है। अतः क्षेत्र। ४. पीठ—यहाँ मातृकाओं का स्थान है अतः पीठ कहा। ५. वन—महाकाल यहाँ नित्यविराजते हैं अतः ये वन कहा—ये पांचों महाकाल के अतिरिक्त अन्यत्र प्राप्त नहीं हो सकते।

निरुक्तकार तीन प्रकार के शब्द मानते हैं—

१. प्रत्यक्ष वृत्ति	इनमें क्रिया उक्त होती है	जैसे निगमयि तारः
२. परोक्ष वृत्ति	इनमें क्रिया अन्तर्लीन होती है	जैसे निगन्तवः
३. अतिपरोक्ष वृत्ति	इनमें क्रिया अज्ञात होती है	जैसे निघण्टवः

आख्यात क्रिया प्रधान होते हैं तथा चार प्रकार के हैं, (भाव = क्रिया)—

१. कर्ता में क्रिया	= देवदत्त पकाता है 'पचति'	(कर्तृवाच्य)
२. कर्म में क्रिया	= देवदत्त द्वारा चावल पकाये जाते हैं 'पच्यते'	(कर्म वाच्य)

भाव काल कारक संख्याः–चत्वार आख्यातार्थाः, तेषु भावस्य प्राधान्यम्।
नाम्नोपि–सत्त्व द्रव्य संख्यालिङ्ग मिति चत्वारोऽर्थाः, तेषु सत्त्वस्य प्राधान्यम्। (टी.)

अध्वरः–इति यज्ञ नाम

ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः। (निरुक्तम् १/३/९)
न वा उ एतस्मिान्म्रयते इति। (म.वा.सं.-२३/१६)
कुशत्वमिच्छन्ति तृणानि राजन्। (स्मृतिसिति टी.)
'इन्द्रियमिन्द्र लिङ्गम्'। (पाणिनीयं सू.-५-२-९३)
रूपादि ज्ञानं सकरणाकं त्रियात्वात् च्छिदिक्रियावत्। (टिप्पणे)
व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्य। अणीयस्त्वाच्च संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके।
(नि. १/२/३)
(पुरुषविद्याऽनित्यत्त्वात्कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे'। (समाम्नातः)

---

३. भाव में क्रिया = देवदत्त द्वारा हुआ जाता है 'भूयते' (भाववाच्य)
४. कर्मकर्ता में क्रिया = चावल स्वयं पक रहे हैं काष्ठ स्वयं फट रही है (कर्मकर्तरिवाच्य)

आख्यात के भी चार अर्थ है—१. भाव (क्रिया), २. काल, ३. कारक, ४. संख्या इसमें भाव ही प्रधान है।

नाम भी चार प्रकार के हैं—१. सत्व, २. द्रव्य, ३. संख्या, ४. लिङ्ग, इनमें सत्व की प्रधानता है।

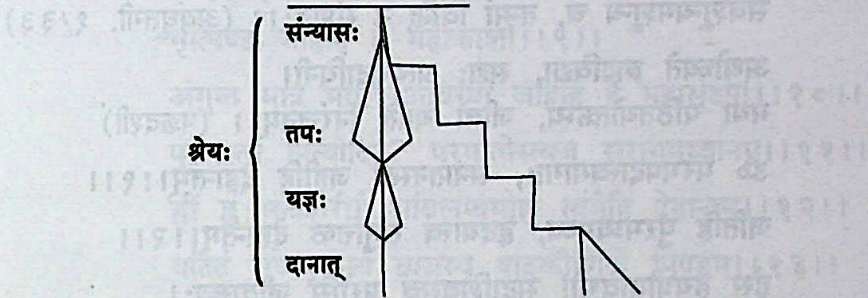
अध्वर = यज्ञ विशेष जिस यज्ञ में हिंसा निषेध हो वह अध्वर है इस यज्ञ में प्रत्यक्षत्पया मृत्यु विधान नहीं है। हे राजन सभी तृण कुश होना चाहते है; जिससे कि यज्ञ में प्रयुक्त हो सके।

'इन्द्रियमिन्द्र लिङ्ग मिन्द्र दृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्र सृष्ट मिन्द्र दत्तमितिवा' यहाँ इन्द्र पद जीवात्मा बोधक है लिङ्पद उसके चिन्ह का बोधक है। आत्मा के परिमापक को इन्द्रिय कहा गया है करण द्वारा कर्ता का अनुमान होता है। रूपादि का ज्ञान करण से ही होता है क्रिया वाला होने से छिदि क्रिया के समान।

छेदन क्रिया वाला है कुठार (कुल्हाड़ा) इस कुठार रुपी करण से काष्ठादि का ज्ञान हो गया। जन्मस्थिति भंग इन क्रियाओं का आश्रय माया है माया रूपी करज स्वाश्रयी बोध करते हैं।

एकस्यैवममांशस्य, जीवस्यैव महामते।
वन्धोऽस्याविद्ययानादि, विद्यमा च तथेतरः।। (श्रीमद्भाग.-११/४)

ज्ञानम्-गुरु;स्मृतम्। (वायु पु.)



वर्णाश्रिमणां धर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः। (वायु.पु.)

मनोद्विविधम्-शुद्धं-कामविवर्जितम्। अशुद्धं-काम संकल्पम्। (मैत्रेयि-उप.)

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खोवा यदि पण्डितः।
यस्तु संबुद्ध्यते तत्त्वं, विरक्तो भवसागरात्।।२३।।
(अवधूतगी.-२)

रांगद्वेषविनिर्मुक्तः, सर्वभूतहितेरतः।
दृढबोधश्चधीरश्च, स गच्छेत्परमं पदम्।।२४।।

महामते! जीव मेरा ही एक अंश है इस जीव का अविधा के कारणं बन्धन ईश्वर बोध यनाकि विद्या द्वारा मुक्ति होती है आत्मा का ज्ञान न होना ही बन्धन है शब्द तो व्यापक है अत: आत्मा लोक व्यवहारार्थ लघु संज्ञा का विधान किया गया है।

श्रेयमार्ग दान यज्ञ-तप-संन्यास-ज्ञान (गुरुकृपा प्रादा ज्ञान) ये उत्तरोत्तर श्रेष के श्रेष्ठ साधन है। वर्णाश्रम धर्मों के साधन के कारण ही प्राणी साधु कहा जाता है।

मन दो प्रकार का है—शुद्ध—कामरहित। अशुद्ध—काम संकल्पयुक्त।

मूर्ख हो या विद्वान् किन्तु गुरु प्रदत्त प्रज्ञा के प्रसाद स्वरूप यदि वह तत्त्व बोध को प्राप्त कर भवसागर से विरक्त हो गया है तो वही श्रेष्ठ है।

रागद्वेष विनिर्मुक्त हो सभी प्राणियों के हित में निरत रहने वाला दृढ़ ज्ञान वान् धीर साधक ही परं पद को प्राप्त करता है।

तत्त्वमस्यादि वाक्यैश्च, स्वात्माहि प्रतिपादितः।
नेति नेति श्रुति ब्रूयात्, अनृतं पाञ्चभौतिकम्।।२५।।

सर्वत्रसर्वदासर्व, मात्मानं सततं ध्रुवम्।
सर्वंशून्यमशून्यं च, तन्मां विद्धि न संशयः।। (अवधूतगी. १/३३)

अथोच्यते ब्रह्मविद्या, सद्यः प्रत्ययदायिनी।
मया पठितयोत्क्रम्य, जीवो याति निरंजनम्।। (पञ्चदशी)

ॐ परमपदात्त्वमागाः, सनातनस्त्वं जहीहि देहान्तम्।।१।।

जतिहि पुरमग्र्यमध्य, हृदयात्त्वं समुत्तिष्ठ देहान्तम्।।२।।

हंस हयग्रीवविभो! सदाशिवस्त्वं परोसि जीवाख्यः।
रवि बडि सोम सङ्ग दृग् विन्दु देहो ह ह ह समुत्क्रान्त!।।३।।

काम लोभमय विनिविष्ट! प्रवोधमायाहि देवतादेह!।।४।।

अज्ञानात्त्वं वद्धः प्रबोधित उत्तिष्ठ देवादे!।।५।।

व्रज तालु साह्वयान्तं महाद्वारं, हं हो वा वाम देव पदम्।।६।।

तत् त्वम् असि इत्यादि वाक्यों द्वारा आत्मा का ही प्रतिपादन किया गया है श्रुति ने अनृत (असत्य) पांचभौतिक पदार्थों को ही न इति न इति (ये नहीं है) के द्वारा निषेध मुखेन निराकरण किया है।

सर्वत्र सर्वदा शून्य हो या अशून्य सब में ध्रुव आत्म तत्व को असन्दिग्ध हो ब्रह्मी भाव से जानो सब में मैं ही हूँ।

सद्यः ज्ञान (विश्वास) प्रदान करने वाली ब्रह्म विद्या को कहते हैं। जिसके पढ़ने से जीव माया का अतिनुगमण कर निरञ्जन हो जाता है।

तुम परं पद को प्राप्त हो ओ तुम सनातन हो अतः देहान्त को (वारक की शारीरिक मृत्यु को) नष्ट कर दो हृदय से उठो अगले पिछले पुरों (देहारम्भक कर्मों) को नष्ट करो। हे हंस! हे हृदयग्रीव! हे विभो! तुम सदाशिव हो जीव से परे हो सूर्यचन्द्र अग्नि-दृष्टि-विनु-देह हृदय पार कर दो॥१-३॥

काम लोभ भय युक्त है साधक! प्रवोध को प्राप्त करो जगते-उठो तुम देवता देह हो (दिव्य देह हो)। अज्ञान के कारण बद्ध हो जग कर उठो। तालु साहृदयान्त महाद्वार में प्रवेश करो ए हो वाम देव पद को पाओ॥४-६॥

उत्क्रम् हे देवेश्वर! निरंजनं शिव पदं प्रयाह्याशु।।७।।
धर्माधर्मौत्यक्त्वा नारायण याहि शान्तान्तम्।।८।।
हे ब्रह्मन्हे विष्णो हे रूद्र! अग्नी सोमसनातन!
मृत्पिण्डं जहिहि हे महाकाश!।।९।।
अंगुष्ठ मात्र ममलं-आवरणं जहिहि हे महासूक्ष्म!।।१०।।
पुरुषस्त्वं नित्योदित? परमात्मेस्त्यज सरागमध्वानम्।।११।।
ह्रीं ह्रूं मन्त्रशरीरं अविलम्बमाशु त्वमेहि देहान्तम्।।१२।।
यदिदं गुणभूतमयं त्यजस्व षाट्कौशिकं पिण्डम्।।१३।।
मा देहं भूतमयं प्रगह्यताम् शास्वत महादेह!।।१४।।
मण्डलममलमनन्तं त्रिधास्थितं गच्छभित्वैतत्।।१५।।

(तन्त्रालोकः ३०)



हे देवेश्वर उत्कम लांधजाओं, निरंजन शिव पद की ओर जल्दी बढ़ों। धर्माधर्म को त्यागकर हे शान्तात्म नारायण को प्राप्त करो॥७-८॥

हे ब्रह्मविष्णो रुद्र हे सनातन अग्नि सोम हे महाकाश। उठो इस मृत् पिण्ड को (नाशवान भौतिक देह को) त्यागो। अंगुष्ठ मात्र प्रमाण वाले निर्मलांश हे महासूक्ष्म इस अज्ञानावरण को त्यागो। तुम नित्य उदित पुरुष हो हे परमात्मन् राग युक्त प्रतिबन्धन अध्वानं (मार्ग) को त्यागो॥९-११॥

ह्री हूँ मन्त्र शरीर वाले तुम अबिलम्ब देहान्त को प्राप्त करो (देहान्त=देह का अन्त=बार बार ये शरीर खत्म होता है भतः तुम अन्तिमबार इस शरीर का अन्तः ज्ञान शक्ति स्वयं करो) क्योंकि यह गुण मय भूतभय है छह कोश वाले इस पिण्ड को त्याग दो हे शास्वत्! महादेह! फिर पञ्चभूतात्मक देह को प्राप्त मत करना अपितु इस गुणमय पिण्ड को नष्ट करके अमल अनन्त त्रिधास्थ मण्डल को प्राप्त कर लो॥१२-१५॥

आत्मानमेवावेद् (शु.)

न समस्तं न च न्यस्तं, नोभयं प्रत्यगात्मनि।
प्रत्यक्प्रवण्या ब्रह्मा, वीक्ष्यतां यदि शक्यते।।
(वृ. ३ वार्तिकम्-१/४/९६८)

सर्वज्ञेय पुमर्थानां, प्रत्यग्ज्ञाने समाप्तितः।
विदित्वाव्युत्थाय भिक्षाचर्यं परन्ति।। (श्रुतिः)
अनात्मार्थे विज्ञाते, स्वाध्यस्ताहि प्रबोधवत्।
न किञ्चित्स्यात्परिज्ञानं, नानात्मातः प्रमित्सितः।। (वार्ति. ९७२)
ज्ञातोऽपि नात्मनो भिद्यते परः।
प्रत्यगज्ञानहेतुत्वात्, तदन्यवस्तुनः।।

तदेतत्पदनीयम्। (श्रुतिः)

अनात्मनोऽस्य सर्वस्य, व्याकृता व्याकृतात्मनः।
यस्मादात्मा परं तत्त्वं, पदनीयमतो भवेत्।।

आत्मा को ही सब तरह से जानो आ = समन्तात् वेद = जानो) न समस्त है न व्यस्त है प्रत्यगात्मा नहीं उभयात्मक ही है। प्रत्यक् परिमार्जित बुद्धि से यदि सम्भव हो तो देखो।

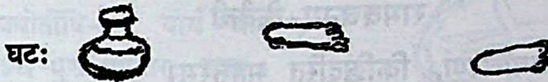
सभी ज्ञेय पुमर्थो का समापन प्रत्यक् ज्ञान में ही है। श्रुति कहती है—ज्ञानी योगी जानकर उठते हैं तथा भैक्ष्य वृत्ति से जीते है।

अनात्म तत्व के जानने पर स्व में अध्यस्त देही में अध्यस्त (तन्मात्रा कोष-अन्तः करण चतुन्ख) का ही भान होने पर लगता है ज्ञान ही गया (सूर्य के बादल में छिपने पर लगता है शाम हो गयी) जब कि कुछ भी परिज्ञान नहीं हुआ नानात्व की प्रभिति के कारण।

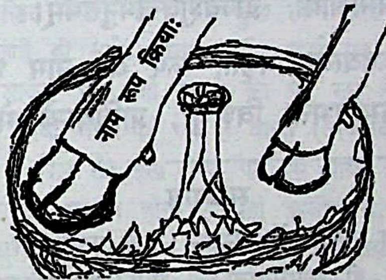
आत्म ज्ञान होने पर भी प्रत्यक् ज्ञान का हेतु होने से पर नष्ट नहीं होता तद तिरिक्त वस्तु का।

वह यही प्राप्तव्य है (ज्ञेय है) (पद् गतौ)। अव्याकृत आत्मा से ही ये सब प्रपञ्च व्याकृत है (विशिष्टाकार वान है) इसीलिए आत्म पर तत्व है अतः पदनीय होता है ज्ञातव्य

परमार्थात्मनाऽसत्यं, पदं तदपि बोधकम्।
स्वार्थस्यैवमुपायत्वं, असत्यस्यात्मनीक्ष्यताम्।।९९२।।
(वार्तिकम्-१/४/९७९)



यथैवं नामरूपादि-प्रपञ्चोपायहेतुतः।
अप्रपञ्चात्मके भूम्नि, प्रत्यग्बोधः प्रजायते।।
प्रत्यक्तया यदाभाति, ह्यागमापायिक्षाक्षितः।
देहेन्द्रिमनोधीषु, चैतन्याभासरूपकम्।।
जडेष्वेकमनेकेषु, कूटस्थं क्षणभङ्गिषु।
अनात्मसु तथाचात्मा, संहतेष्वप्यसंहतः।।



या प्राप्तव्य होता है। परमार्थतया ये असत्य है जगत् फिर भी बोधक है असत्य स्वार्थ का यही इसी प्रकार उपायत्व है (अ सत्य भी सत्य का बोधक हो जाता है निषेध वृत्या) आत्मा में देखना चाहिए बाहर सब मिथ्यात्व युक्त हैं। (प्रकाश की महिमा तदाभाव में विशेष होता है बुराई देख अच्छाई का बोध होता है)।

जैसे ये नाम ज्ञान रूपादि है ये प्रपञ्चो पाय के हेतु अप्रपञ्चात्मक भूमा परमात्मा में प्रत्यक् बोध उत्पन्न होता है।

जब आगमा पायी साशि द्वारा प्रत्यक् रूप में ये भासित होता है जगत् देह-इन्द्रिय-मन बुद्धि में चैतन्या भास रुपक जब आगमा पायी साक्षी द्वारा प्रत्यक रूप में भासित होता है। अनेकों जड़ों में एक, क्षणभंगुरों में कूटस्थ, अनात्म पदार्थों में आत्मा संहतों में असंहल जब भासित होता है तब आत्म बोध होता है।

सौत्रान्तिकः–वेद्यमनुमनगम्यं मन्यते। वैभाषिकः–प्रत्यक्षगम्यम् (क्षणभङ्गुरता समाना)। विज्ञानवादी–विज्ञानानां क्षणिकत्वं बहुत्वं चाङ्गीकरोति। वेदान्ते–स्थिरमेकं ज्ञानम्।
(शङ्कदिग्विजये)

रामवचनम्-केकैय्यै

नह्यतोधर्माचरणं, किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
वक्षपितरि सुश्रूषा, तस्य च वचन क्रिया।।
नाहमर्थपरोदेवि, लोकमावस्तुमुत्सहे।
विद्धिदमां ऋषिभिस्तुल्यं, विमलं धर्ममास्थितम्।।
(वाल्मीकी.रा. २१)

भरताय रामः

पुराभ्राता पिता नः सु, मातरं ते समुद्वहन्।
मातमहे समाश्रौषी, द्राज्यशुक्लमनुत्तमम्।।
नामैवेदं रूपवत्वेन ववृते, रूपं चेदं नाम भावेऽवतस्ये।
एके तदेकमविभक्तं विभेजुः, प्रागिवान्ये भेरूपं वदन्दि।। (टी.)

सम्प्रदाय

सौत्रान्तिक = वेद्यवस्तु तत्व को अनुमान गम्य मानते हैं। वैभाषिक = प्रत्यक्ष गम्य मानते हैं ज्ञान को (ये दोनों ही क्षणभंगुरता के समान है)। विज्ञानवादी = ये विज्ञानों को क्षणिक व बहुत रूप में स्वीकार करते है। वेदान्ती = ज्ञान एक है तथा स्थिर है ऐसा मानते है।

श्रीराम माता कैकेयी से—माता पिता की सेवा करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना इससे बड़ा धर्माचरण कुछ नहीं है। हे मात: मैं राज्यादि के प्रति समुत्सुक नहीं हूँ निर्मलधर्म में स्थित मुझे आप ऋषि के समान मानों।

श्रीराम भरत से कहते हैं—हे भाई जब हमारे पिता ने तुम्हारी माता से विवाह किया था तब मातामह (नानाजी) को आश्वस्त किया था कि इनका पुत्र ही रजा वनेगा (राज्य शुल्क देकर विवाह किया था)

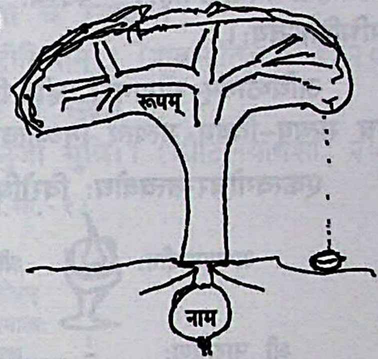
ये नाम ही (सूक्ष्म वाक् रूप से अन्तःकरण में स्थित) गौ-पुरुष-रूप-रस वृक्ष वृक्ष से बीज की तरह) कुछ लोग इस नाम रूप को अविभक्त मानते है। (वैसे भी विभाग से

'प्राप्तरूपविभागाया', 'योवाचः परमोरसः', 'पुण्यतमं ज्योतिः'।

(वाक्यपदीयम् ब्रह्मका. १२)

'ऋजीषमेतद्वाचो यः संस्कार हीनः शब्दः'। (टी.)

त्रीणि ज्योतींषि–१. योयं जात वेदाः। २. यश्च पुरुषेष्वान्तरः प्रकाः। ३. यश्च प्रकाशाप्रकाशयोः प्रकाशयिता शब्दाख्यः।।टी.।।



ज्ञानं–अजन्यफलं वस्तुविषयं प्रमाणजन्यम्।
ध्यानं–जन्यफलं वस्तुनिरपेक्षं पुरुषे प्रयत्नमात्रजन्यम्।

(विवरण प्रमेय सं., ह.-४/२)

पूर्व तो एक ही हैं पीछे फिर विभक्त हो गये) कुछ लोग प्रारम्भ से ही विभक्त मानते है नाम रूप को। ये एक वाणी ही (जो अन्तस्थ थी) वर्ण पद वाक्य रूप से विभक्त हुई है (या गौश्क्षादि रूप में साकार हुई) जो वाणी का परं रस है (साधु शब्द के उच्चारण से अभ्युदय होता है) साधु शब्द वही परं रस है वाणी (अपशब्द-असाधु शब्द-संस्कार हीन शब्द-तो वाणी का ऋजीष = मल है) ईख पेरने पर रस प्राप्त होता है (जिसका गुड चीनी बनता है) रस के अतिरिक्त जो गन्दगी होती है वही ऋजीष है, साधुशब्द पुण्यादायक होने से सार है रस है, असाधु शब्द प्रत्यावाय जनक होने से ऋजीष है मल है हेयांश हैं। साधु शब्द ही पुण्यतम ज्योति है, तीन प्रकाश है—१. अग्नि, २. पुरुषों के अन्दर ज्ञानरूप, ३. जो प्रकाश व अप्रकाश का भी प्रकाशक शब्द प्रकाश है। इसी शब्द प्रकार के ज्ञान का ये सरलतम उपाय (मार्ग) व्याकरण है।

ज्ञान

वस्तुविषयक है प्रमाणों से उत्पन्न है किन्तु ऐसा फल वाला है जो पूर्व से ही विद्यमान है ज्ञान उत्पन्न नहीं करता पर्दा हटाता है ऐसा फल जो विद्यमान तो है किन्तु हमें पता नहीं, पर्दा को हटाने में प्रमाण सहयोगी है, तीन बाते—१. अजन्यफल, २. वास्तुविषयक, ३. प्रमाण जन्य।

ध्यान

ये वस्तु से निरपेक्ष है, ध्याता की इच्छा व प्रयास से उत्पन्न है जन्य फल का दाता है—१. ध्यानावस्था में सब वस्तु जगत से हटकर अपूर्व अपूर्व ब्रह्म का ही आश्रय लिया जाता

अन्विताभिधानवादी प्रभाकरः। पदान्येव वाक्यार्थान्वयं पदजातं शुतं सर्वं, स्मारितानन्वितार्थकम्। वेधयन्ति। न्याय संपादित व्यक्ति, पश्चाद्वाक्यर्थ बोधकम्। अभिहितान्वयवादीमाहः। पदेभ्यः पदार्थाः पदार्थेभ्यः संसर्गः बोध्यते। इति अभिहितान्वयः।

अधिष्ठानम्–सामान्येन गृहीतं विशेषेणगृहीतम्। जीवेकतृत्वादि-साक्षिवेद्यम्। तथापि तन्न सत्यम्–विषय सत्यत्व मिथ्यात्वयो स्ताटस्थात्। असंगत्व श्रुतेश्च।

एकत्वगोचरस्तत्त्वबोधः विरोधितमविद्यातत्कार्याध्यासं निवर्तयन्नेवो देति।

अध्यात्मदीपः श्रीमद्भागवतम्।

श्री नारायणः – ब्रह्मणे।
ब्रह्मा – नारदाय।
नारदः – व्यासाय।
व्यासः – शुकाय।
शुकः – परीक्षिताय।

(अखण्डानन्दः, भागव दर्शने)

है। २. ध्याता = ध्यान करने वाला इच्छा पूर्वक प्रयास करता है तभी ध्यान का आनन्द ले पाता है। ३. ध्यानानन्तर जो सच्चिदानन्द विषयक अपूर्वानन्द है वह पहले नहीं था ये ध्यान यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा आदि का फल है। अतः जन्यफल है।

अन्विताभिधान वादी—प्रभाकर भट्ट है ये कुमारिभट्ट के शिष्य हैं गुरु से हटकर पक्ष रखा है इनके मत को गुरुमत कहा जाता है—पद श्रवण मात्र से परम्परया संकेत ग्रह के बोध होता है। **अभिहितान्वय वादी**—ये प्रभाकर भट्ट के गुरु है इनका मत तौतादिक कहा जाता है ये पदों से पदार्थ (पद के अर्थ) का ज्ञान-पदार्थों के संसर्ग से भिन्न अर्थ-वाले पद ही तात्पर्य वृत्ति से अपूर्व का बोध कराते हैं।

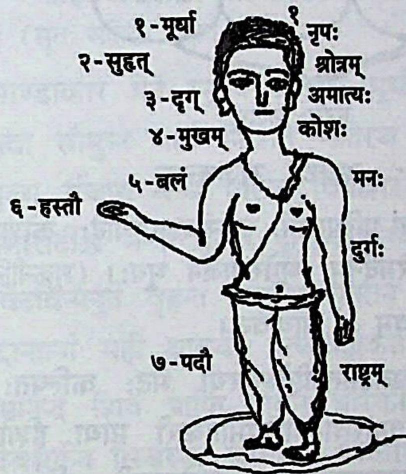
अधिष्ठान = सामान्य से गृहीत विशेषण से अग्रहीत जीव में कर्ता भोक्ता पन साक्षी द्वारा ही वेद्य है। फिर थी वह सत्य नहीं क्योंकि विषय की सत्यता असत्यता से साक्षी तटस्थ है श्रुति सिद्ध है कि असंग भी है।

तत्वबोध एकत्वगोचर है, वह विरोधी अविधा व उसके कार्य अध्यासादि को निवृत करता हुआ ही उदित होता है।

श्री मद्भागवत रूप अध्यात्म प्रदीप की परम्परा (ये पुराण रूपी सूर्य है) श्री नारायण ने ब्रह्मा जी को प्रदान किया, नारायण ने ही ब्रह्म सम्बन्ध से नारद को, नारद सम्बन्ध

प्रव्रज्यासु वृथा चारान्, राजा दण्डेन वारयेत्।
धर्मोह्यधर्मोपहतः, शस्तारं हन्त्युपेक्षितः।। (कौटिलेयार्थशा. ३/१६)
तपसा तेज आदत्ते, शास्ता पाता च रञ्जकः।
नृपःस्वप्राक्तवाद्धते, तपसा च महीमिमाम्।। (शुक्रनीतिसारः १/२०)
तपःस्वधर्मरूपं यत्, वर्द्धितं येन वै सदा।
देवास्तु किंकरा तस्य, किं पुनर्मनुजा भुवि।। (कौटिलेयार्थशा. २५)

सप्ताङ्गं राज्यम् (शुक्रनी.सा.-१)



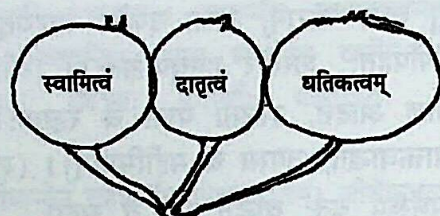
से व्यास जी को, व्यास सम्बन्ध से शुकदेव को श्री नारायण ने शुकदेव के सम्बन्ध से स्वर्य-राजा परीक्षित को प्रदान किया।

सन्यास मार्ग में मिथ्याचार रत पाखण्डियों को राजा दण्ड देकर नियन्त्रित करे क्योंकि अधर्म द्वारा धर्म के अभिभूत होने से उपेक्षित धर्म राजा को ही मार डालता है।

शासक-पालन-रञ्जक (सुख दाता) ये तपस्या द्वारा तेजस्वी होते हैं। राजा अपने जन्मान्तरीय तप द्वारा ही इस पृथ्वीं का शासन करते हैं।

जिसने सदा स्वधर्माचरण रूप तप की अभिवृद्धि की उसकी सेवा में देवता उपस्थित रहते हैं फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या किंकरा = प्र. किं-करोति ३० तवाज्ञां पालयामि- अथवा जो सदा हाथ जोड़े आज्ञा पालनार्थ खड़ार है किं करवाणि = क्या करूं वह किंकर कहा जाता है।

मूर्धा = राजा, कान = सुहृत, दृष्टि = मन्त्रीवर्ग, मुख = कोश, मान = सेना, हाथ = दुर्ग, पैर = राष्ट्र—ये सदा राज्यांगों की रक्षा राजा अपनी देह की तरह करे।



तपः फलम्



एनसः फलम्

अष्टधा राजवृत्तम्

दुष्टनिग्रहणं, दानं, प्रजानां परिपालनं, यजनं राजसूयादेः, कोशानां न्यायतोऽर्जलम्, करदीकरणं राज्ञां, रिपूणं परिमर्दनम्, भूमेरुपार्जनं भूयः। (शूक्रनीतिसारः-१)

तत = जगत्कारण। त्वम् = मायावद्ध।

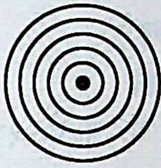
मायाविद्योपाधिवशातजीवेश्वरयो भेदः कल्पितः
विशुद्धसत्वप्रधानास्वाश्रयाव्यमोहकरी माया ईशोपाधि।
मलिन सत्वप्रधानास्वाश्रय व्यामोहकरी अविद्या जीवोपाधि
स्वतः सिद्ध एकत्व मे अज्ञान आच्छादकहं।। (संक्षेपशा.-१/२३७)

तप का फल—स्वामित्व, दानवान, धनवान। **पाप का फल**—याचक, सेवक, दरिद्रता।

आठ प्रकार के राजवृत्त—१ दुष्टों का निग्रह, २ दान शीलता, ३. प्रजायालन, ४. राजसूयादि यज्ञों से यजन, ५. न्यायपूर्वक कोश वृद्धि, ६. राजाओं को वश में करके उन्हें कर देने वाला बना ले (वे कर दिया करें), ७. शत्रुओं का परिमर्दन, ८. भूमि की अभिवृद्धि।

तत् का अर्थ है वह जगत्कारण ब्रह्म अद्वितीय पूर्ण प्रत्यगात्मा। त्वम् का अर्थ है माया वह अविधाग्रस्तादि।

माया-अविधा का उपाधि के कारण जीव ईश्वर में भेद कल्पित हो गया भागत्याग लक्षणा से इनके विशेषणाशों को त्याग देने दोनों का वास्तमन वोध्य जो शेष होगा वह ही होगा।



तत् अद्वितीयम्, तच्छव्दार्थो लक्षयेदद्वितीयम्।
एवं पूर्णं प्रत्यगात्मामेतै, शब्दौब्रूतो लक्षणवत्मनैव।।
त्वम्–प्रत्यक तत्त्वं लक्षयेत्त्वं पदर्थः।

रीत्या तत् त्वं शब्दाभ्यां यल्लक्ष्यं चिन्नावं निरस्तसमस्त उपाधिकं स एव ही परमात्मा विज्ञानमानन्द ब्रह्म त्रिविध परिच्छेद रहित स्वाभाविकेत्वसम्पन्न।

'अहं सः सोहमेवेति'। आत्ममन्त्रः, हंसविद्या। अस्याश्चजयमात्रेण, दीर्घायुष्यपरोगताम्। (सूत संहिता यज्ञवै.-७)

हंसाण्डाकार मेनं स्नुतपरम सुधं मूर्धचन्द्राङ्गलन्तम्
नीत्वा सौमुम्न मार्गं निशित मतिरथ व्याप्तदेहोपगात्रम्।
स्मृत्वा संजप्य ग्रन्थं पलित विषशिरोरुग्ज्वरोन्मादभूता
पस्मारादींश्च मन्त्री हरति दुरितदौर्भाग्यदारिद्यदोत्रार।। (प्रपञ्चसारः)

नावेदविन्मनुतं वृहन्तं सर्वानुभूमात्मानं संपण्ये।
वेदान्तानां मही वाक्यं, प्रत्यग्ब्रह्मैकतार्थकम्।।

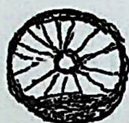
भूमानन्द शिव प्राप्ति-साधनं परिकीर्तितम्।
तदेवभ्रान्ति सिद्धस्य, संसारस्य निवर्तकम्।। (सूत सं. यज्ञवै.-१०)

चित्र और संस्कृत की हिन्दी नहीं है।

अहं (मै) वह हूँ, वह मैं हूँ ये सोऽहं आत्ममन्त्र है (हंसविद्या है) इसके जपमान से दीर्घायुव्य एव निरोगता प्राप्त होब्री है। आरोग्य विजय विद्यादि भी प्राप्त होता है।

मूर्धा स्थित हंस के अण्डा के आकार वाले इस सुधा स्त्रावी चन्द्र से निर्गलित परमामृत तत्व को सुषुम्ना मार्ग सै ले जाकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त कर लेने पर स्मरण पूर्वक मन्त्र जप से पलित (बालों का पक में) विष का दुष्प्रभाव-शिर पीडा-ज्वर-उन्मादि-अपस्मार आदि सभी रोगों के साथ दुरित (माप) दुर्भाज्य-दारिद्रय दोसों को भी मन्त्र जापक नष्ट कर देता है।

वेदान्त के प्रसिद्ध महावाक्यों द्वारा प्रत्यक् आत्मा ही ब्रह्म है इनका इस प्रकार अभेद सिद्द किया जाता है। अनन्त अनन्त आनन्दा के उलसित महा समुद्र सदाशिव की प्राप्ति ही वास्तविक साधन है यही भगवत्प्राप्ति ही भ्रान्ति मूलक संसार के निवर्तन का हेतु है (शुद्ध अधिष्ठान भ्ररहित अधिब्बन (आत्मा) बोध की कल्पित वस्तु का नाश है जगत्।



स्वतः सिद्धं स्वयं सर्वं, जगत्स्वेन प्रकाशितम्।
स्वस्वरूपतया बुद्ध्वा, तदत्तिस्वात्मनास्वयम्।।१४।।
(सूत सं. यज्ञवै.-१४)

ध्यान यज्ञः

परात्पर तरं तत्त्वं, ध्येयं मूर्त्यात्मनैवतु।
न स्वरूपेण साक्षित्वात्, आत्मत्वाविषयत्त्वतः।। (सू.सं.य.वै.-१)
भौतिका अण्डभेदाश्च अण्डमध्ये स्थिता लोकाः।
सुखं दुःखं तयोर्भोगः पापानि सुवहूनि च।।
यद्यदस्ति तया भाति, यद्यन्नास्ति तयापि च।
तत्तद्वस्त्र तया नित्य, मुपास्यं ब्रह्मवित्तमैः।।

ये प्रतीयमान सकल प्रपंच स्वयं (आत्मा) द्वारा ही स्वयं में ही रचित है। स्वप्रकाश से ही प्रकाशित है (जैसे स्वप्न में मन ही मित्र मन ही शत्रु मन ही प्यास मन ही पानी मन ही हन्ता मन ही हन्यमान हो जाता है स्वप्न का संसार स्वयं मन में मन से ही रचा गया व मन द्वारा ही प्रकाशित है जगने पर मानो उस प्रवञ्च को मन ने खा लिया) इसे स्वस्वरूप जानकर (भिन्न कुछ नहीं सर्वत्र आत्मा ही है) स्वयं ही इसे खा लेता है शब्दार्थ से भिन्न विचार करो जब तक जगत आत्मा से भिन्न दिख रहा है तब तक जगत है, जब जगत आत्म रूप है ऐसा ज्ञान हो गया तब जगत् नहीं रहा इसी अवस्था को कह दिया आत्मा जगत् को खा जाता है, कैसे अँधेरा है, कब तक जब तक प्रकाश नहीं है, सूर्य निकला प्रकाश ने अंधेरे को खा लिया सूर्य को तिमिर=अंधेरे का शत्रु कहा है तब क्या वास्तव में प्रकाश अधेरे को खाता है नहीं खाता न प्रकाश का न होना ही अंधेरा है बल्व जलाया-दीपक जलाया अंधेरा खत्म इसी प्रकार जगत रूपी अंधेरा तब तक प्रतीत होता है जब तक आत्म ज्ञान प्रकाश नहीं होता इसी को।

ध्यान यज्ञ

पर (अव्यक्त) की अपेक्षा परात्पर माया से भी परे जो पर तत्व सदाशिव है वे मूर्ति द्वारा हो ध्येय हैं साक्षात्स्वरुपतः उनका ध्यान सम्भव नहीं वे स्वयं साक्षी हैं तथा मनादि के अविषय हैं।

भौतिक ब्रह्मण्डों व अण्डमध्यवर्ती लोकों का भी शिवरूप में ही ध्यान हो सकता है, सुख-दुख बहुत से पाप इनके भोग आदि का अथवा जो अस्ति बृत्ति से भासित है

इत्थं सर्वत्र यः साक्षाद्, ब्रह्मोपास्तं सनातनाम्।
स याति ध्यान यज्ञेन साक्षाद्विज्ञानमैश्वरम्।।

ज्ञान यज्ञः (तत् सं. यज्ञवै.-१०)

ज्ञानं बहुविधं प्रोक्तम्–

मायाकारेण सम्बद्धं, जड शक्तेः शिवस्य तु।
ज्ञानमीश्वर संज्ञं च, नियन्तृ जगतो भवेत्।।
शक्ते रविद्याकारेण, सम्बद्धं जीव संज्ञितम्।
स्वप्रचाराश्रयं चित्तं, जीव रूप प्रकाशकम्।
ज्ञातृत्व हेतु र्जीवस्य, दुःखित्वारेश्च कारणम्।।
अदुष्ट कारणेत्पन्नं, विज्ञानं प्रभा।

प्रमाणज्ञानम्–तस्य सामग्र्यः षट्। १. योग्यानुपलब्धिरभावस्य। २. इन्द्रियाणि प्रत्यक्षस्य। ३. व्याप्तिः, अनुमतेः। ४. सादृश्य मुपमानस्य। ५. अनुपपत्तिः, अर्थापत्तेः। ६. तात्पर्योवेत शब्दः शाब्दस्य।

और जो नास्ति वृत्ति से है उन सबका नित्य ध्यान शिवरूप में ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा किया गया है।

इस प्रकार जो साधक सभी उपाधियों में शिव का ध्यान करता है फलतः वह सनातन ब्रह्मोपासक साक्षात् विज्ञानेश्वर शिव को प्राप्त कर लेता है।

ज्ञानयज्ञ

ज्ञानयज्ञ बहुत प्रकार का है शिव की जडशक्ति मायाकार से सम्बद्ध ज्ञान ईश्वररूप हो जगन्नियत्ता पाता है शुद्ध सत्वप्रधान माया की उपाधि से उपहित चैतन्य (ज्ञान) सर्वज्ञ जगत्कर्ता ईश्वर कहलाता है शिव की उसी जडशक्ति के अविद्याकार से सम्बद्ध ज्ञान जीव कहलाता है चित्त अपनी विषयाकार वृत्तियों के कारण ही जीव रूप को प्राप्त है यही चित्त जीव में ज्ञातृत्व व दुखित्व आदि का हेतु बनता है।

निर्दुष्ट साधनों से उत्पन्न विज्ञान ही प्रमा है।

प्रमाण ज्ञान की छः सामग्रियाँ—१. योग्य अनुपलब्धि से प्राप्त अनुभव को अभावानुभव कहते है (योग्य है पर अप्राप्त हैं), २. प्रत्यक्ष प्रमाण में इन्द्रियां हेतु (इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष उत्पन्न ज्ञान), ३. अनुमान प्रमाण में व्याप्ति हेतु व्याप्ति जन्य ज्ञान अनुमान है

आत्मरूपीशिवः साक्षात्, चिन्मात्र ज्योतिरेव हि।
भेदसाक्षी शिवोह्यात्मा, न भिन्न भेदसाधकः।। (सप्तस. यज्ञवै.-१०)

सर्वभूतेषु चात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन्नात्मया जी स्यात्, स्वाराज्यमधिगच्छति।।

त्वमहं शब्द लक्ष्यार्थं, असक्तं सर्वदोषतः।
ज्ञाता ज्ञात द्वयादन्यं, ज्ञाताज्ञातस्य भासकम्।।
प्रमाण भ्रान्ति वृत्तीनां, अगम्यं तत्प्रकाशकम्।
स्वयंभातं निराधारं, ये जानन्ति सुनिश्चितम्।।
ते विज्ञान सम्पन्नाः।।

ईश्वराः

१. ब्रह्मा-पृथिव्यधिपतिः, २. विष्णुः-अबधिपतिः, ३. रूद्रः-अनलाधिष्ठाता, ४. ईश्वरः-अनिलाधि., ५. सदाशिवः-विपदधिपतिः कारणेय लक्ष्यं-ब्रह्म, ६. महाभूत स्रष्टा, ७. स्थिति कर्ता, ८. संहृति व्यापारः, ९. ईक्षिता-स्रष्टव्य पर्यालोचकः, १०. परशिवः-मायोपाधिकः।

व्याप्ति प्रकारक हेतु विषयक, ४. उपमान प्रमाण में सादृश्य हेतु, ५. अर्थापत्ति प्रमाण में अनुपयत्ति हेतु, ६. शब्द प्रमाण में तात्पर्ययुक्ताप्तशब्द।

आत्मरूप शिव साक्षात चैतन्मयी ज्योति हैं। भेद के साक्षी शिव ही आत्मा है भेद साधक भी भिन्न नहीं है।

सभी भूतों में तथा स्वयं को स्वयं में सभी भूतों को देखता हुआ प्राणी आत्म यज्ञ कर्ता होता है तथा स्वाराज्य को प्राप्त करता है।

त्वं-और अहम्-तुम और मैं शब्दों के लक्ष्यार्ध जो सर्वदोश रहित है ज्ञातव अज्ञात दोनों से भिन्न है ज्ञात व अज्ञात का भासक है।

प्रमाणों भ्रान्ति वृत्तियों द्वारा अगम्य होने पर भी उनके प्रकाशक स्वयंप्रकाश निराधार इस तत्व को जो सुनिश्चित हो जानते हैं। वे विज्ञान सम्पन्न है।

१. ब्रह्मा—पृथ्वी स्वामी, २. विष्णु—जल, ३. रुद्र—तेज, ४. ईश्वर—वायु, ५. सदाशिव—आकाश, ६. महाभूत सर्जक, ७. स्थिति नियामक (पालक), ८. संहारक, ९. साक्षी—सृजन के पर्यालोचक, १०. परशिव—मायोपाधिक कारणी परिहार्य ब्रह्म।

निरधिष्ठान भ्रमोसंभवः, तथानिरवधिकवाधः जगत्प्रतीति वाधयोधिष्ठानावधित्वेन च यद्वस्तु तद्ब्रह्म स आत्मा। (सू.सं.य.वै.-११/२३ टी.)

चिन्मात्राश्रयमायायाः, शक्त्याकारे या निर्विकल्पा स्वयंप्रभा संविदनु प्रविष्टा सदाकारा परानन्दा सा शिवाभिन्ना शिवं करी संसारोच्छेद कारिणी परमादेवी शिवा।
(सू.सं.य.वै.-२३)

कलाः

पृथिव्यादिषुभूतेषु, यो गुणः तत्त्व संज्ञितः। सनिवृत्यादि संज्ञामुपैषैति।
(सू.सं.य.-१४)

१. यवादौ पार्थिवे तत्वे, कर्मभोगो निवर्त्यते। सा कला निवृत्तिर्भूमौ। २. शिवरागानुरक्तात्मा, स्थाप्यतेपौरुषेयया। सा प्रतिष्ठकला पयसि। ३. माया कार्य विवेकेन, वेत्ति विद्या पदं यया। सा विद्या-तेजसि। ४. मल माया विकरौध-शान्तिःपुंसः यया सा शान्ति वायौ। ५. अद्वैतनिर्वाणनन्द बोधदा शान्त्यहीता कला-व्योम्नि।।टी.।।

तथा आकाशादौस्थितो रजोगुणः-१. स्पन्दः, २. परिस्पन्दः, ३. प्रक्रमः, ४. परिशीलनः, ५. प्रचारः। इति पञ्चक्रियाः, ब्रह्माणि।

भ्रम तो अधिष्ठान रहित भी संभव है, तथा अवधिरहित बाध भी संभव है। जगत् की प्रतीति और जगत् के नष्ट होने (वाद्य) की स्थिति में जो वस्तु अधिष्ठान रूप में प्रतीत होती है वह ब्रह्म ही आत्मा है।

चिन्मात्रामया माया की शक्ति के आकार में जो निर्विकल्प ज्ञान प्रविष्ट परानन्दरूप सत् आकार वाली स्वयं प्रभा है वह शिव से अभिन्न कल्याण कारिणी संसार का उच्छेदन करने वाली परमा देवी शिवा है।

पृथ्वी आदि पांच महाभूतों में सत्व संज्ञक गो गुण हे वह गुण आगमों में निवृत्ति आदि कलानाम से प्रसिद्ध है—१. जिसके द्वारा सर्व प्रथम पार्थिव तत्व कर्म भोग निवृत्त होता है वह—निवृत्ति कला भूमि में। २. जिसके द्वारा शिवानुराग भाव पौरुष में स्थित होता है वह—प्रतिष्ठा कला जल में। ३. जिसके द्वारा मायाकार्य ज्ञान सहित परा विद्या का ज्ञान होता है—विद्या कला तेज में। ४. जिसके द्वारा पुसं के मल माया जन्य विकार समूह शान्त होते हैं वह—शान्तिकला वायु में। ५. अद्वैत निर्वाणान्द वोध प्रदात्री शान्त्यतीता कला आकाश में।

अकाशादि में स्थित रजोगुण—१. स्पन्द २ परिस्पन्द ३. प्रक्रम ४. परिशीलन ५. प्रचार ये पांच क्रिया में ब्रह्म में और महाभूतों की

तथा भूतेषु तमोगुणः-१. छादकं, २. वाधकं, ३. मुग्धं, ४. नोदकं, ५. भञ्जकम्।

शिवरूपेण संपंश्य-मुच्यते भवबन्धनात्।
वस्तुतः शम्भुरानन्दः, सत्य सम्पूर्ण चिद्घनः।। (सू.सं.य.वै.-१४)

निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम्। (श्रु.)

ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कंलं ध्यायमानः। यो वै भूमा तत्सुखम्।

कारणात्वोपलक्ष्यस्य, शिवस्य परमत्मनः।
सत्यचिन्मात्र रूपस्य, भूमानन्द उदाहृतः।। (सू.सं.य.-२७)

अपमृत्यु मृतानां प्रेतत्वं जायते। शास्त्रेण विषेणाग्निना जलेनो द्वन्धनेन सर्पेण शृङ्गै हतानां प्रेतत्वम्। (स्कन्दपु. नाग.-२२२)

जगन्नाथः

सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथे, मार्कण्डेय ह्रदे प्लुतः।
रोहिण्यामुदधौस्नात्वा, इन्द्रध्रम्न ह्रदे तथा।।

महाभूतों में तमोगुण—१. आकाश में छादक २. वायु में बाधक ३. अग्नि में मुग्ध ४. जल में नोदक ५. पृथ्वी में भञ्जक तमो गुण रहता है

सकल प्रपञ्च को शिवरूप से देखते हुए भवबन्धन से मुक्त हो जाता है वस्तुतः शम्भु सत्य चित् और आनन्दघन रूप हैं।

ब्रह्म निष्कल है निष्क्रिय है शान्त है निरवद्य निरञ्जन है।

ज्ञान प्रसाद द्वारा विशुद्धतम अन्तः करण से निष्कल ध्यानरत उसे देखता है जो भूमा है वही सुख है।

कारणत्वेन उपलक्षित सत् चित मात्र रूप परमात्मा शिव ही भूममानन्द हैं।

अपमृत्यु (अकाल मौत) द्वारा मरे लोग ही प्रेत बनते हैं। शस्त्र द्वारा मृत, विष द्वारा, अग्नि में जलकर, जल में डूबकर, फांसी लगकर, सर्प के डसने से पशु द्वारा सींग से मारे जाने पर प्रेत बनता है प्राणी।

जगन्नाथ

भगवान् का एकबार दर्शन करके मार्कण्डेय सरोवर में स्नान करके रोहिणी नक्षत्र में सागर

भुक्त्वा निवेदितं विष्णोः, वैकुण्ठे वसतिं लभेत्।
दशयोजनविस्तीर्णं, क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम्।।
चतुर्भुजत्वमायान्ति, कीटा अति न संशयः।। (स्कन्दपु. वै.के.-१)

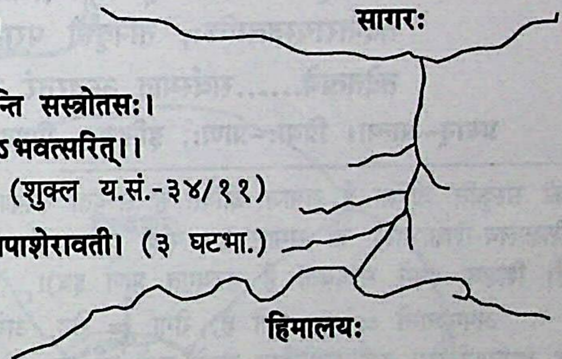


त्रिलक्ष्यम्

आज्ञायत्रम् इतरलिङ्गम्।

अनाहत् वाणलिङ्गम्।

मूलाधारः स्वयंभूलिङ्गम्।



पञ्च नद्यः सरस्वती मपियन्ति सस्त्रोतसः।
सरस्वती तुपञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्।।
(शुक्ल य.सं.-३४/११)

दृषद्वती शतद्रुश्चन्द्रभागा विपाशेरावती। (३ घटभा.)

स्नान करके इन्द्रधुम्न सरोवर में स्नान करे। जगन्नाथ भगवाना का नैवेद्य प्रसाद पाकर प्राणी वैकुण्ठ प्राप्त करता है। ये दश योजन विस्तार वाला जगन्नाथ पुरी पुरुषोत्तम क्षेत्र शंख पर स्थित है यहाँ पर बास करते हुए कीट तक भी चतुर्भुजत्व (विष्णु सारुव्य) प्राप्त करते हैं।

लक्ष्यत्रय—१. आज्ञाचक्र दोनों भौहों के मध्य दिपलमध्यवर्ती इतर लिंग स्थित है। २. अनाहत् हृदयथ दलमध्यवर्ती कमल कोश में वाण लिंग। ३. मूलाधार स्वयंभूलिङ्ग चतुर्दलात्मक कोश में स्थित।

पांच नदियाँ—१. दृषद्वती, २ शतद्रू, ३. चन्द्रभागा, ४. विपाशा, ५. इरावती। स्त्रोतों सहित सरस्वती की ओर जाती हैं, सरस्वती स्वयं पञ्च रूपों में विभक्त हो इस देश में सरित होकर प्रकट हुई ये हिमालय से ५ बनकर निकली सागर में एक बनता गयी (पञ्चधा सरस्वती जिस देश में जीवन्त व उत्कृष्ट अवस्था में रहती वही देश जीवित है उसी देश

अपामार्जनम्

ॐ अपामय किल्विषमय कृत्याभपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्वदयः दुःस्वप्न्य ँ सुव।। (शु.यजु.सं. ३५/११)
(अपसुव-अपगमय-उन्नटभा.) अपामार्गेशाप मृजति।

ज्ञानम्

प्रत्यगात्मनि विज्ञाने, नाज्ञातमवशिष्यते।
निःशेषपुरुषार्थाप्तिः दुःख हानिस्तु तत्फलम्।।
नित्यलब्धैकरूपस्य, नालाभोऽज्ञानतोन्यतः।। (वृ.-३. वार्ति. १/४)

सृष्टिः

अव्याकृत व्याकरणम्, प्रत्यग्दर्शन सिद्धये।
तदन्तरायस्तत्सक्तिः, तनिवृत्तौ पराश्रुतिः।।
तदेतत्प्रये......सर्वस्मात् अन्तरतरं यदयमात्मा।। (वृ.-३.१)

प्रयान्–आत्मा। प्रियाः–प्राणः, इन्द्रियम्, पिण्डः, पुत्रः, वित्तात्।

की संस्कृति जीवित है समाज जीवित है सभ्यता संस्कार जीवित हैं शिक्षा-शिक्षार्थो-शिक्षक-शिक्षालय-शिक्षाशास्त्र जो समाज़ इन पांचों की प्राणों की तरह रक्षा करता है वह जीवित है। शिक्षक इनमें मध्यवर्ती है हृदयगत प्राण इव)।

अपमृज्यन्ते = नष्ट होते हैं, रोगाः = रोग, अयेन = जिन द्वारा वह अपामार्ग है। हे अपामार्ग तुम इस जल द्वारा हमारे पापों को नष्ट करे हमारे दुःस्वप्नों के हमसे दूर करो। अपामार्ग चिड़चिड़ा (भरकटी)—इससे मार्जन करे।

ज्ञान

प्रत्यक् आत्मा के जान लेने पर जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता। इसका फल है सम्पूर्ण पुरुषार्थों की प्राप्ति व दुःख हानि नित्यलब्ध एक रूप ज्ञान द्वारा कुछ (निरवयव) (अव्यक्त) (निराकार) (सावयव) (व्यक्त) साकार) भी अलभ्य नहीं है।

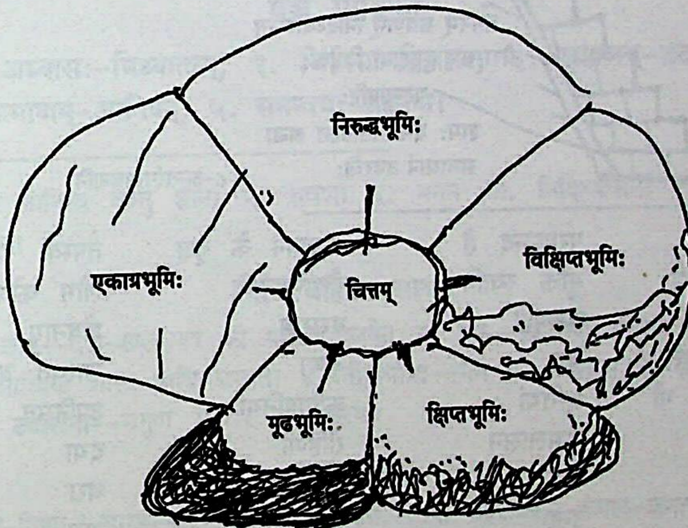
सृष्टि

अव्याकृत का प्रत्यक्दर्शनार्थ व्याकृत होना प्रत्यक्दर्शन में अन्तराय है विघ्न है आसक्ति-अन्तराय की विघ्न रूप आसक्ति के निवारण में हेतु है पराश्रुति।

यह आत्मा सबसे अधिक प्रिय है अन्तर तम है। वित्त-पुत्र-शरीर-इन्द्रिय-प्राण ये सब प्रिय है। किन्तु आत्मा तो प्रियतम है अतिशयेन प्रियः प्रेयान् अतिशय प्रिय है।







ये चित्र से स्पष्ट ही है समाधि जीव के जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। चित्त की पांच अवस्थायें चित्र में स्पष्ट हैं।

नन्दः	परानन्दः	तत्र द्रुमाः	तपसाः
यशोदा	मुक्ति गेहिनी	दैत्याः	लोभ क्रोधादयः
देवकी	ब्रह्मपुत्रा	बलरामः	शेषनागः
वसुदेवः	निगमः	कृष्णो	ब्रह्मैवशास्त्रम्
गोप्यो गावः	ऋचः	२१०८ स्वयः	ऋचोपनिषदः
	कमला समः	रोहिणी	दया
	रूद्रः	सत्यभामा	धरा
	इन्द्रः	मित्रसुदामा	शमः
गोकुलम्	वैकुण्ठः	अक्रूरः	सत्यम्

(गोपालीपनीउ.)



(८-अन्तरंगसाधनानि)

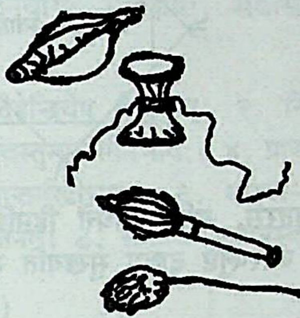
नन्द	परमानन्द है	वन्दावन के वृक्ष	तपस्वी ऋषिमुनि
यशोदा	मुक्ति स्वामिनी	दैत्यपूतनादि	लोभ कोध मोहादि
देवकी	ब्रह्मपुत्री	बराराम	शेषनाग
वसुदेव	वेद	कृष्ण	शास्वत ब्रह्म
गोपी गौ	श्रुतियां	कृष्णपनियां	उपनिसत् की ऋचायें
दण्ड	कमलासन	रोहिणी	दया
वंशी	रुद्र	सत्यभामा	धरा
सींग	इन्द्र	सुदामा	शम
गोकुल	वैकुष्ठ	अक्रूर	सत्य है

मोक्षार्थ अष्ट अन्तरंग साधन

१. शमादि षट् सम्पत्ति—१. शम, २. दम, ३. उपरति, ४. तितिक्षा, ५. श्रद्धा ६. समाधान। २. वैराग्य-अनित्य लोक परलोक की भोगवासना से विराग। ३. मुमुक्षुत्व। ४.

उपासना, तीर्थसेवा, यज्ञः, तपः, दानम्। (बहिरंगसाधनानि)

उद्धवः — दमः



— भगवान् विष्णुः

— कश्यपः

— अदितिः

— कालिका

— जगद्बीजम्

गरूडः — वनभाण्डीरः

वृन्दा — भक्तिः

पञ्च पादिका

१. अध्यासः–मिथ्यात्वम्, २. जिज्ञासा–विचारः, ३. लक्षणम्–तटस्थ स्वरूप भूते, ४. प्रमाणम्–उपनिषत्, ५. समन्वयः–ब्रह्मणि।

विवेक–नित्य अनित्य वस्तु ज्ञान। ५. श्रवण। ६. मनन। ७. निदिध्यासन। ८. तत् त्वम् पदार्थ साधन।

पाँच बहिरंग साधन

१. दान—देश-काल-पात्र की परीक्षा करके। २. तप—सात्विक मनसा वचसा वपुषा। ३. यज्ञ—सात्विक शास्त्र विधि सम्मत। ४. तीर्थयात्रा—मन की पवित्रता के साथ अपरिग्रही टीका। ५. उपासना—सगुण साकार की सपर्या।

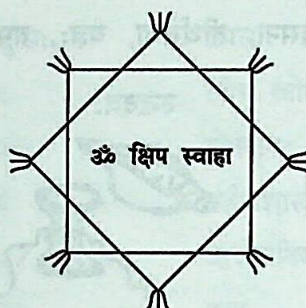
उद्धव–दम

शंख–विष्णु, डमरू–कश्यप, डोरी–अदिति, गदा–कालिका, कमल–जगत् का बीज, गढ़ड–भाण्डीर वन, वृन्दा–भक्ति।

पाँच सोपान

१. अध्यास–असत्याधारित, २. जिज्ञासा–विचाराधारित, ३. लक्षण–तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण, ४. प्रमाण–उपनिसत, ५. समन्वय-ब्रह्म में।





किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरम्बा-मृतरसं, हृदित्वामाधत्ते हिमश्रिलाम्-र्तिमिवयः।
ससर्पाणं दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव, ज्वरप्लुष्टं दृष्ट्या सुखयति सुधासार सिरया।
(सौन्दर्य ल. २०)

योगोद्विधा

१. कर्मयोगः-

कर्मकर्तव्यमित्येव, विहितेष्वेवकर्मसु।
बन्धनं मनसोनित्यं, कर्मयोगः स उच्यते।।२५।।

चित्त को जीतने की युक्तियां १. सत्संग २. प्राणायाम ३. वासनात्याग ४. अध्यात्म ज्ञान।

हे माँ जो साधक आपके इस दिव्या तिदिव्य श्री विग्रह क्षवि के अंगों से निकलते किरण समूहोत्पन्न अमृतरस के सहित हिमकर शिला निर्मित जैसी—(चन्द्रकान्ता मणि से रचित जैसी) इस मूर्ति को अपने हृदय में धारण करता है वह पक्षिराज गरुड के समान दृष्टि मात्र से (न तु बल प्रयोग से) ही विष विषाक्त आशीविसौ (सर्पों) के दर्प का दलन कर देता है (भोगों को नष्ट कर देता है) तथा सांसारिक संताप संतप्त प्राणियों (ज्वरोद्दीप्त दाहाकुल प्राणियों को) सुधाववर्सिणी दृष्टि से ही शीतलता रूपी मुख प्रदान कर देता है।

ये गारुड मन्त्र प्रयोग है इसकी साधना करने वाला ज्वर मद गर्वित सर्पो के दर्प का दलन पक्षिराज गरुड के समान दृष्टि मात्र से कर देता है ६ मास तक इसकी साधना करने पर गरुडोपम हो दृष्टि मात्र से लोक कोवश में कर लेता है विष हर लेता है ज्वर हर लेता है इस गारुड मन्त्र के ध्यान मात्र से अरभौकिक शक्ति से।

योग दो प्रकार का है

१. **कर्म योग**—कर्म करना ही चाहिए ये कर्त्तव्यत्वेन करणीय है अतः विहित (शास्त्रविहित) कर्मों में ही मन को निरत बांधे रखना कर्म योग है।

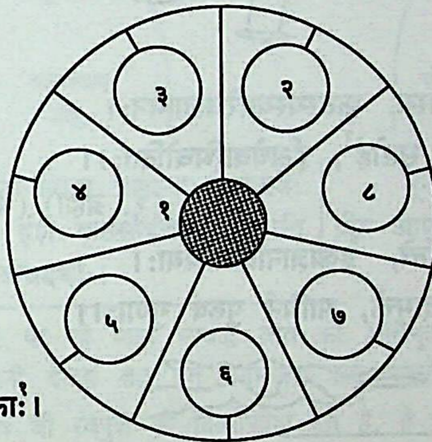
२. ज्ञानयोगः–

यत्तचित्तस्य सततं, अर्थे श्रेयसि बन्धनम्।
ज्ञानयोगः सविज्ञेयः, सर्वसिद्धिकरः शिवः।।२६।।

(विशिख ब्राह्मणोपनिषत्)

१. यमः–देहेन्द्रियेषु वैराग्यम्। २. नियमः–अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततम्। ३. आसनमुत्तमम्–सर्ववस्तुन्युदासीनभावः। ४. प्राणसंयमः–जगत्सर्वमिदं मिथ्या प्रतीतिः। ५. प्रत्याहारः–चित्तस्यान्तर्मुखीभावः। ६. धारण–चित्तस्यनिश्चलीभावः। ७. ध्यानम्–सोहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनम्। ८. समाधिः–ध्यानस्यविस्मृतिः सम्यक्।

अन्तराल एव त्रिजगत्या दिशिद-क्षणस्यां अधस्ताद् भूमेः उपरिष्ठात् जलाद् एकविंशति नरकाः[१]।



अवने रप्यधस्तात् सात-भूविवराः एकैकसो योजना-युतान्तरेणायामविस्तारेणेप कल्पकृप्ताः।

[२]अतलं [३]वितलं [४]सुतलं [५]तलातलं [६]महातलं [७]रसातलं [८]पातालमिति।

(श्रीमद्भाग. ५/२४)

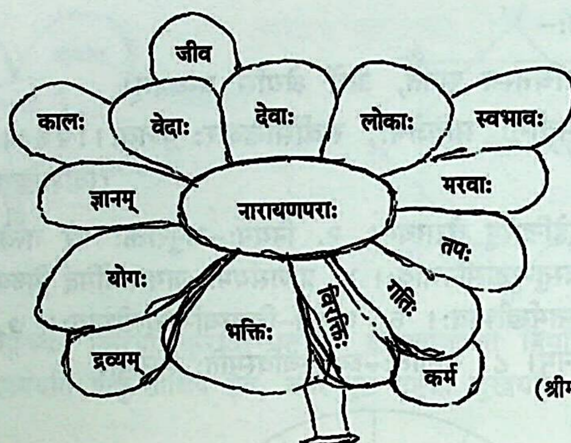
---

२. ज्ञानयोग—वशवर्ती चित्त को श्रेयार्थ में निरत रखना ही सर्वसिद्धिप्रद शिवरूप ज्ञान योग है।

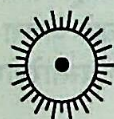
अष्टाङ्गयोग

यम—शरीर व इन्द्रियों के प्रति वैराग्य। **नियम**—सतत परं तत्व में अनुराग। **आसन**—सभी वस्तुओं के प्रति उदासीन भाव। **प्राणायाय**—सारा जगत् मिथ्या है ये प्रतीति। **प्रत्याहार**—चित्त को अन्तर्मुखी करना। **धारणा**—चित्त का निश्चल होना। **ध्यान**—सोहं मैं वह चिन्मात्र हूँ ऐसाचिन्तन। **समाधि**—सम्यकतया ध्यान की विस्मृति ही समाधि है।

पृथ्वी से नीचे भी सात भूगर्भ में स्थित (विवर-विल) लोक है जिनका विस्तार १० हजार योजन है तथा एक दूसरे से १० हजार योजन दूर हैं, १. अतल २. वितल ३. सुतल ४. तलातल ५. महातल ६. रसातल ७. पाताल।



(श्रीमद्भाग. २।५)



तस्यापिद्रष्टुरीशस्य, कूटस्यस्यारिवलात्मनः।
सृज्यं सृजामि सृष्टोहं[१], ईक्षयेवाभिचोदितः।।

(१. ब्रह्मा) (श्रीमद्भाग.-२/५)

कार्य[१]कारण[२]कर्तृत्वे[३], द्रव्य[४]ंज्ञान[५]क्रिया[६]श्रयाः।
वध्नन्ति नित्यदामुक्तं, मायिनं पुरुषं गुणाः।।

गुणास्त्रयः 

परीक्षित ने प्रश्न किया महाराज नरक नाम का कोई देश है क्या वह त्रिलोक के अन्दर है या बाहर श्रीशुकदेव जी कहते हैं राजन! ये नरक लोक त्रिलोकी के अन्दर ही है दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे जल के ऊपर इक्कीस नर्क लोक हैं। अग्निष्वात्तादि पितृगण वहाँ रहते हैं।

चित्र से स्पष्ट है सकल प्रपञ्च में सब कुछ नारायणात्मक है।

ब्रह्मा जी कहते हैं, हे नारद! वे परमात्मा साक्षी है ईश्वर हैं निर्विकार हाते हुए भी सर्वेश्वर सर्वात्मा है (उनसे उत्पन्न उनकी ही कृपादृष्टि से अभिप्रेरित मैं इस सृष्टि का सृजन करता हूँ।

यद्यपि वे त्रिगुणातीत है तदपि ये माया जन्य तीनों गुण (सतरजन में) द्रव्य ज्ञान क्रिया का आश्रय ले उन नित्य मुक्त परमात्मा को भी कार्य कारण व कर्तृत्वाभिमान द्वारा बाध लेते हैं।

मुक्तमपिमायाविषयं जीवं [1]अधिभूतम[2]ध्यात्मो[3]धिदेवभावे [4]महाभूतदेवता इन्द्रियाश्रयाः कारणभूता तदभिमानेन व ध्वनन्ति। (श्रीधरी टी.)

नायं देहो देहभाजं नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपोदिव्यं पुत्रकायेन सत्त्वं, शुद्धेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।।
(ऋषभः) (श्रीम.भाग.-५/५)





महान्तः—समन्वित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः ईशे कृतसौहृदार्थाः जगति विरक्ताः लोके यावदर्थाः।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म, यदिन्द्रय प्रीत आपृणेति। (श्रीमद्भाग. ५/५)

मुक्त होने पर भी माया सम्बद्ध जीव को अधिभूत-अध्यात्म एवं अधिदैव भाव में महाभूत तदभिमानी देवता तत् तत् अभिमान द्वारा बांधते हैं।

ऋषभ देव जी स्वपुत्रों को दिव्योपदेश देते हैं, हे पुत्रो! मनुष्य लोक में मनुष्यों को ये शरीर दुखमय विषय वासना की पूर्ति के लिए नहीं मिला है (विष्टां भुनक्ति इति विद् भुज् तेषां विट् भुजाम्) शूकर कूकरादि द्वारा सेवित भोगों के लिए नहीं है। तब क्यों है? तपस्या के लिए है तपस्या द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होता है और अनन्त सुख निलय ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

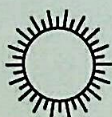
मुक्ति का प्रवेश द्वार बन्धन नरकादि प्राप्ति का महापुरुषों की सेवा द्वार स्त्रैणों का संग ये वैराग्य मूलक है ये आसक्ति (राग) मूलक है

स्त्री का संग जितना पतन में हेतु है उससे सहस्त्रगुना पतन के गर्त में तीव्रता से ले जाता है स्त्रैणों (स्त्रियों में आसक्त कामीजनों) का संग महापुरुष कौन है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं।

विरक्त—जिनका चित्त समता सम्पन्न हो गया है, जो प्रशान्त हैं, अक्रोधी हैं। (सरल अच्छे हृदय वाले) ऐसे साधु जो भगवत्प्रेम को ही पुरुष्तर्थ मानने वाले लौकिक समुपलब्ध

पराभवस्तावदबो घजातः, यावन्नजिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।
यावत्क्रिया तावदिदं मनोवै, कर्मात्मकं येन शरीर बन्धः।।
प्रीतिर्नयावन्मयि वासुदेवे, न मुच्यते देहयोगेन तावत्।।
श्रीऋषभय कुटकाचलोपवने दावानले देहदाहः।

कोङ्कवेङ्क कुटकानां राजाऽर्हन्नामः कलौ भवितव्यतेन मोहितः निजमनीषया मन्दः प्रवर्तयिष्यते (जिनधर्म)। (श्रीमद्भाग. ५/६)



परोरजः सवितुर्जातवेदो, देवस्यभर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे, हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिणमिमः।।
(भरत:) (श्रीमद्भाग.-५/७)

सभी पदार्थों से विरक्त सन्त ही महापुरुष हैं। जिनका मन व वाणी शान्त शीतल व पवित्र हो गये है वे महापुरुष हैं।

अनुरक्त—आसक्त वह प्रमादी अशास्त्रीयाचरण निरत रह पशुओं जैसे स्वेच्छा चार पूर्वक इन्द्रियों की प्रीति के लिए ही प्रयास करता है।

जब तक ये प्राणी आत्मतत्व को जानने की इच्छा नहीं करता तब तक ही अज्ञान जन्य पराभव को प्राप्त रहता है दीनता हीनता से पीडित रहता है जब तक लौकिक या वैदिक कर्मों को ये फल की आकांक्षा से करता रहता है तब तक इसका मन भी कर्म वासना से मुक्त नहीं हो पाता परिणामत: फिर फिर शारीरिक बन्ध की प्राप्ति होती है पुनः पुनः जन्म मरण का बन्धन लगा रहता है।

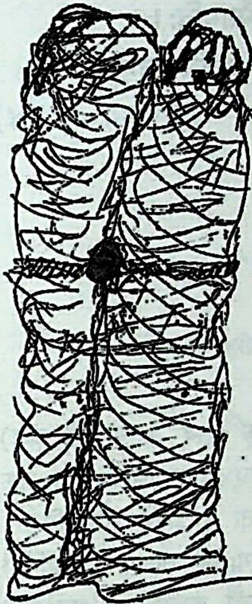
प्र.—क्या उपाय है इस देहबन्ध से मुक्त होने का?

उ.—जब तक मुझ बासुदेव परमात्मा में (वासुदेय उपलक्षण है अपने इष्ट में) अनन्य प्रीति नहीं होगी तब तक ये देह प्राप्ति की परम्परा समाप्त नहीं हो सकती।

ऋषभदेव जी अवधूत वेश में नित्य मुक्त भावानन्द निमग्न कोंक वेंक कुटक (कर्णाटक) के वन प्राप्त में दावाग्नि में देह को समर्पित कर दिया।

शुक देव जी कहते हैं आगे चलकर कोंक वेंक कुटक देश का राजा अर्हन् कलियुग में परिवर्ध मान अधर्म की गति को तीव्र करने के लिए भवितव्यता से मोहित हो ऋषभ देव के अवधूता चरण का अनुकरण कर स्वच्छन्द बुद्धि से उत्पन्न जिन धर्म का प्रवर्तन करेगा।

राजर्षि भरत भुवनभास्कर की वन्दना करते हुए—भगवान् सूर्य का दिव्य तेज प्रकृति से परे है उन सविता देव ने ही मानसिक संकल्प से इस सृष्टि का सृजन किया तथा



क्वचिच्च वात्योपम्यया प्रमदयारोहमारोपितः तत्कालरजसा रजनीभूताइवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोपि दिग्देवता अतिरजस्वल मतिर्नजानाति। (श्रीमद्भा. ५/१४)

पुंसः स्त्रिया मिथनीभावमेतं, तयोर्भियोहृदय-ग्रन्थिमाहुः। (श्रीमद्भा. ५/१४)

अन्तर्यामित्वेन इस में प्रविष्ट हो गया और विषय मधुलुब्ध प्राणियों की रक्षा करने लगा, हम उन्हीं बुद्धि प्रवर्तक तेज का आश्रय लेते हैं

जड़भरत जी राजारहू गण को भवाटवी का स्पष्टी करण देते कहते है। कभी धूल धूसरित आंधी (ववण्डर) की तरह अचानक स्त्री कामुक भाव से अपनी गोद में विठाले जैसे आंखे अन्धी हो जाती है, वैसे स्त्री रज से पुरुष्तर्थ क्षीण हो जाता है वह अंधासा रज से पुरुष की हो जाता है साधुजनों की मर्यादा। स्वर्य धूल में मिल जाती है। दिग्देवताओं की भी उपेक्षा कर देता है रजोगुणी मति से किं कर्तव्यविभूढ मात्र स्त्री को ही देखता है।

पुरुष व स्त्री का पारस्परिक जो दाम्पत्य भाव है यहीं दोनों के हृदय में वड़ी गांठ है (घिरे गांठ) जटिल उलझी है—देहाध्यास की ग्रन्थि-गृहग्रन्थि, (गांठ) क्षेत्र गांठ, पुत्र गांठ, स्वजनग्रन्थि धन की गांठ मैं मेरा की गांठ वर्सगांठ ये गांठ पर गांठ लगती जायें।

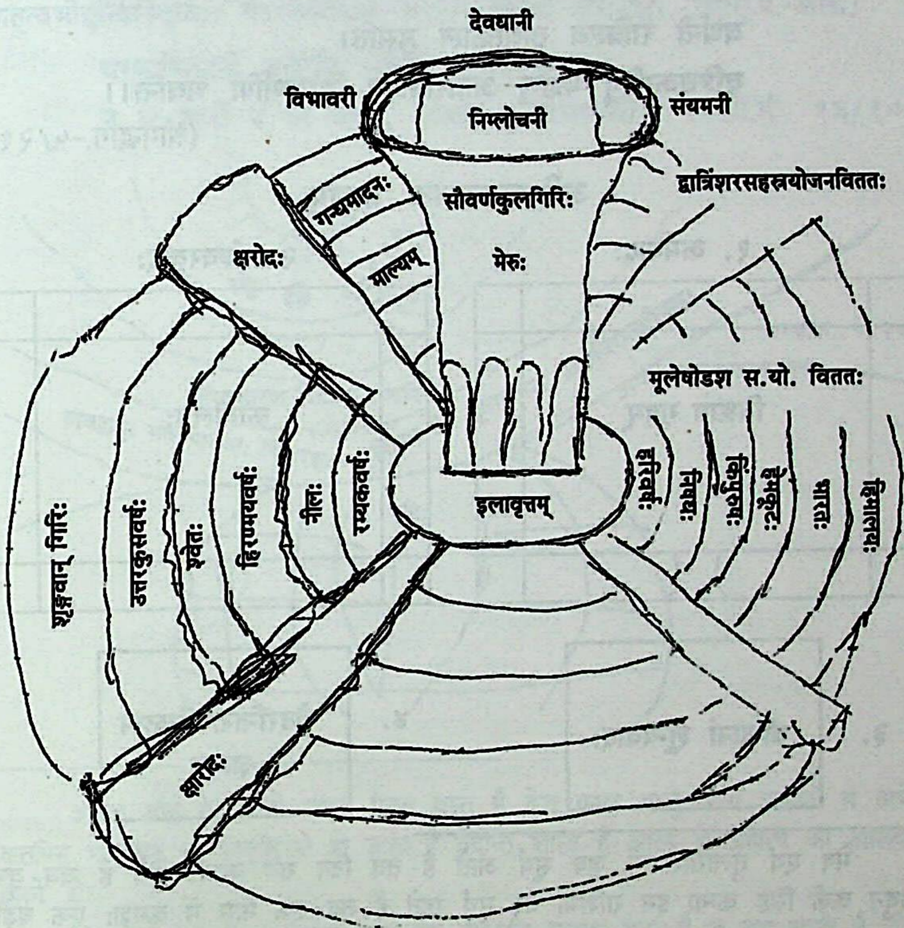
जड़ चेतनहि ग्रंथिपर गयी-जदपि मृषा छूटत कठिनई
तब ते जीव भयेउ संसारी छूटन ग्रन्थि न होइ सुखारी
छुटि न अधिक अधिक अरुझाइ। (उत्तरमाणु ११७. दोहा)

अशेषदोष निषनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः।
सुवर्णमुपादित्सति-अग्निकाम कातर इवोल्मुकपिशाचम्।।
(श्रीमद्भा. ५/१४)

कौढुम्बिका दारापत्यादयो
नाम्ना कर्मणा वृक शृगाला।
अनिच्छतोपि कदर्पस्य उरण
इव संरक्ष्य माणं धनं हरन्ति।।

कभी ये पुरुष वुद्धि के रजोगुणी होने पर सकल दोष मूलक (सब अनधों की जड़) (ये मल है) स्वर्ण की चमक से चकाचौंध वाला उसे पाने के लिए भूखप्यास विश्राम तक की (पैसे) चिन्ता त्याग कर पूरी दुनिया में दौड़ता फिरता है सोचता है इसमें सुख मिलेगा कैसे जैसे—जाड़े की रात में जंगल में शीत से ठिठुरता व्यक्ति आग की तलाश में अंगिया वेताल (अग्नि पिशाच) के चंगुल में फस जाता है वैसे ही सुख की लालसा में धन पाने के लिए दौड़ता व्यक्ति मृत्यु के अशान्ति के मुख में चला।

ये जो पारिवारिक पत्नी पुत्रादि है वे सब नाम के सम्बन्धी आत्मीय स्वजन है यथार्थतः कर्मों से सब भेड़िया और सियार ही हैं। जैसे भेड़िया गडरिया की सुरक्षित भेड़ों को शिकार कर के खा जाते हैं वैसे ही, ये पुत्र पत्नी आदि अर्थलोलुप धनवान की इच्छा न होने पर भी देखते देखते छीन ले जाते हैं। इतना महत्वपूर्ण ये नहीं है कि तुम्हारे पासधन कितना आ रहा है, कहां से आ रहा है, कैसे जा रहा है कितना जा रहा है क्यों जा रहा है कब जा रहा है। सत्कर्म में जाता हो तो निश्चिन्त हो आंख बन्द करके भगवान का धन्यवाद देना (जैसे किसान बीज बोता है खेत में और खर्च करके खुश होता है, नाली से पानी खेत में ही जा रहा है छूटकर अलग नहीं ये देखकर जैसे पानी लगाने वाला निश्चिन्त हो जाता है वैसे ही—**ये सूत्र जीवन को बदल सकता है यदि कोई देने के रहस्य को समझ ले तो खिलाओं क्रि देओ खुश हो जाओं किसान की तरह** अच्छी भूमि में अच्छाबीज-अच्छे समय पर वोया जा रहा है तो फसल तो निश्चित ही अच्छी आयेगी पर यहाँ भी सावधान आसक्त मत होना फल भगवान पर ही छोड़ना—यदि तुम्हारा धन व्यसन में, पाप में, शत्रुता में मुकद्द में में वीमारी में, रिश्वत में, चुनावी चंदा में जा रहा है तो वीज खराब खेत में बुव रहा है इसकी फसल या तो आयेगी नहीं आ गयी तो बुरी होनी विस्तार से फिर कभी कहीं और ये संकेत है जगने के लिए।



चित्र से इलावृत्त वर्ष का विवरण स्पष्ट ही है। यहाँ सुमेरु पर्वत मूल में १६ हजार योजन विस्तार वाला शिखर पर ३२ हजार योजन विस्तृत इसकी ऊचाई १ लाख योजन विस्तार वालीहं (१६ हजार योजन भूमि के अन्दर ८४ हजार ऊपर) ये पर्वत रज सम्पूर्ण स्वर्ण का बना है।

येषतुलयोः रवि तदा हो राचाणि समानि भवन्ति।
यदा वृषभादिषयञ्चसु राशिषु चरति तदाऽहानि मासि मासि घटिकैका।।
वर्थन्ते रात्रिश्च तावत्कालं ह्रसति।
वृश्चिकादिषु पञ्चसु अहोरात्राणि विपर्य्याणि भवन्ति।।
(श्रीमद्भाग.-५/२१)

अभिमाननाशक मननम्

१. कर्मवादः — विश्राम गृहम्

२. ईश्वरवादः — कार्यालयः

३. बौद्धानां शून्यवादः

४. वेदरन्तिनामधिष्ठान ज्ञानम्

मेष एवं तुलाराशि में जब सूर्य आते हैं तव दिन रात बराबर होते है जब वृष मिथुन कर्क सिंह कन्या इन राशियों बर सूर्य रहते हैं तब एक मास में क्रमशः एक घड़ी दिन बढ़ता जाता है। रात घटती जाती है वृश्चिक धनु मकर कुम्भ मीन इन राशियों में सूर्य का संचार होने से एक एक मास में एक एक घटी रात बढ़ती जाती दिन घटता जाता है।

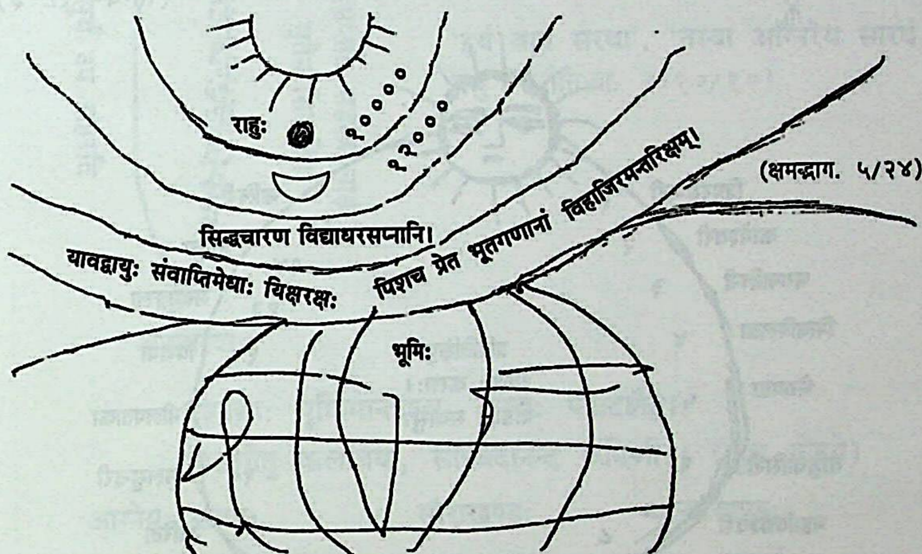
अभिमान नाशक मनन

१. कर्मवाद—विश्राम भूमि है—जगत्। २. ईश्वरवाद—कर्मभूमि है—जगत्। ३. बौद्धों के मत में जगत्कारण शून्यवाद है। ४. वेदान्तियों की दृष्टि में ज्ञान ही इस जगत् का अधिष्ठान् है।

वेदान्त प्रतिपाद्यम्

आत्मनो ब्रह्मत्वम्/सिद्धवस्तु। देशकाल वस्तुषु प्रमाणेषु अभेदः, कतृत्वभोक्तृत्वनिवृत्तिः। वेदान्तशास्त्रम्–आत्मनो ब्रह्मता शंसनात्। (ब्रह्मसू.प्र.-अखं.)

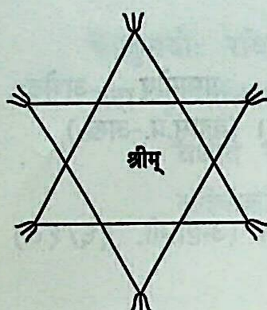
यस्याभिमानो मोक्षेपि, देहेपि ममता तथा।
न स ज्ञानी न वा योगी, केवलं दुःखभागसौ।। (अष्टा.गी. १६/१०)



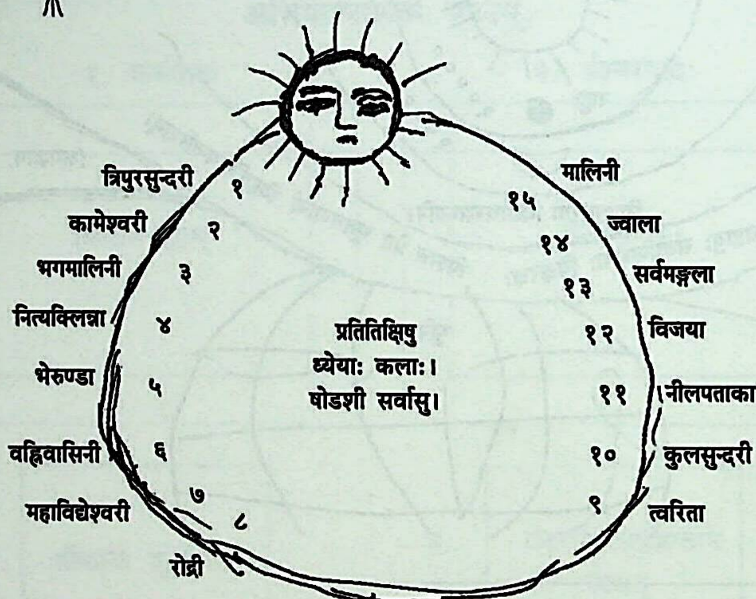
आत्मा ब्रह्म है ये तो स्वतः सिद्ध वस्तु है देश काल वस्तु जन्य प्रमाणों में अभेद कतपिन भोक्तापन की निवृत्ति से हो जाता है वेदान्त शास्त्र है आत्म के ब्रह्मत्व का आख्यान करने से।

जो मोक्ष के प्रति साभिमान तथा देह के प्रति ममत्व युक्त है न वह ज्ञानी है योगी है वह तो केवल दुःख भोगी है।

सूर्य से १० हजार योजन नीचे राहु है सूर्य का जाज्वल्यमान मण्डल १० हजार योजन वाला चन्द्र का मण्डल १२ हजार योजन-राहु तेरह हजार विस्तार राहु से १० हजार योजन नीचे सिद्ध चारण विद्याधरादि के लोक है। इसके नीचे जहाँ तक वायु की गति व बादल दिखते हैं वह अन्तरिक्ष है वहाँ यक्ष-राक्षस-पिशाच प्रेत-भूत-गणों का विहार स्थल है। इससे १०० योजन नीचे पृथ्वी है।

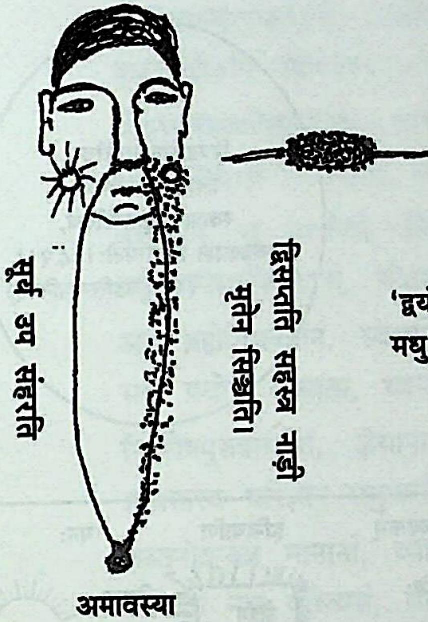


अविद्यनामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी,
जडानांचैतन्यस्तवक मकरन्दस्त्रुतिसिरा।
दरिद्राणां चिन्तामणि गुणानिका जन्मजलधौ,
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपवराहस्य भवती।।
(सौन्दर्य ल.-३)



हे माँ! आपके चरण कमल पवित्र रज अविद्याग्रस्त अज्ञानी प्राणियों के हृदय में विराजित अज्ञानन्धकार के नाशार्थ सूयोदयद्वीप है (तुम्हारे पादार विन्द मकरन्त मिहिर का घर होने से साधक के उर में अंधेरा कहाँ रहेगा) जड प्राणियों के लिए चैतन्य कल्पवृक्ष के पुष्प गुच्छ रस की निर्झरिणी है आपकी चरण कमल रेणु। दरिद्रों के लिए चिन्तामणि कामप्रद रत्न विशेष का समूह है आपकी चरणारविंद रज। संसार सागर में डूबते हुए अत्यन्त त्रस्त प्राणियों के लिए उद्धार के लिए आपकी चरणसरोज रज मुरहन्ता वराह भगवान की सुदृढ दाढ के समान है। (लक्ष्मी प्राप्ति का अमोध प्रयोग है)

तिथि क्रम से तिथियों में पञ्चदश कलायें ध्यान करनी चाहिए सोलहवी कलां सब में व्याप्त है।



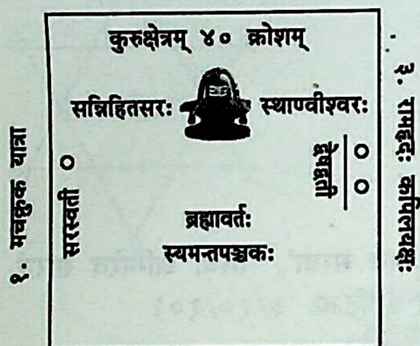
'द्व्यं वाव सरघा', 'तस्या अग्निरेव सारघं मधु'। (तैत्ति.ब्रा. ३/१०/१०)

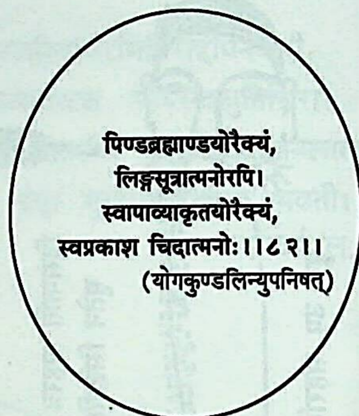
दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च, कलाः पञ्चदशैतु।
षोडशीतु कलाज्ञेया, सच्चिदानन्द रूपिणी।। (शुभ गोदये)

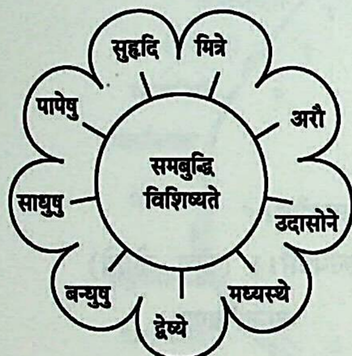
आग्नेयः खण्डः	सौराखण्डः	चान्द्रःखण्डः
१. दर्शा	६. आप्यायमाना	११. आपूर्या
२. दृष्टा	७. आप्यायन्ती	१२. आपूर्यमाणा
३. दर्शता	८. आप्याया	१३. पश्यन्ती
४. विश्वरूपा	९. सूनृता	१४. पूर्णा
५. सुदर्शना	१०. इरा	१५. पौर्णमासी

चन्द्रकला बहात्तर हजार नाडियों को अमृत से सीचंती है सूर्य सोख लेता हैं यह सरखा है, अग्नि ही सापधमछु है।

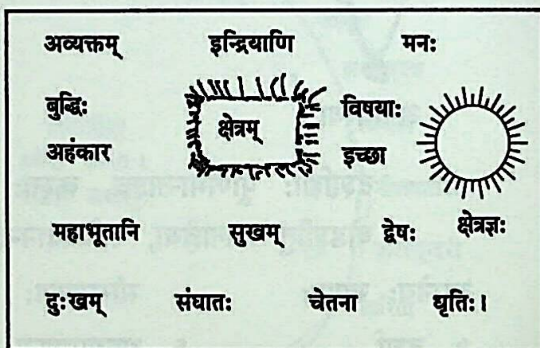
दर्श-से लेकर पूर्णिमा तक १५ कलायें है सोलहवी कला तो सच्चिदानन्द रूपा है इनके तीन विभाग हैं—अग्नि, सूर्य, चन्द्र (मूल में देखे)।







(श्रीमद्भाग.गी. ६/९)



(गी. ६)

चालीस कोश का दिव्य तीर्थमय क्षेत्रफल कुरुक्षेत्र का है। ये भी चित्र से ही स्पष्ट है।

पिण्ड और ब्राह्मण्ड में जैसे ऐक्य है वैसे लिङ्ग व सूत्रात्मा भी एक ही हैं स्वाप एवं अव्याकृत में भी ऐक्य है स्वप्रकाश एवं चिदात्मा में भी एक्य है।

समबुद्धि का वैशिष्ट्य-ये सबके प्रति समभाव रखती है—सुहृद = अकारण स्नेही। मित्र = पारस्परिक स्नेहालम्बी। शत्रु, उदासीन = न मित्र न शत्रु न वुरान भला सोचे। मध्यस्थ = प्रयोज़न वशात हिसाधक। द्वैव्य = अकारण द्रोही, वन्धु-साधु-पापी इन सब में जो सम रहे।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विषय स्पष्ट ही है क्षेत्रज्ञ है आत्मा इसके अतिरिक्त सब कुछ क्षेत्र ही है।

बुद्धतत्त्वस्यलोकोऽयं, जडोन्मत्तपिशाचवत्।
बुद्धतत्त्वोऽपि लोकस्य।। (वृ.उ.वा. १/४/१७३)

योऽसावविद्योत्सङ्गस्थः, प्राक्प्रविष्ट इतीरितः।
स्वभासान्तःस[1] संमोहात्, जामरूपात्मकोऽभवत्।। (१. साक्षी टी.)

परात्मनि. तु सम्बोधो, नित्यःस्याच्छशिशीतवत्।
तदन्यात्मस्वनित्योऽयं, मोहसंवीत बुद्धिषु।।

अहं ब्रह्मेतियज्ज्ञानं, स्वार्थमेवतदिष्यते।
सर्व प्रयोग बोधात्म, ध्वन्तोच्छेदित्वहेतुतः।।

निःशेषपुरुषार्थानां, ज्ञेयानामपिकृत्स्नतः।
प्रत्यक्तत्त्य परिज्ञान-समुत्पत्तौ समाप्तितः।। (वृ.-३, वा. १/१४)

वस्तुनोऽन्यत्र मानानां, व्यापृतिर्नैव युज्यते।
अविद्या नच वस्त्विष्टं, मानयोगासहिष्णुतः।। (वार्तिकसा.-१)

एवं चाज्ञातमैकात्म्यं, सुस्थातोऽस्यैव मेयता।
प्रत्यक्षं द्वैतबोध्यत्र, दौर्वल्यान्न विरुध्यते।। (वार्तिकसा.-१)

तत्व वेत्ता की दृष्टि में ये जगत् जड् उन्मत पिशाच के समान है। लोक की दृष्टि में तत्वज्ञ भी जड़ उन्मत्त पिशाच के समान ही है।

ये जो अविद्या के उत्संत्र में स्थित चित् पूर्व प्रविष्ट हुए ऐसा कहा गया है। वह स्वप्रकाश से अन्तः करण में स्थित साक्षी संमोह वश नाम रूपात्मक हो गया है।

परात्मा में ज्ञान नित्यत्वेन वैसे ही स्थित है जैसे चन्द्रमा में शैत्य स्थित है तदतिरिक्त मोह संवीत बुद्धि वालों में ये है तो ज्ञान पर अनित्य है।

मैं ब्रह्म हूँ ये ज्ञान तो स्वार्थ पर्यवसायी है, सर्व प्रयुक्त वोध वहा आत्मा ज्ञान (ध्वान्त = अज्ञानान्धकार) के उच्छेदन का हेतु होने से।

सभी पुरुषार्थों में तथा सभी ज्ञेयों में (ज्ञान के विषयों में) प्रत्यकतत्व का परिज्ञान होता है उत्पत्ति से लेकर समाप्ति तक।

वस्तु की मान के अतिरिक्त व्यावृत्ति ही नहीं है तथा अविद्या वस्तुतः प्रमाण भाव के कारण असत् ही है।

इस प्रकार जो ऐकात्म्य अज्ञात है उसी में मेयता सुस्थित है द्वैतबोध जो यहाँ प्रत्यक्ष

आसन्नत्वादाश्रयत्वाद्, वैशद्याच्चात्मवस्तुनः।
तद्बोधिशास्त्रं प्रत्यक्षात्, प्रवलं द्वैतबोधिनः।।
धीस्थचैतन्यविम्बोऽयं, सदा शोचतु मुह्यतु।
बोधहेयौ हर्षशोकौ, निःसंगत्वादि बोधनात्।।
चित्स्वरूपचिदाभासौ, वाक्याहं बुद्धिगौचरौ।
न जायते न मृयते, क्वचित्किंचित्कदाचन।
परमार्थेन विपेन्द्र, मिथ्या सर्वं तु दृश्यते।।
युक्त्या वैचरतो ज्ञस्य, संसारो गोष्पदायते।।
सर्वत्राहमकर्तेति, दृढभावनयाऽनया।
परमामृत नाम्नीसा, समतैवावशिष्यते।।
समता सर्वभावेषु, याऽसौ सत्य परास्थितिः।। (महोपनि. ४)
गुदमेढ्रान्तरालस्थं, मूलाधारं त्रिकोणकम्।
यत्र कुण्डलिनीनामः पराशक्तिः प्रतिष्ठिता।।

है दुरवस्था के कारण इसमें विरोधयी नहीं है आसन्न होने से-आश्रय होने से-विशद होने से आत्म वस्तु का बोध प्रत्यक्ष शास्त्र द्वारा होता है क्योंकि द्वैत वोधि प्रबल है सदा शोक करो मुग्ध होओ पर ये जो वुद्धिस्थ चैतन्य बिम्ब है ये निःसंग है इस ज्ञान से हर्ष व शोक का त्याग कर देना चाहिए।

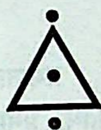
'चित् स्वरूप और चिदाभास ये दोनों ही वाक्य अहंवुद्धि के कारण प्रतीत होते है।

हे निदाघ! परमार्थतः तो कही भी कुछ भी, कभी भी न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है, जो दिख रहा है बनता विगड़ता सब मिथ्या है। स्वप्न वत् है।

युक्ति पूर्वक जीवन यात्रा करते ज्ञानी के लिए ये ऋर्लध्य संसार सागर गौ के खुर के द्वारा बने छुद्र गड्ढे में भरे अल्प जल के समान सुलंध्य हो जाता है।

हे निदाघ! मैं अकर्ता हूँ नित्य सर्वत्र इस दृढ़ भावना के फल स्वरूप केवल परमामृत नाम की समता ही अवशिष्ट रहती है। सभी भावों में सभी भूतों में सत्य पर स्थिति ही समता है।

गुदा व लिङ्ग के मध्य त्रिकोणात्मक मूलाधार है जहाँ कुण्डलिनी नाम की पराशक्ति



यस्मादुत्पद्यते वायुः, यस्माद् बह्निः प्रवर्धते।
यस्मादुत्पद्यते विन्दुः, यस्माद् नादः प्रवर्धते।
यस्मादुत्पद्यते हंसः, यस्माद् उत्पद्यते मनः।। (वाराहोपनिषद्)



मूलाधारादि षट्चक्रम्,
शक्तिस्थान मुदीरितम्।

कण्ठादुपरिमूर्धान्तं,
शाम्भवं स्थानमुच्यते।

नाडीनामाश्रया पिण्डः,
वाड्यः प्राणस्थ चाश्रयः।।

जीवस्य विलयः प्राणः,

निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा, प्राणायामं समभ्यतेत्।
वाह्यस्थविषयं सर्वं, रेचकः समुदाहृतः।
पूरकं शास्त्रविज्ञानं, कुम्भकं स्वगतं स्मृतम्।। (वाराहोपनि.)

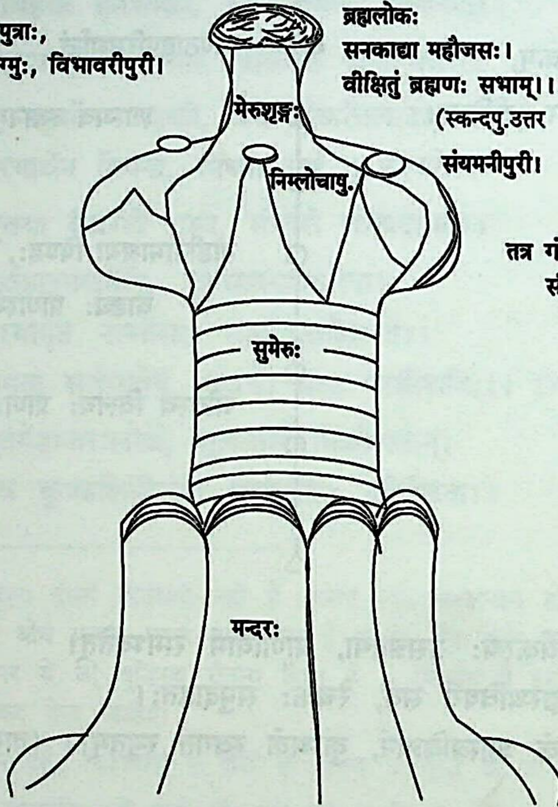
प्रतिष्ठित है, जिससे वायु उत्पन्न होता वह्नि प्रतीप्त होता है जिससे विन्दु उत्पन्न होता नाद बढ़ता है जिससे हंस उत्पन्न होता मन भी उत्पन्न होता है।

मूलाधारादि षट चक्र शक्ति के स्थान कहे गये हैं कण्ठ से ऊपर मूर्धा तक शाम्भव स्थान कहा गया है। नाडियों का आश्रय पिण्ड है। नाडियां प्राण का आश्रय हैं। जीव का निलय प्राण है।

प्रसन्नात्मा निर्विकल्पक भाव से प्राणायाम का अभ्यास करे बाह्य सभी विषय रेचक कहे गये हैं। शास्त्र विज्ञान पूरक है। कुम्भक स्वगत कहा गया है।

सप्तविधं चित् (कठरुद्रोपनिषत्)

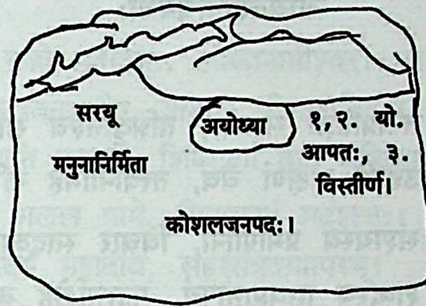
शुद्धं चित्–निरूपाधिः। ईशः–मायोपाधिः। जीव–अविद्यावशः। प्रमाता–अन्तःकरणयोगि। यमाणम्–वृत्तिसम्बन्धात्। प्रमेयम्–अज्ञातम्। फलचैतन्यम्–ज्ञातम्। प्रमा–वृत्यवच्छिन्नम्।

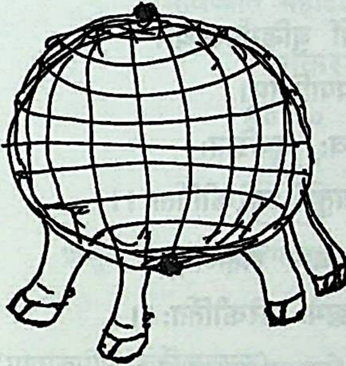


चित् के सात भेद

शुद्धचित्त = उपाधिरहित, ईश = माया की उपाधि से उपहित, जीव = अविद्या वशवर्ती, प्रमाता = अन्तःकरण युक्त, प्रमाण = वृत्ति सम्बन्ध से, प्रमेय = अज्ञात, फलचैतन्य = ज्ञात, प्रमा = वृत्ति से अवच्छिन्न (युक्त)।

एक बार ब्रह्मा के सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार महातेजस्वी पुत्र सुमेरु पर्वत के शिखर पर गये ब्रह्म की सभा देखने के लिए वहाँ पुण्यमयी सीता नामकी शेष ब्रह्म लोक की स्थिति में पर्वत गंगा को देखा स्थिति स्पष्ट है।





पादाधर्मस्य चत्वारो, यैरिदं धार्यते जगत्।
ब्रह्मचर्येण गृहस्थेन च। गुरुभावेन (तपसा)
गुह्यगामिना (न्यासेन)। (हरिवंशपु. भवि.प. १७)

सत्यमस्तेयमक्रोधः, ह्रीं शौचं धी धृतिर्दमः।
संयतेन्द्रियता विद्या, धर्मः सर्व प्रदाहृतः।।
(याज्ञवल्क्यस्यु. यतिध. ६१)

धीः–हितादहितविवेकः। दमः–मदत्यागः। विद्या–आत्म ज्ञानम्। (मिताक्षरा टी.)

मनुद्वारा निर्मिता कौशलजनपद ३ योजन फैली १२ योजन मयी अयोध्या मानसरोवर से प्रवाहित सरयु अयोध्या के किनारे से चली है।

धर्म के चार पाद हैं जिनसे जगत को ये धर्म धारण करते हैं। १. ब्रह्मचर्य २. गृहस्थ ३. गुरुभाव (तपस्या) गुह्यगामी द्वारा (त्यागी द्वारा)

धर्म का लक्षण करते हुए याज्ञवल्क्य जी कहते हैं—१. सत्य-यथार्थ भाषण, २. अस्तेय चोरीन करना, ३. अक्रोध, ४. ह्री लज्जा, ५. शौच-पवित्रता, ६. धी-हित अहित का विवेक, ७. धृति = धैर्य, ८. दम = मदत्याम, (दम का उलटा करने पर मद बनता है), ९. इन्द्रियों का संयम, १०. विद्या-आत्म ज्ञान ये दशलक्षणात्मक धर्म है।

न्यायदर्शनविषयाः

अध्यायः–

१. तन्त्रप्रतिज्ञा संसारः, तन्निवृत्तिश्च संविदा।
उद्देशो लक्षणं चैव, तत्त्वानामिह कीर्तनम्।।

२. संशयस्य प्रमाणानां, विचार स्तद्व्यवस्थितिः।
शब्दस्य तत्त्वप्रामाण्यं, पदार्थाश्चेह कीर्तिता।।

३. आत्मा शरीरं करणं, अर्थो बुद्धिर्मनस्तथा।
यद्यथावस्तुतत्त्वेन, तत्तथेहोपपादितम्।।

४. प्रवृत्तिदोषसम्बन्धः, प्रेत्यभावः प्रपञ्चितः।
फलं दुःखं विमुक्तिश्च, चतुर्थे परिकीर्तिताः।।

५. जातीनां सप्रपञ्चानां, निग्रहस्थान लक्षणम्।
शास्त्रस्य चोप संहारः, पञ्चमे परिकीर्तितः।।

(न्यायवार्तिक भूमिकायाम्)

न्याय दर्शन में ५ अध्याय है तथा ६०-७० सूत्र हैं यहाँ प्रत्येक अध्याय का विवरण प्रस्तुत है—

१. प्रथम अध्याय में बताया है तन्त्र प्रतिज्ञा रूप संसार की निवृत्ति संविन् द्वारा होती है उद्देश तथा लक्षण के साथ तत्वों का नाम संकीर्तन है। (नाम संकीर्तन ही उद्देश्य है)।

२. संशय प्रमाणों का विचार और उनकी व्यवस्थिति शब्द का तत्व प्रामाण्य एवं पदार्थ यहाँ कहे गये हैं।

३. आत्मा-शरीर-करण (इन्द्रियां) इन्द्रियों के विषय-बुद्धि-मन जो जिस प्रकार का है उसका उसी प्रकार से उपपादन किया गया है।

४. प्रवृत्ति-दोष-सम्बन्ध तथा प्रेत्य भाव विस्तार से कहा है—फल-दुख मुक्ति का भी निरुपण चौथे में किया है

५. सप्रपंच जातियों का निग्रह-स्थान लक्षण तथा शास्त्र का उपसंहार पंचम में किया है।

श्रीशंकराचार्यः

कलौ रूद्रो महादेवः, लोकानामीश्वरः परः।
करिष्यत्ववताराणि, शंकरो नीललोहितः।
उपदेश्यति तज्ज्ञानं, शिष्याणां ब्रह्म संहितम्।। (कूर्मपु. पूर्वा. ३०)
केरले शलल ग्रामे, विप्रपल्यां मदंशजः।
कल्यादिमे महादेवि, सहस्त्रत्रितयात्परम्।
भविष्यति महादेवि, शंकराख्यो द्विजोत्तमः।। (शिव रहस्ये ९/१६)

शंकरमन्दारसौरभे–नीलकण्ठः

```
 ४०००
  १११
 ३८८९
```

प्रासूत तिष्य शारदामभिवात वत्यां, एकादशाधिक शतोन चतुः सहस्याम्।

सम्प्रदायविदः

निधिनागेभवयब्दे (३८८९) विभवे मासिमाधवे।
शुक्लेतिथौ दशम्यान्तु, शंकरार्योदयः स्मृतः।।

१. 'शंकर जयः' २४०००१ शंकराचार्यशिष्य चिद्विलास कृतः।

श्रीशङ्कराचार्य जी महाराज कूर्मपुराण

कलियुग में लोकेश्वर महादेव नीललोहित परमेश्वर शंकर अवतार गृहण करके शिष्यों को ब्रह्मात्म विषयक ज्ञान का उपदेश करेंगे। केरल के शलन ग्राम में (कालटी) विप्रपत्नी द्वारा मेरे अंश से हे देवि! कलियुग के आदि में ३ हजार वर्ष बीतने पर शंकर नामक द्विञोत्तम उत्पन्न होगा।

भगवान् शंकराचार्य का अवतरण १११ कम ४००० वर्ष पूर्व अर्थात् ३८८९ वर्ष पूर्व हुआ साम्प्रदायिक भी ऐसा ही कहते हैं

निधि = ९ नवनिधि प्रसिह
मा = ८ अष्टकुल नाग प्रसिद्ध हैं।
इभ = ८ अष्ट् दिग्गज प्रति
वह्नि = ३ अग्नियां तीन प्रसिद्ध है

पाणिनीयाष्टाध्यायी

चतुः सहस्त्री सूत्राणां, पंचसूत्रविवर्जिता।
अष्टाध्यायी पाणिनीया, सूत्रैर्माहेश्वरैः सह।।
सप्ताशीत्यधिका तेषु, त्रिशती सौवरी मता।
पञ्चैकादश वाज्ञेयाः, स्वर योगा उणदिषु।।
संख्याफिरसूत्र सुत्राणां, विज्ञेयाऽशीतिरष्ट च।
त्रिंशत्सूत्री प्रातिशाख्यात्, संगृहीताऽत्र सौवरी।।
सम्पद्यतेपञ्चशती, मेलनात्षोऽशाधिका। (स्वरसिद्धान्त चन्द्रिका)

उच्चैरुदात्तः (१-२-२९)

आयामो दारूण्यं खस्याणुता चोर्ध्वभागष्पित्तौ लिङ्गम्। (स्व.सि.च.)

नीचैरनुदात्तः (१-२-३०)

[१]अन्ववसर्गो [२]मार्दवं [३]स्वस्य उरुता चाधोभाग निष्पत्तौलिङ्गम्।

१. मात्राणां शिथिलता। २. स्वरस्य। ३. कण्ठाकाशस्य महत्ता।

माधव (वैशाख) मास में शुक्लपक्ष की दशमी को शंकरार्य का अवतरण है।

पाणिनीय अष्टाध्यायी में माहेश्वर सूत्रों सहित (अइउण् आदि) ३९९५ सूत्र हैं। इनमें ३८ न सूत्र सौवरी सूत्र है

८८ फिट् सूत्र है।
३० प्रातिशाप्य से है
११ उणादि प्रयुक्त स्वरार्ध
५१६ इस प्रकार ५१६ सूत्र मिश्रित हैं।

उच्चैरुदात्त

आयाम की दारुणता स्वर की अणुता में उर्ध भोगीत्पन्न वर्ण गात्रशक्तिं का आरोह तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व भाग से निष्पन्न अचवर्ण संज्ञक होते हैं।

नीचैरनुदात्त

गात्रों के शिथिलतासें स्वर में मृदुता कण्ठ का विवृत होने पर तालुयादि स्थानों के अध भाग से समुत्पन्न अच् वर्ण अनुदात्त संज्ञक होते हैं।

चिच्छायावानहंकारः, कर्ता चिद्भाति केवला।
चिच्छायागतभोक्तृत्वं, साक्षिण्यारोप्यते भ्रमात्।।
नित्य तृप्तेश्वरत्वं तत्, साक्षितत्वं तदीक्षते।
वदा तदा वीत शोको, महिमानमवाप्नुयात्।। (अनुभूति प्र. १२)
ब्रह्मवित्परमेति सूत्रं–सर्वार्थ साधकम्। (अनुभूति प्र. २)

ज्ञेयं–ब्रह्म	सत्यं ज्ञानमनन्तम्।
ज्ञानं–तदीयाधीः	यो वेद निहितं गुहायाम्।
फलम्–ब्रह्मता।	सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह।

पञ्चकोशा गुहा, तत्र यदज्ञानं तत्परमं व्योम। तस्मिन्गूढं ब्रह्म।
बाह्यं जगत्पंचको शाँचापोह्य अन्तर्मुखाधीः सर्वोपाधिरहितं ब्रह्म साक्षात्करोत्येव। (अनुभू. प्र. २)

अहं चित् छाया वाला है, और कर्ता केवल चित् से भासित है चित् छाया गत (अहंकार) जो भोक्तृत्व है वह भ्रमवश साक्षि में आरोपित कर लिया जाता है (है नहीं)।

वह नित्य तृप्त ईश्वरत्व ही साक्षी भाव से देखता है जैसे जैसे शोक नष्ट होता जाता है वैसे वैसे इसकी महिमा का भान प्राप्त होता है भोक्ता व साक्षी को इस उदाहरण से समझे जैसे एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं भूखा पक्षी फल खा रहा है जो तृप्त है वो देख रहा है।

ब्रह्मवेत्ता परं ब्रह्म को पा लेता है सर्वार्थ साधक–ज्ञेय=ब्रह्म ज्ञान ब्रह्ममयी बुद्धि, फल ब्रह्म होना क्योंकि ब्रह्मवित् ब्रह्म होता है (जानत तुम्हहि होई जाई) ज्ञातव्य ब्रह्म सत्य रूप ज्ञान व अनन्त है गुहास्थ इस तत्व ब्रह्मसाक्षात्कार को जो जानता है वह सभी कामनाओं को पूर्ण रूप में पा लेता है।

ब्रह्मसाक्षात्कार

पाँच कोश (अन्न-मन-प्राण-विज्ञान-आनन्दमयकोश गुहा) में जो अज्ञान् का (जगत् का) कारण है वही परमाकाश है वही निगूढ = आवृत ढका हुआ परमात्मा स्थित रहता है।

बाह्य जगत् (माला चन्दन (सम्मानपूजा) स्त्री विषयक भोगादि) तथा पाँचों कोशों को अपोह्य = त्यागकर जब बुद्धि अन्तर्मुखी होती है तब सभी उपाधियों से रहित ब्रह्म का साक्षात्कार होता ही है।



बहिर्दृष्टिर्जगद्भानं, तत्सत्यत्व धीः।
विवेकात्सत्यताऽपैति, जगद्भानं योगतः।।

आकूतिं देवीं सुभगां पुरोदधे,
चित्तस्यमाता सुहवा नो अस्त।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु,
विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्।। (अथर्ववे. सं. १९/५/२)



लक्ष्मीभर्तुर्भुजाग्रेकृतवसतिसितं यस्यरूपं विशलम्,
नीलाद्रेस्तुङ्ग स्थितमिव रजनीनाथ बिम्बं विभति।
पायान्नः पाञ्चजन्यः सदितिसुतकुलत्रासनैः पूरयन्खैः,
निध्वानैर्नीरदौघध्वनिपरिभवदैरम्बरं कम्बुराजः।।
(विष्णुपादादिकेशान्तस्तो.)

बहिरंग दृष्टि के कारण जगत् का भान होता है तथा उसमें सत्यता की प्रतीति भी होती है। इस वहिर्दृष्टि के नष्ट होने पर जगत् भी नहीं इसकी सभ्यता का तो प्रश्न ही नहीं अन्तर्दृष्टि के उदय होते ही ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है—जगत्सत्य है इस भ्रान्ति का निराकरण तो विवेक से विचार से हो जाता है, तथा जगत् भान की निवृत्ति योग (समाधि) से हो जाती है।

सौभगाकारा आकृति देवी का हम सामुख्य प्राप्त करते हैं, वह चित्तोत्यादिनी शक्ति हमारे लिए दिव्य दिव्य भोग प्रदान करने वाली हो, जिस आशा को लेकर हम उनकी शरण में जाते हैं। वह मुझे प्राप्त हो। मन में प्रविष्ट इस चित्स्वरूपा आकृति देवी को हम जान लें।

भगवती लक्ष्मी के स्वामी केभि नारायण के हस्ताग्र में स्थित श्वेत वर्ण वाले विशाल शंख की छवि कैसी है मानो जैसे नीलगिरि के उच्च शिखर पर चन्द्र विम्ब उदित हो रहा हो (भगवान् का हाथ सावला होने से नीलगिरि शंख श्वेत होने से चन्दु) यह शंखरज अपनी गम्भीर ध्वनि से मेधों की ध्वनि (गर्जना) को अभिभूत कर देने वाला तथा दिति पुत्रों (दैत्यों) के कुलों को त्रास पहुँचाने वाला है यह पाञ्चजन्य हमारी रक्षा करें।

देशद्देशान्तरं दूरं, प्राप्तायाः संविदो वपुः।
निमिषेणैव सन्मध्ये, तद्रूपं परमात्मनः।।
(योगवा. ३०,७/१९)

श्रीवाला पञ्चरत्नस्तोत्रम्

आई आनन्दवल्ली अमृतकरतले आदिशक्तिः पराई,
सार्पू मायात्मरूपी स्फटिकमणिमई मामतङ्गी षडङ्गी।
ज्ञानी ज्ञानात्मरूपी दलितपरिमले नाद ओंकार मूर्तिः,
भोगी योगासनस्था भुवन व शकरी सुन्दरी ऐं नमस्ते।।१।।

मालामन्त्रो कटाक्षी ममहृदयसुखी मृत्युभावप्रचण्डी।
व्यालायज्ञोपवीता विकटकटितटावीर शक्तिः प्रसन्ना।
वाला बालेन्दु मौलिर्मदगजगमना साक्षिका स्वस्ति मन्त्री।
काली कङ्कालरूपी कटि कटि कटि ह्रीं कारिणी क्लीं नमस्ते।।२।।

हे राधवेन्द्र! एक पल भर में एक देश से दूसरे देश में पहुंचने वाले ज्ञान (यहा से चला वहाँ पहुच गया मानों हरिद्वार से काशी पहुंच गया तब क्या बीच में ज्ञान नहीं हैं—वोले है सर्वत्र सर्वव्यापक है की तरह) ही परमात्मा को सर्वव्यापक रूप समझना चाहिए।

माया शक्ति युक्त ई वीजा नन्द लता जिसके हाथ में अमृत है वैसी यादि शक्ति परा ईकार रूपा, मायात्मरूपी स्फटिमणि सदृश मातङ्गी व षडंगयुक्त देवी, जो ज्ञानियों ज्ञानात्मरूपा, दिव्यादिव्य निर्गलित मकरन्द वर्षक नाद व ॐ मूर्ति, योगासनस्थ हो भोगरता विश्व की प्रशासिका ऐं मयी सुन्दरी को नमन है।।१।।

मालाधारिणी मन्त्र जपशत भक्तों पर कृपा कटाक्ष करने वाली मेरे हृदय को सुख देने वाली मृत्यु भाव में प्रचण्ड रूपा, सर्व का यज्ञोपवीत धारण करने वाली विकट कटि भाग वाली, वीरो की प्रसन्नता मयी शक्ति बालचन्द्र को भाल पर धारण करने वाली, मदमत्त मतंगवत् गमन शालि भी वाला जो सकल प्रपञ्च साक्षिभूताड़ स्वस्ति मन्त्र दात्री है वह कराली कंकाल रूपिणी काली कटि कटि कटि ह्रींकार जैसे असुरों को भय प्रदान करने वाले भक्तों को अभय देने वाले शब्दों का उच्चारण करने वाली क्लीं को नमन है।।२।।

मूलाधारा महात्मा हुतवह सलिला मूलमन्त्रा त्रिनेत्रा।
द्वारा केयूर वल्ली अखिल त्रिपदका अम्बिकायै प्रियायै।
वेदावेदाङ्गनादा विनतघनमुखी वीरतन्त्री प्रचारो,
सारी संसारवासी सकल दुरितहा सर्वतो ह्रीं नमस्ते।।३।।

ऐं क्लीं ह्रीं मन्त्ररूपा सकल शशिधरा सम्प्रदाय प्रधाना।
क्लीं ह्रीं श्रीं बीजमुख्यैः हिमकृद्दिनकृज्ज्योतिरूपासरूपा।
सों ऐ क्लीं शक्तिरूपा प्रणव हरिशते बिन्दुनादात्म कोटिः,
क्षांक्षीं क्षूं कारनादे सकल गुणमयी सुन्दरी ऐं नमस्ते।।४।।

अध्यानाध्यानरूपा असुर भयकरी आत्मशक्तिप्ररूपा,
प्रत्यक्षापीठरूपी प्रलययुगधरा ब्रह्मविष्णु त्रिरूपी।
शुद्धात्मा शिद्धरूपा हिमकिरतानिभा स्तोत्र संक्षोभ शक्तिः।
सृष्टिस्तिष्ठित्रिमूर्तित्रिपुर हरजयी सुन्दरी ऐं नमस्ते।।५।। ।।त्राम्।।

(दशमहाविद्यातन्त्रशास्त्रे)

मूलाधारा अग्नि जल रूपा मूलमन्त्रमयी त्रिनेत्रा, हार केयूर वल्ली शोभिता, प्रियाम्बा सांग वेद नादरूपा विनत हो गये है बादल जिनके सामने, वीर तन्त्र का प्रचार करने वाली, साररूपा संसार वासिनी सकल दुरितों का हनन करने वाली ह्रीं रूपा देवि को सब प्रकार से नमन॥३॥

ऐं क्लीं ह्रीं मन्त्र रूपा चन्द खण्ड धारिणी, सम्प्रदायेश्वरी, क्लीं ह्रीं श्रीं इत्यादि वीजों द्वारा मुख्यतया प्रतिपादिता चन्द्रार्काग्नि स्वरूपा, सों ऐं क्लीं शक्ति वाली प्रणव विन्दु नादात्म कोटि, क्षांक्षी क्षूं इत्यादि नाद करने वाली सकल गुण मयी सुन्दरी ऐं देवि को नमन है॥४॥

ध्यान से अप्राप्त किन्तु ध्यान रूपा, असुरों में भयो पादिनी आत्मशक्ति रूपा, प्रत्यक्ष पीठ रूपा प्रलय काल में ब्रह्मविष्णु आदि रूपधारिणी शुद्धात्मा सिद्धरूपा, चन्द्रकला सदृश-स्तोत्रों में स्पन्दनी शक्ति, सृष्टिस्थ त्रिमूर्ति त्रिपुरासुर को मारने वाले शिव को जीतने वाली ऐं रूपा सुन्दरी को नमन है॥५॥

श्रीबाला सूक्तम्

ॐ नमः श्री बालायै। रूद्रोऽहं विष्णुरहं ब्रह्माहं अहंकारश्च दिगीशोहं पर्वतोहं समुद्रोहं च भूताहं भविष्योहं वर्तमानोहं च प्रातर्मध्याह्न सायं कालोहं प्रहरोहं च स्वर्ग मर्त्य पाताल चतुर्दश भुवनोहं ब्रह्म उश्च सोमसूर्याग्नि पृथिवी-आपवायु राकाशोहं, वैकारिको हं तैजसाहंकार च भूताहं कारोहं महारण्यश्च कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियोहं दोष दूष्य ज्ञानेन्द्रियार्थे कर्मेन्द्रियार्थो विकृत्योहं प्रकृत्योहं विकारश्च अन्तःकरणोहं हंसश्च। सुन्दरी त्रिपुरावालाहं दशमहाविद्याश्च गायत्री सावित्री सरस्वती त्रिसन्ध्याहं पद्माश्च द्वादश चतुर्दशं त्रयस्त्रिंशत् शत सहस्त्रायुत लक्ष कोटि चाम्नायोहं षडाम्नायश्च एकाक्षरादि अयुताक्षर मन्त्रोहं जगद्योनिश्च सृष्टिस्थिति प्रलयोहं सर्वभूतानि च चार्वाकसिद्धान्त तन्त्र मेलकार्हन्ता नेत्रक सर्वाकाश्चाहं अजिनोहं व्योमोहं कौलोहं शैवश्च।

सौर गालयत्य वैष्णव शाक्तोहं नास्तिकश्च तयोहं योगोहं लयविद्याश्च ब्राह्मणः पदक्रम जटा चतुर्दशविद्याहं गंगादिनद्योहं सागराश्च अनुष्टुभादि छन्दोहं षट्शास्त्रं चाहं ऋषयः। त्रयस्त्रिंशत् कोटिदेवताश्च। अहं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं जगद्भोक्तेति ऐं नमो बालायै। एवं ध्यायि तव्यं सत्यं महं सत्यं सत्य मोम्।। (दशमहाविद्यात्रन्त्र शास्त्रे)

।।इत्यथर्वोक्तं श्रीबालासूक्तं सम्पूर्णम्।।

श्रीबालासूक्तम्

श्री बाला को नमन्-मैं रुद्र हूँ-विष्णु-ब्रह्मा-अहंकार-दिशाओं के स्वामी, पर्वत-सागर भूत-भविष्य-वर्तमान, प्रातः मध्याह्न सायं काल, प्रहर-स्वर्ग मर्त्य-पाताल-चतुर्दरा भुवन ब्रह्मा-सोमसूर्य अग्निपृथिकी जल वायु आकाश भी मैं ही हूँ। वैकारिक अहं, तैजस अहं भूताहंकार मैं ही हूँ, ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय-प्रकृति विकृति-विकार अन्तःकरण में हंस--मैं ही हूँ वाला त्रिपुर सुन्दरी-दशमहाविद्या-गायत्री-सावित्री-सरस्वती-त्रिसंध्या, द्वादश पद्म चतुर्दश पद्म-तैतीस-सौ-हजार-दसहजार-लक्ष-कोहि-(करोड़) और आम्नाय मैं ही हूँ षडाम्नाय, एकाक्षर-अयुत-अक्षर-मन्त्र जगत् योनि-सृष्टि स्थिति प्रलय-सर्वभूत, चावीक सिद्धान्त-तन्त्र मेलक-जैन (अर्हन) नेत्रक-अजिन-व्योम-कौल शैव मैं ही हूँ।

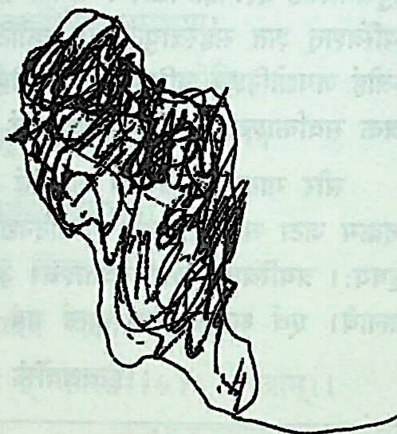
सूर्योपासक-गणपत्युपासक वैष्णव शक्ति-नास्तिक-तप योग-लयविद्या, ब्राह्मन पदपाठ क्रमपाठ जटा पाठ-चतुर्दशविद्या-गंगादि नदियां सागर अनुष्टुप् आदि द्वन्द षट् शास्त्र नारदादि ऋषि मैं ही हूँ, ३३ कोटि देवता मैं ही हूँ। जो भूत भविष्यत् हे सब कुछ मैं ही हूँ जगद् भोक्ता मैं ही हूँ ऐं वाला को नमन्। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए मैं सत्य हूँ सत्य सत्य हूँ।

योगवशिष्ठम्, उत्पत्ति प्र.

दृश्य सत्ता बन्धः। जगत्त्वमहमित्यादिमिथ्यात्मादृश्यम्। नेदं नेदमिति व्यर्थप्रलापैर्नोप शाम्यति। न च तर्क भरक्षोदैः।

सौम्याम्मसि यथा बीचिः, न चास्ति न च नास्ति च।
तथा जगद् ब्रह्मणीदं, शून्या शून्य पदं गतम्।।

(योगवा. ३०/२०/१०)



भानोर्भासाभूषितैर्मेघलेशैः,
किञ्चित्किञ्चित्कुङ्कुमछाययैव।
पाश्चात्योद्रिः पीतवासाः समेद्यैः,
ताराहारः श्रीसुतः खं समेतः।।
(योगवाशि. ३०,४,२३)

हे राम! ये असत् स्वरूप तुम-मैं इत्यादि जगत् दृश्य कहलाता है ये ही बन्धन का कारण है और इस जगत का विनाश केवल ये नहीं मैं नहीं आदि व्यर्थ प्रलाप से नहीं होगा। विविध तर्कों एवं तीर्थ यात्राओं से भी इसकी निवृत्ति नहीं होगी। हे राम! जैसे शान्त सागर जल में लहर की न तो सत्ता है और न ही असत्ता है (लहर हैं ऐसा भी नहीं कह सकतो तो लहर नहीं है ऐसा भी नहीं कह सकते) वैसे ही ब्रह्म में जगत् शून्य है या अशून्य ऐसा कह नहीं सकते अनिर्वचनीय है दोनों कल्पनाओं के आधार अधिष्ठान ब्रह्म को प्राप्त है।

सायंकाल श्रीवशिष्ठ जी द्वारा उपदेश विरामोपरान्त-अस्ताचल गामी सूर्य के दिव्य स्वर्णिम किरण प्रकाश से मेघ खण्ड पीला जैसा लग रहा है अतः ये पीत मेघ ही जिस आकाश का पीलावस्त्र हो गया, उदित तारा माला (नक्षत्र माला) जिसकी कण्ठ शोभा वृद्धि करने वाला हार हो सूर्य जिसे समान धर्म वाले आकाश में प्रविष्ट हो गये। मानो पीताम्बर नारायण हार व लक्ष्मी सहित स्वभक्त हृदयाकाश में प्रविष्ट हो रहे हैं।

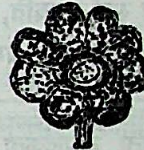


यदस्पन्दं शिवं शान्तं,
यत्स्पन्दं त्रिजगत्स्पितिः।
स्यन्दास्पदविलासात्मा
य एकोभरिता कृतिः।।
(योगवा. ३०/९/६२)



पञ्चाशद् युवतीरूपा मातृका
माता सा सर्वविधानां, सर्वागम प्रतिष्ठिता।
शववत्सर्व वेद्यं च, ब्रह्माण्डं शववत्सदा
वर्णारूपमयीदेवी, कुण्डली परदेवता।। (कामधेनु तन्त्र ८ पर)

'ब्रह्माण्डं नरहृत्पद्मम्। दिगष्टवादले बृहत्।'



ॐ

श्री वालोपनिषद्

ऐं नमः श्री वालायै। श्री वालोपनिषदं व्याख्यास्यामः। श्रृणु प्रिये। चक्र चक्रस्या, महात्मा, गुह्यतरा, श्रेष्ठाति श्रेष्ठा, भव्या, भव्यतरा, त्रिगुणगा, गुणातीक्त, गुणस्वरूपा,

---

जिसका अस्पन्द स्वरूप (विक्षोभ रहित) शिव व शान्त अर्थात मंगल मय है और जिसका स्पन्द स्वरूप (विक्षोभ युक्त) तीनों जगत् की स्थिति है, इस प्रकार स्पन्द व अस्पन्द का विलास ही जिसका स्वरूप है जो अद्वितीय एक व परिपूर्ण है वह ब्रह्म है।

सर्वागम प्रतिष्ठिता सभी विद्याओं की माता ये मातृका महाशक्ति ५० युवतियों के रूप में लीलया प्रादुर्भूत है, ये ब्रह्माणु शव के समान है अत: सर्वदा ये शव के समान ही वेध्व है इसकी जीवनी शक्ति तो वर्ण रूपा कुण्डलिनी परा शक्ति जगदम्बा ही है।

ब्रह्माणु-मनुष्य का हृदय पद्म ही ब्रह्माणु है दिया रूपी वृहत् अष्ट दल कमल है। शब्द ज्योति यदि नहीं होती तो अन्धकाराच्छन्न इस जगत का क्या होता

ऐं वाग्वीज सहित वालात्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार नम: का अर्थ है—आशीर्वाद र्वाचनानुकूल: कर: शिर: संयोगादि विशेषरुपोऽर्थ: आशीर्वाद पाने की इच्छा से (आशीर्वचन

गुंकारमध्यस्था, रेचक पूरककुम्भस्वरूपा, अष्टांगरूपा, चतुर्दश भुवन्नमालिनी, चतुर्दशभुवनेश्वरी, चत्वारिवेद वेदांगपारगा, सांख्यासांख्यस्वरूपा, शान्ता, शाक्तप्रिया, शाक्त धर्मपरायण, सर्वभद्रा विभद्रा, सुभद्रा, भद्र भद्रान्तरगता, वीरभद्रावतारिणी, शून्यां शून्यतरा, शून्यप्रभवा, शून्यलया, शून्यज्ञानप्रदा, शून्यातीता, शूलहस्ता, महासुन्दरी, सुरासुरारि विध्वंसिनी, सूकरानना, सुभगा, शुभदा, सुशुभा, शास्त्रास्त्रधारिणी, परप्रासादवामांगा, परमेश्वरी, परापरा, परमात्मा, पापघ्ना, पञ्चेन्द्रियालया, परब्रह्मवतारा, पद्महस्ता, पाञ्चजन्या, पुण्डरीकाक्षा, पशुपाराहारिणी, पशूयपूज्या, पाखण्डध्वंसिनी, पवनेशी, पवनस्वरूपा, पद्मापद्ममयी, पद्मज्ञानप्रपात्री, पुस्तकहस्ता, पक्वबिम्बफलप्रभा, प्रेतासना, प्रजापाली, प्रपञ्चहारिणी, पृथिवीरूपा, पीताम्बरा, पिशाचगणसेविता, पितृवनस्था, हंसस्वरूपा, परमहंसी, ऐंकारबीजा, वाग्भवस्था, वाग्भवबीजा, आद्ययोनिनी, वाग्भवेणी, वाग्भवबीजमालिनी, य एवं वेद स वेदवित्। वालोपनिषदं वो पठति षोश्रृणोति, तस्याघं सर्वं नश्यति, चतुर्वर्गफलं प्राप्नोति, लयज्ञानं भवति, ज्योतिर्मयेप्रलीयति, निर्वाणपदं गच्छति ॐकारे प्रमीलति। ॐ श्री वा ला यै न मः ॐ।

की जनकता कारणता उत्पादकता जिसमें है) हाथ व शिर का संयोग था पादसंस्पर्शादि रुप या वपुषा मनसा वचसा किया गया प्रणाम-सूत संहिता में तो नमः का अर्थ किया नमम इति नमः मेरा कुछ नहीं आपका ही है ये भाव होवे श्री बालोपनिअत् की व्याख्या करने जार है। (वर्तमान समीपे वर्तमान बड़ा) हे प्रिये सुनो चक्र मध्य वर्तिनी महात्मा गुह्य वरा श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ भव्यों ये भी भव्य जिगुणा गुणातीता गुणस्वरूपा गुंकार के मध्य रहने वाली है (अनुस्वार वर्ती) रेचक कुम्भक पूरक प्राणायामत्रय रूपा-अष्टांगयोगरुपा (अष्टप्रकृतिरूपा) चौदह भुवन संरक्षिका चतुर्दश भुवनेश्वरी अंगो संहित चारों वेदों से परे, सांख्य आशाख्य रूपा, शक्ति उपासकों को प्रिय, शाक्तधर्म परायणा सर्वभद्राविभद्रा सुभद्रा भद्र भब्द्रान्तरगता वीरभद्रावतार रूपा शून्य-शून्यतरा शून्य, समुत्पन्ना, शून्यालया शून्य का ज्ञान देने वाली, शून्य से परे, शूलधारिणी महासुन्दरी सुरासुर शत्रुओं का विध्वंस करने वाली वराहमुखी-उत्तम ऐश्वर्य वाली शुभप्रदात्री सुगुभा, शस्त्रास्व धारिणी-शिव वामागं वासिनी-परमेश्वरी परापरा परमात्मा, पापनाशिनी, पञ्च इन्द्रियों में रहने वाली, या पांचों इन्द्रियों की भूता पर ब्रह्म वतारा, पद्म हस्ता, पाञ्च जन्या, कमल जैसे नेत्र वाली पशु=जीव के पाशों का हरण करने वाली, पशुपति द्वारा पूजित, पाखण्ड नाशिनी, प्राणेश्वरी प्राणस्वरूपा, गद्मपद्ममयी, पद्म ज्ञान देने वाली पुस्तक हस्ता पक्व विम्व फल जैसी कान्ति वाली सदाशिवादि पञ्च प्रेतों के आसन पर रहने वाली, प्रजापालिनी, प्रपञ्च हरण कर्त्री, पृथ्वी रूपा पीत वस्त्रधारिणी-पिशाच गणों से सेवित, पितृवन स्थिता, हंसस्वरूपा, परमहंसी ऐं वीज स्वरूपा, वाग्भव कूटस्था, वाग्भव बीज रूपा, आद्ययोनिनी, वाग्भव ईश्वरी वाग्भव बीजों की माला

११४

चितेश्चित्त्वं जगद्विद्धि।
चितेर्मरीचिबीजस्य, निजायान्तश्चमत्कृतिः।
सा चैषा जीव तन्मात्र-मात्रं जगदिति स्थिता।।
(योगवा. ३/१४/५४)



चित्तरौ चेत्यरसतः, शक्तिः कालादिनामिकाम्।
ततोत्याकाशविशदां, चिन्मधुश्रीः स्वमञ्जरीम्।।

षड्विधाः प्रेताः

१. सामान्य धर्माः—मृतिमोक्षदवन्तरं नरयोनिषु जायन्ते। २. मध्यम धर्माः—मृहिमोहादनन्तरं औषधि पल्लवं यान्ति चारुफलं भुक्त्वा यक्षादि देहे जायन्ते। ३. उत्तमधर्माः—मृतिमोहादनन्तरं स्वर्गविद्याधरपुरं अनुभवन्ति मनुष्यलोके सज्जनास्पदे जायनो। ४. सामान्य पापिनः—जाड्यं प्राप्य तिर्यगादि क्रमैः संसार मेष्टाति।

स्वरूपा जो इस प्रकार वाला त्रिपुर सुन्दरी को जानता है वह वेद वित् है इस वालोप निषत् को जो पढ़ता है जो श्रवण करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है लय (मोक्ष) का ज्ञान होता है ज्योतिर्मय तत्व में लीन हो जाता है, निर्माण पद को पाता है ॐकार में लीन हो जाता श्री वाला देवी को नमस्कार है।

हे राम! चिति का धर्म चित्त्व ही जगत् है ऐसा जानो। प्रकाश की बीज भूत चित् का जो स्वकीय अन्तश्चमत्कार है (पदार्थों की प्रकाशिका शक्ति) वही जीव व जीव को उपाधिभूत तन्मात्र बनकर जगत्वेष में स्थित है।

हे राम! जैसे वसन्त शोभा जल के सिंचन से वृक्षों की ऊंची टहनियों में भी सुन्दर मञ्जरी को उत्पन्न करती है वैसे ही चित्त की शक्ति माया द्वारा दृश्य प्रपंच में आसक्तिवश चित्त में प्रथम उत्पन्न आकाश में विकास को प्राप्त काल आदि का विस्तार करती है।

देवीजी कहती हैं हे सुन्दरी! प्रेत छः प्रकार के होते हैं—१. **सामान्यधर्म**—मरने के बाद मनुष्य योनि में जन्म लेता है। २. **मध्यमधर्म**—मरने के बाद दिव्योपवनों से सडिजत लोकों में यक्ष गन्धर्व आदि वनते है। ३. **उत्तमधर्म**—ये मरणानन्तर स्वर्गादि लोकों का सुख भोगकर मनुष्य लोक में पुण्यात्मा होते है। ४. **सामान्यपापी**—मरने के बाद जड़तायुक्त तिर्यक्

५. मध्यपापिनः–मृतएव देहमनुभवति जायस्व मृषस्वगतिनः। ६. स्थूलपापिनः–वत्सरं स्मृतिमूर्द्धनं प्राप्य चिरंकालं नारकं दुःख मनुभूय दुःखयोनिषु जाय। (योगवा. ३०/५५)

स्वयं विचित्रं स्फुरति, चिदण्डक मनाहतम।
स्वयं विलक्षणस्फन्दं, चिद्वायुरण्डजात्मकः।।



स्वयं विचित्रं कचनं, चिद्वादि न निखातजम्।
स्वविचित्र रसोल्लासा, चिज्ज्योत्स्ना सततोदिता।।





स्वयंविचित्रधातुत्वं, श्रेष्ठाङ्गमपि निर्मितम्।
चित्प्रकाश प्रकाशोहि, जगदस्ति च नास्ति च।।
(यो.वा. ३०/१४)





चित्सत्तैव जगत्सत्ता, जगत्सत्तैव चिद्वपुः।।
इतीदं सन्मयत्वेन, सदसद्भुवनत्रयम्।
अविकल्पतदात्मत्वात्, सत्ता सत्तैकतैव च।। (योगवा. ३०/१४)

योनि में जाते है। ५. **मध्यमपापी**—मरकर वासनामयी अद्योगति को पाता है वृक्षारियोनि मैं जाता है। ६. **स्थूलपापी**—वर्ष भर मूर्च्छा में रहकर चिरकालतक नरक दुखभोगकर दुख योनियों मैं जन्म लेता है।

चित् स्वयं अपने स्वरूप से विना विकृत हुए ही विचित्र आकाश रूप हो जाती है तदनन्तर स्वयं ही आकाशोत्पन्न विलक्षण स्पन्द वाला वायु रूप हो जाती है तेजोपरान्त चित् स्वयं जल तत्व बनकर विचित्र विकास को प्राप्त होती है किन्तु वह जल तालाब आदि का नहीं होता।

सदा उदित चित् ही स्वयं अपने विचित्र रस वाले उल्लासों से चैतन्य प्रकाश (ज्योत्सना) बन जाती है।

चित् स्वयं स्वर्ण रजतादि विचित्र धातुओं के रूप में प्रकट होती है। जगत् चित् रूपी तेज का आलोक रूप है ब्रह्म सत्तात्वात् उसका अस्तित्व है जगात्सत्ता से अस्तित्व नहीं है।

हे राम! चित् सत्ता ही जगत्सत्ता है जगत्सत्ता ही चित् का स्वरूप है।

यद्यपि ये तीनों भुवन असत् हैं, तथापि पूर्वरीति से सन्मय (चिन्मय) होने से ये सत् भी हैं। कल्पित की सत्ता और असत्ता कल्पित के अधिष्ठान से भिन्न कहीं नहीं देखी गयी है, अतः जगत् की सत्ता व असत्ता एक ही है।

चित्ताकाशघनैकत्वात्, स्वेऽप्यन्येपिभवन्तिते।
एवं नामोदितेऽप्यस्य, चित्ते संसार खण्डके।।३६।।
नकिञ्चिदभ्युदितं, स्थितं व्योमैव निर्मलम्।
स्वप्नद्रष्टरि यद्वच्चित्, तद्वद्दृश्ये चिदेवसा।।३७।।



परलोके

।त्रयःस्वप्नाः।

सर्वगा चित्
यथा स्वप्ने तथा परलोके,
ब्रह्मैवेहाभ्युदेति।
स्वप्न परलोकेहलोकानामसतां
न भेदोऽस्ति, वीचीनमिववारिणि।।
(योगवा. ३०/२०/३९)
अतोऽजातमिदं विश्वं, अज्ञातत्वादनाशिच।

चित्ताकाश के साथ आत्माकाश का तादात्म्य है। अत: ये सम्बन्धी परकीय होने पर भी स्वकीय भी होते हैं। चित्त देह रूपता को प्राप्त हुआ पर वास्तव में निर्मल आकाश पर बादल आये गये के समान कुछ भी नहीं हुआ जैसे स्वप्न में देखने वाला और दिखने वाला दर्शन क्रिया भी सब चित् ही है वैसे ही दृश्य प्रपञ्च में भी चित् ही है। चित् के अतिरिक्त न जगत् है न हो सकता है।

स्वप्न की विचित्र दुनियां हृदयस्थ, जाग्रत् की दुनियां ये सारा प्रपञ्च शास्त्रानुमोदित (पौराणिकै) स्वर्गादि लोक ये तीनों हैं तो स्वप्न ही न। सभी जगत् चित् की लीला है। जैसे स्वप्न वैसे ही परलोक तथा ऐसे ही यहाँ इस लोक में सब समान है।

वास्तव में असत् होने पर भी भ्रमवश सच्चे प्रतीत होने वाले स्वप्न लोक परलोक एवं इस लोक के प्रपञ्च में विञ्चिदपि भेद नहीं है। जैसे जलोत्पन्न लहरें परस्पर अभिन्न ही होती हैं, अत; भ्रमवश सच्चा सा (उत्पन्न सा) प्रतीत होने वाला जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ तब इसका नाश कैसा इसलिए ये अविनाशी है नाश तो उसका हो जो उत्पन्न हो— ये तो उत्पन्न ही नहीं।

स्वरूपत्वात्तुनास्त्येव, मञ्चभाति चिदेव सा। (यो.वा. ३०/२०/४१)
यथैव चेत्यनिर्हीणा, परम व्योमरूपिणी।
सचेत्यापि तथैवेषा। नेहनानास्तिकिञ्चन।। (श्रु.)।
तस्मान्नास्त्येव दृश्योऽर्थः, प्रपञ्चो मिथ्या दृश्यत्वात्। (युक्ति)
कुतोऽतोऽतोद्रष्टृदृश्यघीः। (यो.वा. ४४)

कलिवर्ज्यानि (वृ.नारदीय पु. २२)

समुद्रयात्रास्वीकारः, कमण्डलु विधारणम्।
द्विजानामसवर्णसु, कन्यासूपयमस्तथा।।
देवरेण सुतोत्पत्तिः, मधुपर्के पशोर्बधः।
मांसं दानं तथा श्राद्धे, वानप्रस्थाश्रमस्तथा।।
दत्ता क्षतायाः कन्यायाः, पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं, नरमेधाश्वमेधकौ।।

स्वरूपत: ये जगत् है ही नहीं जिसका भान ही रहा है वह चित ही है। चैत्य शून्य (विषय रहित) परमाकाश रुपिणी चित् जैसी है चैत्य युक्त (विषयुक्त) परमाकाश रुपिणी चित् भी वैसी ही है। यहाँ वैविध्य नानात्व अनेकता कुछ भी नहीं है सब एक का ही खेल है इसीलिए दृश्यपदार्थ है ही नहीं तब दृष्टा व दृश्य बुद्धि कैसे होगी अर्थात् नहीं होगी।

कलिवर्ज्य

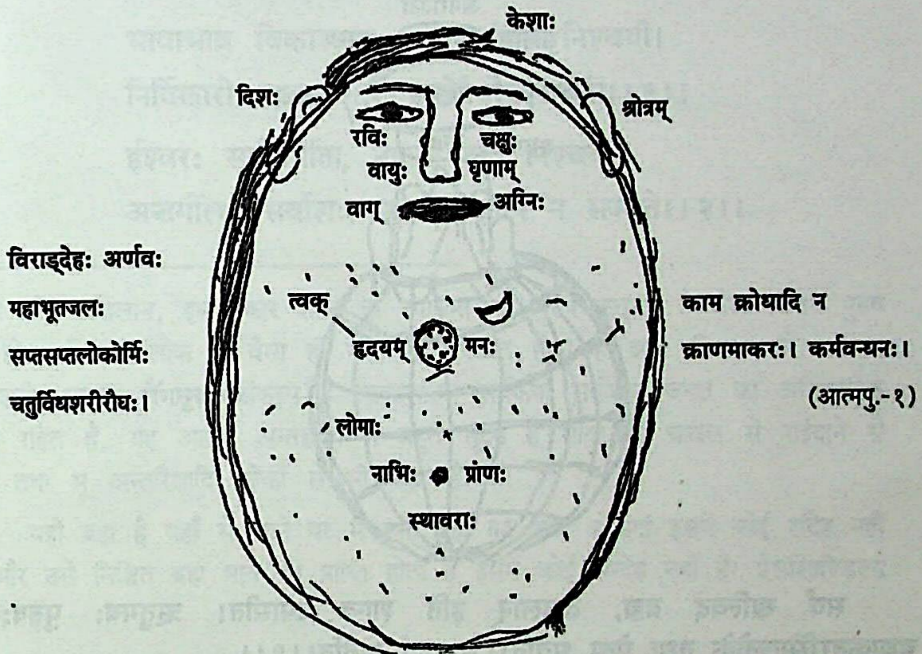
समुद्रयात्रा (आचार रक्षा के अभाव में) ब्राह्मण का अन्यवर्णीय कन्या से विवाह, नियोग विषयक देवर से पुत्रोत्पात्त मधुपर्कार्थ पशुवध, श्राद्ध में मांसादि प्रयोग, वानप्रस्थाश्रम ग्रहण (वानप्रस्थ के कठिन तितिक्षादि नियमों का पालन असम्भव है फिर बन हैं कहाँ, ऋषियों की त्रिकालजयी दृष्टि से क्या छिपा था) कन्यादान करके (एक बार कन्या का विवाह करने के बाद किसी भी कारण से पुन: विवाहार्थ प्रयास) फिर दान करना, दीर्घ कालीन ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों की जटिलता तथा कलियुगी जींव का विषयानन्द निमनन स्वभाव परिणामत: कलियुग में गृहस्थाश्रम का ही विधान शास्त्रों द्वारा किया गया हैं। इतने पर भी कोई रह सकता है तो रहे पर कितना कठिन है निर्वाह ये तो वही समझ सकते हैं जो पवित्रता से जीना चाहते हैं। स्वेच्छाचारी के लिए क्या कठिनाई) नरमेध तथा अश्वमेधयज्ञ भी कलियुग में नहीं करना है।

ज्ञनमज्ञाननाशाय नियतं साधनम्।।६।।

वेदान्तविज्ञानम्।।१७।। (आत्म पु.-१)

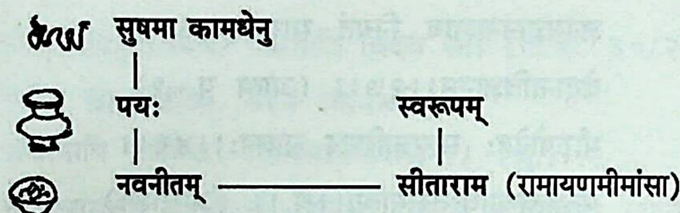
पौरुषोदेहः सम्पन्नाखिल साधनः।।४६।।

पुरुषत्वेचाविस्तरामात्मा।।श्रु.।। (अपरोक्षः)



वेदान्त विज्ञानात्मक ज्ञान अज्ञान नाश में नियत साधन है। ज्ञान हुआ कि अज्ञान नष्ट (दीपक जला कि अधेरा खत्म) पुरुष शरीर अखिल साधनों से सम्पन्न है स्वल्प प्रयास से ही ब्रह्म तत्व को पाया जा सकता है।

आत्मा की अपरोक्ष अनुभूति पुरुष शरीर की प्राप्ति के द्वारा ही सम्भव है। विराट् देह सागर है, पञ्चमहाभूत जल है, १४ लोक ही लहरें हैं। चतुर्विध शरीरों का समूह ही ओघ है (जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिडा) कर्म वन्धन के तट हैं। कामक्रोधादि धोरातिघोर मगरमच्छ हों इस सागर में शेष सब स्पष्ट ही है।





(लिङ्गपुराणे)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलान् इति शान्त उपासीत। ऋतुमयः पुरुषः, यथाक्रतुरस्मिंल्लोके तथा प्रेत्य भवति। स क्रतुं कुर्वीत।।१।।

सौन्दर्यामृत रूपी कामधेनु के दुग्ध का नवनीत हो साधारण नवनीत (मक्खन) कैसामधुर मधुर है जब वही नवनीत सुषमा रूपी गौ का हो तब कल्पना से भी परे की बात भई—उसी नवनीत से श्रीसीतारामजी का स्वरूप कदाचित् मानना पड़े तो माना जा सकता है।

पृथ्वी से ऊपर सुमेरु सुमेरु के पूर्व में महेन्द्र का स्वर्गपुरा अमरावती पश्चिम मैं वरुण की-निम्लोचनी पुरी उत्तर में सोम की विभावरी है दक्षिण में यमराज की संयमनी है।

ये सब कुछ ब्रह्म ही है, तत् जल अन। तत् = ब्रह्म से ही, ज = तज्जलान उत्पन्न होता है, ल = उसी में लीन होता है, अन = उसी में चेष्टा करता है, तलज, तल्ल,

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वमिदमभ्यात्तो अवाक्यनादरः।।२।।

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान् ज्यायान् एम्योलोकेभ्यः।।३।।

एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्यामिभवितास्मि न विचिकित्सास्ति इति आह शाण्डिल्यः।।४।।

ज्ञानाष्टकम् (अष्टावक्र गी. ११ अ.)

भावाभाव विकारश्च, स्वभावादिति निश्चयी।
निर्विकारो गतक्लेशः, सुखेनैवोयशाम्यति।।१।।

ईश्वरः सर्वनिर्माता, नेहान्य इति निश्चयी।
अन्तर्गलित सर्वाशः, शान्तः क्षापि न सज्जते।।२।।

तदन इति तज्जलान, इस प्रकार शान्त हो उपासना करे गुरुष कुतुमय है जैसा निश्चय पुरुष का होता है इस लोक में वैसा ही मरने के उपरान्त होता है अत: निश्चय करे मनोमय प्राणशरीर भास्वर है सत्य संकल्प है आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकाम जगत का अभिव्यापक वाक् रहित है, यह आत्मा अन्तर्हृदय में बहुत सूक्ष्म है सांवा के चावल से राईदाने से भी) तथा भू अन्तरिक्षादि लोकों से भी बड़ा है।

यही ब्रह्म है यहाँ से जाने पर मैं इसी ब्रह्म को प्राप्त होऊगां इसमें कोई संदेह नहीं है और उसे निश्चित ब्रह्म भाव की प्राप्ति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं है। ऐसाशाण्डिल्य कहते हैं।

भाव = कार्य रूप जैसे घट अमाव = कार्य नाश घड़ा फूट गया विकार = दूध फट गया भोजन में विष पड़ गया आदि अन्य उदाहरण ज्ञानाष्टक = स्वयं समझे भाव अभाव और विकार ये स्वभावतः होते ही है।

भावाभाव विकार (भावमूलक विकार दृष्टिगोचर पार्थिवादि व सूक्ष्मविकार) ये स्वाभाविक से प्रतीत होते सब माया द्वारा ही है, ऐसा जिसने निश्चय कर लिया है वह स्वयं विकार रहित होकर गतक्लेश हो जाता है और अनायास ही शान्ति को पा लेता है॥१॥

ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई इस संसार का निर्माता नहीं है। ऐसा निश्चय जिसको हो गया वह आशा पिशाची विनिर्मुक्त प्रशान्तात्मा साधक कही भी आसक्त नहीं होता (वह जगत् को नहीं जगन्निर्माता जगदीश्वर को खोज लेता है)॥२॥

आपदः सम्पदः काले, दैवादेवेति निश्चयी।
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियोनित्यं, न वाञ्छति न शोचति।।३।।

सुख दुःखे जन्ममृत्यु, दैवादेवेति निश्चयी।
साध्यादर्शी निरायासः, कुर्वन्नपि न लिप्यते।।४।।

चिन्तयाजायते दुःखं, नान्ययेहेति निश्चयी।
तयाहीनः सुखीशान्तः, सवर्त्र गलित स्पृहः।।५।।

नाहं देही न मे देह्ो, बोधोऽहमित निश्चयी।
कैवल्यमिव सम्प्रातो, न स्मरत्यकृतं कृतम्।।६।।

आपत्ति एवं सम्पत्ति (सुःख व दुःख) यथाकाल दैववश ही प्राप्त होती हैं (संचित् कर्मों का जन्म हेतुक एक भाग जो जन्य के समय जीव के साथ ही निश्चित हो जाता है ये ज्ञानी-मूर्ख-गोरा-काला-उदार-निर्दयी-सुखी-दुखी-धनी दण्डि जाति कुल-अवस्था-शत्रुमित्र सब निश्चय हो जाता है जिससे उसे प्रारब्ध कहते हैं दैव कहते हैं) ऐसा निश्चय करने वाला सदा संतुष्ट रहता है (प्रमाण संतुष्टि में=शिकायत नहीं करता सर्दी ज्यादा है पड़ौसी ठीक नहीं, हालात ठीक नहीं, दुनियां वेकार है—पुत्र अच्छा नहीं भोजन ठीक नहीं वेतन कम मिलता है अरे भई जितना वोया है जैसा वोया है जब वोया है उतना ही वैसा ही यथाकाल पा रहे हो शिकायत क्यों ऐसा निश्चय होने के बाद तो आनन्द है) जो असंतुष्ट है उसी को शिकायत है वहीं परेशान है) स्वस्थ इन्द्रियों वाला अप्राप्त को चाहता नहीं। नष्ट पदार्थ के लिए शोक नहीं करता (स्वस्थ=स्व में स्थित हो गयी है जिसकी इन्द्रियां वह स्वस्थेन्द्रिय है)।।३।।

सुख दुख जन्म-मृत्यु दैव से ही प्राप्त है ऐसा निश्चय वाला योगी कर्तव्य कर्मों को बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के स्वाभाविकतया ही करता है परिणामतः करता हुआ भी कर्तृत्वभाव शून्य होने से कर्तापन की बुद्धि न होने से वह लिप्त नहीं होता जैसे पलक झपकना भी एक कर्म है किन्तु वहीं कर्तृत्वाभिमान न होने से उसका फल लिप्त नहीं करता आदि।।४।।

चिन्ता के कारण ही यहाँ दुख प्रतीति है अन्य कोई कारण नहीं (बाढ़ में गाँव बह गया जो चिन्ता कर रहा है वह दुःखी है। एक शान्त बैठा है वह गया वह गया अब क्या ऐसा निश्चय वाला चिन्ता हीन आकांक्षा रहित साधक ही सुखी है शान्त है।।५।।

मैं शरीर नहीं हूँ और न ये शरीर ही मेरा है मैं तो ज्ञान रूप नित्य शुद्ध वुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ ऐसा निश्चय वाला जीते जी मुक्ति प्राप्ति की सी अवस्था वाला योगी कृत (किये गये) अकृत (जो न हो सके) कर्मों का स्मरण नहीं करता।।६।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त, महमेवेति निश्चयी।
निर्विकल्पः शुचिःशान्तः, प्राप्ताप्राप्त विनिवृतः।।७।।
नानाश्चर्यमिदं विश्वं, न किञ्चिदिति निश्चयी।
निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो, न किञ्चिदिति शाम्यति।।८।।
सकामैः सम्पुटो जाप्यो, निष्कामैः सम्पुटं विना।

त्रैलोक्य डामरो मन्त्रः

१. ऐं इन्दुसमान दीप्तिः (बृहज्ज्योतिषार्णवे. दुर्गोपा.क.द्रु.)

२. ह्रीं सूर्य तेजोद्युतिः।

३. क्लीं वैश्वानर तुल्यम्,-अनन्तसुखाय।

४. चा शुद्ध जाम्बूनदकान्तिः।

५. मुं. रक्ततरम्।

ब्रह्म से लेकर स्तम्ब (तृण) तक मेरी ही सत्ता है मेरे अतिरिक्त और है कौन? ऐसा निश्चय वाला निर्विकल्प समाधिनिष्ठ पवित्र शान्त प्राप्त एवं अप्राप्त पदार्थों से असम्बद्ध योगी स्व महिमा में स्थित हो आनन्द भाक् होता है।।७।।

नाना आश्चर्य (चमत्कारों से भरा पूरा) वाला ये विश्व यथार्थतः कुछ भी नहीं है ही नहीं भ्रम है ऐसा निश्चय जिस को हो गया है वह वासना रहित हो—चैतन्यमात्रावस्था (ज्ञानमयी भूमिका में स्थित) वाला योगी कुछ भी नहीं के समान, अस्मिताभिमान से रहित के समान लोकव्यवहारादि शून्य हो शान्त हो जाता है।।८८।।

सकाम (कामना युक्त) हो तो सम्पुट सहित पाठक के निष्काम हो तो सम्पुट बिना ही करे।

ऐं—चन्द्रवत् दीप्तिमान। ह्रीं—सूर्यवद्दीप्तिमान। क्लीं—वैश्वानर तुल्य अनन्तसुखार्थ।

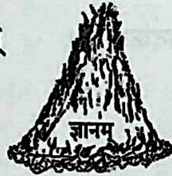
६. डा सुनीलम्, उग्रार्तिहरम्।
७. यै कृष्णतरम्-रिपुघ्नम्।
८. विच् पाण्डुरम्।
९. चे धूम्रवर्णम्।

दुर्गापाठस्य नवनासनि

महाविद्या[1], महातन्त्री[2], चण्डी[3], सप्तशती[4], मृतसंजीविनी[5], महाचण्डी[6], रूपदीपिका[7], चतुःषष्ठियोगिनि[8], परा[9]।

१. आद्यद्वितीय तृतीय चरितानुक्रमेण-महाविद्यासप्तशती। २. आद्यन्त मध्यचरितं, महाचन्त्रम्। ३. आद्यमध्यान्तचारित्रक्रमाच्चण्डी। ४. मध्यमान्द्यन्त चरितं-सप्तशती। ५. अन्त्यादिमध्यचारित्रं मृ.सं.। ६. अन्त्यमध्यादि चारित्रान्महाच च.। ७. रूपं देहीति संयोज्य नवार्णमनुना सह। सम्पुटत्वेन संयोज्य जपे रूपचण्डी। सर्वाभीष्ट फलप्रदा। ८. योगिनीनां चतुःषष्ठि योगात् सप्तशतीमनोः। चतुषष्ठीतिसा प्रोक्ता, योगसिद्धि प्रदायिनी। ९. परावरीज मानायोगात्। परा चण्डीति कथ्यते। (बृहज्ज्योतिषार्णवे दुर्गोपासनाकल्पद्रु.)

पञ्चभूतलयस्थानम्
श्मशानम्
ज्ञानम्



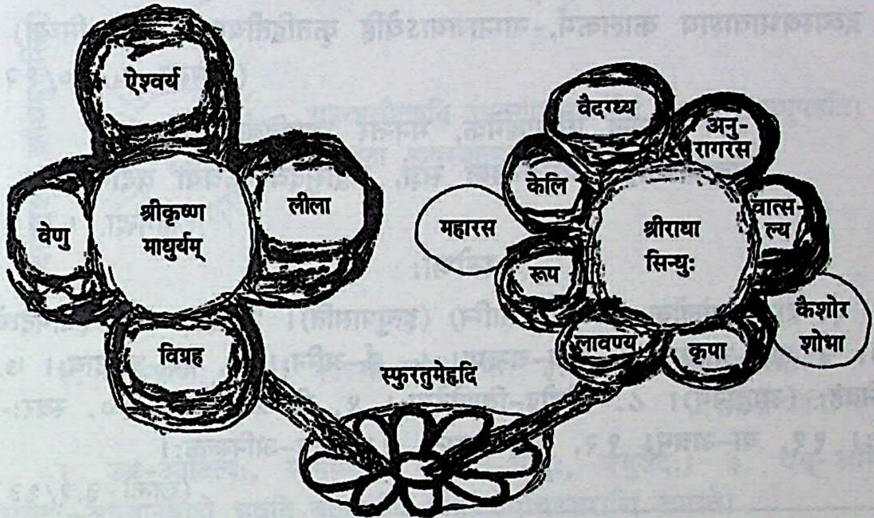
चा—शुद्ध जाम्बूनद वत् कान्ति (स्वर्णवर)। मुं.—रक्त वर्णीय। डा—नीला-दुखहर्ता। यै—कृष्णतर शत्रुहन्ता। विच—पाण्डुर वर्णीच। चे—धूम्र वर्ण।

दुर्गापाठ के नव नाम

१. **महाविद्या**—दुर्गासप्तशती के पास को यथा करने पर प्रथम मध्यमोत्रमचरित्र। २. **महामन्त्री**—प्रथमचरित्र उत्तम व मध्यम चरित्र पाठ ये महामन्त्र है। ३. **चण्डी**—प्रथममध्यमोत्तम चरित्र पाठ चण्डी। ४. **सप्तशती**—मध्यम आदि अन्त चरित्र। ५. **मृत् संजीवनि**—अन्तिम आदि मध्यम्। ६. **महाचण्डी**—अन्त्य मध्य आदि चरित्रों को करने पर। ७. **रुपदीपिका**—रुपंदेहि इस मन्त्र से संयुक्त करके नवार्ण मन्त्र से संम्पुटित करे इस प्रकार रुप चण्डी होता है ये सर्वाभीष्ट फलप्रद है। ८. **चतुःसष्टि योगिनी**—६४ योगिनियों के योग से सप्तशती के मन्त्र का पाठ योग सिद्धि प्रद है। ९. **परा**—परावीज के समायोग से पराचण्डी कहलाती है।

पञ्चभूत लय स्थान को श्मशान कहते हैं ज्ञान ही प्रज्वलित अग्नि है

पस्याह मनुगृहणामि, वित्तं तस्य हराम्यहम्। करोमि बन्धु विच्छेदं, स तु दुःखेन जीवति।। संतापेष्वपि कौन्तेय, यदि मां न परित्यजेत्। ददाम्यहं स्वीयपदं, देवानामपिदुर्लभम्। (पद्म पु.)



स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च, क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छाजरा च।
निद्रारतिर्मन्युरहं मदः शुचो, देहेन जातस्य हि मे न सन्ति।। (भरतः)
(श्रीमद्भा. ५/१०/१०)

यदाक्षितावेव चराचरस्य, विदामनिष्ठां प्रभवं च नित्यम्।
तन्नामतोऽन्यद्व्यवहार मूलं, निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम्।।
(पार्थिवामिथ्या)

श्री भगवान् कहते हैं अर्जुन! जिस पर में अनुग्रह करता हूँ उसका वित्त पहले हरता हूँ (धन की अकड़ को ढीला कर देते हैं) बन्धु वान्धावों स सम्बन्ध तुड़वा देता हूँ जिससे वह दुःख पूर्वक जीता है हे अर्जुन यदि इस प्रकार सन्तप्त होकर भी मुझे नहीं त्यागता तब उस देवदुर्लभ स्वपद वैकुण्ठ प्रदान करता हूँ।

श्रीराधाकृष्ण माधुयामृत सिन्धु मेरे हृदय में स्फुरित हो शेषचित्र से स्पष्ट हैं।

जड़भरत जी राजारहू गण को कहते हे राजन्! मोटापन-पतलापन-आदि (मानसिकरोग) (शारीरिक रोग) भूख प्यास भय कलह-इच्छा-जरावस्था-निद्रा-प्रीति-क्रोध-अहंकार व शोकादि

धर्म तो शरीर के हैं मैं तो आत्म तत्व हूँ ये मेरे नहीं हैं। सम्पूर्ण चराचर पृथ्वी से उत्पन्न

एवं निरूक्तं क्षितिशब्दवृत्तं, असंन्निधानात्परमाणवो ये। पृथिवी
अविद्यया मनसाकल्पितास्ते, तेषां समूहेन कृतोविशेषः।। परमाणवः

एवं कृशं स्थूलमणुवृहद्यद्, असञ्चसज्जीव सजीवमन्यत्।
द्रव्यस्वभावाशय कालकर्म,-नाम्नाजयाऽवेहि कृतद्वितीयम्।। (द्वैतं मिथ्या)
(श्रीमद्भा. ५/१०/१२)

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक, मनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यकप्रशान्तं भगवच्छब्द संज्ञं, यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति।।
(श्रीमद्भा. ५/१२)

स्तोभाः

१. हाउ–अयंलोकः (रथन्तरे साम्नि) (इत्युपासति)। २. हाइ–वायुः (वामदेव्ये सा.)। ३. इह–आत्मा। ४. अथ–चन्द्रमा। ५. ई–अग्निः। ६. ॐ–आदित्यः। ७. ए–निवहः (आह्वानम्)। ८. औहोइ–विश्वेदेवाः। ९. हिं–प्रजापतिः। १०. स्वरः–प्राणः। ११. या–अन्नम्। १२. वाग्–विराट्। १३. हुम्–अनिरूक्तः।
(छान्दो.-३.१/१३)

होता व पृथ्वी में ही लीन होता दिखता है हाँ क्रिया भेद के कारण व्यवहारार्थ भिन्न भिन्न नाम रख लिए इसके अतिरिक्त वोलो क्या यथार्थ है और हां ये पृथ्वी शब्द भी तो मिथ्या ही है यथार्थ नहीं ये भी अपने कारण परमाणुओं मं मिल जाती है और सत्य तो परमाणु भी नहीं ये भी अविद्या द्वारा मनसे कल्पित किय गये है जिनसे ये प्रपञ्च रचा दिख रहा है हे राजन्! इस प्रकार कृशता-स्थूलता-अणुत्व-(लघुता) वृहत् (महत्) कार्य कारण चेतन अचेतन आदि गुण से युक्त ये जगत् भ्रम है—ये द्रव्य-स्वभाव-आशय-कालकर्म आदि भी भगवान् की अजा (माया शक्ति का ही कमाल है)।

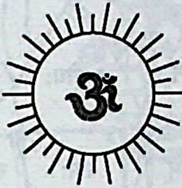
जडभरत जी-राजन् विशुद्ध परमार्थरूप अद्वितीय ज्ञान जो आन्तर्वाह्य भेदे रहित है वही सत्यब्रह्म है वह प्रत्यक् (सब में रहने वाला) प्रशान्त परमात्मा ही भगवान् और वासुदेव नाम से कवियों द्वारा कहा गया है।

तेरह प्रकार के स्तोभ सामवेद में हैं उनका तात्पर्य निर्णय—१. हाउ = मनुष्यलोक, २. हाई = वायुलोक, ३. इह = आत्मा है, ४. अथ = चन्द्र लोक, ५. ई = अग्नि, ६. ऊ = सूर्यरूप, ७. ए = आवाहन रूप, ८. औहोई = विश्वेदेवा, ९. हिं = प्रजापती, १०. स्वर = प्राण, ११ या = अन्न, १२ वाक = विराट, १३. हुम् = अनिरुक्त हे सब में व्याप्त वर्णनातीत निर्विशेष ब्रह्म हैं। जो सामवेद के रहस्य को इस प्रकार जान लेता है उसके लिए वाणी स्वतः अर्थ प्रकट करती है।

ॐ–रसतमः, परमः, परार्ध्यः, अष्टमः।

उद्गीथम्। वाक्–ऋक्। प्राणः–साम। } मिथुनम्

(आदित्यदृष्ट्या उद्गीथमुपासित)



यश्चासौतपति तमद्गीथमुपासीत् उद्यन्तमोभयमुपहति। उपहन्ता भयस्यतमसो भवति य एवं वेद।

१. उत्–प्राणः, द्यौः। २. गी–वाक्, गी। ३. थम्–अन्नम्, पृथिवी।

(छान्दोग्योनि.-१/३)

१. उत्–आदित्यः, सामवेदः। २. गी–वायुः, यजुर्वेदः। ३. थम्–अग्निः, ऋग्वेदः–अन्नवानन्नादो भवति यएतान्येवं विद्वानुद्गीथाप्सराणि उपास्ते।

ॐ और उद्गीय रसतम है (सभी रसों में उत्कृष्ट रस है) परमात्माकाधाम है अष्टम है वाणी ऋचा है तथा प्राण ही साम है। ॐ ही उद्गीथ है। ये वाणी प्राण तथा ऋचा एवं साम का जोड़ा है। ये भिन्न नहीं परस्पर दम्पत्ति समान एक-दूसरे के पूरक है।

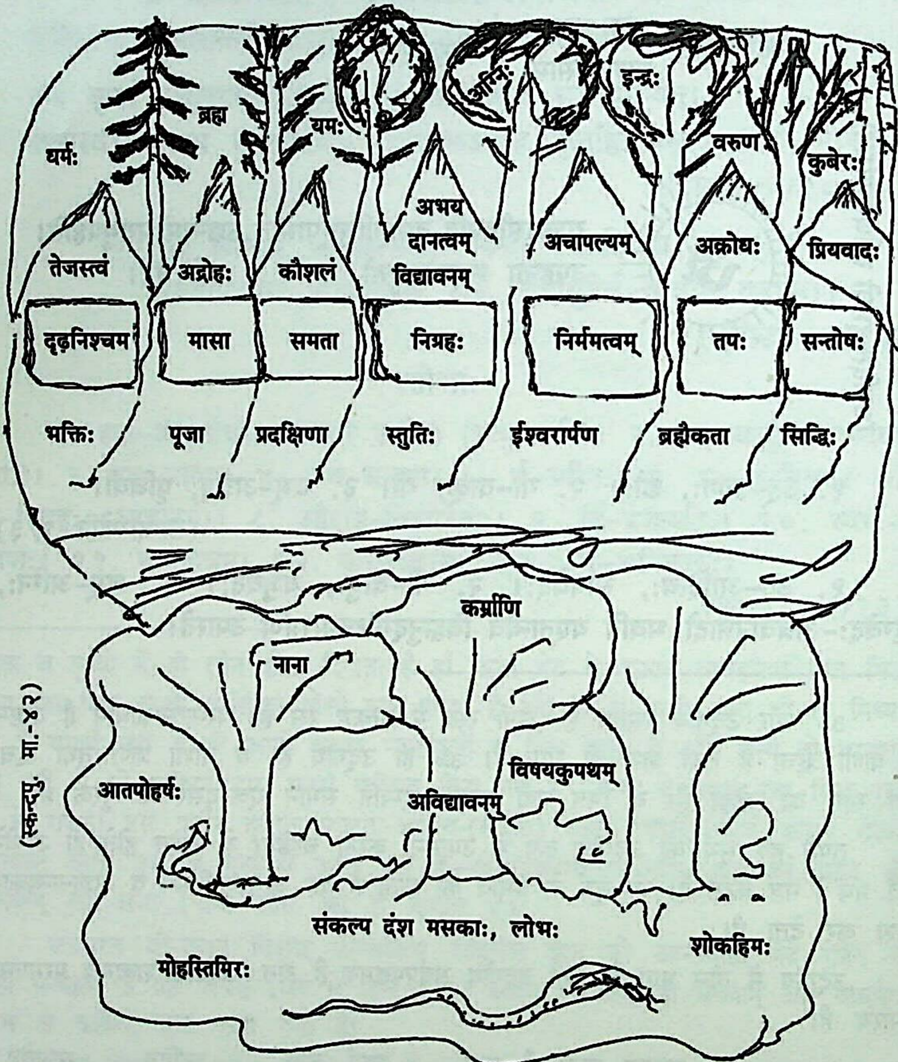
तपते हुए सूर्य की उद्गीथ रूप में उपासना करनी चाहिए। ये उदित होते ही अन्धेरे एवं भय ो नष्ट करते हैं। जो सूर्य के प्रभाव का ज्ञाता है वह जन्मरणादिभय व अज्ञानान्धकार नाश कर देता है।

उद्गीय में तीन भाग हैं। यही उद्गीथ सर्वप्रपञ्चमय है अतः उद्गीथ शब्दमय परमात्मा उपास्य है।

उत् = प्राण	(उत् उत्थान वाची है प्राण से ही उत्थान होता है)	स्वर्ग लोक	आदित	सामवेद
गी = वाणी	(वाणी को गी कहा जाता है)	अन्तरिक्ष लोक	वायु	यजुर्वेद
थ = अन्न	(जगत् अन्ना धारा धारित है)	पृथिवी लोक	अग्नि	ऋग्वेद

उद्गीथ का उपासक सकल भोग साधन युक्त एवं तद्भोग क्षमता बान हो जाता है।

यत्रगत्वा नशोचन्ति न दुष्यन्ति तद्विदः।



विद्यारूपी वन में प्रवेश करने पर तत्वेवेत्ता न शोक करते हैं दूषित होता है भक्ति से दृढनिश्चय उससे तेजस्विता उससे धर्म होता है, पूजा से दिव्यता-अडोह-ब्रह्म-ईश्वरार्पण से-ममता हानि, फलत शान्ति अचं चलता आती है, ब्रह्मैकता से तप-से अक्रोध सिद्धि सन्तोष-प्रिय वाक् प्राप्त होता है ये आनन्दमूलक है

शब्दजातम् शेषं च, धत्ते देवी सरस्वती।
अर्थरूपं यदखिलं, धत्ते देवो विनायकः।। (वायु संहिता)
विकाराः ← रामः → संकोचः। (भुशुण्डिरामायणे १०/२२)



१. मत्स्योऽस्य हृदयम्। २. कूर्मोधारण शक्तिः। ३. वराहोभुजयोर्बलम्। ४. नारसिंहो महान्रोषः। ५. वामनः कटिमेखला। ६. भार्गवोऽस्य परोधर्मः। ७. बलरामश्च संमदः। ८. बुद्धस्तु करूणा साक्षात्। ९. कल्की चैतस्य संस्मृतिः। १०. कृष्णोऽशाशः। १२. रामस्तु भगवान्स्वयम्।

ब्रह्मविष्णुश्च रूद्रश्च, महेन्द्रः श्रीस्तथैव च।
सनातनस्तथाधमो, राम एव स्वयं द्विज।। (भुशण्डिरामायणम्-९)

ये दुखमूलक है। अविद्यारुपीवन में मोहान्धकार है, लोभ सर्प है, शोकशीत है, संकल्प मशक देश है हर्ष रुपी गर्मी है, विषय रूपी कुमार्ग है विभिन्न विभिन्न विभिन्न कर्म ही इसका विस्तार है।

सम्पूर्ण शब्द समूह को धारण करने वाली ज्ञानाधारा सरस्वती है सम्पूर्ण अर्थ समूह की धारा करने वाले है गणेश जी महाराज।

ब्रह्माण्ड का विकास व संकोच श्रीराम ही है। मत्स्यावतार इनका हृदय, कूर्मावतार धारणाशक्ति, वराह भुजवल, नृसिंह-क्रोध-वामन, कटि मेखला, परशुराम परमधर्म, बलराम संमद, बुद्ध-करुणा, कल्कि अवतार-चैतन्य स्मरण, कृष्ण = अंशांश, राम = स्वयं भगवान् हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द-लक्ष्मी तथा सनातन धर्म—हे द्विज सबकुछ राम ही है रामातिरिक्त कुछ नहीं है।

रावण कहता है कि—शिवपूजा के अतिरिक्त मैं धर्म को नष्ट कर दुंगा शिवपूजन भी केवल मैं ही करू और वह केवल मेरे सुख के लिए हो।

धर्मं च हन्मि शिव पूजनतोऽतिरिक्तम्।
सोपि स्वमात्र कृतएव सुखाय मेस्तु।। (रावणः) (भुशु.रा. १७)

रम्यातिरम्येमिथिलाप्रदेशे, सुवर्णभूमौखलु यज्ञवेद्याम्।
माणिक्यदिव्यात्कलशान्तरालतः, समुद्गता कोटि तडित्छदेव।।
(पशिव.ख. ६)

सीता

सुवर्णहं कृष्टामां भूमौ, वेज्ञां मरूस्यच।
सुवर्णकलशी मध्यात्, जलधारा विनिर्ययुः।
तासां मध्ये विस्फुरन्ती, कोटिचन्द्रार्क दीधितिः।।
सद्यः प्रादुरभूदेवी, सहजा जनकालये।
धवले माधवेमासि, नवम्यां मङ्गले दिने।
शुभे भद्राख्य नक्षत्रे, शुभयोगे च जानकी।।

गण्डकी

शालिग्राम गण्डकी शिलाक्षेत्रे, गण्डक्यस्ति महानदी। विष्णु शैलं विनिर्मिद्य, प्रवाहजलगामिनी। श्रीर्नामब्रह्मणे धर्मः, परस्यानन्दविग्रहः। ब्रह्मानन्द स्वरूपेयं।
(पशिव.ख. ७)

श्रीसीता प्रादुर्भाव

अत्यन्त रमणीय मिथिला प्रान्त में स्वर्णमयी भूमि की यज्ञ वेदी में माणिक्य निर्मित दिव्य कलश में से करोड़ों विजलियों जैसी तडित लताओं जैसी) दिव्य प्रभा वाली श्री सीता जी समुद्भूत हुई।

स्वर्ण के हल से जोती गयी भूमि पर स्थित यज्ञ वेदी स्वर्णमय क्लश से जलधारा निकली उस जलधार के बीच से करोड़ों चन्द्रों की आभावाली देवी प्रादुर्भूत हुई जनक के घर में—वैशाख शुक्लपक्ष की नवमी को मंगलवार के दिन शुभ पूर्व भद्रा नामक नक्षत्र व शुभयोग में जनक नन्दनी का भवतरण हुआ।

गण्डीकी

शालिग्राम शिला क्षेत्र में गण्डकी नाम की महा नदी है। विष्णु पर्वत को भेदन करके प्रवाहित होती है। परमानन्द विग्रह ब्रह्म का जो श्री नामक धर्म है। ये दिव्यनदी ब्रह्मानन्दस्वरूपा है।



१. अ–निर्गुणं ब्रह्म।
ई–मायाचित्कला।
उ–जगदीश्वरः।
ण्–अभूत।

२. ऋ–ईश्वरः।
ऌ–मनोमायां।
क्–अदर्शयत्
} मनोवृत्तिमदर्शयत्

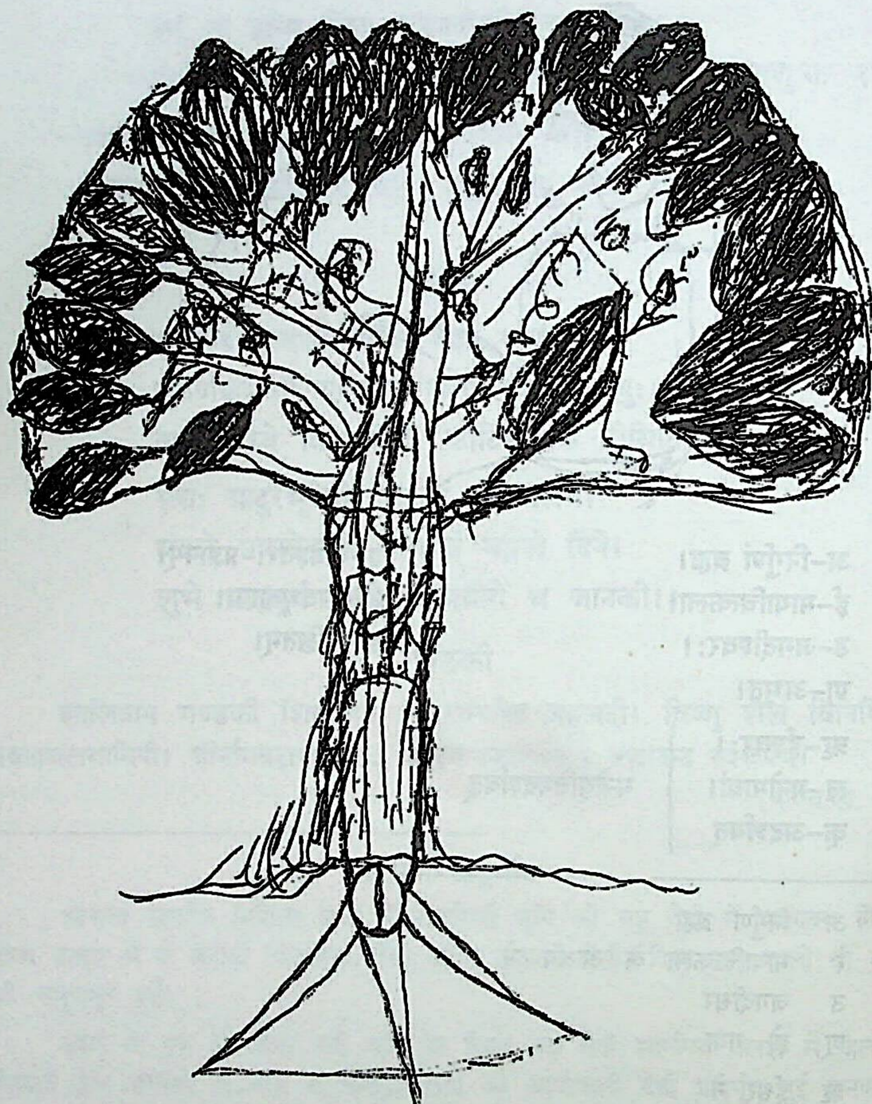
३. ए–मायेश्वरः-प्रज्ञानम्।
ओ–सर्वभूतात्मा।
ङ्–निश्चितम्।

---

१. अ निर्गुण ब्रह्म
र मायाचित्कला के आश्रय से
उ जगदीश्वर
ण् हो गया

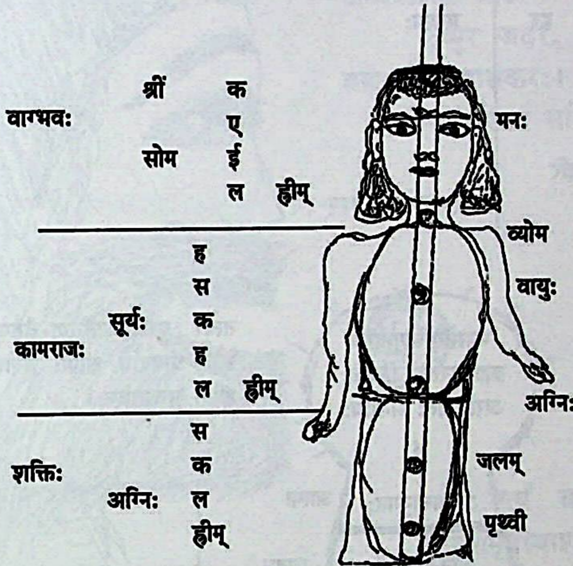
२. ऋ ईश्वर ने
ऌ मनोमाया मन की वृत्ति को
क् दिखाया

३. ऐ मायेश्वर प्रज्ञान है।
ओ सभी जीवों का आत्मा है
ङ ये निश्चित हुआ



विश्वरूपी वट वृक्ष की जड़ है आकाश वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी ये मध्य वर्ती भाग युक्त स्कन्ध है शाखाये हैं देवता इसके पत्ते है, दैत्य कोमल को पले समूह है, मनुष्य इसके प्रतान है नाग पुष्प हैं, जीव बहुतप्रकार के तने है डालियां टहनी है ज्ञान ही इसका पक्व फल है हेमन्तदेव किन्तु आप तो इसके आदि बीज हैं।

नादनवकाः एभ्योजातावैखर्य्यामातृकाः–१. अविकृतः–अः। २. शून्यः–कः। ३. स्पर्शः–चः। ४. नादः–टः। ५. ध्वनिः–तः। ६. बिन्दुः–पः। ७. शक्तिः–यः। ८. बीजः–शः। ९. अक्षरः–लः। (वरिवस्यारहस्ये)



षडाब्जारण्यानी
त्रितययुतखण्डे निवससि।
(सुभगोदयस्तुतिः-२३)

नौ नादों से वैखरी मातृका उत्पन्न होती है—१. अविकृत = अवर्ण, २. शून्य = कवर्ग, ३. स्पर्श = चवर्ग, ४. नाद = तवर्ग, ५. ध्वनि = तवर्ग, ६. विन्दु = पवर्ग, ७. शक्ति = यवर्ग. ८. बीज = शवर्ग. ९. अक्षर = लवर्ग।

वाग्भव कूट (सोम) क श्रीं
ए
इ
ल ही मन

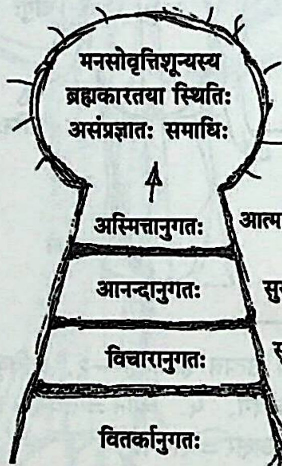
ह
स
कामराज कूट (सूर्य) क नभ
ह वायु
हीं
स तेज



ग्रन्थयः

(सुभगोदयस्तोत्रम्-३१)

तस्यपरं
वैराग्यमुपायः
ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा
संप्रज्ञातसमाधि
(योग द. १/१६-१७)



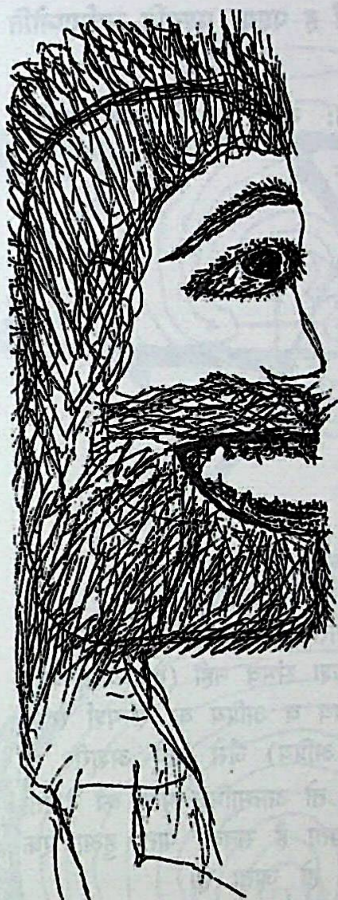
तत्परं पुरुषख्यातेगुण-वैतृण्यम्। प्राप्तं प्रापर्णयं क्षीणः क्लेशाः। क्षीणे भवसंक्रमः।

आलम्बनानि।

शक्तिकूट (अग्नि	क	
	ल	जल
	ह्रीं	पृथ्वी

चन्द्राकार सदृश	आज्ञाचक भ्रूमध्य	ब्रह्मा	
सूर्याकार सदृश	अनहद हृदयस्थ	शिव	ये ग्रन्थियाँ हैं
अग्निरूप	स्वाधिष्ठान	विष्णु	

वह वैराग्य सर्वोच्च है जो पुरुष ख्याति (प्रकृति पुरुष विवेक) विवेकख्याति द्वारा गुणों से तृष्णा रहित हो जाये और निश्चय कर ले, क्लेश क्षीण हो गये, भव बन्धन क्षीण हो गया, जो प्राप्तव्य था वह प्राप्त हो गया।



कालोलोक भयंकरः।
श्यामः कठिन सर्वाङ्गः,
अर्ध्वकेशार्त जटिलः
दुष्पूर जठरः सदा।।
ब्रह्माण्डैक ग्रासकरः।
गम्भीरवन सम्मितः।।
(भुशुण्डि रा. ३/१)



मर्त्यं वा इदं शरीर मात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठान मावै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वा सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृनातः।। (छा.उ. ८/१२/१)

इसके अनन्तर क्रमशः वितक-विचार-आनन्द एवं अस्मिता आदि स्वरूपों के सम्बन्ध से चित्त वृत्तियों का निरोध ही सम्प्रज्ञात समाधि कहलाता है इन से परे जो अवस्था है मन जहाँ वृत्ति शून्य हो ब्रह्माकार स्थिति में पहुंच गया है वह असम्प्रज्ञात समाधि है। इससमाधि की प्राप्ति का उपाय परं वैराग्य है, ये ज्ञान की पराकाष्ठा है।

वितर्कानुगत समाधि का आलम्बन आश्रय है स्थूल देह—विचारानुगत का सूक्ष्म शरीर, आनन्दानुगत का सुख, अस्मितानुगत का आश्रय है आत्मा।

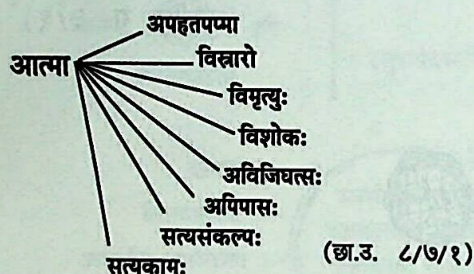
श्याम वर्णवाला, लोक को भयप्रदान करने वाला, दृढअंग वाला, उलझे हुए ऊर्ध्व केशवाला, सदा भूखा, सकल ब्रह्माणु को ग्रास बनाकर खाने वाला, गंभीर वन के जैसा काल सबके ग्रसने के लिए सन्नद्ध है प्रजापति इन्द्र से कहते हैं, ये शरीर तो मरणधर्मा

न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां, सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश स एकधा भवति।

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृति लभ्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। (छा.उ. ७/२६/२)

आहारः–शब्दादि विषयविज्ञानम्।

शुद्धिः–रागद्वेष मोहदोषै रसं स्पर्शः। (शंकरभा.)



(छा.उ. ८/७/१)

है तथा मृत्यु द्वारा गृहीतयाग्रस्त है, किन्तु यह नाशवान शरीर इस अमृत अशरीर आत्मा का अधिष्ठान है शरीर सहित आत्मा के प्रिय अप्रिय का नाश संभव नहीं (देहाध्यास वाला तो इनमें अटका ही रहता है) किन्तु अशरीर आत्मा को प्रिय व अप्रिय का संस्पर्श स्वप्न में भी संभव नहीं (देहाध्यास रहित का कौन प्रिय कौन अप्रिय) जैसे वायु अशरीर है।

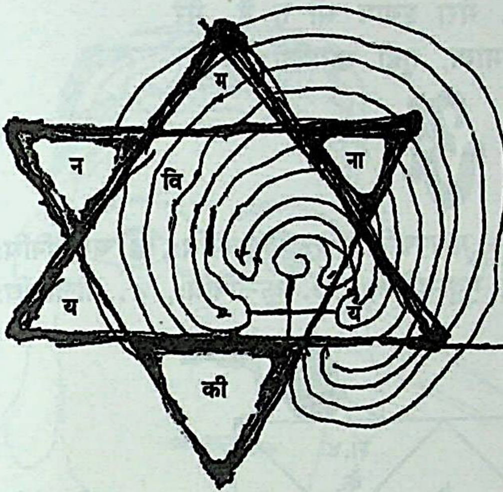
सनत्कुमार जी नारद जी कहते हैं हे नारद! विद्वान् न तो आत्माभिन्न मृत्यु को देखता है न रोग को न दुःख को वह तो आत्मतया सबको देखता है सबको पाता हुआ एक हो जाता है एकत्व सम्पादन कर स्वेच्छया नानात्वावच्छिन्न हो जाता है।

आहार शुद्ध होने पर अन्तःकरण शुद्ध होता है अन्तः करण शुद्ध होने पर स्मृति (विषयोपलब्धि रूप विज्ञान की शुद्धि) निश्चल हो जाती है स्मृति प्राप्त्यनन्तर ही सर्वविध ग्रन्थियों की निवृत्ति हो निश्चल जाती है। विशेष ध्येय है विचारणीय है अनमोल है।

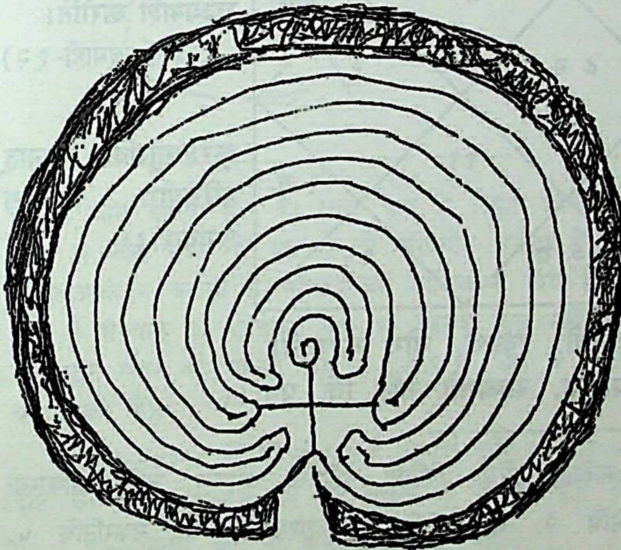
आहार का तात्पर्य है—शब्द रूप रस गन्ध स्पर्शोदि विषय का विज्ञान इन्द्रियां इनका भोग करती है अतः ये पवित्र हो तब काम बने भोजन भी अर्थ करना बुरा नहीं है पर वास्तविकार्थ है)।

शुद्धि = रागद्वेष मोहादिदोषों से मुक्त होना ये कामक्रोध रागद्वेष छू भी न सकें।

आत्मा-प्रजापति इन्द्र व विरोचन को कहते हैं—ये आत्मा पापशून्य, बुढापारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, भूखरहित, प्यासरहित सत्यकाम एवं सत्य संकल्प है (पापपुण्यभूखप्यास जरा मृत्यु तो अनात्मभाव है)





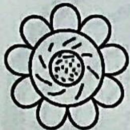


चक्रव्यूहः।।
एकमार्गः
अष्टधाकुण्डलीकृतः।
(शुक्रनीतिसारः ४)

आठ प्रकार की कुण्डली से (मण्डल) कुण्डरी से निर्मित एक मार्ग वाला व्यूह चक्रव्यूह होता है।

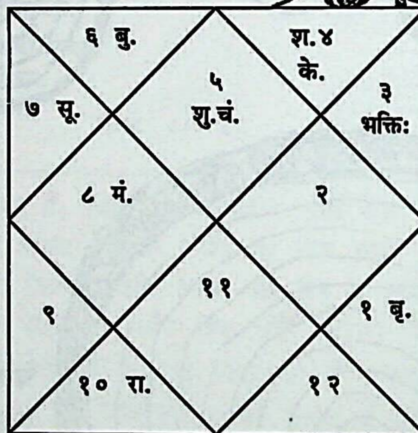
मेरा राम भी तू है, मेरा श्याम भी तू है, मेरे
तन मन में तूही समाया, तूही खयालों में।।

ॐ



१. पद्मनिधिः, २. महापद्मनिधिः, ३. शङ्खनिधिः, ४. मकरनिधिः, ५. कच्छपनिधिः, ६. मुकुन्दनिधिः, ७. कुन्दनिधिः, ८. नीलनिधिः, ९. सर्वनिधिः।

केन्द्रत्रिकोण नेतारौ,
दोषयुक्तावपिस्वयम्।
सम्बन्धमात्रादूलिनौ,
भवेतां योगकारकौ।।
(लघुपाराशरी)



व्ययगः शनिः निज राज्यनाशं करोति।
(लग्नवंमाही-१२)

क्रूरश्चतुर्थके लग्नात् दरिद्रयोगः, पित्तृपक्ष क्षयंकरः।।

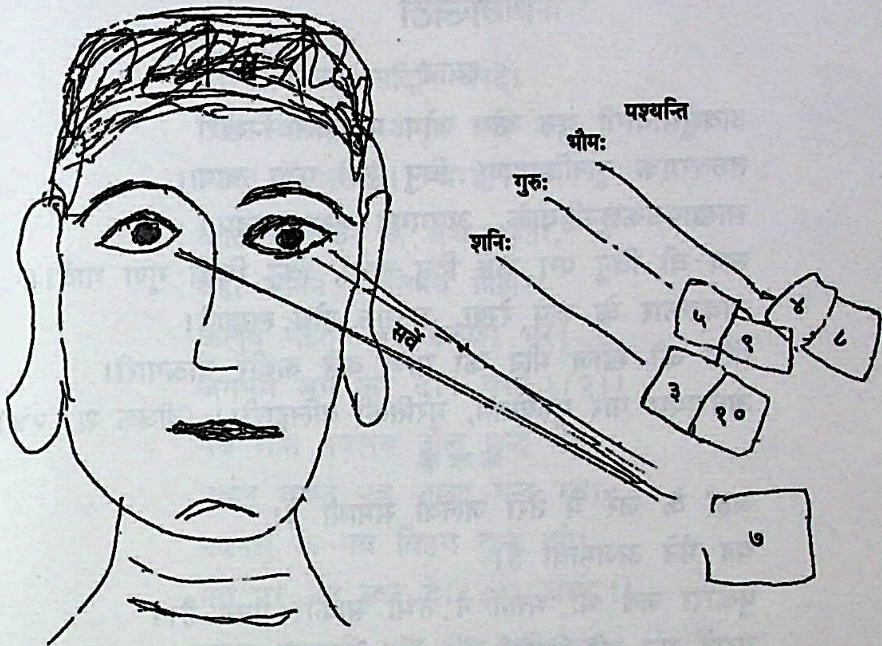
केन्द्रत्रिकोणयतयो, रेकत्वे, योग कारकौ।
अन्यत्रिकोणपतिना, सम्बन्धो यदि किं पुनः।।

आठ सिद्धियाँ-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य।

नौ निधियाँ—१. पद्मनिधि २. महापद्मनिधि ३. शंखनिधि ४. मकरनिधि ५. कच्छनिधि ६. मुकुन्दनिधि ७. कुन्दनिधि ८. नीलसिधि ९. खर्वनिधि अमरकोश।

केन्द्रों के स्वामी तथा त्रिकोण स्वामी

(१-४-१०) ये केन्द्र संज्ञक भाव है। (५-९) ये त्रिकोण नामक है यदि दोष युक्त भी हों तब भी इनका परस्पर सम्बन्ध मात्र होने से ये बली तथा कारक होते हैं। केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश ये एक स्थान पर हों या परस्पर स्थानपरिवर्तन करते हों या दृष्टि सम्बन्ध



हो तो योग कारक होते है। व्यय भाव में स्थित शनि निजराज्य का नाश करा देता है लग्न से चौथे स्थान में ग्रह हो तो दरिद्रियोग बनाता है तथा पितृ पक्ष का क्षय कर्ता है दरिद्र=अकिंचन बनाता है भगवान को अकिंचहनी प्रिय हैं, नमोऽकिचनवित्ताय अकिंचनों के वित्त है भगवान् को छोड़कर कुछ भी जिनके पास नहीं हैं वे है अकिंचन सभीग्रह अपने से सप्तम स्थान को सम्पूर्ण दृष्टि से देखते है (जहाँ वे कुण्डली में स्थित है वहाँ से सप्तम को देखते है)।

भौम—४-८ को भी देखता है सम्पूर्ण दृष्टि से। गुरु—५-९ को भी देखता है सम्पूर्ण दृष्टि से। शनि—३-१० को भी देखता है सम्पूर्ण दृष्टि से।

प्र.—सातवे को तो सभी देखते हैं क्यों?

उ.—सातवाँ घर भाव पत्नी का है उसे देखना रखाना तो पड़ेगा ही पूरीन जर रखते है

मंगल—४ साम्राज्य भूमिभव तथा ८ मृत्यु उम्रादि को देखता है क्यों क्योंकि वह सेनापति है अत: इसका कर्तव्य है इन पर नजर रखे। गुरु—आचार्य है अत: ५ विद्या ९ धर्म भाव को भी पूरी नजर से है। शनि—सेवक है, सैनिक है—अत: ३ पराक्रम भाव व १० कर्म भाव पर पूर्णदृष्टि रखता है।

भजन

ध्यान

अवधूसोयोगी गुरु योग जोग पद करे निखेरा
तरुवरएक मूलविनडाण, विनु फूले फल लागा।
साखापचकछूनहिवाके, अष्टगगन मुख गाजा।।
रूप वौ विनु पग कह विनु तुम्बा, विनु जिह्वा गुण गावै।।
गावनकार के रूप रेखा, सतगुरु होय लखावै।
पंछि को खोज मीन को माण कहै कबीर दोऊगारी।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, मूरतिकी बलिहारी।। (बीजक श. २४)

***

जहाँ के जर्रे में तेरा जलवा समाया है।
यह मैने अजमाया है।
पुकारा जब भी भक्तों ने तभी साकार पाया है।।
मुरादें मन की मिलती हैं, तेरे ही आसियाने से।
जिसे मिल जाय तू माता है क्या लेवे जमाने से।
उसे क्या चाहिये जिसने तेरा दीदार पाया है।।१।।
तेरे दरबार में माता, झुके सरताज दारों का।
जहाँ में एक तूही है सहारा वेसहारों का।।
खुशी है वो बसर जिस पर तेरी रहमत का साया है।।२।।
कहीं गौरी कहीं सीता, कही दुर्गे भवानी तू।
मुसीबत देश पर आई बनी झाँसी की रानी तू।
बना कर भेष चण्डी का ये महिषासुर गिराया है।।३।।
असम कश्मीर की घाटी, तेरे कानों के कुण्डल हैं।
जो फैला दूर उत्तर में, हिमाचल तेरा अंचल है।।
कतर दो हाँथ दुश्मन का जो इस आँच में आया है।
जहाँ के जर्रे में तेरा जलवा समाया है।।४।।

***

शारदाराधना

वर दे वीणा वादिनि वरदे।
प्रिय स्वतन्त्ररव अमृत मन्त्र नव।
भारत में भर दे।। वरदे.।।१।।

काट अंध उर के बन्धन स्तर,
वहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर।
कलुष मेदतम हर प्रकाश भर।
जगमग जग कर दे।। वरदे.।।२।।

नव गति नवलय ताल छन्द नव।
नवल कण्ठ नव जलद मन्द्र रव।
नवनभ के नव विहग वृन्द को।
नव पर नव स्वर दे।।३।। वरदे.।।

मृदुल मञ्जुमति रति नित हरि पद,
पाप विरति गति अधिगति परपद।
जनमन के अभिलक्षितनिरन्तर।
शिवमय रस भर दे।। वरदे.।।४।।

***

पन्थी माहि पंथ चलिआयो, सो वह पंथ लख्यो नहि जाहि।
वाहीपंथ चल्ये उठि पंथी, निर्भयदेश पहूँच्योजाय।।

तहाँ दुकाल परै नहि कबहू, सदा सुभिक्ष रह्यो ठहराय।
सुन्दर दास दुःखिन कोऊ दीसै, अक्षय सुख में रहे समाय।।

(सुन्दरविलास)

***

प्रकृति की तो ईद मुझसे है

मंगल

खुद खुदा हूँ सरूरे पाक हूँ मैं।
खुद खुदा गरूरे पाक हूँ मैं।।

वाहिद मुजर्रद लाशरीको गैर सानी बे बदल।
↓ ↓ ↓ ↓
एकं असंग अपूर्व निर्विकार

तनहास्तम दर वैदरोबर यकतास्तभ।
↓ ↓
एक थलेजले

नुक्तो जुबां का राम तक आपहुँचना दुशबार है।।
↓
शब्द वाणी

राम खुद प्यार है नहीं प्यास।
राम मिलता नहीं नहीं न्यारा।।

नयनविषयमपि किशलय तल्पम्।
कलयति विहित हुताश विकल्पम्।।७।।

श्री जय देव मणितमिति गीतम्।
सुखयतु केशव पदमुप नीतम्।।८।।

राधिकाविरहे तव केशव! माधव! वामन! विष्णो!।।

***

इल्मवाहिद सरूरो अकबर है। अद्वैतज्ञानं, आनन्दघनः।

क्या बड़ाई है वेचना स्वरूप को मिथ्या तन के हाथ।

मैं जिस्म हूँ आत्मा जिस्म है खाऊँ पीऊँ बन्दा ए जिस्म ही बने रहना	सब गुना हों का घर यह कलियुग है।

दान तीन किस्मों का–अन्न इल्म इरफा।

***

आत्मज्ञान

दान दूरकां का तो अबद दायक–नित्य। सालिलोमालिक–विरक्तभक्त।

हरमकरं मुझे हरमकां मे मै।
झूठ झूठों को ही मुबारक हो।
राग मीठी मीठी सुर मैं हूँ।
दमक होरे की आवे दूर मैं हूँ।।

***

उमरों की उम्मिदें उड़ा छोटी बड़ी सब ख्वाहिसें।
दीदार कर लीजिये मजा जब उड़ गई दीवार है।।
आग मेरा ही एक तजल्ला है। (राम वर्षा)
मुझसे सब जिस्म बुल बुले से हैं।
एक टूटेगा और कायम हैं।।
तर्क दुन्या की आरवरत की तर्क।
तर्क मौला की तर्क की भी तर्क।।
तुझे इश्के दिल से ही काम था
न कि अस्थिखानों का फूकना।
गजब एक शेर के वास्ते तूने
नैस्ता (वन) को जला दिया।।
दाखिले (अज्ञाने) जैहल सारे (विरोध) कितने हैं।

आत्मा पाक हस्त वरतर है–शुद्ध, सत्ता, श्रेष्ठ। (रामवर्षा)

आत्मा जिश्म को हो ठैहराना।
वूटा पापों का लगवाना है।।

***

तेरी मेरेस्वामी ये बाँकी अदा है।
कहीं दास तू है कहीं खुद खुदा है।
कहीं कृष्ण है तू कही राम शिव तू।
कहीं संगी है तू कहीं तू जुदा है।।
तेरे प्रेम के सिघुं में मग्न हूँ मैं।
वका में फना है फना में वका है।।
मुनज्जा (पावनता) तेरी जात तशवीह (प्रमाण) से फारग।
मगर रंग तशवीह का तुझ पर चढ़ा है।।
नजारा तेरे राम हर जा पे देखूँ।
हर नगमा ऐ जान? तेरी सदा है।। (रामवर्षा)
मंजूर नालायक को होता है इलाजे दर्दे इश्क।
जब इश्क ही माशूक हो क्या सिहत में बीमार है।।
क्या इन्तजार ओ क्या मुसीबत क्या बला क्या खौर दस्त।
शोला मुवारिक जब भड़क उठा तो सब गुलनार है।।
दौलत नहीं ताकत नहीं तालीम नै तरकीम नै।
साहेगनी को तो फकत इफ़र्नि हक दरबार है।।

***

मंसूर से पूँछा किसी ने कूचये जाना की राह।
खुब साफ दिल में राह बतलाती जुबाने दार है।।
इस जिस्म से जाँ कूद कर, गंगाये वह दत में पड़ी।
करलें महोछा जानवर, ला वह पड़ा सुरदार है।।
तशरीफ लाता है जुनूं चश्मों सिरो दिल फर्शेराह।
पैहलू में मत रखनाखिरद रोड यह वदकार है।।
पल्ला छुटा जब जिस्म से सिर से टली अपनी बला।
कैलकम ऐ तेगे खूबको क्या मर्ग लज्जतदार है।।

एहलो अयालो मालोजर सब का है वार राम पर।
अस्प पै वोझसाथघर सिर पर उसे उठाये क्यों।। (हि.सं.प.)
संगीत पुस्तकों का सूची पथ। (ऋ.भा.)
गोपालराव गोलवल्क। रामचन्द्र संगीतालय गाडवे चीगोर लस्कर-ग्वालियर। (म.प्र.)

***

७. है रात काली घटा मयानक
गजब दरिन्दे है वाये जगत।
अकेला रोता है तिल्फ या रब?।।ख.।।

८. है कैसी आँधी यह जोशे मस्ती,
कि कैसा तूफां सरूर का है।
रही जमी मह न मेहरो कौकब्र।।ख.।।

९. थी मन के मन्दिर में रक्स करती।
तरह तरह की सी ख्वाहिसें मिल।
चिरागेखाना से जल गया सब खड़े है.।।

१०. है चौड्सो यह खेल दुन्या।
लपेट गंगा में इसको फेंका।
मरा है फीता उड़ा है अशहब्र खड़े हैं।।

११. पड़ा है छाती पर घर के छाती,
कहाँ की दुई कहाँ की वहदत।
है किस को ताकत वियानकी अब।।ख.।।

१२. यह जिस्मे फर्जी की मौत का अब।
मजा समेटे से नहीं समिटता।
उठाना दुभर है वै हमें कालिब।।ख.।।

***

भैरवी/कहरवा

१. है मौत दुन्या में बस गनीमत,
ख़रीदो राहत को मौत के भावों।
न करना चूं तक यही है मज़हब।
खड़े हैं रोम और गला रूके है।।

२. जिसे हो समझे कि जागरत है।
ये ख्वाबे गफलत सख़त है ऐ जां।
कलोरोफारम है सब मतालब, खड़े हैं रोम.।।

३. ठगों को कपड़े उतार दे दो।
लुटादो अस्बावो मालजर सब।
खुशी से गरदन पे तेग धर तब खड़े है.।।

४. जो आरजू को हैं दिल में रखते।
हैं वोसा दीवान सग को देते।
वे फूटी किस्मत को देख जब तब खड़े।।

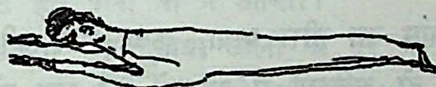
५. कहा जो हरि ने उड़ा दो टुकड़े।
जिगर के टुकड़ों के प्यारे अर्जुन।।
यह सुन के नादां के खुश्क हैं लब खड़े.।।

६. लहूँ का दरिया जो चीरते हैं, हैं तख्त पाते वही हकीकी।
ताल्लुकों को जला भी दो सब, खड़े हैं रो.।।

***

यह तो बतादो ऐ मुरलीवाले।
मैं कैसे तुम्हारी लगन छोड़ दूँगा।।
तेरी दयापर है, यह जीवन मेरा।
मैं कैसे तुम्हारी शरण छोड़ दूँगा।।१।।

न पूँछो कि ये मैने अपराध किया क्या।
कहीं यह जमी आसमा हिल न जाये।
न जब तक जी क्षमा तुम करोगे।
मैं कैसे तुम्हारे चरण छोड़ दूँगा।।२।।
बहुत ठोकरें खा चुका जिन्दगी में।
तमन्ना फकत तेरे दीदार की है।
न जबम तक प्रभु जी दरस होगा तेरा।
मैं कैसे तुम्हारे भजन छोड़ दूँगा।।३।।
तारो न तारो तुम्हारी है मरजी।
ये निर्धन की भी आखिरी बात सुन लो।
अगर न पतित को प्रभु जी उबारा।
तो एक दिन इसी दर दम छोड़ दूँगा।।४।।



वृज के नन्दलाला राधा जी के साँवलिया।
सब दुःख दूर हुये जब तेरा नाम लिया।।
मीरा पुकारी जब गिरधर गोपाला।
ढल गया अमृत में विष का भरा प्याला।
कौन मिटाये उसे जिसे तूने राख लिया।।जब....
जब तेरे गोकुल में आया दुख भारी।
एक इसारे में सब विपदा टारी।
झुक गया गोवर्धन तूने मुख मोड़ दिया।।जब....
नैनों में श्याम बसेम मन में वनवारी।
सुखविसराय गई मुरली की धुन प्यारी।
वृज के मधुवन में रास रचाय रसिया।। जब....
नाम लिया। सब दुःख दूर हुये।।



***

अंधाहूली की जड़ पानी में पीस लेप करे ओठ की सफेदी दूर हो।।
(इलजुलगुर्वा)

***

तन तम्बूरा तार मन, अद्‌भुत यह है साज।
हरि के कर से बाजता, हरि की है आवाज।।

तन के तँबूरे में साँसों के तार वो लें।
जय सियाराम राम, जय राधेश्याम श्याम।।

अब तो इस तन के मन्दिर में, प्रभु का हुआ बसेरा।
मगन हुआ तन मेरा छूटा, जनम जनम का फेरा।।
मन की मुरलिया में, सुर का संसार बोले।। जय सि.।।

लगन लगी थी राधा जी से, जगी थी जगमग ज्योती।
राम नाम का हीरा पाया, कृष्ण नाम की मोती।
प्यासी दो अखियों में आँसुवों की धार बोले।।जय सि.।।

योगी हुआ अब तेरे रंग का छूटा जंग की फाँसा।
बाहर से अन्दर मन आया, देखा रास तमासा।
हिय की कुठरिया में अनहद नाद बोले–
जयसिया राम जय राधेश्याम।।

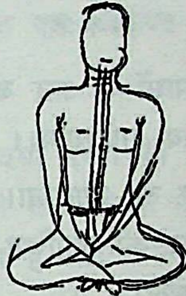
***

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी दिन दिन अधिक चली।।

जहँ जहँ डोलूँ सो परिकरमा जो कछु करूँ सो सेवा।
कहौं सो नाम सुनो सो सखन खाउँ पियउँ सो पूजा।।

गिरह उजाड़ एक सम लेखों भावमिटाऊँ दूजा।
खुले नैन पहिचानों हँसिहँसि सुन्दर रूप निहारौं।

सबद निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुन छूटै ऐसी तारी लागी।।
कह कबीर यह उन....... सो परगट करि गाई।
सुख दुख से कोई परे परम पद तेहि पद रहा समाई।।



मुझे अपना जीवन बना ना न आया।
रूठे हरि मना ना न आया।।
भटकता रहा दुनिया वालों के दर पर।-अन्तरा
रहा पाप ढोता मैं सारी उमर भर।
जगत के हरि को रिझाना न आया।। मुझे.
यह जगह सराये सभी को जाना।
यहाँ रहने वालों से दिल वा लगना।।
फँसा दिल जगत मैं छुड़ना ना आया।। मुझे.
किसी काम ना आई न मेरी कामाई।
हरि नाम दिन यहि आयु गवाई।।
हरि नाम का धन कमाना ना आया।। मुझे.
इन्हीं की शरण मिलेगा ठिकाना।
मन मेरा हो जा हरि का दिवाना।।
दर पर प्रभु के सिर झुकना ना आया।
मुझे अपना जीवन बनाना ना आया।
रूठे हरि को मनाना न आया।।

❀ ❀ ❀

सूर संग्राम को देख भागै नही देख भागै सो सूर नाही।
काम औ क्रोध-मद-लोभ से जूझना मँडा घमसान तहाँ खेत माही।
शील औ शौच सन्तोष शाही भये नाम शमशेर तहखूब बाजे।
कहै कबीर कोई जूझि है सूरमा कापर भीड़ तहँ तुरत भाजै।।

***

तनके तँबूरे में सासों के तार बोलें।
जय सीताराम जय. राधेश्याम।।
देह ये मेरा शिव का शिवाला।
देख ले इसमें मन की वसुरिया में।
स्वरों का सार बोले।।
जयसिय राम जय राधेश्याम।।
ये हैं अकिंचन सब कुछ तेरा, फेर लगादो।
प्यासी इन अखियों में आसुवों फुवार बोले।
जय सियाराम जय राधेश्याम।।

***

अगर है शौक मिलने का तोहरदम लौ लगाता जा।
जला कर खुद नुमाई को मसम तन पर लगाता जा।।
नशे में शैर कर अपनी खुदी को तू जलाता जा।
हुक्म है शाह कलन्दर का अनलहक तू कहा ता जा।।
कहे मंसूर मस्ताना मैने हक दिल में पहचाना।
यही मस्तों का मय खाना उसी के बीच आता जा।।

***

श्याम सुन्दर अब तो हम आशिक तुम्हारे बन गये।
हम तुम्हारे बन गये और तुम हमारे बन गये।।

जब ये दिल दुनियाका था, दुश्मन हजारों बन गये।
योग जप तप नेम से कोई बना विगाड़ करें।
हम अजामि लर्गाधगणिका के सहारे बन गये।।
आँख भर देखेंगे जब तुमको समझ लेंगे ये हम।
दिल बना वैकुण्ठ दृग, वैकुण्ठ. द्वारे वन गये।।

***

ओ प्रियतम तू क्यों डरता है।
अविराम नाम ले क्यों चिन्ता करता है।
मेरे डर से आग है जलता चन्द्र सूर्य तपता है।
इन्द्र वायु यमराज सभी यह डर के काम करता है।।
मेरे शरणागत की छाया, को जन छू सकता है।
मैं खुद नहीं भगता को मारू सदा अमर रहना है।।
मेरा सुर्दशन चक्र भगत की, सदा रक्षा करता है।
मत सोचेमत डरे किसी से, नाम तेरा भरता है।

***

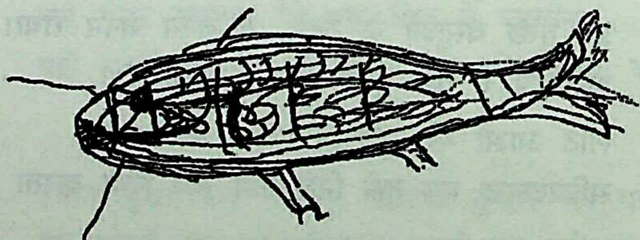
ओ प्रियतम मैं तुमसे क्या प्यार किया करता हूँ।
तेरे भावों के लिये मैं साकार बना करता हूँ।।
जो जो तूने चाहा वह बन करके मैं आया।
कामिनी की चाह में मैं ही नार बना करता हूँ।
इन तुच्छ वस्तुओं के लिये, तू जनम जनम रोया।
इसीलिये मैं तुझे पुकार किया करता हूँ।।
लौट आओ मेरे सुत देहादि की ममता से।
सच्चिदानन्द मय तुझे निज नाम रूप दिया करता हूँ।।

***

ओ पर्दा नशी तेरी, हर शक्ल सही मैं हूँ।
है झूँठ तो बता नादे, किसशै में नहीं मैं हूँ।।
रवि चन्द्र सितारों में, जल थल में पहाड़ों में।
जलवा है जहाँ तेरा, मौजूद वहीं मैं हूँ।।
सृष्टि के दो भागों में, दोनों हैं बराबर ही।
आजाद कहीं तू है, आवाद कहीं मैं हूँ।।
इस वागे इहाँ से हो, मिलता है पता मुझको।
हर जड़ में यही तू है, हर गुल में यही मैं हूँ।।
यह विन्दु भी मिलता है, जब नूर समन्दर से।
फिर कौन जुदा किससे, जो तू है वही मैं हूँ।।

***

सहारा नाम का भारे।
नाम लेत जन अगनित तर गये, गज अरु गणिका नारी।।
नामं प्रभाव शेष शुक गावत, व्यास वाल्मीक पुकारी
तुलसी सूर कबीर वखानत, गावत मीरा नारी।।
निरगुन हृदय नाम गुन मुलमे, बाहर सब गुनकारी।
यों हरि तुम्हरे बाहर भीतर, सुखनिधि रक्षा कारी।।
सावधान हो चिन्तन करले, चिन्ता तजदे सारी।
सुगम पंथ हरि के मिलने की, 'ढुक्का' कहत पुकारी।।



माँ।

गोदी में बिठाकर माँ, तुम प्यार मुझे दे दो।
संसार की नैया का, पतवात मुझेम दे दो।।
तापों का तपाया हुआ, द्वारे पे तेरे आया।
सब छोड़ गये साथी, तब द्वार तेरासाया।।
अब दे दो सहारा माँ, उद्धम् मेरा कर दो।।गो.।।

मेरे मन के मन्दिर में, माँ तुम ही बसती हो।
जब देखूँ तेरी शोभा लगता है हँसती हो।।
होठों पै हँसी दे दो, मुस्कान मुझे दे दो।।गो.।।
जग के सम्बन्धों का, ये जाल निराला है।
तुम पर तन मन जीवन, अर्पण कर डाला है।।
चरणों में रहने का माँ स्थान मुझे दे दो।।
गोदी में बिठाकर माँ.....।।

***

प्रेम पत्तनम् (रसिकोत्तंसस्य)

कबीर साखी

सीन सज्जन साधुजन टूटि जुरैं सौ बार।
कुजन कुम्भकम्भार का, एकैथ का दरार।।
आगे सीढ़ी सांकरी, पाछे चकना चूर।
परदा तर की सुन्दरी, रही धका से दूर।।

***

तोहि राखौं पियरवा केहि विधि से।
समझाऊँ हियरवा केहिविधिसे।।
हिय विचराखौं नयन तरसत हैं।
नयना विचराखौं हिय तरसै।।तोहि.।।

एकौ भाँति ना मन मानत है प्यारे बतावो मिलोगे कैसे
नयन से नयन मिलाय साँवरे हिय से हिय.....
सिया आली एहि भाँति मिलै।
जब ताप मिटै अंग अंग पर से।।तोहिरा.।।

***

वृन्दा विपिन रसिक रजधानी।
राजा रसिक विहारी सुन्दर सुन्दररसिक विहारि निरानी
ललितादिक ढिंगरसिक सहचरी सुन्दर युगुल रूपपदयानी
रसिक हलिनी वृन्दा देवी रचना रुचिर निकुञ्ज सुहानी
जमुना रसिकरसिक द्रुमवेली सोहे रसिकभूमि सुखदानी।
इहाँ रसिक चर स्थिर नागरिया रसिकहि रसिक सबहि गुणगानी।।

***

आनन्द सिन्दु बढ्यो हरि तन में।
श्रीराधा मुख पूर्ण चन्द्रलखि उमगि चल्यो व्रज वृन्दावन में।।
इतरोक्यो जमुना जात गोपिन, कछु इकफैलिरह्योवनये।
ना परस्योकर्मठ अरुज्ञानी अरूचि रह्यो रसिकन के मन में।
मन्द मन्द अवगाहत बुधबल भक्त हेतु लीलाछिनचिनाये।
कछु इकलह्यो नन्द सुनु कृपा सों सोदेखियत परमानन्दै जनमे।।

***

पश्चाताप

हौं अपने मन गर्व बढ़ायो।
यहै कह्यो पिय कन्ध चढौंगी तव हौं भेद न पायो।।
मो वानी सुनि हँसेकण्ठ भरि, भुजन उछंग लई।
तब हौं कह्यो कौन है मोसो, अन्तरमान भई।।
कहाँ गये गिरिधरमोको तहि ह्याँकैसे हौं आई।
सूरश्याम अन्तर भये होते, अपुनी चूक सुनाई।।

***

कबीर हँसना दूरकर, रोने से कर प्रीति।
विन रोया नहि पाइये, प्रेमपिपासा मीत।।
हँसि हँसि कान्त न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हँसि खेले पिय मिलें तो, कौन सोहागिल होय।।

***

ललितार कथा सुनि हँसि विनोदिनी कहिते लागी लोधनिराई।
अमार छांडियेश्याममधुपुरीजाइवे ये कथा तो कमू सुनी नाई।।
हियार माँ झारे मोर घर मन्दिर गो, रतन पँलग बिछाओ।
अनुरागरे तुलिकाय विद्वज होये छेताय श्याम चाँद घुमण रहे।।

***

तुम देखे मैं नहि पत्यानी।
मैं जानत मेरी गति तबही इहै साँच अपने मनमानी।।
जो तुम अंग अंग अब लोक्यो धन्य धन्य मुख अस्तुतिमानी।
मैं तो अंग एक अब लोकति, नैननि दोउ आये भरियानी।।
कुण्डल झलक कपोलानि आभा, इतने में ही .... रही विकानी।
एक टक रही नैन दोड रूँधे सूर श्याम की नहि पँहिचानी।।

***

कबरी मिले श्याम न हि जानी।
तेरी सौ कहि कहति सखीरी अबहू नहि पहिचानी।
खिरक मिलैम कै गोरस बेचत कै अबही कै काल्हि।
नैनन अन्तर होत न कबहूँ कहातिक हारी आनि।।
एकौ पल हरि होत न न्यारे, नीके देखे नाहि।
सूरदास प्रभुटरत न टारे नैनन सदा वसाहि।।

***

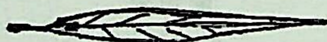
विरहिणी राधा के भाव

वन्धु! कि द्वार बलिव तोरे।
आपना खाइया पिरीत करीतु रहिते नारि नु घरे।।
कामना करिया सागरे मरिय साधव मनेर साधा।।
मरिया हयिब श्रीनन्दनन्दन, तो मारे करिब राधा।।
पिरीति करिया छाड़िया जाइब, रहिय कदम्ब तले।
त्रिभङ्ग हइया मुरली पूरिब, जरवन जाइब जले।।
मुरली सुनिया मुरछा हबे, सहजे कुलेर वाला।
चण्डीदास कय तबे से जानिबे, पीरिति केमन ज्वाला।।

(चण्डीदास)

***

बन्धु सि आर बलिवो आमि।
मरणे जीवने जनमे जनमे प्राणनाय हैय तुमि।।
तोमार चरणे अमार पण्णे बाँधित प्रेमेर फाँसि।
सब समपिया एक मन हैया निश्चय हाइलाम दासी।।
ए कुले ओ कुले दुकुते गोकुले अपना बलिग काय
शीतल बलिया चरण लइनु ओटुरिकमल पाय।।



जामेरस सोईहरो यह जानत सब कोय।
गौर श्याम दोउ रंग बिनु हरो रंग नहि होय।।

***

श्री हरिः

हमारे राम नाम धन खेती.
एक सात मैं ने खेती बोयी गंगा यमुना रेती।
राम नाम का बीज पड़ी है उपजे हीरा मोती।।

काम क्रोध को जीतो रे मैया गमता कर लो थोती-
उड़ियान में जाकर नागिन को जगाती, अमृतधार नि चोती।।
प्राण अपान मिलाकर प्यारे नेती व्यरत्लो धोती।।हमारे।
गगन मण्उल में जाकर देखो चमक रही एक ज्योती सुरत।
निरत के बैल बनाओं जब चाहे जब जोती।।
कह कबीर सुमो भाई साधो विरला जाने यह रीति।।

❋❋❋

तोड़ दी पतवार जाने किसलिये।
भर दिया अन्धकार जाने किसलिये।
है सहारा न जब अपने पाँव का
क्या खबर क्या रंग है धूप और छौंवका।
जिन्दगी का भार जाने किसलियें।।
ले सहारा उठ गया वे जानका।
गर लहारा पाले हम इन्सान का।।
देते हैं दुतकार जाने किसलिये।।
आवो मैं दूँगा तुम्हे अपने चरण।
मेरे नैनो से मिले जीवन मारण।।

❋❋❋

राजैजैवन्तो-योग

ऐसी जो युक्ति जाने सोई योगी न्यारा।
आसन जोसिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यानधरै।
विना तैल दिया वरै ज्योति हूँ उजारा।।ऐसो.।।
संयम संभाल साधै मूलद्वार बन्ध बाँधै।
शंखिनी ललाटै साधै कामदेव जारा।
प्राण वायु हिये माही खैंचिके अपान लाही।
नीके मिलि जाही ऐसा खेलधारा।

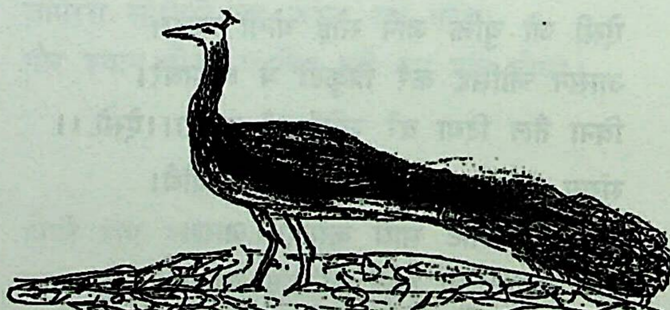
कुम्भक अथकराखै अनहदकी ओर ताकै।
सुखमन पैठिनाकै आगे जो विचारा।।
खोलिकै कपट सिरा कोऊ चढ़ै सखीरा।
काम धेनु जावे तीरा अमी को उतारा।।
उनमनी जाय लागै निजगृहा ही जागै।
जन्म मरणा छूटै मागै जम भारा।।

***

जानते न हाल जाने किसलिये।
हम अवाहिज भी अगर मिल जायँगे।
काँटों में फिर से सुमन खिल....
फिर नहीं लाचार हम अपने लिये।।

***

माधो जी मै न भई वन मोर।
मीरा ही तो जमुन तट रहती, कुञ्ज मेकला किलोल।।
मीरा होती वन विच रहती, नाचत ही मुख मोड़।
उड़ उड़ पंख गिरें धरनीपर बीनत ब्रज के लोग।।
उन पंखन कोक्कुट बनावें पहरेंगे नन्दकिशोर।
चन्द्रसखीं भज बालकृष्ण छबि हरि के चरन चितचोर।।



अब रथ फेरि मुरलिया बारे।
चन्दा तड़पै सूरज तड़कै, तड़क रहे अब नौलख तारे।
गैया तड़कै वछड़ा तड़कै, तड़क रहे सब ग्वाल विचारे।
गंगा तड़कै जमुना तड़कै तड़क रहे सब नदिया नारे।
चन्द्र सखी मन बालकृष्ण छबि कब होगे प्रभु दरस तुम्हारे।।

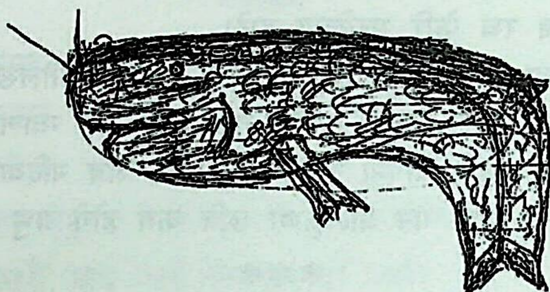
***

पाती सखी माधो जी की आई।
आपन आये श्याम मनोहर ऊधव हौंथ पठाई।।
बिना दर्शन व्याकुल भयो जिवड़ो, नैनन नीर बहाई।
मन अकुलाय ओट घूँघट की पतिया छतिया माहि लगाई।।
कष्ट की प्रीत करी मन मोहन, मोरी सुधविसराई।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि दरसन बिन अकुलाई।।
पाती सखी माधो की आई।।

***

श्याम की वंशी वन पाई।
उठो जी यशोदा मैया खोलो तो किवाड़ों।
मैं वंशी .... को आई।
बहुत दिनन के उनीदे ही मोहन
सोवन दे वृषभानु की जाई।।
इतनी सुनि तो निकल आये मोहन।
वंशी के संग मोरी पोथी चुराई।।
कान न सुनी न आँखन देखी।
चलौ तो देऊँ मैं ठाँऊ बताई।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि,
दोऊ पढ़े एकइ चतुराई।।

***



महारी कोण गुन्हा तकसीर।
कुंजन वन छोड़ी रे माधो।।
कै मैं होती जल की मछलिया।।
हरि करते असनान चरण रज छूती रे माधो।।
कै मैं होती वाँस की वंसुरी।
मुख धरते नन्द लाल अधर रस पीती हो माधो।।
कैसे होती सीप कौ मोती।
हरि करते गलहार, हि बड़े पर रहती रे माधो।।
कै मैं होती गऊ नन्द की।
चारत नन्द किशोर दर शक्ति पाती रे माधो।।
कै मैं होती मोर की पंखिया।
चन्द्रसखी वलिहार मुकुट पर रहती रे माधो।।

***

जो मैं होती विरज की रेणका।
कृष्ण चराते गाय चरण लिपटाती रे माधो।।

***

डूबै सो बोलै नहीं, बोलै सो अनजान।
गहरौ प्रेम समुद्र कोउ, डूबै चतुर सुजान।।

***

प्रभो अपने दरबार से अब न टालो।
गुलामी का इकरार मुझसे लिखा लो।।
दीनानाथ अनाथ का भला मिला संयोग।
अब यदि तारो गे नहीं हँसी करेंगे लोग।।
है बेहतर कि दुनिया की बदनामियों से।
बचो आप खुद और मुझको बचालो।। गुलामी.।।
पशुनिषाद खग भीलनी, हीन जाति फुलनाम।
बिना योग जप तप किये, गये आप के धाम।।
ये जिस प्रेम के सिन्धु में जा मिले हैं।
उसी सिन्धु में बिन्दु को भी मिलालो।।
प्रभो अपने दरबार से अब टालो।।
(गुलामी.)



स्तवन। सुमित्रानन्दन पन्त।

हैम चूड़पर स्वर्णरश्मि प्रभ, ज्योतिमुकुट जाज्वल्य शीशपर।
शत सूर्योज्वल कुवलय कोमल, स्फुरत किरण मण्डित मुख सुन्दर।।
नयन अकूल क्षमा गरिमामय, ज्योति प्रीति के अतल सरोवर।
अधर प्रवालों पर चिरगुञ्जित, मौन मधुर स्मित के मुरली स्वर।।
सहृदय वक्ष विशाल सिन्धुवत्, विश्व भारभृत अंस धुरन्धर।
करूणालम्बित बाहु वरदकर, मृत्युकलुषहर चारुधनुषशर।।
बढ़ते युगयुग चरण छोड़निज, अक्षयचिह्न समय के पथ पर।
विश्व हृदय शतदल पर स्थित तुम, हृदयेश्वर जगदीश परात्पर।।
सृजन नृत्य उल्लास निरत नित, चिरत्रिभङ्गमय रहस रतीश्वर।
अभय इङ्गितों से जीवन की, शाश्वत शोभा पड़ती झर झर।।

जय पुरुषोत्त प्रणत प्रणमन, नयनों में भर रूप मनोहर।
चिर श्रद्धा विश्वास भक्तिका, मङ्गलमय निजजन को दो बर।।



ॐ गुन पूगुन वि अज कृ, म आ भ मू गुन साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो, फेरि चढ़इन हाँथ।। (दोहावली)

***

टूट गई है माला मोती विखर चले।
दो दिन रहकर साथ श्याम तुम किधर चले।।
श्याम श्याम हम तुम्हे पुकारें, तुम मथुरा की ओर चले।
अकूर कूर बनकर आये हाय हमें अब लूट चले।।
हम रोते रह गये आप बन निठुर चले।।टू.।।
मिलन की दुनिया छोड़ चले तुम आजविरह में अपने।
खोये खाये नैनों में हैं उजड़े उजड़े सपने।
याद की गठरी दिये आज तुम किधर चले।।टूट.।।
अब तो इस जग में जीयेंगे आँसू पीते पीते।
जैसी ये गति हम पर रीती और किसी पे न बीते।
कोई पूँछो आप आज अब किधर चले।।टूट.।।
मधुर मिलन का मधुरस पीकर विरह आगमे जलना है।
क्या जाने इस जीवन में अब फेर कभी वह मिलना है।।
प्यारे मेरे सावन को तुम जेठ बनाकर किधर चले।।
टूट गई है माला–



रागयोगी

योगी युगति योग कमाव।
सुखमना पर बैठि आसन, सहज ध्यान लगाव।।
दृष्टि सम करि सुन्न सोवो, आपा मेटि उड़ाव।
प्रगट जोति अकार अनुभव, शब्द सोहं गाव।।
छोड़ि मठ को चलहु योगी, बिना पर उड़ि जाव।
'यारी' कहे यह मत विहंगम, अगम चढ़ि फल खाव।।

***

रा. शहाना। दीप

झिलमिलझिलमिल वरसै नूरा, नूर जहूर सदा भरपूरा।
रूनझुन रूनझुन अनहद बाजै, भँवर गुंजार गगन चढ़ि गाजै।।
रिमझिम बरसै मोती, भयो प्रकाश निरन्तर जोती।
निर्मल निर्मल निर्मल नामा, कह 'यारी' तँह लियो विसरामा।।

***

न पिता न पुत्र न मित्र शत्रु न प्रेमी और न प्यारे किसी के।
आश्चर्य की हुई ये छुट्टी न कोई हमारा न हम किसी के।।
न कोई इच्छुक हुआ हमारा, न हमने मन से किसी को चाहा।
न हमने देखी हरष की लहरे न शोक दुःख में कभी कराहा।।
न हमने बोया न हमने काटा न हमने जोता न हमने आहा।
उठाया मन से मरम का परदा तो हरिकी करूणा मैं फिर अहाहा।।
अहं में छोटा बड़ा था मनका, अहं में सम्पत् सपन या भ्रम का।
अहं के मिटते न मैं न मेरा है राम सागर भरा अहाहा।।

***

जो तू है सो मैं हूँ जो मै हूँ सो तू है।
न कुछ आरजू है न कुछ जुस्तजू है।

बसा राम मुझमें मैं बस राम में हूँ।
न एक है न दो है सदा तू ही तू है।।
खुली है ये ग्रन्थी मिटी है अविद्या।
रमा राम अब बस बसा चार सूँ है।।
उठा जब कि माया का पर्दा अँधेरा।
किया गम खुशी ने भी हमसे किनारा।।

***

निशिदिन खौननि पीयूष सौ पियत रहैं,
छाय रह्यौनाद वाँसुरी के सुर ग्रामकौ।
तरनि तनूज तीर बनकुञ्ज बीथिन में,
जहाँ तहाँ देखती हैं रूप छबि धाम कौ।।
'कवि मतिराम' होत ह्याँ तौ ना हिये तै नेकु,
सुख प्रेमगात परस अभिराम कौ।
ऊधौ तुम कहत वियोग तजि योग करौ,
योग तब करैं जो वियोग होय श्याम कौ।। (श्री मतिराम)

***

प्राननि के प्यारे तन ताप के हरनि हारे,
नन्द के दुलारे व्रजवारे उमहता हैं।
कहै 'पद्माकर' उरूझे उर अन्तर यों,
अन्तर चहे हूँ ते न अन्तर चहत हैं।।
मैननि बह्ये हैं अंग अंग हुलसे हैं रोम,
रोमनि लसे हैं निकसे हैं को कहत है।
ऊधौ! वे गोविन्द मथुरा में कोई और कहाँ,
मेरे तो गोविन्द मोहि मोहि रहत हैं।।

***

दुर्गम हृदयारण्य, दण्डका, रण्य घूम जा आजा।
मति भिलनी के भाव-वेर, हो जूँठे भोग लगा जा।
मार पाँच वटमार, साँले, रह तू पंवटी में,
छिने प्राणप्रतिमा तेरी, भी काली वर्ण कुटी में।
अपने जीकी जतन बुझाऊँ, अपना सा कर पाऊँ,
वैदेही सुकुमारी कितै गई, तेरे स्वर में गाऊँ।।
(हिमतरंगिनी) (माखन लाल चतुर्वेदी)

***

ब्रह्मपियूष मधुर शीतल जो पैमन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय कारन श्रिशि वासर धावै।।
(विनय प.-११६)

***

हौं ही व्रज वृन्दावन मोही में वसत सदा,
यमुना तरंग श्याम रंग अवलीन की।
चँहु ओर सुन्दर सघन देखियतु,
कुंजन में सुनियत गुंजन अलीन की।।
वंशीवट तट नटनागर नटतु भोमे,
रास के विलास की मधुर धुनि वीन की।
भरि रही मानक भनक ताल तानन की,
तनक तनक तामे झनक चूरीन की।। (श्री देव कवि)

***

मेरी तन नगरी के राजा मेरे मन मन्दिर में आजा।
सूख रही है मन की बगिया, प्यार का जल वरसा जा।।
जीवन दिवला झिलमिल होवे, स्नेह का तेल पुराजा।।
जग जंगल में भूल रहा हूँ सीधा पंथ दिखा जा।।

जन्म मरण का दुखड़ा भारी आवा गवन मिटा जा।
आशा तृष्णा के बस भटकूँ पूरण रूप दिखा जा।।
मेरी तन नगरी के राजा, मेरे मन मन्दिर में आजा।।

***

टूट गई है माला मोती विखर चले।
दो दिन रहकर साथ श्याम अब किधर चले।

अन्तरा–

मिलन कि दुनिया छोड़ चले ये आज विरह के सपने।
खोये-खोये नैनो में है उजड़े-उजड़े सपने।।
याद गठरा लिये ये किधर चले।
दो दिन रहकर साथ कि जाने चले। टूट गयी है माला.....

अन्तरा–

अब तो ये जग में जीयेगे आँसू पीते-पीते जैसी
इनपे बीते ऐसी और किसी पे न बीते कोई
मत पूँछो इन्हे कि ये किस डगर चले–दो दिन रहकर।
टूट गयी है माला.....
श्याम-श्याम हम उन्हें पुकारे वे मथुरा की ओर चले।
अक्रूर क्रूर बनकर के आपे हाय हमें अब लूट चले।।
मधुर मिलन का मधुरस पीकर विरह आग में जलना है।
प्यारे मेरे को तुम जेठ बनाकर किधर चले।।
दो दिन रहकर टूट गई है माला.......।।

***

संकटों में फँसा है ये जीवन मेरा शेरावाली माँ आकर बचा लीजिये।
टूटते है सितम हर कदम पर यहाँ अपने आँचल में मुझको छुपा लीजिये।।
जिसे साथी मैं अपना समझता रहा साफ निकले वे प्रेमी मतलब के।
हारकर आज मैंने पुकारा तुम्हें बेसहारा को माँ आसरा दीजिये।।

द्वार तेरे झुका दी है मैंने ये शिर क्षमा अपराध मेरे सभी कीजिये।
जाग़ जाये भाग मेरा मेरी मा अपने चरणों में मुझको लगा लीजिये।।
फूल बनकर हँसू ऐसे भाग्य कहाँ साथ काँटों के मुझको खिला लीजिये।
तेरे चरणों के नीचे पड़ूँ आनके ऐसी करूणा का पात्र बना लीजिये।

***

प्रेम के बन्धन में मोहन बँध गये।
प्रेमियों ने जो बनाया बन गये।।
जान मीरा की न राणा ले सका।
नाग भेजा तो मुरारी बन गये।।
भाव तुलसीदास का पूरा किया।
छोड़ वंशी धनुषधारी बन गये।।
भक्त नरसी की तमन्ना पूरी की।
सेठ साँवलिया विहारी बन गये।।
दीन सुदामा के लिये द्वार पर आये प्रभु।
पाँव धो करके पुजारी बन गये।।

***

मेरा राम भी तू है मेरा श्याम भी तू है।
तू तन मन में मेरे समाया, तू ही ख्यालो में।
तू ही तो मेरा पूज्य देवता तुझसे ही रोशन मेरा जहाँ है।
धरती सूरज चाँद सितारे तुझ बिन कौन कहा तू ही यहाँ और वहा है।।१।।
जब जब मुझपे भीड़ पड़ी है तूने ही मेरा साथ दिया है।
पूँछे है मेरी आँख से आँसू हाथ में लिया है।
मेरा हर दुःख दूर किया है।
तू ही मुझे सत्संग दिया था, जग का वन्धन काट दिया था,
साधन पथ पर थामा तू ही ने मेरे मन में मैल को दूर किया है।।
तूने ही विद्या ज्ञान दिया मुझे कर्म जाल से पार लगाया।

तूने ही सच्चा प्यार पिलाया मुझे अपना कर
अपनाय लिया है भव सागर से पार किया है।।
मेरा राम भी तू है मेरा श्याम भी तू है.......।।
तीन लोक नवखण्ड में, सदा होत जेवनार।
कैशेवरी कै विदुरघर, तृप्त हुये दुइबार।।

***

माँ जगदम्बे

हे जगदम्बे तेरे भवन में हो रही जय-जयकार।
जय माँ अम्बे जय माँ दुर्गे भक्त रहे हैं पुकार।।
तेरा रंग सुगन्ध से भरा भवन।
जग मग ज्योती किरण-किरण।
छोढो पे हंसी कुछ मन्द-मन्द
तू बैठी सजे सिंघासन।।
चमक रहा है झिलमिल-झिलमिल तेरे गले का हार....।।
जय माँ अम्बे....।।
कोई पान और फूल चढ़ाता है।।
कोई चरणो में शिश झुकाता है।
कोई नाच-नाच कोई गागाकर के माता तुझे रिझाता है।।
तेरी कृपा जो पा जाता है। उसकी ही बेड़ा पार।।
जय माँ अम्बे जय माँ दुर्गे.....।
तेरी चूनर है तारों वाली। ये रात है तेरी लेट काली।
चाँद सूरज आँखें तेरी होटों पे सवेरे की लाली।
आये बहार जब रितु मतवाली तू करती सिंगार।।
जय माँ अम्बे....।।

गर्मी ये तेरा गुस्सा है, सर्दी में तेरी निठुराई।।
बरसातों में प्यार तेरा, नदियों ने करूणा छलकाई।
त्रिविध ताप त्रिशूल तुम्हारा बड़ा विकट हथियार।
जय माँ अम्बे........।।
आकाश तेरा फैला आँचल हरियाली परिधान तेरा।
सप्त समुन्द्र मन है तेरा योगी धरे कोई ध्यान तेरा।।
करे दीप चन्द्र गुनगान तेरा माँ करियो कुछ उद्यार।।
जय माँ अम्बे....।।

***

देखिरी देखि आनन्द कन्द।
चित्त चातक प्रेमघन लोचन चकोरन चन्द।।
चलित कुण्डल गण्डमण्डल झलकललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीडत इन्दु डह डोल।।
सुभग कर आनन समीपे मुरलिका इहि आइ।
मनु उभै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ।।
श्याम देह दुकूल दुति मिलि लसति तुलसी माल।
तड़ित घन संजोग मानौ स्तनिका सुक जाल।।
अलक अविरल चारु हास विलास भृकुटो भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग।।

***

पत्थर के फर्श कगारों में,
सीखों की कठिन कतारों में,
खम्भों, लोहे के द्वारों में,
इन तारों में दीवारों में।
कुण्डी, ताले सन्तरियों में,
इन पहरों की हुंकारों में।



जिस वोर लखू तु ही तू है।

गोली की इन बौछारों में,
इन व्रज बरसती मारों में।
इन सुर शरमीले गुण छबिले,
कष्ट सहीले वीरों में,
जिस ओर लखूँ तुम ही तुम हो,
प्यारे इन विविध शरीरों में।।
(हिम तरंगिनी) माखन लाल चतुर्वेदी।

***

मैयारी मोहि माखन भावै।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रूचि आवै।।
व्रज युवती एक पाछे ठाड़ी, सुनत श्याम की बात।
मन मन कहत कबहुँ अपने घर, देखौं माखन खात।।
बैठे जाइ मथनियाँ के ढिंग, मैं तब रहौं छिपानी।
सूरदास प्रभु अन्तरयामी, ग्वालिनि मन की जानी।।
गये श्याम तेहि ग्वालिनि के घर, करी लीला मन भानी।।

***

व्रज घर घर प्रकटी यह बात।
दधि माखन चोरीकरि ह्नै हरि, ग्वालसखा संगखात।।
व्रज बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारे आवैं।
माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहि छुपावैं।।
मनही मन अभिलाष करति सब, ह्रदयधरति यह ध्यान।
सूरदास प्रभुको घर में लै, दैहों माखन खान।।

***

सब दुःख दूर हुये जब तेरा नाम लिया।
नरसिंह ने पुकारा हर हर गोपाला।
जल्दी से आ जाओ नन्द जी लाला,

भात में छूप बैठे जब तेरा नाम लिया।
सब दुःख दूर.......।
द्रोपदी ने पुकारा हर हर गोपाला।
जल्दी से आ जाओ नन्द जी के लाला।
चीर में छूप बैठे जब से तेरा नाम लिया।।
सब दुःख दूर.......।
मीरा ने पुकारा हर हर गोपाला।
जल्दी से आ जाओ नाद जी के लाला
प्याले में छूप बैठे जब तेरा नाम लिया।
सब दुःख दूर हुये जब तेरा नाम लिया।।

***

श्याम की कोई खबर लाता नहीं।
गम पे अब हमसे सहा जाता नहीं।
दिल में आता है के मैं जाकर मिलूं।
बिन पंख मुझसे उड़ा जाता नहीं।
श्याम की कोई.......।।टेक।।१।।
दिल में आता है के मैं जोगन बनूँ।
दर पे दर मुझसे फिरा जाता है।
श्याम की कोई खबर लाता नहीं।।टेक।।२।।
दिल में आता है के मैं भक्ति करूँ।
दिल भी एक पल ठहर पाता नहीं।
श्याम की कोई खबर लाता नहीं।
गम ये अब मुझसे सहा जाता नहीं।।३।।

***

श्याम तुम मथुरा में जाकर रह गये।
हम यहाँ आँसू बहाते रह गये।

श्याम तुमने क्या कहा था बागों में।
हम यहाँ कलियाँ चुनाते रह गये।
श्याम तुम मथुरा.......।।१।।

श्याम तुमने क्या कहा था जमुना तालाबों पें।
हम यहाँ साड़ी घुलाते रह गये।।
श्याम तुम मथुरा में जाकर रह गये।।२।।

श्याम तुमने क्या कहा था कुओं में।
हम यहाँ सारी भराते रह गये।
श्याम तुम मथुरा में जाकर रह गये।।३।।

***

जय मा दुर्गे

रंग सुगन्ध से भरा भवन

आकाश तेरा फैला आँचर।
हरियाली परिधान तेरा।
गर्मी तेरा गुस्सा है, ठंढक तेरी निठुराई।
तीन ताप है त्रिसूल तेरा।
तेरी चुनरी तार सितारों की
वर्षा तेरा पार नदियाँ करूणा
सात समुन्दर मन है तेरा

लिङ्ग परिवर्तन योग

विजया बीज ४०, खुरासनी अजवायन ४० बी.। शिवलिङ्गी ४० बी., मयूर चन्दा १। मधु से ९ बटी। जीवित वत्स गो दुग्ध से खावे। आधान के ६०-७० दिनो मध्य।

यूं तो प्रेम की बाते हैं उद्धव,
बन्दगी तेरे बसकी नहीं है।
यहाँ तो सर दे के होते है सौदे,
आशकी इतनी ससती नहीं है।

प्यार वालों ने कब वक्त देखा,
तेरी पूजा में पाबन्ध्या है।
यहाँ तो दम दम पै होती है पूजा,
सर झुकाने की फुरसत नहीं है।।टेक.।।१।।
प्यार का जाम भर भरके पीना,
आशिकी का यही तो है जीना।
नाम की एक बार जो पीले,
जिन्दगी भर उतरती नहीं है।।२।।
जिनकी आँखों में हैं श्याम प्यारे वो तो होते हैं जग निराले
जिनके नैनों में राधा बसी हैं, जिनके नैनों में श्याम बसे हैं
वो नजर फिर भटकती नहीं है।।
मेरे श्याम आजा, मेरे राम आज्ञा। मेरे मन के मन्दिर में
तुही है बहकते हुओं का इशारा,
तुही है सिसकते हुओं का सहारा।
तुही है दुःखी दिलजलों का हमारा।
तुही भटके भूलों का है ध्रुर का तारा।
जरा सीखचों में समा सा दिखा जा।
मैं सुध खो चुकूँ उससे कुछ पहले आजा।।
(हिम तरंगिनी) माखन लाल चतुर्वेदी।

१९२१, विलासपुर जेल।

***

भजन

उस याद आने वाले को कैसे भुलाऊँ मैं।
नजरों में बसने वाले की बलिहारी जाऊँ मैं।।टेक.।।
सब कहते है कि भूल जाऊँ मैं याद तुम्हारी।
इस लगी विरह की आग को कैसे बुझाऊ मैं।

इस दिल में बसने वाले रग-रग में रमे तुम
मैं खड़ा निहारूँ राह दरश कैसे पाऊँ मैं।
अब खुले रक्खूँ या बन्द करूँ इन आँखों के द्वार को
उलझे हुए इन आँसून को कैसे सुलझाऊँ मैं।।

हंसकुमार (उमरपुर)

***

होलीघोष्ट–वायविले देवः

जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते यद्ववीर।
रोना धोना सिसकना, आहों की जागीर।।

विरह अगिनि तन में तपे, अंग सबै अकुलाय।
यह सूना जिय पीव मँह, मौत ढूँढ़ फिरिजाय।।
पी पी करते दिन गया, रैन गई पिय ध्यान।
विरहिन के सहजै सधै, भगति योग तप ज्ञान।।

***

अपने नैनों की स्याही से लिखी है अर्जी।
श्याम आना न आना तुम्हारी मर्जी।
तुम्हे अर्जुन भगत ने पुकारा थ
प्रभु तुमने दिया सहारा था, तुमने उपदेश देने हा कर दी।।
तुम्हे नरशी भगत ने पुकारा था, प्रभु तुमने दिया सहारा था।
तुमने .. मराने में हद कर दी, श्याम आना.।।
तुम्हे मीराबाई ने पुकारा था।
प्रभु तुमने दिया सहारा था, तुमने अमृत बनाने में हद कर दी।।
तुम्हे द्रुपद सुता ने पुकारा था, प्रभु तुने दिया सहारा था।
तुमने चीर बढ़ाने में हद करदी।। श्याम........

***

स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः



श्रीकृष्णके वामाङ्गसे मूलप्रकृति राधाका प्राकट्य

व्यधिकरणधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव

इस अभाव की प्रतियोगिता (अभाव) ऐसे धर्म से युक्त है (प्रवच्छिन्न) जो धर्म प्रतियोगी में न रह अन्यत्र रहता है।

ये घोड़ा होना न होना व्यर्थ है जरूर, किन्तु अनुपयोगी है–उपयोगी न होने से उपयोगिता दूसरी उपयोगिता के अभाव की प्रतियोगिता का अवच्छेदक धर्म जो उपयोगी होने में है वह घोड़ा से अलग रहने के कारण व्यधिकरण है।

प्रतियोगी अवृत्तिश्च धर्मो न प्रतियोगिता वच्छेदको भवति।

जो धर्म प्रतियोगी में नहीं है वह प्रतियोगिता का अवच्छेदक नहीं बनता। अतः यहाँ व्यधिकरण धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता वाले अभाव का कथा है।



मिथ्या-भ्रम अजनक जन्यधी विषयान्यत्व मिथ्यात्वं।

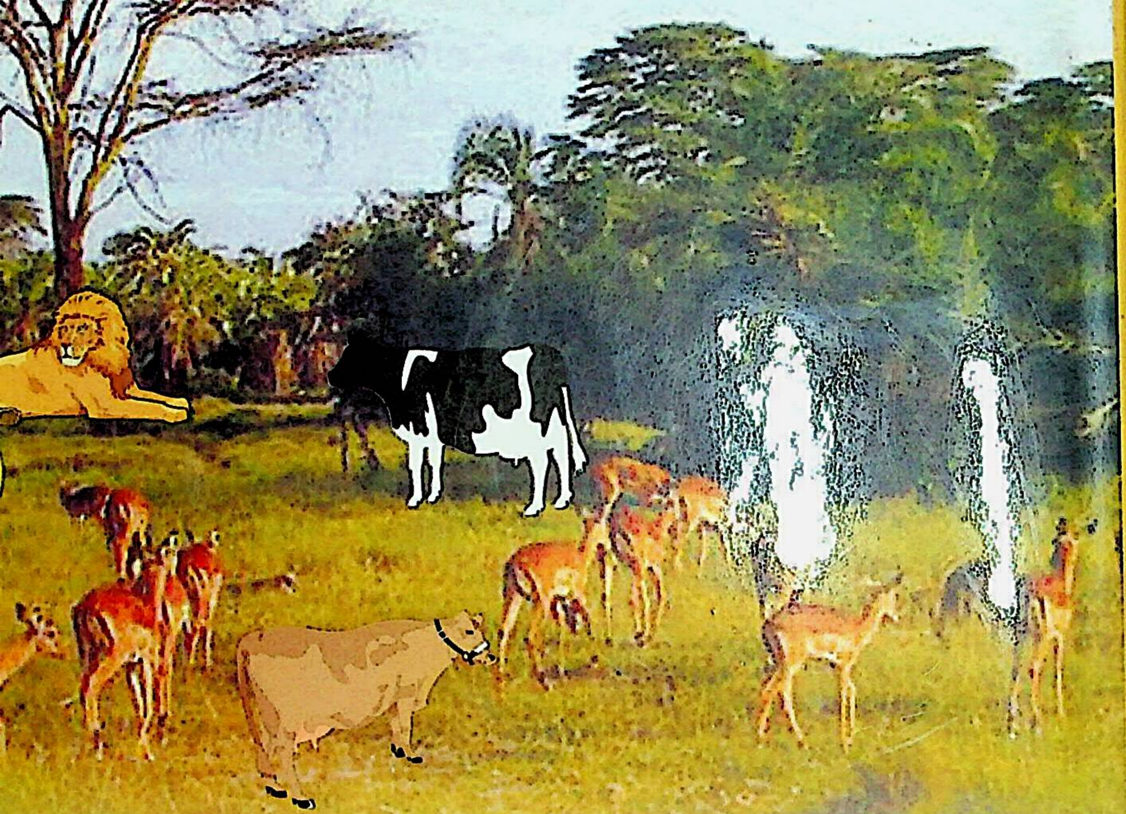
भ्रम के अनुत्पादक साधन से उत्पन्न ज्ञान के विषय से भिन्न जो कुछ है वह मिथ्या है।





ग्रन्थ वही है जो चिज्जड़ ग्रन्थि के विमोक की विधि का उपदेश करे ये **'चिन्तामणि'** सद्ग्रन्थ नित्य शुद्ध बुद्ध चैतन्यतत्व पर प्रभावी जन्मान्तरीय वासना जन्य मलविक्षेप का निराकरण कर अन्त:प्रकाश को उद्भासित करने में सक्षम है; अद्वैतभाव निष्ठ अनुभवी सन्त का प्रसाद होने से भी इसमें अलौकिकता का समावेश है; युक्तियों एवं सूक्तियों के संप्रयोग से सर्वविधाभ्युदय पूर्वक अन्तस्तृप्ति प्राप्त करने का ये सरलतम उपाय है क्योंकि इतना अधिक एवं अद्भुत अक्षयकोश एकत्र अन्यत्र असम्भव सा है।

त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः



सम्पर्क सूत्र

पवन कुमार

498/28 साउथ सिविल लाइन,
मुज्जफरनगर, उत्तर प्रदेश

पिनकोड - 251001

फोन नं. : 09359984709